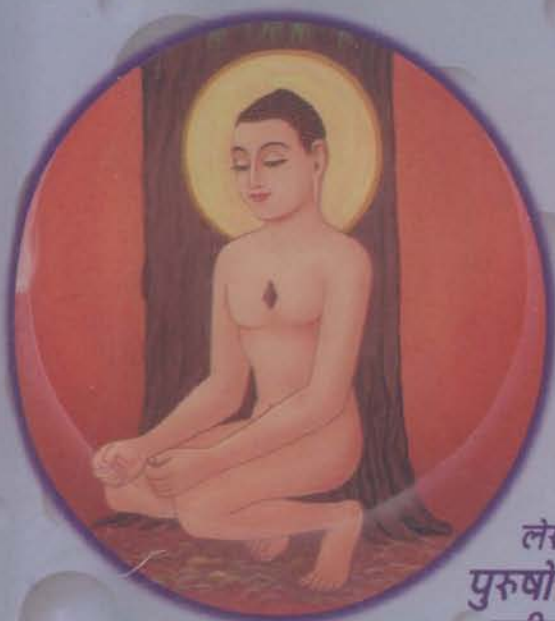


सचित्र

# भगवान महावीर जीवन चरित्र



लेखक :  
पुरुषोत्तम जैन  
रवीन्द्र जैन

## प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय में अभिमत

भगवान महावीर का दर्शन अहिंसा एवं समता का दर्शन है। महावीर ने अध्यात्म को ही उपकृत नहीं किया अपितु अनेकान्त और सापेक्षवाद के द्वारा अनेक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर व्यवहार जगत को भी सँवारा है।

आध्यात्मिक एवं सामाजिक क्रान्ति के संदर्भ में भगवान महावीर का जो अवदान रहा है उसे प्रस्तुत ग्रन्थ में सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। सचित्र भगवान महावीर नामक ग्रन्थ में लेखकद्वय श्री पुरुषोत्तम जैन और श्री रवीन्द्र जैन ने श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं के आधार पर समन्वय का प्रयास किया है। अनेक सटीक प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत भगवान महावीर का जीवन चारित्र अपने आप में एक महत्वपूर्ण आयाम है। भगवान महावीर से सम्बन्धित जीवन चित्र अत्याधिक स्पष्ट और आकर्षक है। डॉ. साध्वी स्मृति जी के कुशल सम्पादन ने ग्रन्थ की महिमा को शतगुणिस कर दिया है। श्रीमान् श्रीचन्द्र जी सुराना का श्रम भी ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोगी बना है।

मुनि वीरेन्द्र कुमार

ॐ

२६वीं महावीर जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में

सचित्र

# भगवान महावीर जीवन चरित्र

✽ प्रेरिका ✽

जिनशासन प्रभाविका जैन ज्योति उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज की सुशिष्या  
महाशाध्वी सरलात्मा श्री शुधा जी महाराज

✽ लेखक ✽

पुरुषोत्तम जैन  
रवीन्द्र जैन (मालेर कोटला)

✽ सम्पादक ✽

शाध्वी डॉ. स्मृति जी म. एम. ए., पी-एच. डी.

● प्रकाशक ●

२६वीं महावीर जन्म-कल्याणक शताब्दी संयोजिका समिति, पंजाब  
महावीर स्ट्रीट, पुराना बस स्टैण्ड, मालेर कोटला-१४८ ०२३ (पंजाब)

## २६वीं महावीर जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित

- पुस्तक : सचित्र भगवान महावीर जीवन चरित्र
- संप्रेषणा : जिनशासन प्रभाविका जैन ज्योति उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकान्ता जी म. की सुशिष्या  
महासाध्वी श्री सुधा जी महाराज
- लेखक : पुरुषोत्तम जैन, २वीन्द्र जैन
- संपादक : साध्वी डॉ. स्मृति जी महाराज एम. ए., पी-एच. डी.
- प्रथमावृत्ति : वि. सं. २०५७  
आषाढ पूर्णिमा, जुलाई २०००
- प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान :
  - २६वीं महावीर जन्म-कल्याणक शताब्दी संयोजिका समिति, पंजाब  
महावीर स्ट्रीट, पुराना बस स्टैण्ड, मालेर कोटला-१४८ ०२३ (पंजाब)
  - दिवाकर टैक्सटोग्राफिक्स  
ए-७, अवागढ़ हाउस, अंजना सिनेमा के सामने, एम. जी. रोड, आगरा-२८२ ००२
  - भूषण दी हट्टी  
सर्राफा बाजार, अम्बाला शहर (पंजाब)
- चित्र सौजन्य :  
वाणी भूषण उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि जी द्वारा संपादित पद्म प्रकाशन, नरेला, दिल्ली  
द्वारा प्रकाशित कल्पसूत्र के अन्तर्गत भगवान महावीर जीवन प्रसंग !
- मुद्रण :  
श्री राजेश सुराना  
दिवाकर टैक्सटोग्राफिक्स, ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-२८२ ००२  
फोन : (०५६२) ३५०२९६, ५२०१२९
- मूल्य :  
रुपये तीन सौ पचास मात्र (३५०/-)



णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

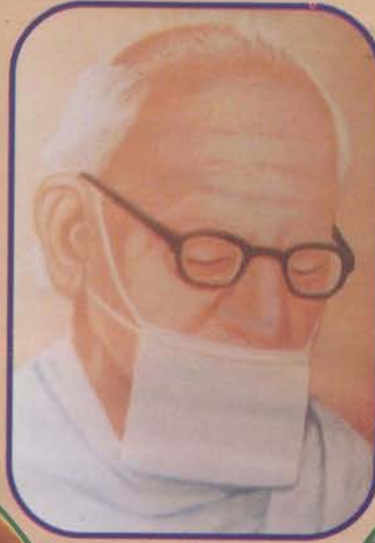
णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व साहूणं

एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पाव प्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

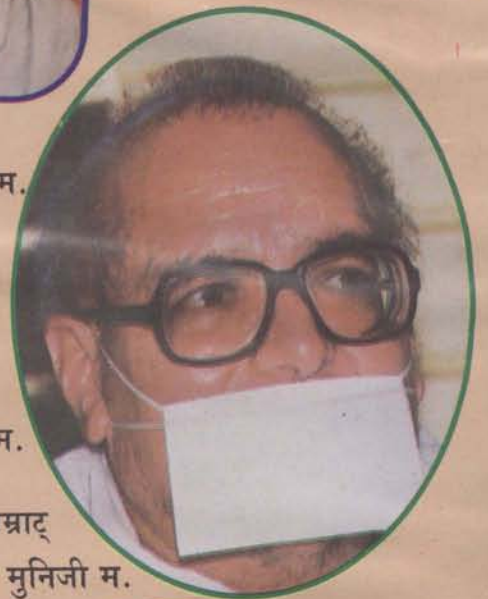
# श्रमण संघ के आराध्य पुरुष



आचार्य सम्राट्  
श्री आत्माराम जी म.



आचार्य सम्राट्  
श्री आनन्दऋषिजी म.



आचार्य सम्राट्  
श्री देवेन्द्र मुनिजी म.





# समर्पण

पूज्य गुरुणी जी  
उप प्रवर्तिनी साध्वीरत्न  
श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज  
को सादर समर्पित



# समर्पण

प्रस्तुत ग्रन्थ  
प्रभु महावीर के २६००वें जन्म महोत्सव पर  
अपनी गुरुणीजी जिनशासन प्रभाविका  
साध्वीरत्न जैन ज्योति श्री स्वर्णकान्ता जी म.  
के कर-कमलों में  
सहज भाव से समर्पित करते हैं ।

रवीन्द्र जैन  
पुरुषोत्तम जैन  
मण्डी गोविन्दगढ़



## प्रकाशकीय

पिछले ३० वर्षों से हमारी संस्था २५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति, पंजाब के नाम से काम करती थी, अब वही संस्था २६वीं महावीर जन्म-कल्याणक शताब्दी संयोजिका समिति, पंजाब के रूप में सारे पंजाब में जैनधर्म का प्रचार कर रही है। अब तो पंजाबी जैन साहित्य पर ५० ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। भविष्य में यह प्रचार का कार्य अभी तक चालू है।

जिनशासन प्रभाविका साध्वी जैन ज्योति श्री स्वर्णकान्ता जी म. इस संस्था की संस्थापक प्रेरिका हैं। यह समिति जैन एकता, शाकाहार व जैन संस्कृति की रक्षा के लिए समर्पित संस्था है। समिति की प्रेरणा से पंजाबी विश्वविद्यालय में जैन चैयर की स्थापना हुई। वहाँ समिति व साध्वी जी दोनों ने विपुल मात्रा में जैन साहित्य पहुँचाया। इण्टरनेशनल पार्वती जैन अवार्ड, इण्टरनेशनल भगवान महावीर शाकाहार अवार्ड, आचार्य श्री आत्माराम भाषण माला आदिश्वर धाम कुप्पकला में साध्वी श्री स्वर्णा जैन पुस्तकालय की स्थापना समिति की प्रमुख देन है।

आजकल गुरुणी साध्वी स्वर्णा जी म. के अस्वस्थ रहने के कारण उनकी प्रमुख शिष्याओं ने यह काम अपने हाथों में उठाया है। हर रोज गुरुणी जी की सेवा, धर्म-प्रचार दोनों कार्य साथ-साथ चलते हैं। उन्हीं की प्रमुख शिष्या शान्त मुद्रा, गुप्त तपस्विनी साध्वी राजकुमारी जी व साध्वी सुधा जी हैं। साध्वी राजकुमारी जी के आशीर्वाद से यह कार्य इस समिति के लेखकद्वय के हाथों सम्पन्न हुआ। प्रभु महावीर के २६०० साला जन्म-दिन पर हमारी संस्था की ओर से यह तुच्छ भेंट प्रभु महावीर के चरणों में समर्पित है। समिति का प्रमुख कार्य तो पंजाबी भाषा के अन्दर धर्म-प्रचार का रहा है। पर लम्बे समय से प्रभु महावीर का सर्वमान्य हिन्दी जीवन-चरित्र विद्वानों के लिए कमी को पूरा करेगा। विद्वत् वर्ग हमारे प्रकाशन को सम्मान देगा।

संस्था साध्वी सुधा जी (प्रेरिका) व समस्त गुरु भक्तों का प्रकाशन सहयोग के लिए धन्यवाद करती है और भविष्य में सहयोग की आशा करती है।

३१.३.१९९९  
मण्डी गोविन्दगढ़

संयोजक  
—पुरुषोत्तम जैन

## जैन आचार्य डॉ. शिवमुनि जी. म. सा. का आशीर्वचन



२६००वीं महावीर जन्म कल्याण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब द्वारा भगवान महावीर के जीवन को संस्पर्श करने वाले सचित्र जीवन चरित्र प्रकाशित करने जा रही है। २१वीं सदी की ओर बढ़ते हुए देश में सचित्र जीवन चरित्रों की प्रधानता बढ़ रही है। सचित्र जीवन चरित्र को देखने मात्र से ही बहुत सारी बातें सामान्य व्यक्ति को भी प्रभावित कर जाती है, एवं अनेक भविष्यजनों को आत्म बोध की ओर प्रेरित करती है। ऐसे तो भगवान महावीर के अनेक चरित्र छपे हुए हैं, लेकिन इस चरित्र की विशेषता है कि इसमें शास्त्र, चुर्षि, निर्युक्ति एवं अब तक के सभी प्रकाशित चरित्रों का सहयोग लेकर उप प्रवर्तिनी महासती श्री स्वर्णकान्ता जी. म. की शिष्या महासती श्री सुधा जी. म. की प्रेरणा से एवं इसका सुन्दर संपादन महासती डॉ. स्मृति जी. म. ने किया है। महासती जी का पुरुषार्थ अनुमोदनीय है।

### प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक द्वय

२६००वे जन्म-कल्याणक वर्ष में यह एक रचनात्मक कार्य होगा जो वर्षों तक जन साधारण में एवं बालक, युवक, युवतियों एवं विद्यार्थियों का भगवान महावीर के जीवन बोध प्राप्त करने में सहयोग करेगा। इस मंगलमय कार्य के लिए हमारा आशीर्वाद एवं शुभ कामनाएँ आपके साथ हैं। विशेषतः प्रेरिका साध्वी सुधा जी. म. व साध्वी जी राजकुमारी साधुवाद की पात्र हैं, आशा है है भविष्य में भी वह जिनशासन की प्रभावना के कार्यों में अग्रसर रहेगी।

प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक श्री पुरुषोत्तम जैन मंडी गोविन्दगढ़ व श्री रवीन्द्र जैन मालेर कोटला पंजाबी जैन साहित्य के प्रथम लेखक, अनुवादक व सम्पादक हैं। अब तक इनकी पंजाबी व हिन्दी भाषा में ५० के करीब पुस्तकें छप चुकी हैं। मेरे से यह दोनों चिरपरिचित हैं। दोनों देव, गुरु व धर्म के प्रति समर्पित हैं। इसका प्रमाण प्रस्तुत ग्रंथ है। मेरे शोधनिबंध के समय इन्होंने पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में मेरी काफ़ी सहायता की थी। प्रस्तुत ग्रंथ इनके धर्म के समर्पित जीवन का जीता-जागता उदाहरण है। हर्ष का विषय है कि इन्होंने सारा साहित्य साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी. म. की प्रेरणा व दिशा निर्देश में लिखा। पंजाबी भाषा में इन्होंने भगवान महावीर के चरित्र पहले लिखा था, जिसके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत ग्रंथ का संपादन विदुषी साध्वी डॉ. स्मृति जी. म. ने किया है। मैं उन्हें साधुवाद भेजती हूँ।

इनके साहित्यक कार्य से प्रसन्न होकर भूतपूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह इनको श्रमणोपासक पद से विभूषित किया। यह पंजाब में साहित्यक व सामाजिक कार्य में बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। पहले इन्होंने २५००वीं महावीर निर्वाण शताब्दी समारोह समिति की स्थापना की थी। अब प्रभु महावीर का २६००वीं जन्म कल्याणक पर यह प्रस्तुत ग्रंथ समाज को अर्पित कर रहे हैं। मैं दोनों को बधाई व साधुवाद देता हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री श्रीचन्द सुराना जी व उनके सुपुत्र श्री राजेश सुराना ने पुरुषार्थ कर इसे जीवनोपयोगी बनाया है, एतदर्थ साधुवाद।

मंगल मैत्री के साथ

—शिवमुनि, सूरत

## आशीर्वाद



यह बात सर्वमान्य है कि संसार के प्राचीनतम धर्मों में जैनधर्म का अपना स्थान है। जैनधर्म न तो किसी धर्म का अंग है, न कोई अन्य धर्म जैनधर्म का। जैनधर्म स्वतन्त्र धर्म है। इसके ग्रन्थ, देव, दर्शन, तत्त्व चिन्तन अन्य धर्मों से भिन्न हैं। ये भारतीय धर्म है जिसकी अपनी परम्परा है जिसे हम श्रमण परम्परा कहते हैं। इसका प्राचीन नाम निर्ग्रन्थ भी प्राप्त होता है। जैनधर्म अनादि है। इसका कोई शुरू करने वाला नहीं। तीर्थंकर भी इस धर्म के प्रचारक संस्थापक होते हैं। इस युग में भगवान ऋषभ से प्रभु महावीर तक २४ तीर्थंकर संसार को अहिंसा, अनेकान्त व अपरिग्रह का मार्ग बताते रहे हैं। उनके पवित्र वचनों का संकलन उनके ज्ञानी गणधरों व आचार्यों ने सूत्रों के रूप में किया।

इन तीर्थंकरों में अन्तिम तीर्थंकर प्रभु महावीर संसार के युग पुरुषों में अपना सर्वोपरि स्थान रखते हैं। उनके जीवन पर अनेक आचार्यों ने भिन्न-भिन्न भाषाओं में, विभिन्न कालों में अनेकों ग्रन्थों की रचना की है। इस युग में भी अंग्रेजी, उर्दू में प्रभु महावीर का जीवन-चरित्र लिखा गया। हमारी गुरुणी जिनशासन प्रभाविका उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकान्ता जी की प्रेरणा से पंजाबी में जीवन-चरित्र लिखा गया। हमारी गुरुणी पंजाबी जैन साहित्य की प्रथम प्रेरिका व लेखिका हैं। उन्हीं के शिष्य श्रावक शिरोमणि, समाज रत्न लेखक रवीन्द्र जैन व पुरुषोत्तम जैन ने यह कार्य सम्पन्न किया।

अब हमारी गुरुणी जी म. अस्वस्थ हैं। उनके धर्म-प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाने का बीड़ा मेरी बहिन गुरुणी जी की शिष्या, सरल आत्मा महासाध्वी सुधा जी ने उठाया है। पहले इन्हीं की प्रेरणा से गुरुणी जी की दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती पर अभिनन्दन ग्रन्थ की रचना हुई। अब प्रभु महावीर के २६०० जन्म-कल्याणक पर प्रभु महावीर का सचित्र जीवन-चरित्र उन्हीं साध्वी सुधा जी के दिशा-निर्देशन व प्रेरणा से प्रकाशित हो रहा है। इस हिन्दी भाषा की कृति के लेखन का कार्य भी हमारी गुरुणी के आशीर्वाद से दोनों धर्म-भ्राताओं रवीन्द्र जैन व पुरुषोत्तम जैन के हाथों से सम्पन्न हुआ है। इस कार्य में विद्वानों के साथ-साथ मुनि श्री जयानंद जी के सुझावों के लिए आभारी हैं।

मैं इस कार्य की प्रेरिका साध्वी सुधा को अपनी शुभ कामना देती हूँ, जिनेन्द्र प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि वह इसी तरह देव, गुरु व धर्म की सैवा करती रहें।

मैं दोनों लेखकों को आशीर्वाद देती हूँ कि वह धर्म-कार्य में हमारी धर्म-यात्रा में सहायक बनें।

मैं अपने समस्त साध्वी परिवार की भी आभारी हूँ जिन्होंने इस कार्य में दोनों भाइयों व साध्वी सुधा का हाथ बँटाया है।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन आगरा के श्रीचन्द सुराना व राजेश सुराना के तत्त्वावधान में हुआ। इनका सहयोग अमूल्य व अविस्मरणीय है। यह हमारे साधुवाद के पात्र हैं।

अतः मैं सभी दानी भाई-बहिनों को साधुवाद देती हूँ। लेखक, प्रकाशक व दानी सभी गुरुणी जी के आशीर्वाद के पात्र हैं।

पाठकों से प्रार्थना है कि पुस्तक की त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर इस ग्रन्थ के उद्देश्य को समझें। तभी लेखकों का श्रम सार्थक होगा।

अतः मैं व समस्त साध्वी परिवार यह ग्रन्थ जिनशासन साध्वी रत्न, जैन ज्योति श्री स्वर्णकान्ता के कर-कमलों में सहज भाव से समर्पित करते हैं। प्रभु महावीर का यह जीवन भ्रान्त धारणाओं को समाप्त करो।

जैनस्थानक  
३१.३.१९९९

—साध्वी राजकुमारी  
अम्बाला

## पेरिका की कलम से



भगवान महावीर का २६०० साला जन्म करीब है। विभिन्न संस्थायें विभिन्न आयोजन सम्पन्न करने जा रही हैं। पाठकों को याद हो प्रभु महावीर का २५००वाँ निर्वाण उत्सव उपप्रवर्तिनी गुरुणी श्री स्वर्णकान्ता जी म. की प्रेरणा से मनाया गया था। तब प्रभु महावीर का निर्वाण मनाने जैनों के चारों सम्प्रदायों की समिति बनी। इसी समिति ने सारे जन-कल्याण के कार्य कर दिये। परन्तु पूज्य गुरुवर्या को जैन समाज की एक कमी खटकती रही वह थी कि जैनों का साहित्य हर स्थानीय भाषा में था पर पंजाबी में न था। गुरुणी जी ने इस कार्य के लिए श्री पुरुषोत्तम जैन व श्री रवीन्द्र जैन, मालेर कोटला को तैयार किया। दोनों ने सारा काम संभाला। पहले सरकारी स्तर की समिति बनी। जैन समारोह किये। रोड, नगर का नामकरण प्रभु महावीर के नाम पर रखे। पहली बार चारों सम्प्रदाय

एक झण्डे एक निशाने के तले इकट्ठे हुए। फिर हमने एक साहित्य समिति का गठन भी किया, जो पंजाबी, हिन्दी भाषा में, जैन समूह के लिए साहित्य तैयार करे। पहले पंजाब में जैन साहित्य उर्दू भाषा में प्राप्त था। गाँवों में गुरुमुखी पढ़ाई जाती थी, जो आज पंजाबी भाषा की लिपि है।

मैंने गुरुणी जी के आशीर्वाद से अपने निर्देशन में इन दोनों को जरूरी काम दिया। इसमें आगम अनुवाद, जैन कहानी लेखन, मूल पुस्तकों के रूप में ५० ग्रन्थ छप चुके हैं। हिन्दी में अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है। इसी निर्वाण शताब्दी पर पंजाबी विश्वविद्यालय में जैन चैयर की स्थापना हुई। कॉलेज, स्कूल, धर्मशाला, पुस्तकालय, अस्पताल की स्थापना हुई। भाषणमाला का आयोजन हुआ। गुरुणी जी का सन्देश यूनिवर्सिटी से राष्ट्रपति तक पहुँचा। जैन विद्वानों को भाषण के लिए आमन्त्रित किया गया, सम्मान किया गया। यह कार्य लगातार चालू है। अब भगवान महावीर का २६०० साला जन्म आ रहा है हमें उसे धर्म प्रचार द्वारा मनाना है।

गुरुणी जी की काफी समय से इच्छा थी कि प्रभु महावीर का सरल सचित्र जीवन शास्त्र पर आधारित हो। मैंने गुरुणी जी की इच्छा को समझा। मैंने रवीन्द्र जैन, मालेर कोटला और पुरुषोत्तम जैन को शास्त्रों में से हिष्ट दिये। फिर प्रकाशित २७ ग्रन्थों की सूची तैयार की। इन दोनों ने स्वयं भी लाइब्रेरियों से उपलब्ध महावीर चरित्र पढ़े।

आधारभूत ग्रन्थ 'महावीर : एक अनुशीलन' लेखक आचार्य देवेन्द्र मुनि व मुनि श्री कल्याणविजय कृत श्रमण महावीर ग्रन्थ को चुना गया। हम इन दोनों लेखकों व ग्रन्थ प्रकाशकों के आभारी हैं। इस ग्रन्थ की षण्डुलिपि जो श्री श्रीचन्द्र जी सुराना ने मेहनत से पढ़ा और संशोधन किया। उनके सपुत्र श्री राजेश सुराना ने प्रकाशन में प्रमुख सहयोग दिया। श्री रवीन्द्र जैन व श्री पुरुषोत्तम जैन के साथ सुराना परिवार हमारे साधुवाद का पात्र है। शास्त्र चर्चा का आधार मुनि श्री कल्याणगन विजय कृत क्रामण महावीर हैं।

परम पूज्य उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. के शिष्यरत्न उपप्रवर्तक वाणीभूषण श्री अमर मुनि जी म. ने भी कृपाकर कल्पसूत्र के रंगीन चित्रों से भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित चित्र लेने की स्वीकृति प्रदान की। उनके प्रति आभार प्रकट करने के लिए शब्द मिलना असंभव है।

अब भगवान महावीर का २६००वाँ जन्म-दिन आ रहा है। गुरुणी जी की प्रेरणा से हमने २६वीं महावीर जन्म-शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब का निर्माण किया है। हर्ष का विषय है कि अभी इस समिति ने प्रकाशन का हाथ काम में लिया है। साथ में साध्वी स्वर्णकान्ता जैन पुस्तकालय की स्थापना का कार्य शुरू किया है। अभी तक ५० छोटी पुस्तकें छप चुकी हैं। भविष्य में अन्य पंजाबी अप्रकाशित जैन साहित्य छपवाने का इरादा है।

सबसे अधिक धन्यवाद दानी सज्जनों का है, उन्होंने अपने धन को सफल किया। वे समस्त साध्वी परिवार, लेखकद्वय, प्रकाशक सभी गुरुणी श्री स्वर्णकान्ता जी म. के आशीर्वाद के पात्र हैं।

जैनस्थानक अंबाला  
१७.५.२०००

—साध्वी सुधा

## सम्पादकीय

दर्शन बुद्धि का विषय है, ज्ञान आत्मा का विषय है।



दर्शन चिन्तन की गहराई में उतरता है, जीव और जगत् की पहलियाँ सुलझाता है, जबकि ज्ञान जीवन से मुखरित होकर चरित्र बनता है और जीवन को श्रेष्ठता तथा पवित्रता के शिखर पर पहुँचाता है।

भगवान महावीर केवल एक महान दार्शनिक ही नहीं थे, वे गहरे ज्ञानी --आत्मज्ञानी थे। उनका ज्ञान जीवन के प्रत्येक कोण को स्पर्श करने वाला, उसका परिष्कार करने वाला है और जीवन को पारदर्शिता प्रदान करने वाला था।

उन्होंने जो कुछ कहा, प्रतिपादन किया, वह केवल चिन्तन का परिणाम नहीं था, किन्तु जीवन का जिया हुआ गहरा अखण्ड सत्य था। उसमें जीवंतता थी, प्राणवत्ता थी और एक प्रखर तेजस्विता थी। दूसरों की अनुभूति को आत्मसात् करके स्वयं की अनुभूति बनाई थी और वही अनुभूति अभिव्यक्ति बनी। इसलिए उनकी वाणी में दीर्घकालीन साधना का अनुभव मुखरित था। जीव-मात्र की भावनाओं, संवेदनाओं और जीजिविषाओं का स्पन्दन था उसमें, इसलिए वह जीव मात्र के कल्याण और सुख-शान्ति का निमित्त बनी।

मेरी पूज्य गुरुणीवर्या साध्वी रत्न श्री सुधाजी म. की बहुत वर्षों से भावना थी कि भगवान महावीर के साधनामय और परोपकार परायण जीवन की घटनाओं का सरल और सहज रूप में लिखकर सभी के लिए प्रस्तुत किया जाय। २५००वीं महावीर निर्वाण शताब्दी वर्ष पर पूज्य महागुरुणी साध्वी रत्न उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकान्त! जी म. ने भी इस विषय में दो-तीन बार भाई रवीन्द्र जैन व भाई पुरुषोत्तम जैन को प्रेरणा दी और अपनी अन्तर इच्छा आशीर्वाद रूप में व्यक्त की, कि महातपोधनी श्रमण श्रेष्ठ भगवान महावीर का जीवन चरित्र लिखें। पूज्य महागुरुणी जी की भावना को ग्रहण कर प्रेरक शब्दों की प्रेरणा से स्फुरणा प्राप्त कर श्री रवीन्द्र जैन व श्री पुरुषोत्तम जैन ने भगवान महावीर का सम्पूर्ण जीवन वृत्त लिपिबद्ध किया। उन्होंने अनेक ग्रंथों का परिशीलन किया और फिर अपना चिन्तन साध में जोड़ते हुए उसका लेखन भी किया। पूज्य गुरुणी वर्या की प्रेरणा का ही सुपरिणाम आपके हाथों में है।

प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक हमारे धर्मभ्राता हैं, लगभग ३० वर्षों से जैन साहित्य के सेवा में कार्यरत हैं। गुरुणी की प्रेरणा से भाई पुरुषोत्तम जैन व भाई रवीन्द्र जैन ने हिन्दी व पंजाबी भाषा में जैनधर्म पर ५० से ज्यादा ग्रंथ लिखे हैं। पंजाबी भाषा के यह लेखक, अनुवादक, टीकाकार, कथाकार हैं, जिन्होंने जैन जगत् को पंजाबी लोगों तक पहुँचाया है। दोनों भ्राताओं ने गुरुणी जी की प्रेरणा से जैन आगमों पर पंजाबी टीकायों है, जिनमें अधिकतर प्रकाशित हो चुकी हैं।

दोनों ने पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला में जैन चेयर, आचार्य श्री आत्माराम जैन भाषण माला व संस्कृत आवार्ड की स्थापना की है। मेरे दोनों भ्राताओं ने १० वर्षों से गुरुणी जी की प्रेरणा से प्रस्तुत ग्रंथ बड़ी लगन व मेहनत से तैयार किया है। मैं स्वयं को सौभाग्यशाली समझती हूँ कि मुझे ऐसे महान ग्रंथ का संपादन करने का अवसर मिला है।

यह वर्ष प्रभु महावीर के २६००वें साला जन्म जयन्ती के रूप विश्व भर में मनाया जा रहा है। इस अवसर पर समिति ने दो कार्यों को अपने हाथों में लिया है-- (१) आदिधर धाम में साध्वी स्वर्णा जैन पुस्तकालय और (२) प्रस्तुत

ग्रंथ सचित्र श्रमण भगवान महावीर चारित्र। गुरुणी जी के आशीर्वाद से दोनों कार्य सम्पन्न होने के करीब हैं। इसके अतिरिक्त यह अनेकों पंजाबी जैन साहित्य की गतिविधियाँ जारी हैं। दोनों का भाषा विभाग पंजाब द्वारा सम्मान हो चुका है। इससे पहले राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी, इन्हें श्रमणोपासक पद से विभूषित कर चुके हैं। इनकी साहित्यिक व सामाजिक गतिविधियाँ सतत जारी हैं। भविष्य में यह देव, गुरु व धर्मा की भक्ति कर उनके आशीर्वाद प्राप्त करते रहेंगे, यही मेरी शुभकामना है। प्रस्तुत ग्रंथ में उन्होंने कितना श्रम किया है, यह भूमिका से पता लग जाता है। इस ग्रंथ में उन्होंने जैनधर्म के दोनों सभ्रदायों की मान्यताओं का पूर्ण ध्यान रखा है और कोशिश की गई है, कोई ऐसी बात न लिखी जाए, जिससे किसी परम्परा के विरुद्ध हो।

अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार मैंने जो कुछ संशोधन किया है, वह संतोष और समाधान हेतु ही किया है और इसको सजाने संवारने तथा सुन्दर चित्रों को संयोजित करके एक परिपूर्ण पुस्तक स्वरूप प्रदान करने में भाई राजेश जी सुराना ने भी बहुत श्रम किया है। सबके श्रम का, सबकी सद्भावना का यह सफल सचित्र भगवान महावीर का जीवन दर्शन है। इस कार्य को मुझे सौंपने के लिए मेरी गुरुणी ने योग्य समझा, इसके लिए नतमस्तक उनको आभार प्रगट करती हूँ।

कल्पसूत्र के अन्तर्गत भ. महावीर जीवन विषयक चित्र प्राप्त कराने में उपप्रवर्तक वाणी भूषण श्री अमर मुनि जी म. ने जो आत्मीय अनुग्रह प्रदान किया है वह मेरे लिए उत्साहवर्धक आशीर्वाद रूप है।

भगवान महावीर की २६००वीं जन्म जयन्ती वर्ष के अवसर पर हमारी एक विनम्र श्रद्धांजलि उस परम पुरुष के चरणों में है। मुझे विश्वास है, वीतराग देव का यह तपोमय दिव्य जीवन और उनके जन कल्याणकारी उपदेश, अध्यात्म रस भरी तत्त्व चर्चाएँ हमारे अन्तःकरण को सदा पवित्रता तथा श्रेष्ठता के पथ पर बढ़ाने में सम्बल बनेगा। संपादन कार्य में अगर कोई त्रुटि रह गई हो तो मैं समस्त श्रीसंघ से क्षमायाचना करती हूँ। एक बार मैं पुनः अपनी गुरुणी व इस ग्रंथ की प्रेरिका साध्वी सुधा जी म. का आभार प्रकट करती हूँ। दोनों धर्म भ्राताओं को इस कार्य के लिए साधुवाद देती हूँ।

जैन स्थानक  
अंबाला शहर

—साध्वी स्मृति  
(एम.ए., पी-एच.डी.)



पूज्य गुरुणी जी  
उप प्रवर्तिनी साध्वीरत्न  
श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज



प्रेरिका  
श्री सुधाजी महाराज



सम्पादिका  
डॉ. श्री स्मृति जी महाराज



साध्वीश्री  
राजकुमारी जी म.



साध्वीश्री सुधा जी म.



## भूमिका

भारत धर्म-प्रधान देश है। यहाँ बहुत से धर्मों का जन्म हुआ है। जैन धर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है। यह धर्म अनादि है, शाश्वत है।

जैनधर्म में तीर्थंकर परम्परा है जिसमें २४ तीर्थंकर भरत क्षेत्र में जन्म लेते हैं। महाविदेह क्षेत्र में यह परम्परा शाश्वत रहती है। इस क्षेत्र में तीर्थंकरों का कभी अभाव नहीं रहता।

भगवान ऋषभदेव प्रथम भिक्षु, प्रथम श्रमण तपस्वी, माने गये हैं। उन्हें मानव सभ्यता को असि, मसि, कृषि प्रदान की। स्त्रियों को उन्होंने ६४ कलाएँ व पुरुषों को ७२ कलाएँ सिखाईं। वह मानव सभ्यता, धर्म के आदीश्वर, विश्वकर्मा थे। उन्हीं के पुत्र के नाम से इस आर्यवर्त का नाम भारतवर्ष पड़ा। फिर एक के बाद २२ तीर्थंकरों ने श्रमण (धर्म) संस्कृति का प्रचार किया।

इसी परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर थे वर्द्धमान, ज्ञातपुत्र भगवान महावीर। प्रभु महावीर पर लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। पर भक्ति की शक्ति से कुछ भी असम्भव नहीं है। प्रश्न हो सकता है कि हमारे ग्रन्थ में नया क्या है? नया कुछ नहीं है। हमने तो महापुरुषों द्वारा लिखे ग्रन्थों का अनुकरण किया है। स्पष्ट शब्दों में कहें, तो इस ग्रन्थ में हमारा अपना कुछ नहीं, मात्र पूर्व आचार्यों ने जैसे प्रभु महावीर का गुणगान किया है उनका पवित्र चरित्र लिखा है, हमने भी उन भक्तिपूर्ण शब्दों में अपना स्वर मिलाया है। उन्हीं का अनुमोदन किया है। यही अनुमोदन हमारी भक्ति है।

### निर्युक्ति साहित्य

निर्युक्तिकारों में आचार्य भद्रबाहु का नाम प्रमुख है। इनका समय विक्रम की ५वीं-६वीं सदी है। आवश्यकनिर्युक्ति में प्रभु महावीर के २७ भवों, स्वप्न, केवलज्ञान के समय विहार का वर्णन प्राप्त होता है। इस निर्युक्ति में गणधरवाद उपलब्ध है। इन्द्रभूति आदि द्वारा पावापुरी में यज्ञ का आयोजन, उसमें इन्द्रभूति आदि ११ गणधरों व उनके शिष्यों के भाग लेने का वर्णन है। फिर प्रभु महावीर से उनकी दार्शनिक चर्चाओं का वर्णन है। इस निर्युक्ति पर निम्नलिखित संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

- |                            |                                   |
|----------------------------|-----------------------------------|
| १. मलयगिरि वृत्ति          | आचार्य श्री मलयगिरि               |
| २. हारिभद्रीया वृत्ति      | आचार्य श्री हरिभद्रसूरि           |
| ३. प्रदेश व्याख्या         | मल्लधारी आचार्य श्री हेमचन्द्र जी |
| ४. विशेषावश्यकभाष्य        | श्री जिनभद्रगणि क्षमा श्रमण जी    |
| ५. टीका                    | मल्लधारी आचार्य श्री हेमचन्द्र जी |
| ६. आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका | श्री विजयदानसूरि जी               |
| ७. विशेषावश्यकभाष्य विवरण  | श्री कोट्याचार्य                  |
| ८. चूर्णि                  | श्री जिनदासगणी महत्तर             |

## चूर्ण साहित्य

चूर्ण में संस्कृत व प्राकृत दोनों भाषाएँ मिलती हैं। इस चूर्ण साहित्य में प्रमुख आवश्यक चूर्ण है जिसमें प्रभु महावीर की तपस्या का वर्णन विशद रूप में मिलता है। चूर्ण ग्रन्थों के अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रन्थों में प्रभु महावीर का जीवन-वृत्त प्राकृत भाषा में मिलता है-

१. चउपत्र महापुरुष चरिअं	श्री शीलकाचार्य	विक्रम ८६८
२. महावीर चरिअं	श्री नेमिचन्द्रसूरि	विक्रम ११४१
३. महावीर चरिअं	श्री गुणचन्द्रसूरि	विक्रम ११३९
४. श्री तिलोय पत्रत्ति		

प्रभु महावीर का जीवन संस्कृत भाषा में भी निम्नलिखित आचार्यों ने लिखा है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में अपना महत्त्व रखते हैं। ज्यादातर ग्रन्थ दिगम्बर आचार्यों ने लिखे हैं-

१. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र	कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र जी	वि. सं. ११२६-११२९
२. लघु त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र	सोमप्रभ आचार्य	
३. लघु त्रिंशष्टिशलाका पुरुष चरित्र	महामहिम उपाध्याय श्री मेघविजय जी	
४. तिरेसठ स्मृतिशास्त्र	पण्डित आशाधर जी	
५. महापुराण	मेरुतुंग	
६. पुराण सार संग्रह	अज्ञात	
७. रायेमल्ल अभोदय	पदमचन्द्र	१६१५
८. चतुरविंशती जिनचरित्र	अमरचन्द्र	
९. वीरोदयकाव्य	मुनि ज्ञानसागर	२०वीं सदी
१०. उत्तरपुराण	आचार्य गुणभद्र	
११. वर्द्धनाम चरित्रम्	महाकवि असंग	
१२. वीर वर्द्धमान चरित्र	भट्टारक सकलकीर्ति	१५वीं शताब्दी

## अपभ्रंश साहित्य

इस भाषा में जैन साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है। हिन्दी भाषा इसी भाषा से निकली है। कुछ दूसरे साहित्य को छोड़ सारा साहित्य जैन है। प्रभु महावीर पर लिखे ग्रन्थ का वर्णन इस प्रकार है -

१. तिरेसठ महापुरुष गुणालंकार महापुराण	आचार्य पुष्पमित्र	९वीं-१०वीं सदी
२. वद्धमाण कहा	जयमित्र	सं. १५४५
३. वद्धमाण कहा	अभयदेवसूरि	सं. १५१२
४. महावीर चरित्र	पुष्यदंत	
५. महावीर चरित्र	रङ्घू	
६. वद्धमाण कहा	कवि नरपेण	सं. १५१२
७. वद्धमाण चरित्र	श्री धर्मकवि	

प्रादेशिक भाषाओं में राजस्थानी साहित्य का प्रमुख स्थान है। इस साहित्य में रास व पुराण परम्परा प्रमुख है। भगवान महावीर पर इस भाषा में अभी इस भाषा के हजारों ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं—

ग्रन्थ का नाम	कवि का नाम	रचनाकाल
१. महावीर रास	कवि कुमुदचन्द्र	
२. वर्द्धमान रास	कवि नवलसार	
३. महावीरनो रास	पदम कवि	सं. १६०९
४. वर्द्धमान रास	वर्द्धमान कवि	सं. १६६५
५. वर्द्धमान पुराण	नवल राय	सं. १६९१
६. वर्द्धमान चरित्र	केसरीसिंह	सं. १६९१
७. वर्द्धमान सुवनिका	कवि बुद्ध जी	
८. महावीर पुराण	मनसुख सागर	
९. महावीर री विनती	भट्टारक शुभचन्द	
१०. महावीर छंद	भट्टारक शुभचन्द	

### आधुनिक साहित्य

आजकल प्रभु महावीर पर भारतीय व विदेशी भाषाओं में इतना साहित्य प्रकाशित हुआ है जितना किसी भारतीय धर्म संस्थापक पर कम ही हुआ हो। हमारे देश की प्रमुख भाषा हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, उर्दू, मराठी, तमिल, पंजाबी, फ्रेंच, तेलगू, कन्नड़, बंगाली के अतिरिक्त जर्मन व अंग्रेजी में साहित्य उपलब्ध है। इस साहित्य के रचयिता जैन आचार्य, उपाध्याय, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाएँ व विदेशी लेखक हैं। उस साहित्य में कुछ चुनीदा ग्रन्थों के नाम हम यहाँ दे रहे हैं जिन ग्रन्थों की इस पुस्तक में सहायता ली गई है—

क्र. सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	समय	भाषा
१.	श्री महावीर स्वामी चरित्र	वकील नन्दलाल, लख्खुभाई बडेरा	१९२५	गुजराती
२.	महावीर कथा	गोपालदास जीवाभाई	१९४१	गुजराती
३.	भगवान महावीर	चन्द्रराज भण्डारी	१९८१	हिन्दी
४.	श्री महावीर चरित्र	मुनि हर्षचन्द	१९२९	गुजराती
५.	श्री वर्द्धमान चरित्र	स्व. श्री ज्ञानचन्द		हिन्दी
६.	भगवान महावीर का आदर्श जीवन	स्व. श्री चौथमल जी म.		हिन्दी
७.	श्रमण भगवान महावीर	मुनि श्री कल्याणविजय जी		हिन्दी
८.	तीर्थंकर वर्द्धमान	श्री श्रीचन्द रामपुरिया		हिन्दी
९.	तीर्थंकर महावीर (१-२)	आचार्य विजयइन्द्रसूरि जी		हिन्दी
१०.	भगवान महावीर : एक अनुशीलन	आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी		हिन्दी
११.	आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन	मुनि श्री नगराज		हिन्दी

१२.	जैनधर्म का मौलिक इतिहास	आचार्य श्री हस्तीमल जी	हिन्दी
१३.	जैनधर्म का मौलिक इतिहास (भाग १-२)	पं. बलभद्र	हिन्दी
१४.	सन्मति महावीर	श्री सुरेश मुनि शास्त्री	हिन्दी
१५.	भगवान महावीर	रवीन्द्र जैन, पुरुषोत्तम जैन	पंजाबी
१६.	महावीर सिद्धान्त और उपदेश	उपाध्याय श्री अमर मुनि अनुवादक-रवीन्द्र जैन	पंजाबी
१७.	विश्व ज्योति महावीर	उपाध्याय श्री अमर मुनि	हिन्दी
१८.	चार तीर्थंकर	पं. सुखलाल जी संघवी	हिन्दी
१९.	भगवान महावीर	श्री काशीराम चावला	१९४६ उर्दू
२०.	महावीर वाणी	पं. बेचरदास दोशी	हिन्दी
२१.	वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर	डॉ. नेमिचन्द्र	हिन्दी
२२.	काल्पनिक अध्यात्म महावीर	आचार्य बुद्धिसागर	हिन्दी
२३.	भगवान महावीर	मुनि श्री रत्नविजय	अंग्रेजी
२४.	क्या वर्द्धमान विवाहित थे ?	पं. हीरालाल दुग्गड़	हिन्दी
२५.	भगवान महावीर	श्री कामताप्रसाद जैन	हिन्दी
२६.	निर्ग्रन्थ भगवान महावीर	जय भिक्खु	हिन्दी
२७.	युग पुरुष महावीर	शरदकुमार साधक	हिन्दी
२८.	जगद्धारक भगवान महावीर	अम्बालाल नरायाण जोशी	हिन्दी
२९.	भगवान महावीर	डॉ. शोभानाथ पाठक	हिन्दी
३०.	कुण्डलपुर के राजकुमार भगवान महावीर	जयप्रकाश शर्मा	हिन्दी
३१.	प्रभु महावीर नुं जीवन चरित्र	मुनि अम्बाविजय	गुजराती
३२.	वर्द्धमान (महाकाव्य)	अनूप कवि	हिन्दी
३३.	वीरायण (महाकाव्य)		हिन्दी
३४.	भगवान महावीर चित्र संपुट	मुनि यशोविजय जी	हिन्दी, गुज., अंग्रेजी
३५.	Secred Book of East	Dr. Herman Jacobi	English
३६.	ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर	हीरालाल रसिकदास कापड़िया	गुजराती
३७.	त्रिशलानन्दन महावीर	रतिलाल शाह	गुजराती
३८.	श्रमण भगवान महावीर नुं जीवन	मुनि श्री भद्रंकर विजय जी	गुजराती
३९.	महावीर वर्धमान	डॉ. जगदीशचन्द जैन	हिन्दी
४०.	पुरुषोत्तम महावीर	युवाचार्य महाप्रज्ञ	हिन्दी
४१.	महावीर का अर्थशास्त्र	युवाचार्य महाप्रज्ञ	हिन्दी
४२.	तीर्थंकर महावीर	संपादक : श्रीचन्द सुराना 'सरस'	हिन्दी

हमने यहाँ उन ग्रन्थों का वर्णन किया है जिन्हें हमने पढ़ा या जिनके विषय में हमें जानकारी प्राप्त हुई है और उनकी सहायता से कुछ शब्द लिख पाये। प्रभु महावीर पर अनगिनत ग्रन्थ अभी अप्रकाशित अवस्था में भण्डारों की शोभा बने हुए हैं।

यह बड़ी विडम्बना रही है कि जिस युग पुरुष ने संसार को इतना कुछ दिया, उस युग पुरुष का नाम किसी भी वैदिक ग्रन्थ में नहीं पाया जाता। दूसरी ओर प्रथम तीर्थंकर का वर्णन वेद, उपनिषद्, पुराण साहित्य में भरा पड़ा है। इसका एक ही कारण हमारी समझ में आता है कि प्रभु महावीर का युग यज्ञों, वेद, ब्राह्मण, पशुबलि, दास-प्रथा, छुआछूत का युग था। प्रभु महावीर ने अपनी अहिंसक क्रान्ति से इन रुढ़ियों को जड़ से उखाड़ फेंका। उन्होंने वेद और ब्राह्मण दोनों का प्रभुत्व अस्वीकार कर ब्राह्मणों द्वारा बनाई वर्ण व्यवस्था को जड़ से समाप्त कर दिया। धर्म के नाम पर यज्ञों में पशुबलि को कुकृत्य बताया। जाति का आधार कर्म को माना, जन्म को नहीं। स्त्री और दासों की मण्डियाँ बन्द करवाईं। उन्हें अपने धर्म-संघ में बराबर का स्थान दिया। भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के कारण ब्राह्मणवाद ५०० वर्ष तक पनप न सका। क्योंकि प्रभु महावीर के समय के राजा भी इन्हीं धर्मों को मानने वाले थे।

### प्रभु महावीर और वेद

प्रभु महावीर ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान नहीं माना। ईश्वर को जगत् का कर्ता नहीं माना। उन्होंने तो मुक्त आत्मा को परमात्मा माना। ब्राह्मण समाज इस विरोध को सहन न कर सका। उन्होंने जैनों को नास्तिकों की संज्ञा में रखते हुए कहा—“नास्तिको वेद निन्दक!”

वेद का निन्दक नास्तिक है। स्मृतिकार ने नास्तिक की परिभाषा ही बदल डाली। प्रभु महावीर को ब्राह्मण धर्म ने न पहले स्थान दिया न अब दिया है। हाँ, समय आया, जब जैनों से सत्ता छिन गई तो एक ब्राह्मण सेनापति पुष्य मित्र ने जैनधर्म पर इतने जुलम किये कि उन्हें बिहार, उड़ीसा, बंगाल से पलायन कर राजस्थान, गुजरात व दक्षिण भारत आना पड़ा। जैनों के पवित्र स्थल समाप्त कर दिये। उड़ीसा के राजा खारवेल जैनधर्म को सारे भारत तक फैलाया था। वहाँ भी यह इतिहास की बात बन गया।

### दक्षिण भारत में जैनों पर अत्याचार

गुप्त काल शान्ति से बीता। चाहे उस समय के राजा ब्राह्मण धर्म को मानने वाले थे फिर भी दूसरे को सम्मान देते थे। फिर कुमारिल भट्ट, शंकराचार्य, मण्डन मिश्र ने राजाओं को प्रेरित कर जैनधर्म पर अनेक प्रतिबंध लगवाये। दक्षिण भारत में वैष्णव धर्म के समय शैवों ने यह क्रम चालू रखा। दक्षिण भारत के राज्यों में जैनों की संख्या करोड़ों में थी। इस संदर्भ में गजरज राठौड कृत 'जैनधर्म में मौलिक इतिहास' भाग ४ क पृष्ठ ४५ पर लिखा है—“तिरुअप्पर और ज्ञान सम्बन्धर इन दोनों के समकालीन शैव सन्तों ने एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का प्रचार किया।”

“तिरुअप्पर पहले जैन साधु थे फिर शैव बने। पूर्व व्यापक प्रभाव के कारण उन्हें राज्याश्रय मिला। तिरु ज्ञान सम्बन्धर को मधुरापति पाण्डव राज सुन्दर पाण्डव ने समर्थन दिया। उसका दूसरा नाम कुब्ज पाण्डव था उसने जैनधर्म का परित्याग कर दिया। इसी समय तिरुअप्पर नामक, जो पहले धर्मसेन नामक जैन आचार्य था, वह शैवों से चर्चा में हार गया। उसके प्रभाव से कांचीपति पल्लवराज महेन्द्र बदले। प्रथम (६००-६३०) में जैनधर्म त्याग शैव बन गया।”

शैवों द्वारा जैनों पर किये गये अत्याचार की साक्षी देने वाले पोरियपुराण, मदुरा के मीनाक्षी मन्दिर के चित्र काफी हैं। इस तरह तमिलनाडु से जैनधर्म समाप्त हो गया। फिर आन्ध्र प्रदेश में लिंगायत सम्प्रदाय ने आग में तेल का काम किया। रामानुज आचार्य ने (१२ सदी) में अपने अभियान में जैनों का धर्म परिवर्तन करवाया। इन जुल्मों के दो ही

कारण थे—जैनों को राज्याश्रय न मिलना तथा जैन संघों में फूट। मुस्लिम हमला कर पहले गुजरात के समुद्री तट, फिर कंधार के खुशक मार्ग से जैनधर्म को नुकसान पहुँचाते रहे।

## हिन्दू या ब्राह्मण

साहित्य में तो श्रमण व ब्राह्मण शब्द ही उपलब्ध होते हैं। ईरानी ने सबसे पहले सिन्धु के किनारे रहने वालों को 'हिन्दू' कहा। फिर मुस्लिम ने इसी नाम से पुकारा। मुगल काल में इस देश को हिन्दुस्तान कहते थे। आज ब्राह्मण स्वयं को हिन्दू मानकर जैनधर्म, सिक्ख, बौद्ध को इसकी शाखा कहते हैं। पर न तो भारतीय संविधान की धारा में ऐसा वर्णन है और न ही हिन्दू साहित्य उनकी बात को स्वीकार करने को तैयार है। हिन्दू शब्द भौगोलिक शब्द है किसी धर्म का प्रतीक नहीं। १९४७ में हिन्दुस्तान दो भागों में बँट गया भारत व पाकिस्तान। इस दृष्टि से यहाँ का हर नागरिक भारतीय है धार्मिक दृष्टि हिन्दू नहीं। अगर ऐसा हो तो जैन और अन्य धर्म का अन्तर स्पष्ट न हो। जैन किसी भी दृष्टि ने हिन्दू धर्म का अंग नहीं। जैनों का अपना साहित्य, तीर्थकर, सिद्धान्त व तीर्थस्थान हैं।

## बौद्ध साहित्य में भगवान महावीर

अगर ब्राह्मणों ने प्रभु महावीर को २६०० साल तक महत्त्व नहीं दिया, तो भी सत्य समाप्त न हो सका। बौद्ध ग्रन्थों में प्रभु महावीर का ५१ बार वर्णन उपलब्ध होता है। यह बात दूसरी है यहाँ प्रभु महावीर बुद्ध के विरोध में हैं। आचार्य मुनि श्री नगराज जी ने अपने ग्रन्थ 'आगम और त्रिपिटक' भाग १ में इसका अच्छा संकलन किया है। डॉ. भागचन्द जैन ने भी इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। इन ५१ प्रसंगों में ३२ तो मूल त्रिपिटकों के हैं। मज्झिम निकाय के दस हैं, दीर्घनिकाय के चार हैं, अंगुत्तर निकाय व संयुक्त निकाय के सात-सात हैं। सुत्तनिपात में दो और विनयपिटक में दो उल्लेख हैं। इन उल्लेखों में अनेकों विषयों पर बुद्ध और निर्ग्रन्थों की बनाई चर्चाओं, घटनाओं का उल्लेख है।

बौद्ध ग्रन्थों से प्रभु पार्श्वनाथ की चातुर्याम परम्परा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। प्रभु महावीर का नाम निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र आया है जो उनका गुण निष्पन्न नाम है। निर्ग्रन्थ जैनधर्म का प्राचीन नाम है। ज्ञातृ वंश के सपूत होने के कारण वह ज्ञातपुत्र कहलाये। ज्ञात लिच्छवियों की श्रेणी थी जिसके प्रमुख राजा सिद्धार्थ थे। उनकी माता त्रिशला चेटकराज की बहिन थीं।

बौद्ध साहित्य में कई स्थानों पर निर्ग्रन्थों की तपस्या, कर्मवाद की चर्चा है। अनेक जैन पारिभाषिक शब्द आये हैं।

इस तरह बौद्ध साहित्य में हमें एक नहीं दो तीर्थकरों की परम्परा का अच्छा ज्ञान होता है। महात्मा बुद्ध के चाचा वप्प भी निर्ग्रन्थ थे। एक मान्यता के अनुसार भगवान बुद्ध भी कुछ समय जैन मुनियों के शिष्य रहे। अगर बौद्ध ग्रन्थ न होते तो प्रभु महावीर के सारे जीवन का प्रमाण देना मुश्किल था। क्योंकि कुछ पारिभाषिक शब्दों की एकता के कारण कुछ विदेशी लेखकों ने प्रभु महावीर और बुद्ध को एक माना। किसी ने जैनधर्म को बौद्ध धर्म की शाखा माना। पर त्रिपिटक साहित्य ने एक क्षण में सारी समस्या हल कर दी। इतना सब होते हुए भी भगवान महावीर के बारे में, जैन मान्यता क्षीण नहीं हुई। जैन आचार्य प्रभु महावीर का जीवन उनके जीवनकाल व जैनधर्म में अब तक लिखते आये हैं।

भारतीय साहित्य के सिर्फ बौद्ध साहित्य में प्रभु महावीर का वर्णन मिलता है। जैनधर्म का वर्णन, प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव की परम्परा उनके धर्म का वर्णन वेद, पुराण, उपनिषद् साहित्य में श्रमणों के अन्तर्गत आया है। बुद्ध का वर्णन तो मात्र पुराणों में है, वेदों में नहीं। हालांकि बुद्ध साहित्य में प्रभु महावीर को महात्मा बुद्ध के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में चित्रित किया गया है। पर जैनधर्म का इतिहास संघर्षों का इतिहास रहा है। जैनों को मात्र ब्राह्मणों से ही नहीं, बौद्धों से भी संघर्ष करना पड़ा। अकलंक व आचार्य हरिभद्र की कथा इस बात का प्रमाण है कि जैनों को बौद्धों ने भी कष्ट दिये।

इन सब बातों के विपरीत एक भी ऐसा उदाहरण उपलब्ध नहीं, जब किसी जैन राजा ने किसी अन्य धर्म पर जुल्म ड़ाया हो। जैन हमेशा देशभक्त लोग रहे हैं। मौर्य युग हो या नन्द साम्राज्य, खारवेल हो या कुमारपाल; सभी राजाओं ने जैनधर्म के साथ अन्य धर्मों को पूर्ण राजकीय संरक्षण दिया। कुमारपाल ने सोमनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार किया। जैन मंत्रियों ने जैन मन्दिरों के अतिरिक्त हिन्दू मन्दिर व मस्जिदों के निर्माण में सहयोग दिया। आज भी जब विश्वबंधुता व अहिंसा की बात होती है तो जैनधर्म का कार्य सबसे आगे है। अहिंसा का सम्बन्ध जितना महावीर से है उतना किसी महापुरुष से नहीं। जैनधर्म के बारे में अन्य मिथ्यालाप मिलते हैं जिन्हें हमारी पाठ्य पुस्तकों में डाल दिया गया है जिन्हें हमारे छोटे बच्चे पढ़ते हैं। जैन समाज इस जन्म शताब्दी के २६०० वर्ष पर इस बात पर ध्यान देने की परमावश्यकता है कि जैनों की स्वतन्त्र सत्ता, इतिहास, संस्कृति, सभ्यता के बारे में अधिक से अधिक लोगों को परिचय कराया जाये। जैनों को जैनत्व के रूप में परिचय कराना होगा, नहीं तो जैन, बौद्ध की तरह इतिहास की बात रह जायेंगे। परम्पराएँ ऐसे ही समाप्त होती हैं। पर जैनों पर जुल्म आज भी जारी है। कोई भी सत्ताधारी हो कोई न कोई घटना घटित हो जाती है। आज भी जैन मन्दिरों के निर्माण में रुकावट डाली जा रही है, जैनधर्म को भिताने का दृढ़ प्रयत्न जारी है।

१८८१ से अब तक जैन अल्पसहायक समाज रहा है पर अभी भी जैनधर्म को न तो स्वतंत्र धर्म माना गया है ना ही अल्पसंख्यक आयोग में स्थान दिया गया है। ब्राह्मण समाज फ़ांसीवादी परम्परा को आगे बढ़ाये हुए हैं। पर इन बातों के लिए जैनों की अज्ञानता भी प्रमुख दोषी है उनकी ना कोई राजनैतिक विचारधारा है न अन्तः। मंच के बिना सरकार कोई बात समझाई नहीं जा सकती है न परम्परा की रक्षा की जा सकती है।

### विवाह के विषय में दिगम्बर मान्यता

प्रसिद्ध जैन विद्वान पं. वलभद्र जैन के जैनधर्म के मौलिक इतिहास भाग-२ में इस प्रकार लिखा है। हमने पुस्तक के पृष्ठ ५२ पर जो लिखा है उसके प्रकाशन में त्रुटियाँ रह गई हैं। लाईन १६ पर श्वेताम्बर के स्थान पर दिगम्बर पढ़ा जावे। राजा जितशत्रु को प्रभु का फूफा हमने पं. वलभद्र जैन की पुस्तक जैनधर्म का मौलिक इतिहास को आधार मानकर लिखा है। श्वेताम्बर साहित्य इस रिश्ते का उल्लेख नहीं ये बात हम अपन विद्वानों पर छोड़ते हैं। पाठको से अनुरोध है कि यह पृष्ठ को शुद्ध करके पढ़ें।

“भगवान महावीर का बाल्य-जीवन उत्तरोत्तर युवावस्था में परिणत होता गया। इस अवस्था में भी उनका चित्त भोगों की ओर नहीं था। यद्यपि उन्हें भोग और उपभोग की वस्तुओं की कमी नहीं थी, किन्तु उनके अन्तर्मानस में उनके प्रति कोई आकर्षण नहीं था। वे जल में कमलवत् उनसे निर्यूह रहते थे। वे उस काल में होने वाली विषम परिस्थिति से परिचित थे। राज्यकार्य में भी उनका मन नहीं लगता था। राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला उन्हें गृहस्थ-मार्ग को अपनाने की प्रेरणा करते थे और चाहते थे कि वर्द्धमान का चित्त किसी तरह राज्य-कार्य के संचालन की ओर झू। एक दिन राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला ने महावीर को वैवाहिक सम्बन्ध करने के लिए प्रेरित किया। कलिंग देश का राजा जितशत्रु, जिनके साथ राजा सिद्धार्थ की छोटी बहन यशोदा का विवाह हुआ था, अपनी पत्नी यशोदा के साथ कुमार वर्द्धमान का विवाह सम्बन्ध करना चाहता था। परन्तु कुमार वर्द्धमान ने इसे स्वीकार नहीं किया।” पं. वलभद्र जैन ने यह प्रमाण कहाँ से लिखा है, इसका वर्णन उन्होंने नहीं किया।

### कुछ तथ्य

हमने इसके लिए गणि श्री कल्याणविजय जी म. व आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म. का अनुकरण किया है। दोनों महापुरुषों ने भगवान महावीर के जीवन के हर पहलू को छुआ है। गणि कल्याणविजय तो स्वयं उन स्थानों पर गये हैं, जहाँ प्रभु महावीर पधारे थे। वह इस सदी के प्रमुख जैन इतिहासकार हैं। उन्होंने आगमों के आधार पर प्रभु महावीर के विहार क्षेत्र को तय किया है जिसे सभी विद्वानों ने मान्य किया है।

आचार्य देवेन्द्र मुनि जी की कृति महावीर का जीवन-चरित्र का एक शोध प्रबन्ध है। उन्होंने सभी लिखित जीवन-चरित्र ग्रन्थों को सामने रखकर हर बात लिखी है। आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि जी की पुस्तक भगवान महावीर : एक अनुशीलन हमारे लिए आधार भूत बनी है।

हमारा प्रयास रहा है कि प्रस्तुत पुस्तक में श्वेताम्बर और दिगम्बर मान्यताओं का उल्लेख कर दिया जाये। प्रभु महावीर का जीवन-चरित्र विभिन्न समय पर विभिन्न आचार्यों व विद्वानों ने भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशित किया है। उन सबका वर्णन यहाँ इसलिए करना जरूरी है कि हमने इन ग्रन्थों का आधार इस पुस्तक में लिया गया है।

प्रभु महावीर के जीवन स्रोत का विवरण हमें इन ग्रन्थों से उपलब्ध है जिनका विवरण इस प्रकार है--

क्र. सं.	पुस्तक का नाम	रचयिता	समय	भाषा
१.	आचारांगसूत्र, श्रुतस्कंध-प्रथम, द्वितीय	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
२.	सूत्रकृतांग	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
३.	स्थानांग	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
४.	समवायांग	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
५.	भगवतीसूत्र	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
६.	ज्ञाताधर्मकथांग	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
७.	उपासकदशांग	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
८.	अन्तकृद्दशांग	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
९.	अनुत्तरौपपातिक	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
१०.	विपाक	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
११.	औपपातिक	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
१२.	निरयावलिका	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
१३.	राजप्रश्नीय	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
१४.	कल्पावर्तसिका	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
१५.	पुष्पिका	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत
१६.	उत्तराध्ययन	आर्य सुधर्मा	ई. पू. छठी शताब्दी	अर्ध-मागधी, प्राकृत

इन सभी ग्रन्थों का संकलन भगवान महावीर के समय उनके पाँचवें गणधर आर्य सुधर्मा ने किया था। इनमें प्रभु महावीर के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन आ गया है।



## प्रस्तुत ग्रन्थ

हमारा लेखन क्षेत्र मूलतः पंजाबी भाषा रहा है। जिनशासन प्रभाविका, जैनज्योति उपप्रवर्तिनी साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी म. की प्रेरणा से ५० के करीब छोटी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें आगमों के अनुवाद, कथा साहित्य, स्तोत्र साहित्य, इतिहास व पुरातत्त्व पर पुस्तकें शामिल हैं। महासाध्वी श्री सुधा जी की सत्प्रेरणा और आशीर्वाद का फल है कि उनका साहित्य सारे संसार में पहुँच रहा है। इस बीमारी की अवस्था में गुरुणी स्वर्णा आत्म-बल इतना उच्चा है कि लगता नहीं कि वह बीमार हैं। उनके अधूरे कार्यों को आगे बढ़ाना श्रीसंघ का कर्तव्य है। हमारा जीवन उनके उपकारों की कहानी है। उनकी प्रेरणा से हम पंजाबी में प्रथम बार जैन साहित्य लिख सके। किसी जैन साध्वी को भारत के राष्ट्रपति ने जैन ज्योति पद दिया। पंजाबी विश्वविद्यालय ने “आचार्य आत्माराम जैन भाषणमाला” में भाषण करने का निमन्त्रण दिया। उन्हें पद से अलंकृत किया। उनका ५०वाँ दीक्षा महोत्सव पद उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया। यही नहीं प्रभु महावीर का २५०० साला निर्वाण महोत्सव उन्हीं की प्रेरणा व दिशा-निर्देश में मनाया गया। सरकारी समिति की वह विशिष्ट अतिथि बनीं। ये सारे कार्य प्रथम बार हुए। उनका जीवन हर साधु-साध्वी के लिए प्रेरणा स्रोत है।

हमारी गुरुणी ज्ञान की भण्डार हैं। इतना सब पाकर भी उन्हें अहं छू नहीं गया। उनके उपकारों को भुलाना असम्भव है। वह प्रवर्तिनी महासती श्री पार्वती जी म. की शिष्यानुशिष्या हैं प्रवर्तिनी जी हिन्दी की प्रथम जैन महिला लेखिका थीं। उनके सन्मान में आपने इण्टरनेशनल पार्वती जैन अवार्ड स्थापित करवाया। हमारे हर कार्य में उनका स्नेह व आशीर्वाद रहता है। वह भक्तों को हर कष्ट से उबारती हैं। साध्वी सुधा जी व साध्वी राजकुमारी उनकी दो प्रमुख शिष्या हैं। उनके परिवार में ३० के करीब साध्वियाँ हैं जो सभी सम्पन्न परिवारों से सम्बन्धित हैं। सांसारिक सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण हैं। साध्वी किरण जी, साध्वी संतोष जी, डॉ. स्मृति जी का पूर्ण सहयोग रहा है। साध्वी डॉ. स्मृति जी बहुत ही प्रतिभाशालिनी साध्वी हैं। वे अध्ययनशील हैं। इस पुस्तक की पांडुलिपि का निरीक्षण, संपादन व संशोधन उन्होंने अत्यधिक श्रम से किया है। सभी साध्वी गुरुणी की सेवा समर्पणभाव से करती हैं। अम्बाला में ३२ साल से विराजमान महासाध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी इतनी प्रसिद्ध हैं कि जैन-अजैन सभी इन्हें पहचानते हैं। आप सम्प्रदाय, भाषा, जाति के भेद से दूर हैं। आपके गुणों की झलक आपके शिष्या परिवार पर भी देखने को मिलती है। इस पुस्तक में भगवान महावीर जीवन से सम्बन्धित अनेक रंगीन चित्र हमें उ. भा. प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. के विद्वान् शिष्यरत्न उपप्रवर्तक श्री अमुर मुनि जी के सचित्र कल्पसूत्र से प्राप्त हुए हैं। श्री अमर मुनि जी म. की इस उदारता व कला के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञ हैं।

## प्रेरिका महाश्रमणी ज्ञानप्रज्ञा साध्वी सुधा जी म.

आप साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी म. की प्रमुख शिष्या हैं। साध्वी राजकुमारी जी के बाद आपका स्थान है। आपका जन्म पट्टी में सम्पन्न जैन परिवार में हुआ था। बी. ए. तक आपने शिक्षा ग्रहण की। आप बहुभाषाविद्, विनम्र प्रवचन भूषण, शास्त्रों के रहस्यों की ज्ञाता साध्वी हैं। सांसारिक दृष्टि से आप महासाध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी की भानजी हैं। आप सभी कामों को सहज ढंग से कर डालती हैं।

हमारे जीवन पर आपके अथाह उपकार हैं। गुरुणी जी की हर बात का फैसला लेने का अधिकार आपका है। आप धर्म-प्रचार में प्रेरणा देती रहती हैं। पंजाबी साहित्य की सतत धारा को आप प्रज्वलित रखती हैं। गुरुणी जी के भक्तों को धर्म कार्यों की प्रेरणा देती रहती हैं।

कई वर्षों से आपका आग्रह था कि पंजाबी साहित्य पंजाब तक सीमित है। हमें एक सर्वमान्य प्रभु महावीर का जीवन-चरित्र तैयार करना चाहिए। उनकी बलवती प्रेरणा इस वर्ष रंग लाई।

सौभाग्य से अगला वर्ष प्रभु महावीर के जन्म-कल्याणक के २६०० वर्ष समाप्त होगा। उस अवसर पर हिन्दी भाषा में हमारा यह छोटा प्रयास है। इसके लिए हम पुनः स्व. आचार्य देवेन्द्र मुनि जी म. व गणि कल्याणविजय जी म. को पुनः प्रणाम करते हैं जिनके ग्रन्थों के कारण हम इस कार्य को सहजता से कर पाये। हम उन सभी ग्रन्थों व प्रकाशकों के आभारी हैं, जिनके ग्रन्थों की हमारे द्वारा सहायता ली गई है। हम श्रमणसंघ के चतुर्थ आचार्य डॉ. शिव मुनि के आभारी हैं कि उन्होंने हमें आशीर्वाद दिया। साथ ही मुनि श्री जयचन्द्र जी म. व वीरेन्द्र मुनि के सुझावों के लिए आभार प्रकट करते हैं।

यह ग्रन्थ सचित्र है। इन सभी चित्रों के लिए आप इस ग्रन्थ के व्यवस्थापक जैन जगत् के प्रसिद्ध विद्वान्, भाई श्री श्रीचन्द्र जी सुराना के आभारी हैं, जिनकी कृपा से हमें चित्र मिले। जिनका सहयोग इस प्रकाशन में काम आया। भाई राजेश जी इस ग्रन्थ के प्रकाशक हैं उनका सहयोग भी किसी से कम नहीं। हम समस्त सुराना परिवार व प्रकाशन विभाग के कर्मचारियों के आभारी हैं जिन्होंने भाषा व लिपि की कठिनाइयों को झेला और श्रमपूर्वक शुद्ध मुद्रण कराया।

सबसे बढ़कर हम दानी सज्जनों के आभारी हैं जिन्होंने गुरु-भक्ति व प्रभु-भक्ति का प्रमाण देते हुए अपने द्रव्य का सदुपयोग किया।

हम दोनों (रवीन्द्र व पुरुषोत्तम) प्रेरिका व समस्त साध्वी परिवार इस ग्रन्थ को जिनशासन प्रभाविका, जैन ज्योति, महाश्रमणी जैन पंजाबी साहित्य की प्रथम प्रेरिका, लेखिका, शास्त्र मर्मज्ञ गुरुणी, उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकान्ता जी म. के कर-कमलों में भेंट करते हैं। प्रभु महावीर के २६०० साला जन्म-दिन पर हमारी भेंट स्वीकार करें।

विद्वत् जनों से प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ के लेखन प्रकाशन में बहुत-सी त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है। विचार भेद कोई रह सकता है जिसके कारण किसी की मान्यता परम्परा को आघात पहुँचा हो, तो हम मन, वचन, काया से प्रभु महावीर की साक्षी से क्षमा माँगते हैं।

हमारा हिन्दी भाषा में प्रथम प्रयत्न है। विद्वत् जन इस ग्रन्थ में अच्छी बात ग्रहण करें। जो त्रुटियाँ हों, वह हमारी झोली में डाल दें। लाइब्रेरी की पुस्तकों के लिए आचार्य विमल मुनि जी म., साध्वी डॉ. साधना जी म. व आचार्य नित्यानन्द जी म. का आशीर्वाद व सहयोग हमें मिलता रहा है। इस महत्त्वपूर्ण सहयोग के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

एक बार में पुनः इस ग्रन्थ की आशीर्वादिका साध्वी राजकुमारी जी म., प्रेरिका साध्वी सुधा जी म. तथा संपादिका डॉ. स्मृति जी म. का आभार प्रकट करते हैं। जिन विद्वानों ने सुझाव दिये उनके भी आभारी हैं। वह सब साधुवाद व धन्यवाद के पात्र हैं।



## प्रस्तुत पुस्तक की प्रेरिका दिव्य विभूति श्री सुधा जी म.

—प्रवचन प्रभाविका साध्वी श्री किरण जी म.



महान् कार्यों को करने की सद्प्रेरणा महामानवों की अन्तःस्थली से स्वतः उद्भूत होती है। वर्तमान युग में वर्धमान महावीर की जीवनी को जन-जन तक पहुँचाने का सुकार्य यद्यपि बहुत समय से हमारे मन में तरंगित था तथापि इस महान् कार्य को प्रेरणा मिली है—दिव्य विभूति महासती श्री सुधा जी महाराज से। स्वर्णमय नक्षत्र-खचित जैन गगन का आप एक विलक्षण नक्षत्र हैं, ध्रुवतारा हैं, आध्यात्मिक पक्ष से आप उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज की सुशिष्या हैं धर्मपुत्री हैं, तो भौतिक पक्ष से उनकी भानजी हैं।

अगस्त माह की प्रथम तिथि को सन् १९४३ में पंजाब राज्य के पट्टी नगर में श्री त्रिलोकचन्द्र जी एवं श्री कौशल्यादेवी जी के सुगृह में आपका जन्म हुआ। पंजाब की वीर प्रसूता भूमि आन-बान और शान के लिए विश्व-विख्यात है, जिसने शूरवीरों, दानवीरों, ऋषि-मुनियों, भक्तजनों जैसे रत्नों को जन्म देकर अपने आपको धन्य किया है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि गुरु गोविन्दसिंह जैसे शूरवीरों की कर्मभूमि और नानक जैसे भक्त-शिरोमणि, आचार्य श्री आत्माराम जी म. जैसे महान् सन्तों एवं महान् व्यक्तित्व को जन्म देने वाली महान् यही पंजाब की पावनधरा है। इतिहास की पुनरावृत्ति होती ही है। परम्परा को कायम रखते हुए जैन जगत की जीवन्त ज्योति गुरुणी श्री सुधा जी म. ने भी इस अंचल को अपने स्वनाम धन्य जीवन से गौरवान्वित किया। आध्यात्मिकता का वातावरण तो परिवेश से मिला ही किन्तु आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी म. जैसे महान् सन्त की जीवनयात्रा के अन्तिम क्षणों में उनकी अपरिमित सहिष्णुता, वेदन क्षमता देखकर आपके हृदय में वैराग्य के अंकुर फूट पड़े। शनैः-शनैः वैराग्य के नन्हें पौधे को वृक्ष बनने के अनुकूल वातावरण मिलता रहा और जब यह महान् वृक्ष अपनी शीतलच्छाया से धराधाम के आतप तप्त जन्मों को छाया देने के लिए आतुर हो उठा तो विवश होकर पारिवारिक जनों को दीक्षा की आज्ञा देनी पड़ी। १४ फरवरी १९६५ के शुभ दिन श्री प्रेमचन्द्र जी म. व श्री हेमचन्द्र जी म. के पावन सान्निध्य में आपने हरियाणा प्रदेश के कैथल प्रान्त में सर्वविरति दीक्षा अंगीकार की और तब से उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकान्ता जी म. की द्वितीय शिष्या के रूप में धर्म की प्रभावना अनवरत कर रही हैं।

अहंकार रहित, सरल, संयमपूर्ण आपका जीवन स्वर्ण की तरह अनुपम है। साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी म. जैसी उच्चकोटि की साध्वी रत्ना के लिए एक सुशिष्या की भाँति आपके हृदय में पूर्ण समर्पण व निष्ठा का भाव है। आपके मुखमण्डल पर तेज के साथ करुणा, प्रभाव के साथ निष्ठा, तथा व्यावहारिकता के साथ आध्यात्मिकता का मंजुल समन्वय है। जिस प्रकार नदियों में गंगा, पुष्पों में गुलाब, वृक्षों में चन्दन

व नक्षत्रों में चन्द्रमा है। उसी प्रकार स्वर्णमाला की आप समुज्ज्वल मणि है। आपकी वाणी से सद्प्रेरणा पाकर अनेक आत्माओं ने अपनी जीवनधारा को नूतन आयाम दिया है। तपस्या के क्षेत्र में भी आपके वर्षीतप, अठाई व्रत आदि की तपस्याएँ महती उपलब्धियाँ हैं। भंडारी श्री पद्मचंद्र जी म. द्वारा आपको 'प्रदीप्त तपस्विनी' की पदवी से अलंकृत किया गया है। आप जैसी तप-त्याग-संयम समर्पण की प्रतिमा के दीर्घायुत्व व उत्तम स्वास्थ्य की मंगल कामना करते हैं। आपकी प्रेरणा से २४वें तीर्थंकर वर्धमान भगवान् महावीर की जीवनी प्रकाशित होने जा रही है यह बहुत ही खुशी का प्रसंग है इसको पढ़ने से जन जीवन को प्रेरणा मिलेगी। इसके लेखक श्री रविन्द्र कुमार जैन और श्री पुरुषोत्तम जैन जिन्होंने अपना कीमती समय निकालकर इस ग्रन्थ को लिखने में पूरा-पूरा जीवन का लाभ लिया। ऐसे ही यह भविष्य में धर्मकार्यों में समय लगाते रहे।

एक बार पुनः मैं दिव्य विभूति, इस ग्रन्थ की महान् प्रेरिका प्रदीप्त तपस्विनी गुरुणी श्री सुधा जी महाराज के प्रति शासनेश प्रभु से यही प्रार्थना करती हूँ। कि युगों तक आपका मार्गदर्शन हम सबको और समाज को प्राप्त होता रहे। आपकी शक्ति वृद्धिगत होकर समाज निर्माण की दिशा में लगी रहे और आपके पुनीत आशीर्वाद और जीवनोत्थान व साहित्य रचना की प्रेरणाएँ सबको मिले। आपश्री जी की सदैव जय विजय हो। स्वास्थ्य लाभ, वृद्धि निरन्तर होती रहे। मेरी लाख-लाख शुभ कामनाएँ।

इसी मंगल कामना, मंगल याचना के साथ-साथ

*नमामि तां यस्या मतिः सरला।*

*नमामि तां यस्या आकृतिः सरला।*

*नमामि सुधासम अन्तःसन्तोषदायिनीं*

*यस्या गतिः यस्या जागृतिः सरला॥*



# JAINISM IN PUNJABI LANGUAGE

(Contribution of Ravinder Jain & Puruhottam Jain)

—Dr. Dharam Singh

Jainism belongs to the 'sramanic' tradition, the earliest religious tradition in India and perhaps in the world. It is said to be not only pre-Vedic in origin but also distinct from and some times contradictory to Vedic metaphysics and moral values. In fact, the origin of Jainism can be traced to pre-historic times : the founder of Jainism and first of the 24 Tirthankaras of Jainism, Lord **Rishabh**, belongs to pre-historic era. References to him are found in the **Rig-Veda**, the earliest extent religions literature in India. It can be easily concluded from such references that, one, Jainism belongs to pre-Vedic times and, second, it was quite a popular tradition during the Rig-Vedic days.

Among the peculiar characteristics of Jainism are its refusal to have faith in the existence of an ultimate Reality responsible for the creation, preservation and ultimate destruction of this manifest world (Jainism believes in the plurality of soul), stress on a simple and austere life and cultivation of moral and ethical values in personal as well as in social life. The Jainas are strictly vegetarian and they give paramount importance to celibacy/chastity.

The **Karma** philosophy in Jainism is perhaps the most detailed and comprehensive. Emphasis herein is on performing good, selfless deeds, and finally to cause cessation of all **Karma**. These and such other metaphysical and moral tenets of Jainism are summed up in the nine **tatva** and have been discussed in detail in all the 45 **agams** of the faith.

In fact, Jainism is quite a new name given to the tradition. In the Vedas and the Puranas it has variously been written as **arihat** or **arihan**. It has also been called **nirgranth** or **nigganth**. It has been so called since it is not a religion of the Book, i.e., a religion having faith in revelatory word and since it refused to accept the revelatory character of the Vedas. In some of the Jain sutras, Jin Shasan, Jin Marg and Jin Bachan have also been use as synonyms of Jainism. Thus, Jainism is a distinct and independent religion of Indian origin. However, Hinduism has tried to own the Jaina Tirthankaras either as attributive names of Vishnu or Shiva or as their incarnations. This is not something new as Hinduism has always tried to assimilate any other tradition that came in contact with it. Lord Buddha and even Guru Nanak have also been referred to as incarnations of Vishnu, a Hindu god.

Almost all the Jaina Shastras are originally in Prakrit/Ardh Magadhi. This is unlike the early Hindu belief which declared Sanskrit to be a language of gods, the only language which could convey divine ideas. The Jaina Shastras are in a language comprehensible to common man. However, later on when Jain scholars and savants received royal pationage beginning with King Vikramaditya's rule, these Shastras came to be transcribed in Sanskrit language. May be, these scholars under royal pationage wanted to write in a language different from that of the common man. Although the last Tirthankar (Lord Mahavira) of Jainism was born and received enlightenment in East India yet he travelled quite extensively throughout the Punjab. The Jaina

sources refer to places like Kankhal (near Haridwar), Hastinapur (Meerut), Kurukshetra, Rohtak, Jind, Narnaul, Hansi, Siolkot and Bhera (Sindh Sobir Desh) etc. which Lord Mahavira visited during his preaching odysseys, thus covering almost the entire Punjabi-speaking region. Unfortunately however, there was almost no Jaina literature in Punjabi until the middle of the 20th century.

The very fact that there are quite a sizeable number of people in Punjab belonging to Jaina tradition and the very fact that the region was associated with the life of Lord Mahavira demanded that there should be some literature in Punjabi to make the local populace familiar with the lives of the Jaina Tirthankaras; their contemporary society, their teachings and the masses' response to these teachings; the Jaina Shastras and their place vis-a-vis scriptures of other traditions; and the present state of Jainism and the Jainas. The task fulfil these demands was rather arduous, but the challenge was accepted two young men from the Malwa region—Ravinder Kumar Jain of Malerkotla and Purushottam Jain of Dhuri. These 'brothers-in-faith' have rendered yeomen's service in publishing a lot of Jaina literature in Punjabi. They have been the first to render several of the sutras into Punjabi, besides writing several books on the life of Mahavira, Jaina philosophy and society. Their attempts becomes all the more admirable since neither of them is an academician by profession. There is a selfless job—no personal motives except the desire to serve their mother-tongue and to carry the Jaina literature to each Punjabi-knowing house. They have, in this venture, been encouraged, inspired, helped and guided by Jain Sadhvi Shri Swarn Kanta Ji Maharaj who is herself deeply interested in literacy activities. It will not be an exaggeration to say that the literacy potential in these two young men was discovered and brought out by her. We give below a gist of their worksó

**1. Bhagwan Mahavira**, a biography of Lord Mahavira, has been the first such biography in Punjabi language. Based on the information called from about 150 volumes in Sanskrit, Prakrit, Hindi, Gujrati, Urdu, Upfrance and English, the book gives a scientific and object view of various events from the Lord's life. It includes about 40 pictures relevant to the Lord's life.

**2. Jain Dharma : Ik Sankhep Jankari** (Jainism : A brief introduction) is the only book in Punjabi dealing with Jaina history, religion, literature, philosophy etc. Comprising about 250 pages, the book has been recommended for under-graduate students.

**3. Puratan Punjab Vich Jain Dharma** (Jainism in Ancient Punjab) is a very useful book in so far it provides very valuable information on the 'Tirthankaras' visits to Punjab, and makes very interesting comments on the contemporary life. It also gives photographs of some ancient Jaina idols, manuscript specimen, genealogical tables etc. The book was released on 27th February, 1987 by Giani Zail Singh, the then President of India.

**4-6. Bhagwan Mahavira de Updesh** (Teachings of Lord Mahavira), **Jain Sahit te Sanskriti di Ruprekha** (An outline of Jaina Literature and Culture) and **Jain Agamlik Jankari** (Jain Agams : An introduction) are some of the brief pamphlets prepared by them. Such handi literature serves a very useful purpose in cultivating moral and ethical values among especially the youth.

**7. Bharati Sahit Vich Bhagwan Mahavira** (Lord Mahavira in Indian Literature) is an illustrated catalogue of whatever has been written on Lord Mahavira in Buddhist and other Indian religious literature.

**8. Jain Dharma de Itihasik Mahapurakh** (Historical personalities of Jainism) is a collection of stores taken from scriptures. These stores with moral lessons attached to them are a compulsory reading for the youth.

**9. Anjane Rishte**, in Hindi, is a perceptive study of dreams reverse etc. had by Purushottam Jain. The author makes the work readable and interesting by relating these to the fundamental principles of Jainism. The book has been very well received by the Hindi world.

The due has rendered invaluable service by translating into Punjabi some of their scriptures and a few other books on Jaina literature and Philosophy. It is for the first time that the Jain scriptures have become available in Punjabi.

**1. Bhagwan Mahavira : Siddhant te Updesh** : It is the Punjabi translation of Upadhyay Amar Muni's book in Hindi. It is a very useful handbook on Jain literature and philosophy.

**2. Sri Uttaradhyayan Sutra** : One of the main four sutras, is send to contain essence of Jainism—as **Dhammapada** is in Buddhism, **Gita** in Hinduism and **Japuji** in Sikhism. It comprises detailed information on Jain history, philosophy, tradition, **tatva** etc. Although several excess of this have been available in Sanskrit and Prakrit and translation in several European languages. It is the first translation-cum-commentary in Punjabi. Besides, the Punjabi edition also makes useful comparisons with scriptures from other traditions.

**3. Sri Sutra-Kritang Sutra**, the second of the main 11 **angs** is in two volumes and contains denunciation by Lord Mahavira of the contemporary 363 traditions. The Punjabi translation-cum-commentary makes an analytical study of several schools of philosophy.

**4-9. Nirayavalika Sutra** comprises five subordinate **angs**. It narrates the history of Vaishali including the war between King Shrenik, King Konik and their brothers. The remaining **up-angs** give details about the lives of some of the Tirthankaras as well as about the initiation ceremonies of several Jain monks (Sadhus) and nuns (Sadhis). These latter are still unpublished.

**10. Saman Sutra**, a common volume prepared jointly by all the four sects of Jainas at the time of the 25th Centenary Nirvan Celebrations of Lord Mahavira. The Punjabi translation by these young scholars is of paramount value.

**11. Upasak Dushang Sutra** is the fifth of the 11 **angs** is comprises information in 10 devotees who observe the twelve fasts of the laity. These devotees come from different walks of life in society such as peasant, trader, all of whom are quite affluent.

**12. Giata Dharma-Kathang** is a narrative and gives useful historical information about Mallinath, the only woman Tirthankar. It is under print.

**13. Nirayavalika**, a collection of five books on **up-angs**, is a translation in Punjabi by Acharya Shri Atma Ram Ji Maharaj, a renowned savant of Jainism, Sadhvi Swarn Kanta Ji was the Chief Editor, with Ravinder Jain and Purushottam Jain assisting her in the editorial talk.

**14. Bir Thui**, a rendering in Punjabi in the form of an independent book of a chapter from the **Sutra-Kritang Sutra**. The text, believed to the oldest form of poetry, is a eulogy (Thui) of Lord Mahavira (Bir). It is an excellent specimen of the poet's prosodic art.

**15. Bhagwan Mahavira de Panj Siddhant**, a translation of the known Jain saint and scholar Shri Gyan Muni, discusses in detail and in easily comprehensible style five principles of Lord

Mahavira such as **non-violence, anekantvad, aparigrahi, Karm** and **Ishvaravad**. It is a very useful treatise for anyone interested in Jain religion and philosophy.

**16-17. Bhaktamber Stotra**, by Acharya Shri Mantung and **Kalyanmandir Stotra**, by Acharya Shri Siddhasen Diwakar, are invocation to Lord Rishabhdev and Lord Parshvanath. These have been rendered into Punjabi for the first time and are quite useful for Punjabi-knowing devotees.

**18. Dashavaikalika Sutra**, a basic Jain text a study of which is mandatory for anybody desirous of receiving initiation (diksha) as a monk or nun. It comprises all the rules and regulations governing the life of ascetics. It has also been translated in Punjabi for the first time.

**19. Sandhu Prakaran**, a sort of **nitishastra**, is an excellent treatise on the art of leading a noble, successful life. The makes an interesting reading for the Jainas as well as the general readers.

**20. Anmol Bachan**, a collection of some of the more meaningful sayings of Sadhvi Shri Swarn Kanta Ji Maharaj, has been rendered in Punjabi. It is a good specimen of their editorial skill.

**21. Asthanjali** is a felicitation volume presented to Jain Acharya Shri Vimal Muni Ji Maharaj on the 50th anniversary of his 'diksha'. Shri Ravinder Jain and Purushottam Jain are Chief Editors of the volume.

**22.** Besides writing and translating scriptures and other literature in Punjabi, these 'brothers-in-faith' have also tried their pen in Hindi. **Mahashramani** is a 250 pages felicitation volume, with a foreword by Giani Zail Singh, presented to Sadhvi Shri Swarn Kanta Ji on the 40th anniversary of her 'diksha'.

The catalogue of publication given above is not exhaustive, rather it is only a selective list. Our aim simply is to show that Shri Ravinder Jain and Shri Purushottam Jain have been the first to attempt to write and publish works on Jain religion, history, literature and philosophy in Punjabi. Because of being the first attempt these works of their short-comings. One such drawback is the lack of the availability of theological/philosophical terms in Punjabi and the use by the authors of Hindi/Sanskrit terms. Second, the authors always seem to be in tearing hurry. This coupled with the authors' lack of academic training has resulted in some printing and methodological mistakes. In spite of such minor short-comings the attempts by Shri Ravinder Jain and Shri Purushottam Jain deserve high appreciation from his community and the Punjabi literacy circle.





## अनुक्रमणिका

क्या ?

कहाँ ?

### खण्ड १

- |   |    |
|---|----|
| १. श्रमण संस्कृति की रूपरेखा  | ३  |
| २. जैन मान्यताओं के आरों का संक्षिप्त वर्णन : सृष्टि विकास की कहानी | ६  |
| ३. जैनधर्म की तीर्थंकर परम्परा : एक विश्लेषण                        | ८  |
| ४. आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव  | १५ |
| ५. अन्य तीर्थंकरों के विषयों में आवश्यक जानकारी                     | १७ |

### खण्ड २

- |   |    |
|---|----|
| १. भगवान महावीर : पूर्व भवों का वर्णन           | २३ |
| २. भगवान महावीरकालीन परिस्थितियाँ               | ३८ |
| ३. महावीर का जन्म-महोत्सव, बचपन, विवाह व संकल्प | ४३ |
| ४. दीक्षा-कल्याणक                               | ५७ |

### खण्ड ३

- |             |    |
|-------------|----|
| १. साधनाकाल | ६१ |
|-------------|----|

### खण्ड ४

- |                      |     |
|----------------------|-----|
| १. केवलज्ञान महोत्सव | १०७ |
| २. गणधर संवाद        | १११ |
| ३. तीर्थ स्थापना     | १३४ |

### खण्ड ५

- |                                       |     |
|---------------------------------------|-----|
| १. तीर्थंकर महावीर द्वारा धर्म प्रचार | १३९ |
|---------------------------------------|-----|



अचित्र  
भगवान महावीर जीवन चित्र  
के  
प्रकाशन के सुअवसर पर  
हार्दिक शुभकामनाओं सहित



**HISSARIA INDUSTRIES**

C-28, Industrial Area  
Hanumangarh Jn.-355 512



उप प्रवर्तनी साध्वीरत्न  
श्री स्वर्णकान्ताजी महाराज



## खण्ड १

- (१) श्रमण संस्कृति की रूपरेखा
- (२) जैन मान्यताओं के आरों का संक्षिप्त वर्णन : सृष्टि विकास की कहानी
- (३) जैनधर्म की तीर्थकर परम्परा : एक विश्लेषण
- (४) आदितीर्थकर भगवान ऋषभदेव
- (५) अन्य तीर्थकरों के विषयों में आवश्यक जानकारी (तीर्थकर चरित्र)



## श्रमण संस्कृति की रूपरेखा

संसार में एशिया महाद्वीप बहुत से धर्मों, सभ्यताओं एवं संस्कृतियों की जन्म-भूमि है। एशिया महाद्वीप में भारतवर्ष ही वह पुण्य धरा है, जिसे संसार के चार धर्मों को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त है। ये चार धर्म हैं—(१) वैदिक धर्म (२) जैनधर्म (३) बौद्ध धर्म तथा (४) सिक्ख धर्म।

प्राचीन काल से ही इस धरा पर एक ऐसी संस्कृति पनपी, जो आर्यों के आगमन से पहले इस धरा पर स्थापित हो चुकी थी। इस संस्कृति के संस्थापक ब्राह्मण, श्रमण अर्हत्, अर्ह व परमहंस थे। इसका वर्णन संसार की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद में ससम्मान हुआ है। ये लोग तपस्या में विश्वास रखते थे। जाति-पाँति, अस्पृश्यता, यज्ञ आदि क्रियाकाण्ड, पशुबलि के परम विरोधी थे। ये वर्ण-व्यवस्था में भी विश्वास नहीं रखते थे। तपस्या के अतिरिक्त ये लोग न तो वेद को मानते थे, न ही ब्राह्मण संस्कृति द्वारा स्वीकार किसी अन्य ग्रन्थ को मानते थे। इन लोगों की अपनी परम्परा थी। इनके दो वर्ग थे—(१) त्यागी श्रमण (महाव्रती), (२) तथा उपासक श्रावक (अणुव्रती) वर्ग। श्रमण आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, सृष्टि, स्वर्ग, नरक व मोक्ष के बारे में स्वतन्त्र विचारधारा रखते थे। तपस्या, ध्यान द्वारा यह वर्ग आत्मा के स्वरूप का चिन्तन करता था।

इतिहासकारों ने इस जाति की विचारधारा को श्रमण संस्कृति का नाम दिया है, जिनके नेता प्रथम धर्म-उन्नायक विश्व को कर्म का उपदेश देने वाले तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव थे। ऋषभदेव का वर्णन ऋग्वेद के अतिरिक्त भागवतपुराण श्रीमद् आदि में बहुत ही विस्तार से आया है। इस जाति के कुछ चिह्न दक्षिण भारत की द्राविड़ जाति में देखे जाते हैं। आर्यों का इनसे प्रथम संघर्ष गंगा-यमुना के किनारे तक हुआ। फिर आर्यों ने इनकी धर्म-संस्कृति को अपनाना शुरू किया। इसी कारण से भगवान ऋषभ को विष्णु व शिव के अवतारों में शामिल कर और इन्हें अपने ढंग से प्रस्तुत किया। भगवान ऋषभदेव ने मानव जाति को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया। उन्होंने पुरुष को ७२ कलाएँ व स्त्रियों को ६४ कलाएँ प्रदान कर नई सभ्यता को जन्म दिया। इस प्रकार श्रमण संस्कृति में ऋषि व कृषि दोनों साथ-साथ चले। इसके विपरीत आर्य लोग घुमकड़ जाति के थे। वह कबीलों में रहते थे। बहुदेववाद में विश्वास करते थे। आत्मा, परमात्मा व पुनर्जन्म के बारे में आर्यों की मान्यता तब तक स्पष्ट न हो सकी थी। इसी कारण वैदिक संस्कृति में कहीं भी किसी स्तर पर एकरूपता नहीं है। वैदिक संस्कृति एक तरह से ब्राह्मणवाद, यज्ञ, पशुबलि, जातिवाद में विश्वास करती है। वहीं श्रमण संस्कृति इन बातों का विरोध करती है। वैदिक संस्कृति ने षड्दर्शन की दार्शनिक परम्परा को जन्म दिया। फिर इसी परम्परा में आगे चलकर अवतारवाद के माध्यम से पुराणों द्वारा ब्राह्मणवाद का खूब प्रसार हुआ। महाभारत, रामायण से लेकर भक्ति परम्परा तक इस धारा की बहुत-सी शाखाएँ फूटी और विकास को प्राप्त हुई।

श्रमण संस्कृति के प्राचीन पाँच रूप माने गये हैं—(१) जैन (निर्ग्रन्थ), (२) शाक्य (बौद्ध), (३) आजीवक नियतिवादी, (४) गेरुक, तथा (५) तापस। पहले दो भाग आज भी जैन व बौद्ध धर्म के नाम से जाने जाते हैं। अन्तिम तीन रूप वैदिक संस्कृति में घुल-मिल गये। श्रमण संस्कृति ने उपनिषद् विचारधारा, गीता, पुराण व सांख्य दर्शन को खूब प्रभावित किया। जितना अहिंसा व करुणा का उपदेश इन ग्रन्थों में मिलता है, सब पर जैनधर्म का प्रभाव है।

वैदिक धर्म अवतारवाद में विश्वास रखता है। जैनधर्म आत्मा से परमात्मा बनने में विश्वास रखता है। जैनधर्म में अवतारवाद के लिए चाहे कोई स्थान न हो, पर धर्म के मामले में एक ठोस मान्यता स्थापित है कि संसार में कभी भी

धर्म का अन्त नहीं होता। समय-समय पर हर क्षेत्र में तीर्थंकर जन्म लेते रहते हैं। तीर्थंकर अपने क्षेत्र और काल में धर्म का संदेश देते हैं।

जम्बूद्वीप के भारतक्षेत्र में हम सब जीवन यापन करते हैं। इस क्षेत्र में अनेक तीर्थंकरों ने समय-समय पर जिनधर्म का उपदेश दिया। विदेह क्षेत्र में २० विहरमान तीर्थंकर सदैव विद्यमान रहते हैं।

### जैनधर्म : एक स्वतन्त्र व प्राचीन धर्म

स्व. आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म. अपने ग्रन्थ “महावीर : एक अनुशीलन” पृष्ठ ७ पर लिखते हैं—

“यह साधिकार कहा जा सकता है कि जैनधर्म विश्व का सबसे प्राचीन धर्म है। यह न तो वैदिक धर्म की शाखा है, न बौद्ध धर्म की। जैनधर्म एक सर्व स्वतन्त्र धर्म है। यह सत्य है कि जैनधर्म शब्द का प्रयोग वेदों, त्रिपिटकों व जैन आगमों में नहीं मिलता, जिसके कारण तथा साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण कितने ही इतिहासकारों ने जैनधर्म को अर्वाचीन मानने की भयंकर भूल की है। हमें उनके ऐतिहासिक ज्ञान पर तरस आता है।”

अपनी बात के प्रमाण में वह श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी का प्रमाण देते हैं, जिन्होंने अपनी पुस्तक “वैदिक संस्कृति का विकास” में लिखा है—“जैन व बौद्ध धर्म वैदिक संस्कृति की ही शाखाएँ हैं। यद्यपि सामान्य मनुष्य इन्हें वैदिक नहीं मानता। सामान्य मनुष्य की इस भ्रान्त धारणा का कारण है इन शाखाओं की वेद विरोधी कल्पना। सच तो यह है कि जैनों और बौद्धों की तीन अन्तिम कल्पनाएँ—कर्मविपाक, संसार का बंध और मोक्ष या मुक्ति अन्ततोगत्वा वैदिक ही हैं।”

पर शास्त्री जी की ये बातें मूलतः गलत हैं। वेदों में तो आत्मा और मोक्ष की कल्पना नहीं। इस संदर्भ में ए. ए. मैक्डोनेल्ड का मत है—“पुनर्जन्म के सिद्धान्त का वेदों में संकेत नहीं मिलता।” पर एक ब्राह्मण ग्रन्थ में यह उक्ति मिलती है—“जो लोग विधिवत् संस्कार आदि नहीं करते वह मृत्यु के बाद पुनः जन्म लेते हैं और बार-बार मृत्यु का ग्रास बनते हैं।”

वैदिक संस्कृति के तीन मूल तत्त्व हैं—यज्ञ, ब्राह्मण और वर्ण—व्यवस्था। तीनों का जैन व बौद्धों ने विरोध किया है।

डॉ. लासेन ने बुद्ध और महावीर को एक माना है क्योंकि जैन और बौद्ध परम्परा की मान्यताओं में अनेक समानताएँ हैं। प्रो. वेबर ने जैनधर्म को बौद्ध धर्म की शाखा बताया है। पर इन सभी गलत धारणाओं का अन्त करने वाले जर्मन के विद्वान् प्रो. हर्मन जैकोबी ने जैन व बौद्ध आगमों के आधार पर, तर्कों से सिद्ध किया—“जैन और बौद्ध दोनों स्वतन्त्र धर्म हैं। इतना ही नहीं बल्कि जैनधर्म बौद्ध धर्म से पुराना भी है। ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर इसके अन्तिम प्रचारक (उन्नायक) थे। उनसे २५० वर्ष पहले काशी नरेश राजा अश्वसेन व वामादेवी के पुत्र भगवान पार्श्वनाथ हो चुके थे, जिनका निर्वाण ई. पू. ७७७ पूर्व हुआ था।”

इस तरह प्रो. जैकोबी के बाद किसी भी विद्वान् ने जैनधर्म बौद्धधर्म को एक बताने का साहस नहीं किया। किन्तु उनकी शिष्य परम्परा के विद्वानों ने बौद्ध ग्रन्थों के संदर्भ से भगवान महावीर का वर्णन प्रस्तुत किया। बौद्ध ग्रन्थों में भगवान पार्श्वनाथ के चातुर्याम का वर्णन इस बात को सिद्ध करता है कि जैनधर्म महात्मा बुद्ध से पहले संसार में था—स्वयं बुद्ध जीवन के आरम्भ में इस परम्परा में दीक्षित हुए थे। उनके चाचा वष्य निर्ग्रन्थ परम्परा को मानते थे।

प्रो. हर्मन जैकोबी ने आगे लिखा है—“इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि पार्श्वनाथ जैनधर्म के संस्थापक थे। जैन परम्परा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को ही जैनधर्म का संस्थापक मानने में एक मत है। इस मान्यता में सत्य की संभावना है।”



सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्राप्त कायोत्सर्ग स्थित योगी की प्रतिमा, स्वस्तिक चिह्न जैनधर्म की प्राचीनता का मुँहबोलता प्रमाण है।

डॉ. जैकोबी का समर्थन डॉ. राधाकृष्ण, डॉ. स्टीवेन्सन और श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने भी किया है।

### जैनधर्म के प्राचीन नाम

वेदों, पुराणों में केशी, वातरशना, परमहंस, ब्रात्य, अर्हन्, आर्हत, श्रमण शब्द जैनधर्म के साधुओं के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

ऋग्वेद में 'अर्हन्' को विश्व की रक्षा करने वाला कहा गया है।<sup>१</sup> शतपथ ब्राह्मण में "अर्हन्" का आह्वान किया गया है और उन्हें कई स्थलों पर श्रेष्ठ कहा गया है।<sup>२</sup>

श्रुतकेवली भद्रबाहु ने कल्पसूत्र में अरिष्टनेमि सहित सभी तीर्थंकरों के नाम के साथ "अर्हत्" विशेषण प्रयोग किया है।<sup>३</sup>

इसी तरह ऋषिभाषित सूत्र में प्रत्येकबुद्ध को "अर्हत्" कहा गया है।<sup>४</sup>

पद्म-पुराण<sup>५</sup> और विष्णु-पुराण<sup>६</sup> में जैनधर्म के लिए "अर्हत्" धर्म शब्द प्रयुक्त किया गया है।

भगवान महावीर के समय में जैन के लिये "निर्ग्रन्थ" शब्द का व्यवहार होता था। इस बात की पुष्टि जैन तथा बौद्ध साहित्य में हुई है। अशोक के शिलालेखों में "निर्गन्ठ" शब्द मिलता है। वैदिक ग्रन्थों में भी "निर्ग्रन्थ" शब्द उपलब्ध है।<sup>७</sup> सातवीं शती में बंगाल में "निर्ग्रन्थ" सम्प्रदाय प्रभावशाली होने के काफी प्रमाण हैं। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन और सूत्रकृतांगसूत्रों में जिनशासन, जिनमार्ग, जिनवचन शब्दों का प्रयोग मिलता है।

सर्वप्रथम जैन शब्द का प्रयोग जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण कृत विशेषावश्यकभाष्य में प्राप्त है।<sup>८</sup> उसके पश्चात् मत्स्यपुराण में जिनधर्म व देवी भागवत हनुमान में जैनधर्म का उल्लेख हुआ है। जैनधर्म किसी व्यक्ति व देश के नाम से सम्बन्धित नहीं है। यह धर्म अर्हत्तों का धर्म है। यही जैनधर्म या जिनधर्म है। जैनधर्म में कोई भी व्यक्ति मानव से महामानव बन सकता है। आर्हत धर्म को पद्म पुराण में सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा है, जिसके संस्थापक ऋषभदेव थे। आर्हत लोग यज्ञों में विश्वास कर कर्मबंध और कर्मनिर्जरा को मानते थे।



१. ऋग्वेद २/३३/१०, २/३/१/३, ७/१४/२८, १०/२/२, ९९/७/१०/८५/४

२. ३/४/१/३-६, तै. २/४/६/५, तै. आ. ४/५/७, ५/४/१०

३. कल्पसूत्र देवेन्द्रमुनि सम्पादित १६१-१६२

४. ऋषिभाषित १/२६

५. पद्मपुराण १३/३५

६. विष्णुपुराण ३/१८/२

७. कन्थोकोपीनोत्तरा सद्वादीआ येणो से यथाजातरूप धरा निर्ग्रन्थ निष्परिग्रह इति संक्तीतुतियं तेरिरीय आरणक भाग २ वृ. ७७८ १०/६६ सायणभाष्य भाग २/७-७८।

८. ११७ गाथा-१० पद, सूक्ति १०४५-१०४६।

## जैन मान्यताओं के आरों का संक्षिप्त वर्णन : सृष्टि विकास की कहानी

जैन मान्यताओं के संदर्भ में डॉ. प्रेमसुमन जैन का कथन ध्यान देने योग्य है। वह कहते हैं--

‘जैन मान्यता के अनुसार सृष्टि शाश्वत है। सुख से दुःख की ओर तथा दुःख से सुख की ओर विश्व का क्रमशः अवसर्पण व उत्सर्पण होता रहता है। अवसर्पण की आदि सभ्यता अत्यन्त सरल और सहज थी। किसी तरह की कौटुम्बिक व्यवस्था न होने के कारण कोई उत्तरदायित्व नहीं था, अतः कोई व्यवस्था नहीं थी। जैन परम्परा में ऐसी मान्यता है कि उस समय जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कल्पवृक्षों से हो जाती थी। प्रकृति और मानवीय तत्त्वों का यह ऐसे सम्मिश्रण का युग था जहाँ धर्म-साधना पाप-पुण्य, ऊँच-नीच आदि द्वन्द्वात्मक प्रवृत्तियों का अस्तित्व नहीं था। जैन पुराणकारों ने ऐसी परिस्थिति के युग को भोग-भूमि व्यवस्था का युग कहा है।

किन्तु अवसर्पिणी काल-चक्र का दूसरा और तीसरा विभाग क्रमशः व्यतीत हुआ तो काल-प्रभाव से सभी बातें हासोन्मुख होने लगीं। कल्पवृक्षों को लेकर छीनाझपटी होने लगी। इसलिए इस असुरक्षा की स्थिति ने सुरक्षा और सहयोग का आह्वान किया। इससे सामूहिक व्यवस्था प्रतिफलित हुई, जिसे जैन साहित्य में ‘कुल’ नाम दिया गया और जिसने इस व्यवस्था का श्रीगणेश किया उसे ‘कुलकर’ कहा गया। जैन परम्परा में इस तरह के १४ कुलकरों की मान्यता है। प्रत्येक कुलकर ने व्यवस्था को गति प्रदान की। अन्तिम कुलकर नाभि थे। इनके समय तक विभाजन की व्यवस्था के साथ-साथ दण्ड-व्यवस्था का भी प्रारम्भ हो चुका था। समाज में केवल स्त्री-पुरुष युगल ही क्रमशः उत्पन्न होते थे।

—महावीर : एक अनुशीलन (आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी, पृष्ठ १५-१६)

इस प्रकार अन्तिम कुलकर नाभि को वैदिक परम्परा ने ‘मनु’ के रूप में स्वीकार किया है। उन्हीं के सुपुत्र प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव हुए। जैन परम्परा के अनुसार आरों का विभाजन इस प्रकार किया गया है। इस संदर्भ में मुनि श्री नथमल (महाप्रज्ञ) जी अपने ‘जैनदर्शन के मौलिक तत्त्व’ में कहते हैं—

‘इस काल-विभाग को हम क्रम-हासवाद या क्रम-विकासवाद का नाम दे सकते हैं। हर काल में उन्नति-अवनति का दौर चलता रहता है। अवसर्पिणी काल में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संहनन, संस्थान, आयुष्य, शरीर, सुख आदि पदार्थ की क्रमशः अवनति होती है।’

उत्सर्पिणी में उक्त पदार्थों की उन्नति होती है पर वह अवनति और उन्नति समूहापेक्षा से है, व्यक्ति की अपेक्षा से नहीं।

अवसर्पिणी की चरम सीमा ही उत्सर्पिणी का प्रारम्भ है और उत्सर्पिणी का अन्त अवसर्पिणी का जन्म है। क्रमशः यह काल-चक्र चलता रहता है।

प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के ६-६ भाग होते हैं—(१) एकान्त सुषमा, (२) सुषमा, (३) सुषमा-दुषमा, (४) दुषमा-सुषमा, (५) दुषमा, (६) दुषमा-दुषमा।

यह ६ अवसर्पिणी के विभाग हैं। उत्सर्पिणी के भी ६ विभाग इस अनुक्रम से होते हैं—(१) दुषमा-दुषमा (२) दुषमा, (३) दुषमा-सुषमा, (४) सुषमा-दुषमा, (५) सुषमा, (६) एकान्त सुषमा।

### अवसर्पिणी काल

आज हम अवसर्पिणी के पाँचवें दुषमा आरे में जी रहे हैं। हमारे युग का जीवन-क्रम एकान्त सुषमा से शुरू होता है। उस समय भूमि स्निग्ध (चिकनी) थी। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श मनोज्ञ था। मिट्टी की मिठास आज की चीनी से अनन्त गुणा थी। कर्मभूमि थी, पर कर्मयुग शुरू नहीं हुआ था। पदार्थ अतिस्निग्ध थे। इसलिए उस जमाने के लोग तीन दिन में थोड़ी वनस्पति खाते और तृप्त हो जाते थे, चिकार कम थे। आयु लम्बी थी। वे लोग ३ पत्थोपम तक जीते थे। ३ कोस का उच्च शरीर था। शान्त व सन्तुष्ट होते थे। ऐसा समय ४ करोड़ सागर का बीता।

तीन क्रोड़ाक्रोड़ी का दूसरा सुखमय भाग शुरू हुआ। इसमें भोजन दो दिन के बाद होने लगा। आयु २ पत्थ, ऊँचाई २ कोस रह गई। पदार्थों में स्निग्धता घटती गई।

तीसरे सुख-दुःखमय काल-विभाग में और कमी आई। भोजन एक दिन बाद होने लगा। जीवन का कालमान १ पत्थ और ऊँचाई १ कोस रह गई। इस युग की काल मर्यादा थी एक क्रोड़ाक्रोड़ सागर। इसके अन्तिम चरण में पदार्थों की स्निग्धता में भी कमी होती गई तब कृत्रिम व्यवस्था आई और इसी दौरान कुलकर व्यवस्था का जन्म हुआ।

यह कर्म-युग के शैशवकाल की कहानी है। समाज संगठन अभी हुआ नहीं था। यौगलिक व्यवस्था चल रही थी। एक जोड़ा ही सब कुछ था। न कुल था, न वर्ग और न जाति। समाज और राज्य की बात तो बहुत दूर थी। जनसंख्या कम थी। माता-पिता की मौत से दो या तीन मास पहले एक युगल जन्म लेता और बड़ा होकर दम्पति का रूप ले लेता। विवाह संस्था का उदय नहीं हुआ था। जीवन की आवश्यकताएँ सीमित थीं। न खेती होती थी, न कपड़ा बनता था और न मकान बनते थे। उनके भोजन व निवास के साधन कल्पवृक्ष थे। कला-विज्ञान का कोई नाम नहीं जानता था। कोई राजा नहीं थे, कोई प्रजा नहीं थी। कोई भी सांसारिक सम्बन्ध नहीं था।

धर्म-कर्म नहीं था। लोग सहज धार्मिक थे। सभी चुगली, निन्दा, आरोप से दूर थे। लड़ना-झगड़ना वे जानते तक नहीं थे। शस्त्र व शास्त्र से अनभिज्ञ थे। हर प्रकार की बुराई से ये लोग मुक्त थे।

तीसरा आरा बीता। चौथे आरे में सभी वर्ण, गन्ध, स्पर्श, आयु घटने लगे। कल्पवृक्ष क्षीण होने लगे। यौगलिक व्यवस्था टूटने लगी, समस्याएँ बढ़ीं। साधन कम हुए। लोग समस्याओं के कारण झगड़ने लगे। अपराध और अव्यवस्था के कारण कुलकर आये। जिन्होंने दण्ड नीति को जन्म दिया। केवल तीन दण्ड नीतियाँ थीं—हाकार, माकार, फिर धिक्कार।

इस प्रकार जैनधर्म में सृष्टि को विकासवादी सिद्धान्त से समझाया गया है। यह क्रम भरत क्षेत्र में इसी प्रकार चलता रहता है। इसी व्यवस्था ने कुल को जन्म दिया जिसके बारे में हम पहले बतला चुके हैं।

उत्सर्पिणी काल का आरम्भ सुषमा से होता है, अन्त दुषमा-दुषमा तक होता है।



## जैनधर्म की तीर्थंकर परम्परा : एक विश्लेषण

जैनधर्म में महामंत्र नवकार के पाँच पदों में पहला पद 'णमो अरिहंताणं' है। अरिहंत में सामान्य केवली व तीर्थंकर केवली दोनों आ जाते हैं। तीर्थंकर अरिहंतों के जीवन में कुछ विशेषताएँ होती हैं, जो सामान्य केवलियों में नहीं होतीं। आत्म-ज्ञान या केवलज्ञान की दृष्टि से दोनों एक होते हैं। पर तीर्थंकरों की परम्परा शाश्वत है। तीर्थंकर का यह काल-विभाजन मात्र जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में रहता है। महाविदेह क्षेत्रों में २० विहरमान तीर्थंकर परमात्मा हमेशा विद्यमान रहते हैं और रहेंगे। वहाँ सामान्य व्यक्ति नहीं पहुँच सकता। पर विशिष्ट ज्ञानी अपने तप के प्रभाव से आज भी तीर्थंकरों के दर्शन कर सकते हैं। हमारे इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अनन्तकाल से इसी प्रकार तीर्थंकर जन्म लेते रहे हैं, धर्म-प्रचार करते रहे हैं, निर्वाण प्राप्त करते रहे हैं और भविष्य में करते रहेंगे।

तीर्थंकर नामकर्म के उदय से जीव को तीर्थंकर गोत्र की प्राप्ति होती है। जो श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविकारूपी धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं। इस धर्मरूपी तीर्थ के संस्थापक तीर्थंकर होते हैं। जैनधर्म का कोई संस्थापक नहीं है। यह आर्हतों का धर्म है, जिनधर्म है, श्रमण धर्म है, निर्ग्रन्थ धर्म है। "जैन" शब्द का अर्थ है जीतने वाला। आत्मा के कषाय, दोषों को जीतने वाला जैन है। जैनधर्म अनादि धर्म है क्योंकि तीर्थंकर हर काल में किसी न किसी क्षेत्र में विद्यमान रहते हैं। तीर्थंकर परम्परा का अनुक्रम हमारे भरतक्षेत्र में ही होता है। महाविदेह में तीर्थंकर सदैव विद्यमान रहते हैं।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में २४ तीर्थंकर जन्म लेते हैं। तीर्थंकर का जन्म क्षत्रियकुल में होता है। वे कभी दरिद्र कुल में जन्म नहीं लेते। जन्म के समय ही वे तीन ज्ञान के धारक होते हैं—मति, श्रुत व अवधि। तीर्थंकर के जन्म से पहले उनकी माता १४ स्वप्न देखती हैं—

(१) हाथी, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) लक्ष्मी, (५) माला, (६) चन्द्रमा, (७) सूर्य, (८) ध्वजा, (९) कलश, (१०) पद्म सरोवर, (११) समुद्र, (१२) रत्नराशि (१३) विमान, (१४) निर्धूम अग्नि।

तीर्थंकर अरिहंत के पाँच कल्याणक देवों व मनुष्यों द्वारा मनाये जाते हैं—(१) च्यवन-कल्याणक, (२) जन्म-कल्याणक, (३) दीक्षा-कल्याणक, (४) केवलज्ञान-कल्याणक, (५) निर्वाण-कल्याणक। तीर्थंकर निश्चय, बिना गुरु के दीक्षा ग्रहण करते हैं फिर अपनी शक्ति से केवलज्ञान प्राप्त कर पूर्व तीर्थंकरों की परम्परा को जाग्रत करते हैं। केवलज्ञान के बल से प्रश्नों के उत्तर सूक्ष्म रूप में देने में वे समर्थ होते हैं। वे चार घातिया कर्मों का पूर्ण नाश करते हैं। ये कर्म हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय।

दीक्षा से पहले तीर्थंकर एक वर्ष तक दान देते हैं। तीर्थंकर का जीव धरती पर तीर्थंकर अरिहंत कहलाता है। निर्वाण के बाद वे निराकार परमात्मा के रूप में सिद्ध गति प्राप्त करते हैं। तीर्थंकर का जीव अवश्यमेव मुक्ति को जाता है। तीर्थंकर के ८ प्रतिहार्य उनके साथ चलते हैं। इसके अतिरिक्त ३४ अतिशयों के वे स्वामी होते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

अष्ट प्रतिहार्य—अष्ट प्रतिहार्य जो केवलज्ञान के बाद उत्पन्न होते हैं वे हैं—(१) अशोक वृक्ष, (२) देव-दुन्दुभि, (३) पुष्प वृष्टि, (४) धर्म-चक्र, (५) तीन छल्ल, (६) स्वर्णमय सिंहासन, (७) आभामण्डल, (८) चामरधारी इन्द्र।

ये अष्ट प्रतिहार्य तीर्थंकर भगवान को केवलज्ञान प्राप्त होते ही घटित होते हैं और निर्वाण अवस्था तक साथ रहते हैं। इन प्रतिहार्यों के प्रभाव से तीर्थंकर की धर्मसभा के आसपास सुख-शान्ति रहती है।

जब तीर्थंकर का जन्म होता है, तब देव तीर्थंकर की माता को प्रणाम करके तीर्थंकर रूप शिशु को सुमेरु पर्वत पर स्नान के लिए ले जाते हैं, जहाँ देव-देवियाँ जन्म-महोत्सव मनाते हैं।

इस प्रकार उनकी दीक्षा महोत्सव देव व मनुष्य अपनी-अपनी परम्परानुसार मनाते हैं। केवलज्ञान होने के पश्चात् उनकी धर्मसभा की अनुपम रचना देवता मिलकर करते हैं, जिसे जैन परिभाषा में समवसरण कहते हैं।

तीर्थंकरों के निर्वाण होने पर उनका अग्नि-संस्कार भी सभी देव मिलकर करते हैं। तीर्थंकर सर्वज्ञ होते हैं। वे प्रश्न करने वाले के हर प्रश्न का उत्तर बिना पूछे देते हैं। वे जन-कल्याण के लिए धर्मोपदेश करते हैं। वे स्वयं तरते हैं तथा औरों को तारने में सक्षम होते हैं। वे स्वयंबुद्ध, पुरुषोत्तम, शिव, अरिहंत, केवली, जिन कहलाते हैं। तीर्थंकरों की संख्या तो निश्चित है पर सामान्य केवली, जिन्हें हम गुणों की दृष्टि से अरिहंत श्रेणी में रखते हैं, उनकी संख्या निश्चित नहीं है। जितनी आत्मायें सृष्टि में हैं सबमें परमात्मा बनने की शक्ति है। पर तीर्थंकर नामकर्म उदय से यह शक्ति तीर्थंकर को प्राप्त होती है।

### तीर्थंकर गोत्र के बीस स्थानक

तीर्थंकर नामकर्म गोत्र जिन कारणों से उपार्जन होता है उन्हें २० स्थानक कहते हैं। इन्हीं की आराधना किसी जन्म में तीर्थंकर का जीव लम्बे समय तक करके तीर्थंकर नामकर्म गोत्र बाँधता है। इन बोलों का विवेचन इस प्रकार है--

(१) अरिहंत भक्ति, (२) सिद्ध भक्ति, (३) गुरु भक्ति, (४) प्रवचन भक्ति, (५) श्रुतज्ञान में स्थविर की भक्ति, (६) सूत्र बहुश्रुत, अर्थ बहुश्रुत और सूत्र व अर्थ दोनों के जानकारों की भक्ति, (७) बाह्य व आभ्यन्तर तप के धारक मुनियों की सेवा भक्ति, (८) निरन्तर ज्ञानोपयोग के रसिक बनने से, (९) शुद्ध सम्यक्त्व धारण करने से, (१०) ज्ञान आदि प्राप्त कर मन, वचन, काया से विनय करने से, (११) शुद्ध भाव से प्रतिक्रमण करने से, (१२) मूलगुण और उत्तरगुणों का पालन करने से, (१३) शुभ ध्यान, (१४) बाह्य व आभ्यन्तर तप करने से, (१५) साधु-महात्मा को सुपातदान देने से, (१६) आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, रोगी, नवदीक्षित, सहधर्मी, कुल, गण और संघ की सेवा भक्ति से, (१७) गुरुजनों की भक्ति से, (१८) नया ज्ञान पढ़ने, चिन्तन करने के अभ्यास से, (१९) श्रुतज्ञान की भक्ति से, (२०) प्रवचन प्रभावना से।

### चौतीस अतिशय

इन्हीं पूर्वजन्मों के शुभ कर्मों से तीर्थंकरत्व की प्राप्ति होती है। तीर्थंकरत्व में प्रमुख चौतीस अतिशय होते हैं। इनमें से कुछ जन्म के समय से ही होते हैं। कुछ केवलज्ञान के पश्चात् उत्पन्न होते हैं। कुछ स्वाभाविक या देवकृत होते हैं।

### जन्मजात अतिशय

- (१) तीर्थंकर भगवान के शरीर के बाल न बढ़ते हैं, न घटते हैं बल्कि व्यवस्थित रहते हैं।
- (२) तीर्थंकर भगवान के शरीर पर कभी मैल नहीं जमता।
- (३) तीर्थंकर भगवान का आहार व नीहार गुप्त होता है।
- (४) तीर्थंकर अरिहंत का रक्त सफेद रंग का होता है।

## पन्द्रह अतिशय केवलज्ञान के पश्चात्

- (१) तीर्थंकर अरिहंत के श्वासोच्छ्वास में कमल-जैसी सुगन्ध आती है।
- (२) तीर्थंकर अरिहंत जब विहार करते हैं तो आकाश में धर्म-चक्र चलता है, जहाँ वे ठहरते हैं धर्म-चक्र भी ठहर जाता है, पुनः विहार के पश्चात् धर्म-चक्र स्वयं चलने लगता है।
- (३) तीर्थंकर अरिहंत के शीर्ष पर तीन छत्र हमेशा होते हैं जिनकी झालरें मोती की बनी होती हैं।
- (४) तीर्थंकर अरिहंत के दोनों ओर इन्द्रों द्वारा रत्नजड़ित डण्डियों वाले चांवर ढुलाये जाते हैं।
- (५) वह स्फटिक मण्डित, जड़ित, निर्मल, देदीप्यमान सिंहासन पर विराजे दृष्टिगोचर होते हैं।
- (६) उनके आगे झण्डियों से घिरी इन्द्रध्वजा दिखाई देती है जो रत्नजड़ित होती है।
- (७) वह अपने शरीर से बारह गुणा ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे विराजते हैं।
- (८) सूर्य से भी अधिक तेजस्वी आभामण्डल तीर्थंकर के पीछे दृष्टिगोचर होता है।
- (९) तीर्थंकर अरिहंत जहाँ-जहाँ चलते हैं, चरण-कमल रखते हैं वहाँ खड़े, टोये, टीले सभी सम हो जाते हैं।
- (१०) तीर्थंकर अरिहंत जब चलते हैं तो धरती पर फैले कोंटे स्वयमेव उल्टे हो जाते हैं।
- (११) तीर्थंकर अरिहंत जहाँ होते हैं वहाँ ऋतुएँ स्वयमेव सुहावनी, अनुकूल हो जाती हैं।
- (१२) तीर्थंकर अरिहंत के आगे चारों ओर एक योजन तक मन्द-मन्द शीतल वायु चलती है और अशुचि को दूर करती है।
- (१३) तीर्थंकर के चारों ओर बारीक-बारीक सुगंधित जल की बूँदाबाँदी व पुष्पवृष्टि होती है।
- (१४) यह देवकृत पुष्पवृष्टि प्रभु के घुटनों तक होती है। पुष्पों के डण्डलों का कोमल मुख ऊपर आ जाता है।
- (१५) मनोज्ञ वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श का सद्भाव पाया जाता है।
- (१६) अमनोज्ञ वर्ण, गन्ध, रस व स्पर्श नहीं रहता।
- (१७) तीर्थंकर भगवान के चारों ओर एक-एक योजन तक बैठी परिषद् संलग्न होकर प्रभु की अमृतवाणी उपदेशामृत का पान करती है।
- (१८) तीर्थंकर प्रभु अर्ध-मागधी प्राकृत में उपदेश देते हैं।
- (१९) आर्य-अनार्य मनुष्य, पशु-पक्षी, सभी प्राणी इस उपदेश को अपनी-अपनी वाणी के अनुसार समझते हैं।
- (२०) तीर्थंकर के समवसरण में सभी जीव-जन्तु अपना परस्पर वैर-विरोध भूल जाते हैं। उनके दर्शन मात्र से स्वाभाविक वैर या पूर्वभव का वैर समाप्त हो जाता है। शेर व बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं।
- (२१) दूसरे धर्मों को मानने वाले तीर्थंकरों के दरबार में हठ व पूर्वाग्रह छोड़ प्रभु-भक्त बन जाते हैं।
- (२२) उनके दरबार में कोई किसी तरह की चर्चा नहीं करता क्योंकि उन्हें हर प्रश्न का उत्तर बिना पूछे प्रभु द्वारा प्राप्त होता है।
- (२३) तीर्थंकर परमात्मा जहाँ होते हैं वहाँ २५-२५ योजन तक चारों ओर ईति, भीति आदि उपद्रव नहीं होते।
- (२४) तीर्थंकर अरिहंत जहाँ विराजते हैं वहाँ महामारी का आग का फैलाव नहीं होता।

- (२५) तीर्थंकर पर पर-चक्र का आक्रमण नहीं होता।  
 (२६) तीर्थंकर का स्व-चक्र भी उपद्रव नहीं करता।  
 (२७) तीर्थंकर के यहाँ अतिवृष्टि नहीं होती।  
 (२८) तीर्थंकर के यहाँ अनावृष्टि नहीं होती।  
 (२९) तीर्थंकर के क्षेत्र में अकाल नहीं पड़ता।  
 (३०) तीर्थंकर जहाँ विराजते हैं वहाँ सारे पूर्वोत्पन्न उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

### तीर्थंकर का बल

तीर्थंकर में जहाँ आत्म-बल होता है वहाँ शारीरिक बल भी उनके समान न पहले था, न है और न आगे होगा।  
 आचार्यों ने उनके शारीरिक बल का इस प्रकार उदाहरण दिया है-

२,००० शेरों का बल	=	१ अष्टापद (चिचिहार जाति के शेर में)
१०,००,००० अष्टापदों का बल	=	१ बलदेव में
२ बलदेवों का बल	=	१ वासुदेव में
२ वासुदेवों का बल	=	१ चक्रवर्ती में
१,००,००,००० चक्रवर्तियों का बल	=	१ इन्द्र में

ऐसे अनन्त इन्द्र मिलकर भी प्रभु की छोटी अँगुली को मिलकर भी नुकसान पहुँचाना चाहें, तो वह उस छोटी अँगुली को झुका नहीं सकते। कहने का तात्पर्य है कि उनके पुण्य प्रताप के कारण वे अनन्त बलशाली होते हैं।

### भाषा के पेंतीस गुण

- (१) तीर्थंकर का उपदेश संस्कार-सम्पन्न होता है।
- (२) एक योजन तक सुनाई देता है।
- (३) वे 'तू' जैसे अपशब्द प्रयोग नहीं करते।
- (४) मेघ की तरह गम्भीर।
- (५) गुंजायमान।
- (६) घृत की तरह स्निग्ध व शहद से ज्यादा मीठा।
- (७) उनके वचन से ६२ राग व ३० रागिनियाँ उत्पन्न होती हैं, जिन्हें सुनते ही श्रोता प्रसन्नता अनुभव करते हैं।
- (८) शब्द कम और विशाल अर्थ वाला प्रवचन कहते हैं।
- (९) हठरहित उपदेश।
- (१०) बिना रुकावट के उपदेश चलता रहता है।
- (११) स्पष्ट व शंकारहित।
- (१२) श्रोता एक मन होता जाता है।
- (१३) देश व स्थिति अनुकूल।

- (१४) व्यर्थ बातों से दूर, अर्थ भरपूर।  
 (१५) जीव-अजीव आदि ९ तत्त्वों का विवेचन।  
 (१६) सांसारिक कार्यों का वर्णन संक्षिप्त भाषा में।  
 (१७) बच्चा भी समझ लेता है।  
 (१८) स्व-प्रशंसा व पर-निन्दारहित।  
 (१९) दूध और मिश्री की तरह मीठा-मीठा।  
 (२०) गुप्त रहस्य प्रकट न करने वाला।  
 (२१) खुशामदरहित।  
 (२२) जन-कल्याण व आत्म-कल्याणकारी।  
 (२३) आत्मा का आहत् नहीं करता।  
 (२४) भाषा का विशुद्ध उपयोग।  
 (२५) न धीमा न उच्च बल्कि मध्यम स्वर।  
 (२६) श्रोता प्रवचन में धन्य-धन्य कह उठते हैं।  
 (२७) चित्र की भाँति वस्तु का स्वरूप स्पष्ट समझाते हैं।  
 (२८) विश्रामरहित।  
 (२९) जो भी प्रवचन सुनता है उसका संशय बिना पूछे दूर हो जाता है।  
 (३०) सुनने वाले उनके वाक्य को हृदय में बसा लेते हैं।  
 (३१) हर पक्ष से सही।  
 (३२) प्रभावशाली व तेजस्वी।  
 (३३) दृढ़तापूर्ण।  
 (३४) धकावटरहित।  
 (३५) विवक्षित अर्थ की सम्यक् सिद्धि तक अविच्छिन्न अर्थ वाली हो।

तीर्थंकरों की भाषा में इतने गुण होते हैं कि जो भी उनके समवसरण में आता है वह कुछ पाकर जाता है। उनका उपदेश बेकार नहीं जाता। कोई-कोई व्रत ग्रहण करता है।

### अन्य गुण

(१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त चारित्र्य, (४) अनन्त बल, (५) अनन्त वीर्य, (६) अनन्त क्षायिक समकित, (७) वज्रऋषभनाराय संहनन, (८) समचतुरस्रस्थान, (९) ३४ अतिशय (ऊपर वर्णन हो चुका है), (१०) वाणी के ३५ गुण (वर्णन हो चुका है), (११) १००८ शरीर के लक्षण, (१२) ६४ इन्द्रों द्वारा पूजित।

इसके अतिरिक्त संसार की सभी श्रेष्ठ शक्तियों के वे स्वामी तैलोक्य चक्रवर्ती होते हैं।



हमने यहाँ तीर्थकरों के बारे में मोटी-मोटी बातें बताई हैं जो जैनधर्म की प्राचीन मान्यताओं पर आधारित हैं, आस्था (सम्यक्त्व) के आधार हैं। इसी कारण जैन तीर्थकर साकार परमात्मा या वीतराग के रूप में श्रद्धा के केन्द्र हैं।

तीर्थकर परमात्मा १८ दोषों से रहित होते हैं। वे राग-द्वेष के बन्धनों को तोड़ कर्म जंजीरों से मुक्त होते हैं। कर्मबद्ध अवस्था में पड़ा जीव संसारी है और दुःखी है। पर कर्म जंजीरें टूटते ही जन्म-मरण की परम्परा हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है। तीर्थकर शाश्वत स्थान सिद्धशिला को प्राप्त करते हैं। यह तीर्थकर संसार के जीवों के लिए आदर्श के रूप में पूजे जाते हैं। जैनधर्म में भक्ति का मूल उद्देश्य-प्रभु के गुणों का चिन्तन करना है। आचार्य महाप्रज्ञ की भाषा में-

“हर तीर्थकर, तीर्थकर बनने से पहले अपने से पहले हुए तीर्थकरों की भक्ति करता है। हर सिद्ध, सिद्धत्व से पहले सिद्धों की भक्ति करता है। यह गुण सामान्य अरिहंत केवलियों से तीर्थकरों को भिन्न करते हैं।”

तीर्थकर भगवान अठारह दोषरहित होते हैं-

(१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) वीर्यान्तराय, (४) भोगान्तराय, (५) उपभोगान्तराय, (६) हास्य, (७) रति, (८) अरति, (९) सप्तभयमुक्त, (१०) जुगुप्सा (घृणा), (११) शोक, (१२) काम, (१३) मिथ्यात्व, (१४) अज्ञान, (१५) निद्रा, (१६) अविरति, (१७) राग, (१८) द्वेष।

### भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में तीर्थकरों की संख्या

साध्वी उमेश जी शास्त्री ने तीर्थकर पुस्तक में तीर्थकरों की उत्पत्ति के बारे में इस प्रकार लिखा है (पृष्ठ १०-११)-

“भरतक्षेत्रापेक्षा से तीर्थकर सदैव २४ ही होते हैं। तीसरे आरे में प्रथम तीर्थकर और चौथे आरे में २३ तीर्थकर होते हैं। यह अटल नियम है। भरतक्षेत्र की अपेक्षा २४ की संख्या शाश्वत है। महाविदेह क्षेत्र में विहरमान में रूप २० तीर्थकर सदैव विद्यमान रहते हैं। वहाँ हमेशा चौथा काल वर्तता है। १५ कर्मभूमियों में तीर्थकर भगवान होते हैं। कर्मभूमियों की अपेक्षा एक समय में जघन्य २० तीर्थकर और उत्कृष्ट १६० या १७० तीर्थकर हो सकते हैं। जैसे पाँच महाविदेह क्षेत्र और हर एक क्षेत्र में ४-४ तीर्थकर पाये जा सकते हैं। योग ५ X ४ = २० तीर्थकर हुए। उत्कृष्ट १६०। जैसे पाँच विदेह क्षेत्रों में ३२-३२ विजय हैं। ३२ X ५ = १६० विजयों में एक-एक तीर्थकर होते हैं यों १६० तीर्थकर हुए। पाँच भरत पाँच ऐरवत इन दस क्षेत्रों में भी १० तीर्थकर हुए तो इस अपेक्षा से १७० तीर्थकर होते हैं।

श्री जम्बूद्वीप गणितशास्त्र में किसी अपेक्षा से जघन्य ४ तीर्थकर और उत्कृष्ट ३४ तीर्थकर कहे हैं जैसे ३२ विजयों में एक एक यों ३२ हुए और भरत-ऐरवत में एक-एक यों ३४ तीर्थकर बतलाये हैं।

### अवतारवाद व उत्तारवाद

तीर्थकर किसी देवी-देवता के अवतार नहीं होते। वे तो सामान्य मनुष्य होते हैं, जो पूर्वजन्मों की विशिष्ट साधना-आराधना द्वारा तीर्थकर नामकर्म गोत्र का बंध करते हैं। तीर्थकर न किसी को शाप देते हैं न आशीर्वाद। यह उनकी सदेह वीतराग अवस्था की संस्कृति है।

इसके विपरीत वैदिक परम्परा अवतारवाद में विश्वास रखती है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है-

“ईश्वर अज, अनन्त और परमात्मा होने पर भी अपनी अनन्तता को अपनी माया-शक्ति से संकुचित कर शरीर धारण करता है।” अवतारवाद का सीधा अर्थ है-ईश्वर का मानव देह में धरती पर प्रकट होना।

ईश्वर के अवतार लेने का एक मात्र उद्देश्य सृष्टि के चारों ओर जो अधर्म का अंधकार छाया है, उसे नष्ट कर धर्म का प्रकाश, साधुओं का परित्राण, दुष्टों का नाश और धर्म की स्थापना करना है। वैदिक धर्म में कोई भी आत्मा परमात्मा का रूप कभी भी नहीं ले सकती। इसके विपरीत जैनधर्म में साधना का उद्देश्य है राग-द्वेष को छेदन कर १८ पापों से मुक्त हो आत्मा को जन्म-जरा-मरण के दुःखों से मुक्त करना और अरिहंत अवस्था प्राप्त कर केवलज्ञान के धारक बनना।

जैनधर्म की मान्यता के अनुसार मात्र अठारह द्वीप में १५ कर्मभूमियाँ हैं। उनमें एक समय में १७० क्षेत्र हैं, जहाँ तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। एक समय में एक क्षेत्र में सर्वज्ञ अनेक हो सकते हैं, पर एक समय में एक क्षेत्र में तीर्थंकर एक ही होता है। एक समय में अधिक से अधिक १७० तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं, ज्यादा नहीं।

तीर्थंकर व सामान्य केवली में मुख्य अन्तर विशिष्ट घटनाओं का है। तीर्थंकर के समान सामान्य केवलियों पर कोई भी घटना घटित नहीं होती। मुक्त अवस्था में सभी जीव सिद्ध बन जाते हैं। आत्मा अजर-अमर हो जाती है। अनन्त काल के लिए उन्हें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति में लीन हो जाना होता है। वहाँ कर्मबंध और कर्मबंध के कारणों का सर्वथा अभाव होने से जीव पुनः संसार में नहीं आता। जैनधर्म का तीर्थंकर ईश्वरीय अवतार नहीं है। मूलतः जैनधर्म अवतारवाद को नहीं मानता। यहाँ शुभ कर्म से प्राप्त तीर्थंकर गोत्र है इसके पीछे कर्म सिद्धांत है।

### वैदिक अवतारों की मान्यता

जैनधर्म के तीर्थंकरों की मान्यता का प्रभाव दूसरे धर्मों पर भी पड़ा है। वैदिक धर्म के पुराणों में अवतारवाद के विभिन्न देवताओं के अवतार माने जाते हैं। भागवत पुराणों में अवतारों के तीन विवरण मिलते हैं जो अन्य पुराणों से प्राप्त होने वाले दशावतार परम्परा से पृथक् हैं—

वैदिक परम्परा में १०, १६, २२, २४ प्रमुख अवतारों का वर्णन मिलता है। भागवत में कहीं भगवान के असंख्य अवतार माने गये हैं। दशम स्कंध में १२ अवतारों की बात कही गई है। उक्त सूची में आगे चलकर पाँच रात्र वासुदेव के ही पर्याय विभवों की संख्या २४ से बढ़कर ३९ तक हो गई है।

लघु भागवतामृत में यह संख्या २५ तथा सात्वत तंत्र में ४१ से अधिक हो गई है। इन चौबीस अवतारों में मत्स्य, वराह, कूर्म आदि तो अवतार पशु के हैं। हंस पक्षी है। कुछ अवतार पशु व मानव दोनों के मिश्रित रूप हैं जैसे—नृसिंह व हयग्रीव।

वैदिक परम्परा में जैन परम्परा की तरह अवतार की व्यवस्था का वर्णन नहीं मिलता। इन २४ अवतारों की सूची में भगवान ऋषभदेव व अंतिम अवतार में महात्मा बुद्ध को शामिल किया गया है।

भदन्त बौद्ध भिक्षु का मत है कि "ईसा पूर्व प्रथम या द्वितीय शताब्दी में जैविक बुद्ध का उल्लेख हो चुका था।" बौद्धों में भी वैदिक धर्म की तरह असंख्य अवतारों की कल्पना की गई है। पर आगे चलकर यह संख्या ५, ७, २४ और ३६ तक सीमित हो गई।

जैनधर्म में २४ तीर्थंकरों की मान्यता एक है चाहे श्वेताम्बर हो या दिगम्बर इनमें कोई अंतर नहीं।

—महावीर : एक अनुशीलन पृ. २०-२१ (आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि के आधार पर)



१. दिगम्बर परम्परा सोलह स्वप्न मानती है—

- (१) गज, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) लक्ष्मी, (५) माला, (६) शशि, (७) सूर्य, (८) कुम्भद्विक, (९) मेषयुगल, (१०) सागर, (११) सरोवर, (१२) सिंहासन, (१३) देव विमान, (१४) नाग विमान, (१५) रत्नराशि (१६) निर्धूम अग्नि।

## आदितीर्थकर भगवान ऋषभदेव

जैनधर्म में चौबीस तीर्थकर की मान्यता बहुत प्राचीन है। हम इस अध्ययन में ऐतिहासिक तीर्थकरों का वर्णन करेंगे। हमने इस पुस्तक के प्रथम अध्ययन में लिखा था कि प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव का वर्णन भारतीय दर्शन परम्परा में भरा पड़ा है। समस्त वैदिक ग्रंथ, बौद्ध ग्रंथ, सिक्खों का दशम ग्रंथ इसके प्रमाण हैं।

ऋषभदेव जैन मान्यता के अनुसार अवसर्पिणी काल के तृतीय आरे के उपसंहार काल में उत्पन्न हुए। बाकी तीर्थकरों और प्रथम तीर्थकरों में बहुत लम्बा अंतराल है।

वैदिक दृष्टि से ऋषभदेव प्रथम सतयुग के अंत में हुए और राम-कृष्ण के अवतारों से पूर्व हुए। वह आत्म-विद्या के प्रथम पुरस्कर्ता थे। कल्पसूत्र में उन्हें प्रथम राजा, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थकर और प्रथम धर्मचक्रवर्ती माना गया है। वह प्रथम राजा भी थे। ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार वह दस प्रकार के धर्म के प्रवर्तक थे।<sup>9</sup>

श्रीमद्भागवत में जैनधर्म की भाँति भगवान ऋषभदेव का वर्णन आया है। श्रीमद्भागवत में बताया है—“वासुदेव ने आठवाँ अवतार नाभि और मरुदेवी के यहाँ धारण किया। वे ऋषभ रूप में उत्पन्न हुए। उन्होंने सब आश्रमों द्वारा नमस्कृत मार्ग दिखलाया।

उनके सौ पुत्र थे। प्रथम पुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। भागवत ने इन्हें महायोगी कहा है। उन्होंने अपने लोगों की पराधीनता समाप्त करने के लिये असि, मसि, कृषि व शिल्प का उपदेश दिया। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार उन्होंने स्त्रियों को ६४ व पुरुषों को ७२ कलायें प्रदान कीं। फिर वह प्रथम राजा बने। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था स्थापित की। लोगों को पशु जीवन से निकालकर उसका वास्तविक रूप बताया। अयोध्या नगरी का निर्माण किया। संसार के लोगों को कर्म करने का उपदेश दिया। जैन परम्परा अनुसार उन्होंने लम्बे समय तक राज्य किया। फिर राज्यों को पुत्रों में विभाजित कर साधु जीवन स्वीकार किया। उनके प्रथम पुत्र भरत व छोटे पुत्र तक्षशिला सम्राट् बाहुबलि को छोड़ सभी साधु बन गये। उनकी दो पुत्रियाँ—ब्राह्मी व सुन्दरी थीं। आपने स्त्री-शिक्षा का सूत्रपात करते हुए ब्राह्मी को लिपिज्ञान दिया। आज भी वह लिपि ब्राह्मी कहलाती है और भारत की यह प्राचीनतम लिपि है। सुन्दरी को उन्होंने गणित की शिक्षा दी।

दो सुपुत्रियों ब्राह्मी व सुन्दरी ने भी पिता व भाई का अनुकरण किया। दोनों पुत्रियों ने साध्वी जीवन स्वीकार किया। प्रथम तीर्थकर बनकर वे संसार के कोने-कोने तक पहुँचे। उनकी जीवन-गाथा क्रान्तिकारी घटनाओं से भरी पड़ी है। पर हम यहाँ यह बताने की चेष्टा कर रहे हैं कि भगवान ऋषभदेव संसार की सभ्यताओं में आज भी मान्यवर रहे हैं।

चारों वेद, पुराण उनके गुणगान करते हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्राप्त मुद्रायें, चिन्ह सभी जैनधर्म से संबंधित हैं। पुराणों ने आर्हत धर्म के उपासकों को असुर माना है क्योंकि वे यज्ञों, वेदों व ब्राह्मणों का विरोध करते थे।

भगवान ऋषभदेव की प्रसिद्धि के बारे में आचार्य देवेन्द्र मुनि जी लिखते हैं—“भारत में ही नहीं अपितु संसार में वह कृषि देवता के रूप में पूजे जाते हैं। कहीं उन्हें वर्षा का देवता माना जाता है, कहीं सूर्य देव का रूप माना जाता है। चीनी त्रिपिटकों में उनका उल्लेख मिलता है। जापानी उनको ‘रोकशब’ कहते हैं।”

मध्य एशिया, मिस्र और यूनान तथा ऐनेशिया फोनेशिया एवं फणिक लोगों की भाषा में वे ‘रेशेफ’ कहलाये।

अक्कड़ और सुमेरन की संयुक्त प्रवृत्तियों से उत्पन्न बेबीलोनिया की संस्कृति और सभ्यता बहुत प्राचीन मानी जाती है। उनके विजयराजा हम्मुरावी (२१२३-२०८१ ई. पू.) के शिलालेखों से ज्ञात होता है—“स्वर्ग और पृथ्वी का देवता वृषभ था।”

सुमेरु लोग कृषि के देवता के रूप में बैल की पूजा करते थे। हिती लोग भी भगवान ऋषभदेव से प्रभावित रहे हैं। डॉ. राधाकृष्ण<sup>१</sup>; डॉ. स्टीवेन्सन<sup>२</sup>; श्री जयचन्द विद्यालंकार<sup>३</sup> इन्हें जैनधर्म का संस्थापक मानते हैं।

कई लोग भगवान ऋषभदेव की समानता आदिम बाबा और शिव से करते हैं। दशम ग्रंथ में गुरु गोविंदसिंह को २४ अवतारों में एक अर्हत् अवतार माना है।

भगवान ऋषभदेव के साथ हजारों लोगों ने दीक्षा ग्रहण की। कुछ लोग संयम के कष्ट न झेल सके। पर वह घर नहीं आये। वह भिन्न-भिन्न भेषों में धर्म-प्रचार करने लगे। ऐसे ही कपिल नाम का राजकुमार था जो सांख्यदर्शन का संस्थापक बना।

जब प्रभु ऋषभदेव को अयोध्या में केवलज्ञान प्राप्त हुआ, उसी दिन भरत राजा को पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ व चक्रवर्ती बनने का लक्षण चक्र आयुधशाला में उत्पन्न हुआ। भरत ने सारी पृथ्वी जीती। वे प्रथम चक्रवर्ती बने। उनके छोटे भ्राता बाहुबलि, जो भरत से ज्यादा शक्तिशाली थे, उन्होंने अपनी स्वतंत्रता का सौदा न किया। उन्होंने अपनी प्रभुसत्ता की रक्षा के लिये भरत की अधीनता स्वीकार न की। युद्ध में सेनायें उठीं। दोनों ओर के मंत्री की सलाह से मल्ल-युद्ध, मुष्टि-युद्ध, दृष्टि-युद्ध हुए। सभी में बाहुबलि जीत गये। फिर भरत चक्रवर्ती ने चक्र चलाकर बाहुबलि को समाप्त करना चाहा। पर चक्र परिजनों पर नहीं चलता। इसी कारण वह बाहुबलि के पास आकर भरत के पास लौट आया। भरत के इस धोखे से बाहुबलि का मन वैराग्य की ओर मुड़ गया। बाहुबलि-भरत युद्ध गंधार देश में हुआ था। उनके १०० पुत्रों से १०० देशों की स्थापना हुई थी। भरत को पराजित कर बाहुबलि ने दीक्षा ग्रहण की। युद्ध-भूमि तप-भूमि बन गई। मन में द्वन्द्व चलता रहा, जिसे स्वयं भगवान ऋषभदेव ने अपनी साध्वी बनी पुत्री ब्राह्मी व सुन्दरी को भेजकर दूर किया।

भगवान ऋषभदेव अपने दीक्षा काल में हर देश में घूमे। उन्होंने एक वर्ष का लम्बा तप किया। उस समय कोई भी शुद्ध भिक्षा देने वाला नहीं था। पर पुनर्जन्म के याद आने के कारण बाहुबलि के पौत्र श्रेयांस राजा ने प्रभु को प्रथम इक्षुरस का आहार प्रदान किया। इस आहार के कारण उनके वंश को इक्ष्वाकु नाम देवताओं ने दिया। श्रेयांस राजा का दान वाला दिन जैन इतिहास में अक्षय तृतीया कहलाया। आज भी हजारों जैन भगवान ऋषभदेव की स्मृति में श्रद्धा के अनुसार वर्षी तप करते हैं और वह दीर्घ तपस्या हस्तिनापुर पारणा स्थल पर खोलते हैं।

हजारों साधु, साध्वियों के अलावा लाखों श्रावक-श्राविकाओं को प्रभु ने मोक्षमार्ग बताया। स्वयं भरत चक्रवर्ती के पुत्र मरीचि, जो भिक्षु जीवन से भटक गये थे, उनको प्रभु ने अन्तिम तीर्थंकर घोषित किया।

जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव का निर्वाण अष्टापद पर्वत पर हुआ, जिसे आज कैलाश पर्वत कहते हैं।

भगवान ऋषभदेव को संसार के सभी लोगों ने किसी न किसी रूप में माना है। यहाँ तक कवि सूरदास व गुरु गोविन्दसिंह ने दशम ग्रंथ की २४ अवतारों की कथा में ऋषभदेव का अर्हत् अवतार की कथा रूप में श्रद्धा से वर्णन किया है।

● ●

१. “इह इक्ष्वाकु कुल वंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्या नन्दने।

महादेवेन ऋषभेण-दस प्रकार धर्म स्वयमेव चीर्णः।”

२. भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग १, पृष्ठ २८७

३. कल्पसूत्र की भूमिका

४. भारतीय इतिहास की रूपरेखा।

# अन्य तीर्थकरों के विषयों में आवश्यक जानकारी

(तीर्थकर चरित्र)

जैनधर्म में कुछ तीर्थकरों का तो बहुत विस्तार से वर्णन है। पर कुछ तीर्थकर ऐसे भी हैं, जिनके जीवन की घटनाओं का क्रम नहीं मिलता है। एक बात उल्लेखनीय है कि भगवान ऋषभदेव के समय पंच महाव्रत, प्रतिक्रमण, चातुर्मास करना आवश्यक ठहराया। पर बीच के तीर्थकरों के समय में चातुर्याम धर्म, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह दोनों का एक व्रत अपरिग्रह बनाया गया। बाकी तीर्थकरों ने ब्रह्मचर्य को परिग्रह व्रत से अलग रखकर पाँच महाव्रत बताये।

## भगवान अजितनाथ

दूसरे तीर्थकर भगवान अजितनाथ का वर्णन धेरगाथा १/२०<sup>१</sup> में प्रत्येकबुद्ध के रूप में आया है। महाभारत में अजित और शिव को एक चित्रित किया गया है। लगता है ये तीर्थकर दोनों मान्यताओं में जैनों की तरह पूजनीय रहे होंगे।

सोरसन्स ने महाभारत के विशेष नामों का कोष बनाया है। इसमें सुपाशर्व चन्द्र और सुमति नाम के जैन तीर्थकरों को असुर बताया गया है।<sup>२</sup>

वैदिक मान्यता के अनुसार जैनधर्म असुरों का धर्म रहा है। असुर आर्हतों के उपासक थे किन्तु जैन ग्रंथों में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

विष्णुपुराण,<sup>३</sup> पद्मपुराण,<sup>४</sup> मत्स्यपुराण,<sup>५</sup> देवी भागवत<sup>६</sup> में असुरों को आर्हत या जैनधर्म का अनुयायी बताया गया। अवतारों के निरूपण में भगवान ऋषभ को विष्णु का, सुपाशर्व को कुपथ असुर का अंशावतार माना गया है।

महाभारत में विष्णु और शिव के सहस्र नाम आये हैं उस सूची में श्रेयांस, अनन्त, धर्म, शान्ति और संभव के नाम विष्णु के रूप में आये हैं जो वस्तुतः जैन तीर्थकरों के नाम हैं। इनकी महानता के कारण महाभारत के लेखक ने उन्हें तीर्थकरों के विशेषणों के रूप में जोड़ा है।

नाम साम्य के अतिरिक्त इन महापुरुषों का सम्बन्ध असुरों से जोड़ा गया है। असुर वेद विरोधी आर्हत धर्मापासक थे।

## भगवान शान्तिनाथ

भगवान शान्तिनाथ सोलहवें तीर्थकर थे। पूर्वभव में वे राजा मेघरथ थे। उन्होंने एक कबूतर के बदले अपनी जंघा का माँस देकर उसके प्राणों की रक्षा की थी। इस घटना का वर्णन महाभारत में राजा शिवि के रूप में किया था। अगले जन्म में इस अनुकम्पा के कारण उन्होंने चक्रवर्ती व तीर्थकर गोत्र बाँधा। कुरु वंश में हस्तिनापुर में माता अचिरा और राजा विश्वसेन के यहाँ उनका जन्म हुआ था। जन्म होते ही राज्य में फैला रोग समाप्त हो गया था। बौद्ध ग्रंथ में भी शान्तिनाथ की दया का समर्थन 'जीमूतवाहन' के रूप में मिलता है। इसी तरह हस्तिनापुर में श्री कुंथुनाथ पैदा हुए। वे भी चक्रवर्ती व तीर्थकर थे। इनका निर्वाण सम्पन्न शिखर पर्वत पर हुआ।

चौदहवें तीर्थकर अरनाथ का वर्णन अंगुत्तरनिकाय में 'अरक' नाम से आया है। इनके बारे में कहा गया है—बुद्ध से पहले जो सात तीर्थकर पैदा हुए थे यह उनमें अंतिम थे।

## भगवान मल्लीनाथ

इसके बाद भगवती मल्लीनाथ का वर्णन आता है। स्वयं श्रमण महावीर द्वारा ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र में मल्ली भगवती की कथा वर्णित की गई है।

भगवान मल्लीनाथ को श्वेताम्बर परम्परा स्त्री तीर्थकर के रूप में स्वीकार करती है इसके विपरीत दिगम्बर परम्परा उन्हें पुरुष रूप में स्वीकार करती है। दिगम्बर परम्परा की मान्यता है कि स्त्री क्योंकि नग्न नहीं रह सकती, इसलिए पूर्ण संयम ग्रहण नहीं कर सकती, स्त्री के तीर्थकर होने का प्रश्न नहीं उठता। स्त्री के तीर्थकर के बारे में दोनों मान्यतायें एक-जैसी हैं पर श्वेताम्बर स्त्री का तीर्थकर होना अछेरा (अचम्भा) मानते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में इस प्रकार के कई आश्चर्य मिलते हैं।

ज्ञाताधर्मकथांग में भगवती मल्ली का वर्णन ऐतिहासिक ढंग से मिलता है—

‘‘पूर्वजन्म में संयम व तप की आराधना के कारण ७ जीवों ने मनुष्य गोत्र बाँधा।’’

१. प्रतिबुद्ध इक्ष्वाकु वंश का राजा हुआ जिसकी राजधानी अयोध्या थी।

२. चन्द्रच्छाय अंग देश का राजा हुआ जिसकी राजधानी चम्पा थी।

३. शंख काशी देश का राजा हुआ जिसकी राजधानी वाराणसी थी।

४. रुक्मि कुणाल देश का राजा हुआ जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी।

५. अदीनशत्रु कुरु देश का राजा हुआ जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी।

६. जितशत्रु पंचाल देश का राजा हुआ जिसकी राजधानी कांपिल्यपुर थी।

७. सातवाँ जीव जो महाबल मुनि का था मिथिला के राजा कुम्भ व रानी प्रभावती के स्त्री तीर्थकर के रूप में पैदा हुआ। माता ने चौदह स्वप्न देखे। पाठकों से स्वप्नफल राजा व रानी ने पूछा। मल्ली का भविष्य जानकर दोनों प्रसन्न हुए। यौवनावस्था में मल्लीदेवी की चर्चा अनुपम सुन्दरी के रूप में होने लगी।

यह चर्चा देश-देशान्तरों में फैल गई। पूर्वजन्म के कर्मोदय से छहों राजा भगवती मल्ली की माँग करने लगे। वह अपनी सेना के साथ नगर में आ धुसे। भगवती मल्ली ने बुद्धिमत्ता के साथ उन राजाओं को रोकने में सहायता की। फिर उन्हें प्रतिबोध देकर सभी को संयम-पथ पर लगाया। फिर स्वयं अनेकों प्रजाजनों के साथ साधना मार्ग अंगीकार किया केवलज्ञान प्राप्त कर आप तीर्थकर रूप में धर्म-प्रचार करने लगे।

लम्बा समय धर्म-प्रचार करने के पश्चात् भगवती मल्ली का निर्वाण सम्मेद शिखर पर्वत पर हुआ।

## भगवान मुनिसुव्रत स्वामी

बीसवें तीर्थकर मुनिसुव्रत का समय श्री रामचन्द्र जी के समकालीन है। जैन रामायण के अनुसार बहुत से जीवों ने प्रभु से संयम ग्रहण किया। वाल्मीकि रामायण में तापस व श्रमणों का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है। यह बात और है कि जैन रामायण व हिन्दू रामायण में घटना-क्रम की दृष्टि से काफी अंतर है। पर यह अंतर तो सभी हिन्दू रामायणों में भी प्राप्त होता है। इसी कारण गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दू व जैन रामायणों को आधार रखकर रामचरितमानस की रचना की। बौद्ध के ‘दशरथ जातक’ व जैन की ‘पउम सिरि चरिउ’ में राम का वर्णन है। प्रभु मल्लीनाथ, मुनिसुव्रत इक्कीसवें तीर्थकर नमिनाथ का वैदिक ग्रंथों में कोई वर्णन नहीं है।

## भगवान नेमिनाथ

बाईसवें तीर्थंकर का जन्म समुद्रविजय राजा व रानी शिवादेवी के यहाँ सोरियपुर में हुआ। यह समय यादवों की उन्नति का समय था। उनकी मँगनी राजुल राजकुमारी से हुई। बारात दुल्हन के दरवाजे पर पहुँची। अचानक आपने देखा कि हजारों पशु बाड़े में बाँधे पड़े हैं। पता लगाया तो पता चला कि ये सभी बरातियों की सेवा के लिए कई दिन से बाँधे पड़े हैं।

आपने बारात वापस कर दी। घर में आकर एक वर्ष वर्षीदान दिया, फिर गिरनार पर जाकर संयम ग्रहण किया। आपकी मंगेतर राजुल ने आपका अनुकरण किया। उसने भी अपनी सैकड़ों सखियों के साथ संयम ग्रहण किया। भगवान नेमिनाथ की कथा जैन आगम अंतकृद्दशा, निरयावलिका, दशवैकालिक, उत्तराध्ययनसूत्र में बड़े मार्मिक ढंग से उपलब्ध है। सैकड़ों लेखकों ने देश की विभिन्न भाषाओं—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, पंजाबी में लिखा है। पर्युषण के दिनों में अंतकृद्दशासूत्र पढ़ा जाता है। इस कारण यह गाथा हर व्यक्ति की जुबान पर है। हजारों कवियों ने नेमि—राजुल की विरह गाथा को प्रेम—गाथा के रूप में चित्रित किया है।

भगवान नेमिनाथ का दूसरा नाम अरिष्टनेमि भी है। अरिष्टनेमि का वर्णन वेदों, पुराणों में भी आया है। इसीलिए सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा था—“वेदों में ऋषभ, अजित, अरिष्टनेमि जैन तीर्थंकरों का वर्णन उपलब्ध होता है।” भगवान अरिष्टनेमि के संबंध में अधिक सामग्री देखने के लिए आचार्य देवेन्द्र मुनि जी का शोध ग्रंथ “भगवान अरिष्टनेमि व कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक विवेचन” देखना चाहिये। जिसमें आचार्यश्री ने बहुत प्रयत्न से भगवान अरिष्टनेमि के बारे में प्राचीन ग्रंथों से संदर्भ जुटाये हैं।

## भगवान पार्श्वनाथ

तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के बारे में डॉ. हर्मन जैकोबी के विचार हम पीछे लिख आये हैं। पूर्व व पश्चिम के इतिहासकार आपको भारत का प्रथम ऐतिहासक महापुरुष मानते हैं।

भगवान पार्श्वनाथ काशी—नरेश अश्वसेन व माता वामादेवी के सुपुत्र थे। आपका युग तप में हठयोग का युग था। उसी समय उपनिषद् ग्रंथ लिखे गये। इन सब ग्रंथों पर आपके उपदेशों का खुला असर है। क्योंकि सभी उपनिषद् ध्यान, आत्मा, मोक्ष की बात करते हैं। वेद, यज्ञ, हवन, पशुबलि विरोधी है। श्रमण परम्परा के प्रशंसक हैं।

भगवान पार्श्वनाथ ने योगियों द्वारा तप के प्रदर्शन की क्रिया का विरोध किया। उस समय में योगी जिंदा पानी या अग्नि में समाधि ले लेते थे, उल्टा लटकते थे, पंचाग्नि तप करते थे। उनकी सभी क्रियाओं में अज्ञानता झलकती थी।

इसी तरह की एक घटना काशी में भी घटी। जब भगवान पार्श्वनाथ ने कमठ संन्यासी को लकड़ी चीरकर सर्प का जलता जोड़ा निकालकर दिखाया। जलते सर्प जोड़े को आपने नवकार मंत्र सुनाया। इसी कारण उनकी सद्गति हुई। दोनों मरकर धरणेन्द्र व पद्मावती नाम के देवरूप में पैदा हुए। श्वेताम्बर परम्परा आपको विवाहित मानती है। आपकी शादी राजकुमारी प्रभावती से होनी मानी जाती है। इनके पिता की युद्ध में आपने सहायता की थी।

भगवान पार्श्वनाथ का जन्म ७२७ ई. पू. में हुआ था। १०० वर्ष की आयु में आपने सम्मैद शिखर पर निर्वाण प्राप्त किया। आज भी इस पहाड़ का नाम पारसनाथ हिल्स व स्टेशन का नाम पारसनाथ है।

आपका वर्णन बौद्ध ग्रंथों में अनेकों स्थलों पर उपलब्ध होता है। भगवान बुद्ध ने कुछ समय श्रमणों के निर्ग्रन्थ धर्म की साधना की थी जिसके बारे में वे शिष्य सारिपुत्र से कहते हैं—“सारिपुत्र ! बोधिप्राप्त से पूर्व मैं दाढ़ी—मूँछों का लुंचन

करता था। मैं खड़ा रहकर तपस्या करता था। उकडु (आसन) में बैठकर तपस्या करता था। हथेली पर भिक्षा लेकर खाता था। बैठे हुए, स्थान पर आकर दिये हुए अन्न को अपने लिए तैयार किये अन्न से और निमन्त्रण को स्वीकार नहीं करता था।<sup>१७</sup> यह सारा आचार जैन परम्परा अनुसार जिनकल्पी मुनि का है। पं. सुखलाल जी संघवी,<sup>८</sup> धर्मानन्द कौशाम्बी,<sup>९</sup> डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी<sup>१०</sup> और श्री राइस डेविड्स<sup>११</sup> ने भगवान बुद्ध को भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा से प्रभावित बताया है। बौद्ध ग्रंथों में भगवान महावीर को चातुर्याम धर्म का प्रमुख बताया है।

इसके बाद अंतिम तीर्थंकर ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर हुए जिनके बारे में हम पाठकों को विस्तृत जानकारी देंगे।

## उपसंहार

यहाँ हमारा उद्देश्य श्रमण संस्कृति में तीर्थंकर परम्परा का संक्षिप्त परिचय देना है। जैनधर्म की प्राचीनता के बारे में भारतीयों में उपलब्ध जानकारी, देशी व विदेशी विद्वानों के जैनधर्म के प्रति विचारों से जनमानस को अवगत कराना है। हमारा एक उद्देश्य भारतीय संस्कृति की दो धाराओं—श्रमण व वैदिक को स्पष्ट करके बताना है। चौबीस तीर्थंकरों के बारे में संक्षिप्त जानकारी हम एक चार्ट में दे रहे हैं। श्वेताम्बर आचार्य कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरीश्वर ने २४ तीर्थंकरों के बारे में त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में जैन आगमों, चूर्णि, निर्युक्ति, टीकाओं के आधार पर विस्तारपूर्वक लिखा है।



१. धेरगाथा १/२०
२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, प्रस्तावना पृष्ठ २४।
३. विष्णुपुराण ३/१७/१८
४. पद्मपुराण सृष्टि खण्ड, अध्याय ५, श्लोक १७०-४१३
५. मत्स्यपुराण २४/४३-४९
६. देवी भागवत ४/१३/५४-५७
७. (क) मज्झिम निकाय महासिंहनाद पुल १/१/२  
(ख) भगवान बुद्ध : धर्मानन्द कौशाम्बी, पृष्ठ ६८-६९
८. चार तीर्थंकर, पृष्ठ १४०-१४१
९. पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म, पृष्ठ २८-३१
१०. हिन्दू सभ्यता, पृष्ठ २३
११. Mr. Rhyce Devids : Gautam the Man, pp. 22-25.



## खण्ड २

- (१) भगवान महावीर : पूर्वभवों का वर्णन
- (२) भगवान महावीरकालीन परिस्थितियाँ
- (३) महावीर का जन्म-महोत्सव, बचपन, विवाह व संकल्प
- (४) दीक्षा-कल्याणक



## भगवान महावीर : पूर्वभवों का वर्णन

### महावीर की पृष्ठभूमि

हमने पिछले पृष्ठों के माध्यम से जैनधर्म की प्राचीनता तथा तीर्थकरों के बारे में महत्वपूर्ण ज्ञान अर्जित किया है। तीर्थकरों के सम्बन्ध में श्री आचारांगसूत्र में श्रमण भगवान महावीर ने कहा है--

“जितने भी तीर्थकर पहले हुए हैं, वर्तमान में हैं, भविष्य में होंगे उन सबका उपदेश एक ही है वह है अहिंसा। किसी भी जीव का हनन मत करो। किसी भी जीव को बंधक मत बनाओ। सभी को प्राण प्रिय हैं। कोई भी मरना नहीं चाहता है।”

भगवान महावीर के पूर्वभवों का वर्णन श्वेताम्बर मान्यताओं के आचारांग व कल्पसूत्र में प्राप्त नहीं होता। समवायांग में प्रभु महावीर के एक भव का वर्णन है, उन्होंने सम्यक् दर्शन की<sup>9</sup> उपलब्धि जिस भव में प्राप्त की, इसका सर्वप्रथम वर्णन आवश्यकनिर्युक्ति में मिलता है।

तीर्थकरों के समवसरण व धर्मोपदेश के विषय में श्री उद्यवासूत्र में बताया गया है--“सभी तीर्थकर जीव-अजीव की व्याख्या करते हैं।”

“संसार में यह जीव अनंत काल से विभिन्न योनियों में जन्म लेता रहता है, मरता है, पुनः फिर जन्म लेता है--संसार में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, कोई गति नहीं, कोई योनि नहीं, जहाँ इस जीव को भटकना न पड़ा हो। जन्म, जरा, मृत्यु से ग्रसित इस संसार के जीव को जन्म-मरण के चक्र से बचने के लिए संयम-साधना करनी पड़ती है। अरिहंत, सिद्ध, साधु व धर्म की शरण में जाना पड़ता है।”

उत्तराध्ययनसूत्र में जिन दुर्लभ वस्तुओं का वर्णन है उसमें प्रथम मनुष्य-भव है। मनुष्य के जन्म की प्राप्ति देवताओं से बढ़कर है। मनुष्य ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य व तप की आराधना कर जन्म, जरा, व्याधि से मुक्त होकर परमात्मा बन सकता है।

तीर्थकर को पूर्वजन्मों में बहुत साधना करनी पड़ती है। सभी तीर्थकरों के पूर्वभवों का वर्णन जैन ग्रंथों में उपलब्ध है। यहाँ पहले भव का अर्थ पहला जन्म नहीं। प्रथम भव का अर्थ वह जन्म है, जब तीर्थकर जीवन की यात्रा शुरू होती है। इन्हीं जन्मों के बीच जब आत्मा अनेक बार नीच गति में चली जाती है उस जन्म को इसमें नहीं गिना जाता। इन सूचियों में मानव, देव, पशु के जन्मों का ही वर्णन किया जाता है। तीर्थकर का जीव जरूरी नहीं कि स्वर्ग से आये। वह नरक भोगकर भी तीर्थकर रूप में जन्म ले सकता है। तीर्थकर परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितनी आत्मा या सृष्टि। यह क्रम चलता रहता है। यहाँ कुछ घटता है, तो कुछ बढ़ता है, कुछ समाप्त होता है। तीनों को उप्पेइ वा, विगेइ वा धुवेइ वा कहा है। इसी दृष्टि से हम जैनधर्म को प्राचीनतम धर्म कहते हैं क्योंकि इसका कोई संस्थापक नहीं है।

इसी क्रम में भगवान महावीर के पूर्वभवों का वर्णन जैन ग्रंथ आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, हरिभद्र वृत्ति, मलयगिरि वृत्ति, चउवन्न महापुरिसचरियं, महावीरचरियं, विशेषावश्यक भाष्य, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्त और कल्पसूत्र की टीकाओं में उपलब्ध है।

दिगम्बर परम्परा में पूर्वभवों का वर्णन उत्तरपुराण में आया है। श्वेताम्बर परम्परा में २७ भवों का वर्णन है और दिगम्बर परम्परा में ३३ भवों का। अब इन भवों का विवेचन हम करेंगे, ताकि हमें पता लग सके कि भगवान महावीर

को तीर्थंकर गोल बाँधने के लिए कितने जन्मों की यात्रा करनी पड़ी। श्रमण भगवान महावीर की महानता को प्रकट करने में ये भव हमारी साधना के लिए शिक्षा प्रदान करते हैं। तीर्थंकर महावीर को महावीर बनने से पहले जिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा, उन सबका वर्णन है।

श्वेताम्बर परम्परा में भी भवों की संख्या का अंतर ही नहीं अपितु नाम, स्थल और आयु संबंधी दोनों परम्पराओं का अंतर है। पर पुनः हम पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं कि इन जन्मों के बीच अंतिम सत्ताईसवें भव गर्भ-परिवर्तन को आचार्यों ने भव नहीं माना। क्योंकि यह घटना इन्द्र के आदेश से हुई। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यह भी अच्छेरा (आश्चर्य) था। समवायांगसूत्र की वृत्ति आचार्य अभयदेवसूरि ने छब्बीसवाँ भव देवानंद ब्राह्मणी की कुक्षि से जन्म ग्रहण करने का बताया है। सत्ताईसवाँ भव त्रिशला रानी के गर्भ में आने का आचार्य अभयदेव के अतिरिक्त किसी भी ग्रंथ में गर्भ-परिवर्तन को भव नहीं माना है।

अब हम पाठकों के समक्ष प्रभु महावीर के उन जन्मों का वर्णन करते हैं, जिनमें उन्होंने विशिष्ट साधना की। नरक भोगे। स्वर्ग भोगे। मनुष्य गति व पशु गतियों का भ्रमण किया। विभिन्न प्रकार से कर्मफल भोगे। जैसे पहले कहा जा चुका है कि जैन तीर्थंकर किसी भी वैदिक परम्परा की तरह देवी-देवता का अवतार नहीं होते। वे तो सामान्य पुरुष होते हैं। अपने शुभ कर्मों से तीर्थंकरत्व को प्राप्त कर जन्म-मरण की यात्रा समाप्त करते हैं। जब तक जीते हैं साकार परमात्मा का रूप अरिहंत कहलाते हैं। निर्वाण के बाद वही निराकार सिद्ध परमात्मा बनते हैं। वे राग-द्वेष से मुक्त, रत्नत्रयी के स्वामी होते हैं। भगवान महावीर की कथा बड़ी रोचक रही है। यह कथा प्राचीन मान्यताओं का सुन्दर समन्वय है। यह कथा जन्म, जरा, मृत्यु में फँसे प्राणियों को उबारने के लिए, उनको प्रेरणा देने के लिये और महावीरत्व से पहले उन्हें कितने जन्मों तक भटकना पड़ा, उसकी सजीव गाथा है। महावीर के पूर्व भवों का वर्णन इस प्रकार है—

### प्रथम—नयसार का भव

संसार के भव-चक्र में प्राणी अंत काल से थपेड़े खा रहा है। इस भव-चक्र को जैन परिभाषा में कर्मबंधन कहते हैं। कर्म की परिभाषा जैनधर्म की अपनी है। कर्म को मात्र कार्य नहीं माना गया है, न ही भाग्य। जैनधर्म में कर्मवाद का स्वतन्त्र सिद्धांत है। इस कर्म के फल से न ईश्वर बच सकता है न मनुष्य। जैन सिद्धान्त कहते हैं कि शक्ति-सम्पन्न ईश्वर राग-द्वेष से मुक्त है। वह संसार के किसी चक्र में नहीं पड़ता। संख्या की दृष्टि से ईश्वर एक नहीं। जितनी आत्माएँ हैं सभी में ईश्वर समाया हुआ है। हर आत्मा परमात्मा बनती है, अर्हत् बनती है, केवली बनती है, जिन बनती है, सर्वज्ञ पुरुषोत्तम त्रिलोकीनाथ बनती है, संसार द्वारा पूजित बनती है। पर कर्म के अनुसार, उसे जन्म-मरण, शुभ-अशुभ गति में घूमना होता है। भगवान महावीर का जीव प्रथम भव में नयसार नामक प्राणी था। आपका जन्म महाविदेह क्षेत्र के महावप्रविजय में जयन्ती नगरी के अन्तर्गत पुरप्रतिष्ठान ग्राम में हुआ। वहाँ का राजा शत्रुमर्दन था।

भगवान महावीर के जीव ने सबसे पहले इसी जन्म में सम्यक् दर्शन प्राप्त किया था।<sup>१</sup> नयसार ग्राम चिंतक था। ग्राम का मुखिया होते हुए भी वह बड़ा सरल, विनम्र और हँसमुख स्वभाव का था।<sup>२</sup> वह लोगों में बहुत ही प्रिय था। वहाँ का सम्राट उसकी सरलता व ईमानदारी से बहुत प्रभावित था।

एक समय की बात है राजा ने अपने लिए एक भव्य राजप्रासाद बनाना शुरू किया। इसके लिए राजा को काफी मात्रा में इमारती लकड़ी की जरूरत थी। सम्राट ने इस कार्य के लिए नयसार को चुना। नयसार लकड़ी के कार्य का विशेषज्ञ था। नयसार अनेक कर्मचारियों व गाड़ियों को लेकर जंगल में गया। उसने देवदार, साल आदि के वृक्षों को कटवाना शुरू किया। उसमें से वह अच्छी लकड़ी अपने कारीगरों से कटवाता जोकि राजप्रासाद के निर्माण के काम आ सके।

नयसार का जंगल भव्य था। उसने कार्य के लिए हजारों स्थानीय मजदूरों को ठेके पर रखा था। हर दोपहर को मजदूर अपने घर से लाया खाना खाते। खाना खाकर पुनः काम पर लग जाते। नयसार भी मजदूरों के साथ ही खाना

खाता। यह क्रम हर रोज चलता था पर एक दिन ऐसा भी आया कि उसके जीवन में दिव्य घटना घटी, जो भविष्य में उसे तीर्थकरत्व की यात्रा की ओर ले गई।

## सुपात्रदान

एक दिन की बात है कि धूप बहुत थी। मजदूर काम करते-करते थक चुके थे। नयसार ने सबको भोजन करके आराम करने की सलाह दी। वह स्वयं भी भोजन करने के लिए बैठ गया। नौकरों ने उसके सामने भोजन रखा। भोजन को देखते ही नयसार चिंतन करने लगा—“इतनी धूप है, जंगल है। ऐसे में जैसे मुझे भूख लगी है, कितने प्राणी भूखे होंगे। कोई अतिथि अगर इस समय आ जाये, तो मैं उसे भोजन कराकर ही भोजन करूँ।” आत्मा के जब शुभ परिणाम होते हैं तो सब मंगलमय होता है। आत्मा के परिणामों से शुभ-अशुभ कर्म का बंधन होता है। नयसार अपने स्थान से उठा। ऊँचे पहाड़ पर खड़ा हुआ फिर तलहटी की ओर उसने नजर दौड़ाई। उसने देखा कि बहुत दूर कुछ मुनि रास्ता भटके हुए इधर आ रहे हैं। वह दौड़कर उन मुनियों की ओर भागा। इस भयंकर गर्मी में मनुष्य को देखकर थके-हारे मुनियों को प्रसन्नता हुई।

नयसार ने मुनियों को नमस्कार किया। थके-माँदे मुनियों से नयसार ने पूछा—“भगवन् ! आप इस तपती दोपहरी में इस जंगल में कैसे पधारे ?”

मुनियों ने कहा—“भद्र ! हमने सार्थवाह (काफले) के साथ प्रस्थान किया था। सार्थ ने एक स्थान पर विश्राम किया। उसी समय हम पास के ग्राम में भिक्षा के लिए निकले। पुनः अपने स्थान पर आये, तो सार्थ समूह पहले ही निकल चुका था। हम भी चले। पर आगे आकर रास्ता भूल गये।” नयसार ने मुनियों की बात को श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सुना। उसने मुनियों को कहा—“भगवन् ! चिंता की कोई बात नहीं। आप मेरे से पहले शुद्ध आहार ग्रहण कीजिये, विश्राम कीजिये। मैं आपको जहाँ भी कहो, वहीं छोड़ आऊँगा। मेरे यहाँ मीठी छाछ व खाना तैयार है, पहले उसे ग्रहण करो।” जैन मुनि तो भिक्षा के ४२ दोष टालकर भिक्षा ग्रहण करता है। वह पात्र (दानी) व भोजन दोनों की शुद्ध परखकर भोजन ग्रहण करता है। इसीलिए जैन साधु के भोजन को गोचरी कहा गया है—“जैसे गाय घास के मैदान में घास को खाती है पर घास का कोई नुकसान नहीं होता। साधु भी इसी तरह दाता से भिक्षा ग्रहण करता है। इसे मधुकरी भी कहते हैं। जिस प्रकार भँवरा फूल-फूल के कण से शहद इकट्ठा करता है, साधु भी हर घर से घूमकर थोड़ा-थोड़ा भोजन ग्रहण करता है। वह अपने लिये खरीदा, बनाया, सामने बनाया भोजन ग्रहण नहीं करता है। यह भोजन चाहे कितना ही शुद्ध हो, ऐसा भोजन निर्दोष नहीं माना जाता है।

नयसार ने मुनियों की ओर देखा। मुनियों ने नयसार द्वारा प्रदत्त भोजन की ओर। शुद्ध आहार था। लेने वाला सुपात्र था। मुनियों ने भोजन ग्रहण किया। भोजन खाने के बाद वह मुनि-मण्डली चलने को तैयार हुई। नयसार को मुनियों से इस तरह लगाव हो गया कि वह भावुक हो उठा। उसकी आँखें विनम्रता और सरलता के कारण भर आईं। सचमुच सरल हृदय में धर्म ठहरता है। बनावटी व कपटी लोगों के पास धर्म का क्या काम ? उनके पास धर्म नहीं, दम्भ ठहरता है। दम्भ मिथ्यात्व का दूसरा रूप है।

मुनियों ने नयसार से कहा—“भद्र ! तू रोता क्यों है ? तू तो भाग्यशाली है। तूने सुपात्रदान दिया है जो बड़े भाग्य से उपलब्ध होता है। तूने हमारी खूब सेवा की है। हमें रास्ता बताया है। हमारा भी कर्तव्य है कि तुम्हें धर्मोपदेश दें। तुम्हें कुछ मार्ग बतायें।”

नयसार ने निवेदन किया—“हाँ महाराज ! मुझ गरीब पर आपने इतने उपकार किये। इस जंगल में तो पशु-पक्षी के अतिरिक्त मनुष्य कहाँ आता है ? आप पधारे। मेरा भोजन पवित्र किया। इस घर को पूजनीय बनाया। अब मुझको धर्मोपदेश देने की कृपा करें।”

मुनियों ने उसे धर्म का रहस्य बताते हुए कहा—“सरलता और शान्ति धर्म का बीज है। देव, गुरु और धर्म की भक्ति करो। मिथ्यात्व को छोड़ो। सम्यक्त्व को ग्रहण करो। तुम्हारा जीवन सफल होगा।”

नयसार ने मुनि के उपदेश से सरलता से धर्मतत्त्व को ग्रहण किया। पर अभी तो यह शुरूआत थी। असली जीवन संग्राम की शुरूआत। तथागत बुद्ध ने अपने एक जन्म में दीपकर बुद्ध को रास्ता दिखाया था। ऐसा वर्णन जातक अद्भुत कथा में आया है।

## दिगम्बर परम्परा

आचार्य गुणभद्र रचित उत्तरपुराण (७४-९५) में इस कथा का वर्णन इस प्रकार से आया है—

“जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के किनारे पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के मधुवन में पुरुरवा नाम का भीलों का सरदार रहता था। वह सभी कुव्यसनों का आदी था।”

एक बार वह जंगल में अपनी पत्नी के साथ शिकार को गया। दोपहर तक उसे कोई जीव नहीं मिला। दोपहर के समय उसने पत्तों में कुछ आवाज सुनी। उसने सोचा—‘कोई मृग पत्तों के पीछे छिपा बैठा है?’ पर ज्यों ही उसने तीर बाँधने की तैयारी की तो सामने सागरसेन नाम के मुनि के दर्शन हुए। पत्नी ने पति को समझाते हुए कहा—“ये हमारे वन के देवता हैं इन्हें मत मारो।”

पत्नी की बात सुनकर भील शांत हो गया। वह मुनि के पास आया। आकर मुनि को प्रणाम किया। मुनि महाराज के उपदेश से प्रभावित हो उसने मधु, माँस व शराब का त्याग कर दिया। इन व्रतों का पालन उसने मरते दम तक किया। यही पुरुरवा भविष्य में प्रभु महावीर के रूप में प्रकट हुआ।

## दूसरा भव

यह नयसार का जीव मरकर शुभ कर्म के कारण सौधर्म देवलोक में एक पत्न्योपम की स्थिति वाला देव बना। उत्तरपुराण में इसकी आयु एक सागरोपम कही गई है। लम्बे समय तक उसने स्वर्ग सुख भोगे।

## तीसरा—मरीचि का भव

स्वर्ग से चलकर नयसार का जीव तीसरे जन्म में भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के यहाँ राजकुमार मरीचि के नाम से पैदा हुआ। प्रथम तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव का उपदेश सुनकर वह उनके पास साधु बना। वह विशुद्ध तपःसाधना करता था। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन भी किया।

एक बार बहुत भयंकर गर्मी पड़ी। इस तप को उसका शरीर सहन न कर सका। उसने सोचा—‘मुझे गृहस्थ बन जाना चाहिये। संयम का पालन मैं नहीं कर सकता। संयम का मार्ग तो मेरे लिए मेरु के समान है।’

फिर सोचने लगा—‘गृहस्थ आश्रम में भी कौन-सा सुख है? जो सुख का सत्य मार्ग है वह तो भगवान ऋषभदेव का बताया हुआ है। पर अब मैं इसमें चलने में असमर्थ हूँ। ऐसे में मुझे श्रमणों का वेष को छोड़ नया वेष ग्रहण करना चाहिये।’ यह सोचकर उसने परिव्राजक की वेषभूषा धारण कर ली। संकल्प-विकल्प में उसने यह निश्चय किया—

“मैं हर ग्राम में भगवान ऋषभदेव के धर्म का प्रचार करूँगा। मैं कभी अपनी कमजोरी नहीं छिपाऊँगा।”

वह दण्ड, छत्र, खड़ाऊँ को धारण करता। माथे पर त्रिदण्ड तिलक लगाता। गुरुआ वस्त्र धारण करता। सचित्त जल पीता। जो जिज्ञासु बनकर उसके पास पहुँचते, वह सबको स्पष्ट कहता—“सच्चा धर्म तो भगवान ऋषभदेव का है। मैं उस धर्म का पालन करने में असमर्थ हूँ।” इस प्रकार वह लोगों को प्रतिबोधित कर भगवान ऋषभदेव के साधु परिवार में वृद्धि करता।

## भगवान ऋषभदेव द्वारा मरीचि का भविष्य कथन

एक बार भगवान ऋषभदेव धर्म-प्रचार करते हुए अयोध्या नगरी पधारे। भरत चक्रवर्ती चतुरंगी सेना लेकर दर्शन करने आया। उस समय भरत चक्रवर्ती ने प्रश्न किया-

“प्रभु ! आपके समवसरण में ऐसा कोई जीव है जो आपके समान तीर्थकर बनने योग्य हो ?”

ऋषभ प्रभु ने कहा-“हाँ देवानुप्रिय ! है। तुम्हारा पुत्र मरीचि इस काल में अंतिम तीर्थकर वर्द्धमान के रूप में उत्पन्न होगा। इससे पूर्व वह पोटनपुर का अधिपति त्रिपृष्ठ वासुदेव बनेगा। फिर विदेह क्षेत्र की मूका नगरी में तुम्हारे जैसा ही प्रियमित्त नामक चक्रवर्ती बनेगा। इस प्रकार वह जीव तीन उपाधियों को प्राप्त करेगा।”

भगवान की भविष्यवाणी से भरत चक्रवर्ती प्रसन्न हुआ। वह परिव्राजक बने अपने पुत्र मरीचि के पास आया। प्रभु ऋषभदेव की भविष्यवाणी भरत ने हर्षविग के साथ कहा-

“मरीचि ! तू धन्य है। तू बड़ा भाग्यशाली है। तेरा भविष्य महान् है। तू भविष्य में वासुदेव बनेगा। चक्रवर्ती पद पायेगा और अंत में धर्म चक्रवर्ती तीर्थकर बनेगा।”

अपने भविष्य को सुनकर मरीचि इतना प्रसन्न हुआ कि उसके मन में प्रसन्नता के साथ कुछ अहंकार का अंश भी आ गया। वह नाचता हुआ इस प्रकार कहने लगा-

“अहा ! मैं कितना महान् हूँ। मेरा कुल और वंश महान् है। मेरे दादा प्रथम तीर्थकर प्रभु ऋषभदेव हैं। मेरे पिता भरत प्रथम चक्रवर्ती हैं और मैं प्रथम वासुदेव, फिर चक्रवर्ती बनूँगा। फिर तीर्थकर बनूँगा। हर्ष और जातीय गौरव में फूलकर उसने अपने पैरों को तीन बार जमीन पर पछाड़कर कहा”-“मैंने बहुत प्राप्त कर लिया है। अब इससे अधिक मुझे किसी की आवश्यकता नहीं है।” वह अहंकारवश नाचने-कूदने लगा।

अहंकार पतन की पहली सीढ़ी है। वह जातीय अहंकार और आत्म-प्रशंसा के कारण अपनी उत्कृष्ट साधना के फल से वंचित हो गया। उसने कुल मद के कारण नीच गोल का बंध किया जिसका फल भविष्य में उसे भोगना पड़ा। (देखो चित्र 9)

एक बार मरीचि बीमार पड़ गया। उसकी सेवा के लिये उसका कोई शिष्य नहीं था। उसे शिष्य की जरूरत का अहसास हुआ। उसने एक राजकुमार कपिल को दीक्षित किया।

कपिल मुनि ने अपने गुरु मरीचि से पूछा-“आप कठोर संयम के मार्ग को क्यों नहीं अपनाते ?”

मरीचि ने शिष्य को गलत उत्तर देते हुए कहा-“मेरे मार्ग व जिनमार्ग में कोई अंतर नहीं है।”

कपिल ने मिथ्या मत की स्थापना की। मरीचि ने अंतिम समय में बिना आलोचना किये जीवन पूरा किया। मरीचि का कुल अभिमान का फल उसे लम्बे समय तक भोगना पड़ा। मरीचि का जीव कोटाकोटि सागरोपम तक संसार में भटकता रहा।

मरीचि भगवान ऋषभदेव के प्रथम उपदेश में ही उनका शिष्य बना था। मरीचि के अनेक शिष्य, जिन्होंने मरीचि का साथ दिया था, उसके जीवन में उसे छोड़ पुनः प्रभु के श्रीसंघ में साधु बन गये थे।

जैन परम्परा मरीचि को परिव्राजक सम्प्रदाय का संस्थापक मानती है। इसी कारण परिव्राजक सम्प्रदाय को श्रमणों का अंग माना गया है। प्राचीन काल में ये लोगों की वेद विरोधी विचारधारा का समर्थन करते थे।

गुणभद्र आचार्य ने मरीचि को भरत का ज्येष्ठ पुत्र माना है। परन्तु श्वेताम्बर परम्परा में मात्र पुत्र माना है।

चउपन्नमहापुरिसचरियं में मरीचि को भागवत धर्म का प्रवर्तक कहा गया है। मरीचि के अतिरिक्त उसके शिष्य सांख्यमत प्रवर्तक कपिल का वर्णन जैसा जैन ग्रंथों में आया है, वैसा भागवत और विष्णुपुराण में उपलब्ध नहीं होता है। भागवतकार ने भरत वंश की परम्परा का वर्णन करते हुए अनेक पीढ़ियों के पश्चात् उसे सम्राट् पुत्र कहा है। उसकी माता का नाम उत्कला दिया है।

जैन साहित्य में कपिल को राजपुत्र माना गया है। वैदिक-साहित्य में वह विष्णु का पाँचवाँ अवतार व कर्दम ऋषि का पुत्र है। उसे महाज्ञानवान, प्रतिभा-सम्पन्न माना गया है। भागवत गीता में श्रीकृष्ण ने उन्हें सिद्धों में सर्वश्रेष्ठ माना है।

### चतुर्थ भव—ब्रह्मदेव

चौरासी लाख पूर्व की आयु पूर्ण कर मरीचि का जीव ब्रह्मदेवलोक में दस सागरोपम की स्थिति वाला देव बना।

### पाँचवाँ भव—कौशिक

यहाँ से स्वर्ग की आयु पूर्ण कर मरीचि का जीव कोल्लाक सन्निवेश में अस्सी लाख पूर्व की आयु वाला कौशिक ब्राह्मण बना। फिर पूर्वजन्म के शुभ कर्म के परिणाम से उसने वैराग्य धारण कर परिव्राजक दीक्षा स्वीकार की। आचार्य शीलांक ने लिखा है कि कौशिक का जीव मरकर सौधर्म देवलोक में उत्कृष्ट स्थिति वाला देव बना था।

दिगम्बर परम्परा के ग्रंथों में भी ऐसा ही वर्णन है। उसका जन्म-स्थान अयोध्या कहा गया है। उसका पिता कपिल ब्राह्मण और माता काली है। उसका नाम जटिल कहा गया है। इस भव की आयु के बाद उसने विभिन्न गतियों में जन्म-मरण किया जो संख्यातीत है।

### छठा भव—पुष्यमित्त

कौशिक का जीव अपनी आयु पूर्ण करके स्थूणा (स्थानेश्वर) में पुष्यमित्त नामक ब्राह्मण हुआ। वहाँ उसकी आयु ७२ लाख पूर्व की थी। अंतिम समय में वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना।

### सातवाँ भव—सौधर्मदेव

जैनधर्म में जाति-पाँति, धर्म व लिंग का महत्त्व नहीं है, न ही देश, काल व आयु का प्रश्न है। जो भी साधना करे उसे उसकी साधना अनुसार जरूर फल मिलता है। इसी दृष्टि से पुष्यमित्त मरकर सौधर्म देवलोक में मध्यम स्थिति वाला देव बना। वहाँ उसने देवता के सुख भोगे।

### आठवाँ भव—अग्निद्योत

देवलोक की आयु पूर्ण कर वह चैत्य सन्निवेश में अग्निद्योत नाम का ब्राह्मण हुआ। उसकी आयु ७६९ लाख पूर्व की थी। वहाँ भी वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना। दिगम्बरों के उत्तरपुराण में इस भव का वर्णन नहीं मिलता है।

### नवमा भव—ईशान देवलोक

यहाँ से आयुष्य पूर्ण कर अग्निद्योत ब्राह्मण ईशान देवलोक में पैदा हुआ। वहाँ लम्बे समय तक देवलोक के सुख भोगे।

### दसवाँ भव—अग्निभूति

इस भव में उसका जन्म मन्दिर सन्निवेश में हुआ। उसका कुल ब्राह्मण था। उसकी कुल आयु ५६ लाख पूर्व थी। जीवन के अंतिम काल में वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना। पूर्वजन्म का मरीचि भव-भव में परिव्राजक बनकर साधना करता गया। साधना का फल सदैव मीठा होता है फिर साधना चाहे किसी रूप या वेष में की जाये। उत्तरपुराण में सूतिका नामक भव में अग्निभूति ब्राह्मण की पत्नी गौतमी के यहाँ अग्निसह ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न हुआ।



## ग्यारहवाँ भव—सनत्कुमार

वहाँ से आयु पूर्ण कर सनत्कुमार कल्प में मध्यम स्थिति वाला देव बना।

## बारहवाँ भव—भारद्वाज

वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर श्वेताम्बिका नगरी में भारद्वाज नाम का ब्राह्मण बना। उसकी आयु ४४ लाख पूर्व की थी। यहाँ भी वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना। उत्तरपुराण के अनुसार एक भव अग्निमित्त का और द्वितीय भव माहेन्द्रकल्प का ये दो भव और हुए। वहाँ से चलकर यह जीव शाङ्खण ब्राह्मण की पत्नी मन्दिरा के यहाँ विश्व-विश्रुत भारद्वाज-पुत्र के रूप में पैदा हुआ।

## तेरहवाँ भव

भारद्वाज वहाँ से आयु पूर्ण कर माहेन्द्र कल्प में मध्यम स्थिति वाला देव बना। यहाँ से च्यवकर उसकी आत्मा ने अनेक भव ग्रहण किये जो संख्यातीत थे।

## चौदहवाँ भव

मरीचि का जीव विभिन्न गतियों में भ्रमण करता हुआ राजगृह में स्थावर नामक ब्राह्मण हुआ। वहाँ उसकी कुल आयु चौतीस लाख पूर्व थी। जीवन के अंत में वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना।

इस तरह ६ भव परिव्राजक के माने जाते हैं। यहाँ एक बात ध्यान देने वाली है कि वह नयसार के भव में जाकर सम्यक् दर्शन का प्रचारक बना। चाहे शुरू में परिव्राजक सम्प्रदाय श्रमणों का अंग था। बाद में यह सम्प्रदाय मिथ्या आग्रहों में फँस गया। एकान्त आग्रह के कारण परिव्राजकों की साधना बाल साधना बनकर रह गई। ऐसी साधना स्वर्ग का कारण तो बन सकती है, पर मोक्ष का कारण नहीं बन सकती। सम्यक्त्व के अभाव में इस जीव को अनंत-अनंत जन्म भटकना पड़ता है। सम्यक्त्व मिलने पर संसार भ्रमण-परित्र-सीमित हो जाता है, जैसा नयसार के साथ हुआ।

## पन्द्रहवाँ भव—ब्रह्मदेवलोक

इस भव में वह जीव मध्यम देवलोक की स्थिति वाला देव हुआ। उत्तरपुराण में ब्रह्मा के स्थान पर माहेन्द्र नाम आया है। देवलोक की आयु संपूर्ण कर उसकी आत्मा ने अनेक बार अनेक भवों में जन्म लिया।

## सोलहवाँ भव—विश्वभूति

ब्रह्मलोक की आयु पूर्ण कर नयसार का जीव लम्बे समय तक जन्म-मरण के चक्र में फँसा रहा। लम्बे भव-भ्रमण के पश्चात् वह मगध की राजधानी राजगृह में युवराज विशाखभूति के पुत्र विश्वभूति के रूप में पैदा हुआ। विशाखभूति का बड़ा भाई विश्वनन्दी राजा था। उसका पुत्र था विशाखनन्दी। दोनों भाइयों में आपसी ईर्ष्या-द्वेष कूट-कूटकर भरा हुआ था। विश्वभूति यद्यपि राजा के छोटे भाई का पुत्र था पर वह बड़ा तेजस्वी, पराक्रमी था। दूसरी ओर राजा का पुत्र विशाखनन्दी कायर, भीरु और चिड़चिड़ा था। यही कारण था कि विश्वभूति अपने परिवार में सम्मान का पाल था। विश्वभूति को पुष्प-क्रीड़ा का अत्यधिक शौक था। वह अपनी रानियों के साथ उद्यान में जाता और विभिन्न फूलों की गेंद बनाकर उनसे खेलता।

इधर जब राजकुमार विशाखनन्दी, विश्वभूति के क्रीड़ा सुख की बात सुनता, तो द्वेष कर जल-भुन जाता। उसका मन करता कि वह अभी उद्यान में जाकर विश्वभूति को निकाल दे। वह अपनी माता तक के सामने इस बात के लिये चीख-पुकार करता। पर सब दिन एक समान नहीं होते। कभी-कभी पुण्यवान जीव को भी मुसीबत में फँसना पड़ता है।

एक समय विश्वभूति पुष्पकरंडक उद्यान में अपनी पत्नियों के साथ उन्मुक्त क्रीड़ा कर रहा था। महारानी की दासी उस उद्यान में पुष्प वगैरह लेने आई। उन्होंने विश्वभूति को सुख को देखा, वह भी राजकुमार की भाँति जल-भुन गई। उन्होंने जाकर रानी से कहा-“हे महारानी जी ! राज्य का सच्चा सुख तो विश्वभूति भोगता है। तुम्हारा बेटा विशाखनंदी तो बेचारा युवराज होते हुए भी दुःख भोग रहा है। उसमें हिम्मत नहीं कि वह उद्यान में जा सके।”

रानी को यह बात चोट कर गई। रानी ने राजा को फटकार लगाते हुए कहा-“आपके राज्य में कितना अन्याय है कि मेरा बेटा विशाखनंदी युवराज होते हुए भी उद्यान में नहीं जा सकता। आपका भतीजा सारा-सारा दिन अपनी रानियों के साथ उद्यान में पुष्प-क्रीड़ा करता रहता है। युवराज वह है या विश्वभूति?”

महाराज बहुत समयज्ञ थे। उन्होंने रानी का क्रोध शांत करते हुये कहा-“यह हमारी कुल मर्यादा है। जब कोई राजा या राजकुमार आदि अपने अन्तःपुर में रानियों-दासियों के साथ उद्यान में हो तो दूसरा कोई प्रवेश नहीं कर सकता।”

रानी कहाँ समझने वाली थी। रानी ने कहा-“आपकी मर्यादा किस काम की ? जब मेरा पुत्र भिखारियों की तरह घूमता रहे। कान खोलकर सुन लो, जब तक विश्वभूति को घर से नहीं निकाला जाएगा, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी।”

राजा के सामने घोर धर्म-संकट उत्पन्न हो गया। एक तो अपने परिवार की कलह, दूसरा अपने भाई के लड़के की समस्या। उसने सोचा-“एक ही राज्य में ऐसा अन्याय कैसे संभव है ?” गुणवान विश्वभूति के सामने मेरा आलसी पुत्र विशाखनंदी है। विश्वभूति हमारे राज्य की शक्ति का प्रतीक है। इन स्त्रियों का स्वभाव द्वेषमय होता है। इनको शांत करने और परिवार की कलह को समाप्त करने के लिए कोई समाधान ढूँढना पड़ेगा।”

राजा ने यह बात अपने अमात्य से की। अमात्य ने एक षड्यन्त्र रचा। उसने एक पत्र राजा को पहुँचाया। उस पत्र को पढ़ते ही राजा ने युद्ध की घोषणा कर दी। रणभेरियाँ बजने लगीं। घोषणा हुई-“पड़ोसी सामन्त पुरुषसिंह ने सीमा पर आक्रमण कर दिया है।”

विश्वभूति ने जब रणभेरियाँ सुनी। वह उद्यान में अपनी क्रीड़ा समाप्त कर बाहर निकला। योद्धा वही है, जो अपना कर्त्तव्य पहचाने। अपनी शूरवीरता को परखने का प्रमाण योद्धा युद्ध में देता है। उसने बाहर आकर शहर में प्रवेश किया। फिर राजा के पास आकर प्रार्थना की-“अचानक यह युद्ध हुआ कैसे ? किस दुश्मन की शामत आई है ?”

राजा ने मंत्री के पत्रानुसार विश्वभूति को समझाया-“पड़ोसी सीमा पर पुरुषसिंह सामन्त ने आतंक मचा रखा है। मैं उसी के साथ युद्ध करने जा रहा हूँ।” साथ में वह बनावटी पत्र भी विश्वभूति को थमा दिया, जिसमें पड़ोसी सामन्त द्वारा युद्ध घोषणा की धमकी लिखी हुई थी।

पत्र को देखकर विश्वभूति का क्षत्रियत्व जाग उठा। उसने प्रार्थना की-“महाराज ! मेरे होते हुए आप युद्ध में जायें, यह आपने सोचा कैसे ? यह बात सुनकर मेरा सिर शर्म से झुक गया है। आप आज्ञा दीजिये, मैं उस सामन्त का शीश कुचल दूँ ?”

राजा तो यही चाहता था, उसने स्वीकृति प्रदान कर दी। विश्वभूति सेना को सुसज्जित कर चल पड़ा। पर पुरुषसिंह ने कोई धमकी नहीं दी थी, वह लड़ना भी नहीं चाहता था। जब उसे पता चला कि विश्वभूति सेना सहित आ रहा है, तो वह उपहार लेकर सामने आया। बहुत से हाथी, घोड़े, हीरे-मोती आदि राजा योग्य उपहार समर्पित कर चलता बना। विश्वभूति ने बिना लड़े पुरुषसिंह को उसकी जिम्मेदारियों के लिए जरूरी निर्देश दिये, ताकि सीमा सुरक्षित रह सके।

विश्वभूति युद्ध मैदान से वापस आया। वह पुनः राजकीय उद्यान के लिए सपरिवार जाने लगा। दरबान ने प्रार्थना की—“महाराज ! अब आप रुकिये, क्योंकि युवराज विशाखनंदी उद्यान में परिवार सहित जल-क्रीड़ा कर रहा है।”

विश्वभूति रुक गया। उसे गहरा आघात लगा। वह सोचने लगा—“मैं जिनके लिए प्राण न्योछावर करने को तैयार हूँ, वे मेरी जान के प्यासे हैं। यह कपटयुक्त व्यवहार मुझे उद्यान से निकालने के लिए किया गया।” उद्यान में ही क्रोध उमड़ आया। क्रोधावेग में वहीं पर कपित्थ (कैथ) के वृक्ष पर पाँव से प्रहार किया। एक प्रहार से वृक्ष के सारे फल धरती पर गिर पड़े। विश्वभूति ने गुस्से में आकर द्वारपालों से कहा—“जैसे मैं एक झटके से इन फलों को धरती पर गिरा सकता हूँ, वैसे एक ही बार में कितनों के प्राण मैं ले सकता हूँ। पर राजा के गौरव के कारण मैं ऐसा नहीं कर रहा। उद्यान में ही जाना था तो मुझसे पूछकर जा सकता था। मैं युवराज को इंकार नहीं करता। पर यह धोखा करने की क्या जरूरत थी? अब जाओ, अपने राजकुमार विशाखनंदी से कह दो, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।”

मुनि विश्वभूति ने गुस्से में ये बातें कह तो दी, पर यही ग्लानि शीघ्र ही वैराग्य में बदल गई। उसने एक ही झटके में घर-परिवार का मोह छोड़ा और आर्य संभूति से संयम ग्रहण कर लिया। कठोर साधना आदि दीर्घ तपस्या से तपोजन्य उपलब्धियाँ प्राप्त कीं।

एक बार की बात है, मुनि विश्वभूति अनंगार मथुरा में भ्रमण कर रहे थे। इधर मथुरा में विशाखनंदी अपनी शादी के लिए आया हुआ था। तप के कारण विश्वभूति का शरीर जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। उसे पहचानना मुश्किल था। मुनि विश्वभूति तपस्या के पारणे हेतु भिक्षा के लिए घूम रहे थे। युवराज विशाखनंदी के सेवकों ने उन्हें पहचान लिया और युवराज विशाखनंदी को सूचना दी। विशाखनंदी सामने आया। उसने देखा एक महान् योद्धा तप के कारण जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। उसका क्रोध शांत नहीं हुआ था। वह मुनि को घूरकर देख रहा था।

अचानक एक सद्यःप्रसूता गाय मुनि को टक्कर देकर चलती बनी। मुनि की इस दुर्दशा से वह पापी विशाखनंदी खूब प्रसन्न हुआ। उसने व्यंग्य करते हुए कहा—“विश्वभूति ! तुम्हारा वह पराक्रम जो कपित्थ को तोड़ते समय देखा गया था, कहाँ गायब है?”

राजकुमार के व्यंग्यमय वाक्य मुनि की क्रोधाग्नि का कारण बने। उन्होंने आवेश में आकर कहा—“दुष्ट ! मैं साधु बन गया हूँ, तो भी तू मेरा मजाक कर रहा है। मैंने जब संसार से रिश्ता तोड़ दिया है, तो मेरी साधना का मजाक करने का तुझे कोई अधिकार नहीं। तू मेरी क्षमा व तपस्या को मेरी दुर्बलता समझ रहा है। पर तुझ अज्ञानी को साधु भाषा में समझाना असम्भव है।”

मुनि का क्रोध अपने अंतिम आवेश में था। उन्होंने उसी समय उस गाय को दोनों सींगों से पकड़कर चक्कर की तरह घुमाकर आकाश में उछाल दिया। फिर उन्होंने निदान करते हुए कहा—“क्या दुर्बल सिंह शृगाल से गया-गुजरा होता है? यदि मेरे जप, तप, संयम व ब्रह्मचर्य में शक्ति हो, तो अगले जन्म में असीमित शक्तिशाली बनूँ।”

इस प्रकार बिना आलोचना किये और निदान के कारण मुनि कालधर्म को प्राप्त हुए।

यहाँ आश्चर्य इस बात का है कि दिग्म्बर आचार्य गुणभद्र ने इस बात का वर्णन श्रेयांस तीर्थकर के पूर्वभव बताने में किया है। वहाँ सभी प्रकरण एक समान नहीं है, वहाँ विश्वभूति के स्थान पर विश्वनंदी नाम आया है। विश्वनंदी के स्थान पर विश्वभूति। परिवार के नामों में अंतर है।

उत्तरपुराण में आया है कि विश्वभूति दीक्षा लेकर राज्य अपने छोटे भाई को दे देते हैं पर यहाँ कपित्थ वृक्ष व कपट युद्ध का वर्णन नहीं है। यहाँ दोनों भाइयों का उद्यान में युद्ध दिखाया है।

उत्तरपुराण के अनुसार विशाखनदी शादी के लिए नहीं जाता, वह तो राज्य-च्युत हो जाता है और एक राजा का दूत बनकर मथुरा जाता है। वहाँ वह एक वैश्या के मकान में बैठकर यह नजारा देखता है कि उसका भाई मुनि बना घूम रहा है।

जैनधर्म में अध्यात्म शक्ति व लब्धि का प्रयोग सांसारिक कामों के लिए वर्जित है। निदान करने पर उसका प्रायश्चित्त व आलोचना कर ली जाये तो जीवन विशुद्ध बन जाता है। पर वैर की समाप्ति तत्काल न हो तो वैर लम्बे समय तक चलता रहता है।

## सत्तरहवाँ भव

वहाँ से आयु पूर्ण कर महाशुक्र कल्प में उत्कृष्ट स्थिति वाला देव हुआ।

## अठाहरवाँ भव—त्रिपृष्ठ वासुदेव

देवलोक से आयुष्य पूर्ण कर पोतनपुर नगर के प्रजापति राजा व रानी मुगावती के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। माता ने जन्म से पूर्व सात स्वप्न देखे। जन्म के समय शिशु के पृष्ठ भाग में तीन पसलियाँ होने के कारण उसका नाम त्रिपृष्ठ रखा गया। राजा प्रजापति प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव के माण्डलिक राजा थे।

राजा प्रतिवासुदेव ने किसी ज्योतिषी से पूछा—‘मेरी मृत्यु कैसे होगी?’

ज्योतिषी ने कहा—‘राजन् ! जो आपके दूत चण्डमेघ को पीटेगा, तुङ्गगिरि पर रहे केसरी सिंह को मारेगा, उसी के हाथों आपकी मृत्यु होगी।’

यह सुनकर अश्वग्रीव भयभीत हुआ। उसे अपने दूतों से ज्ञात हुआ कि प्रजापति राजा के बड़े पुत्र बहुत बलशाली हैं। राजा ने परीक्षा करने हेतु चण्डमेघ दूत को उनके पास भेजा।

राजा प्रजापति उस समय अपनी सभा में बैठा था। संगीत की झंकार से राजसभा का वातावरण इन्द्रसभा का दृश्य प्रस्तुत कर रहा था। सभी सभासद व राजा संगीत का आनन्द लूट रहे थे। ठीक उसी समय चण्डमेघ दूत ने बिना सूचना दिये धृष्टतापूर्वक राजसभा में प्रवेश किया। राजा ने उस दूत का स्वागत किया। संगीत और नृत्य का कार्यक्रम कुछ समय के लिए रोककर दूत का संदेश सुना। दरबार में बैठे त्रिपृष्ठ कुमार को रंग में भंग डालने की घटना से गहरा आघात लगा। उन्होंने अपने सेवकों को यह आदेश दिया कि जब दूत यहाँ से रवाना हो, तो हमें सूचित करना।

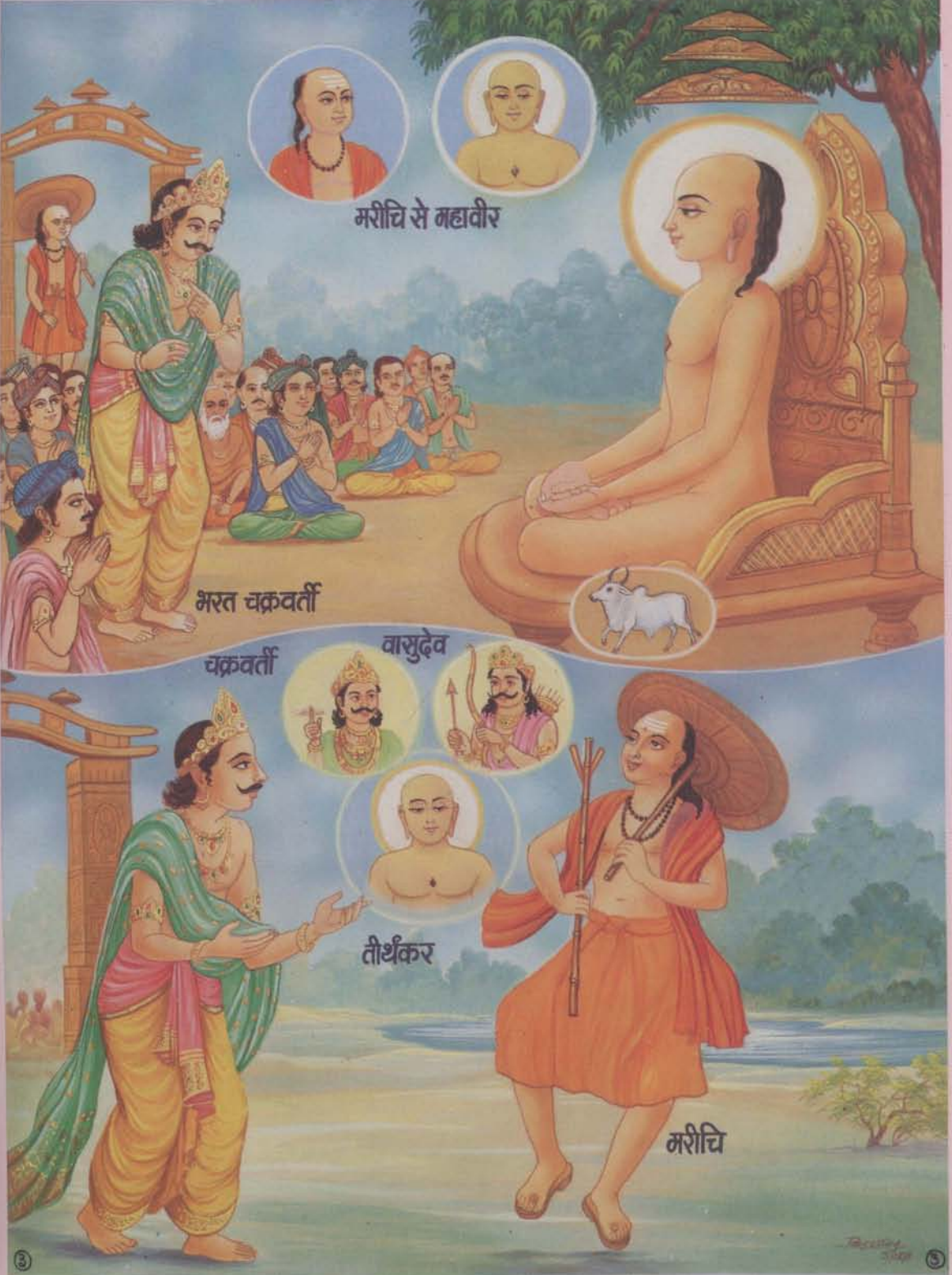
राजा ने प्रतिवासुदेव का संदेश सुनकर दूत को विदा किया।

उधर दूत बाहर आया। उसने शहर छोड़ा। जंगल में दोनों कुमारों ने दूत को खूब पीटा। दूत के बाकी साथी भाग गये।

जब प्रजापति को अपने पुत्रों द्वारा दूत के अपमान का पता चला, तो वह बहुत धबराया। बहुत से उपहार लेकर वह राजा अश्वग्रीव के दरबार में पहुँचा, पर तब तक सारा खेल बिगड़ चुका था। राजा अश्वग्रीव ने समझ लिया कि मेरा काल पैदा हो गया है। इन दोनों राजकुमारों को मरवाने में ही मेरा हित है।

उसने एक योजना बनाई। अश्वग्रीव ने तुङ्गग्रीव क्षेत्र में धान की खेती करवाई और फिर प्रजापति को आदेश भेजा—‘यहाँ एक क्रूर सिंह ने आतंक मचा रखा है। उसने रक्षक तक को मार दिया है। पूरा ग्राम भयग्रस्त है। अतः आप जाकर ग्रामीणों की रक्षा कीजिये।’

प्रजापति जब शालि क्षेत्र में जाने लगा तो पुत्रों ने विनय की—‘हमारे होते आप जंगल में जायें, यह अनुचित है। आपके इस छोटे से कार्य को हम पूरा करेंगे।’



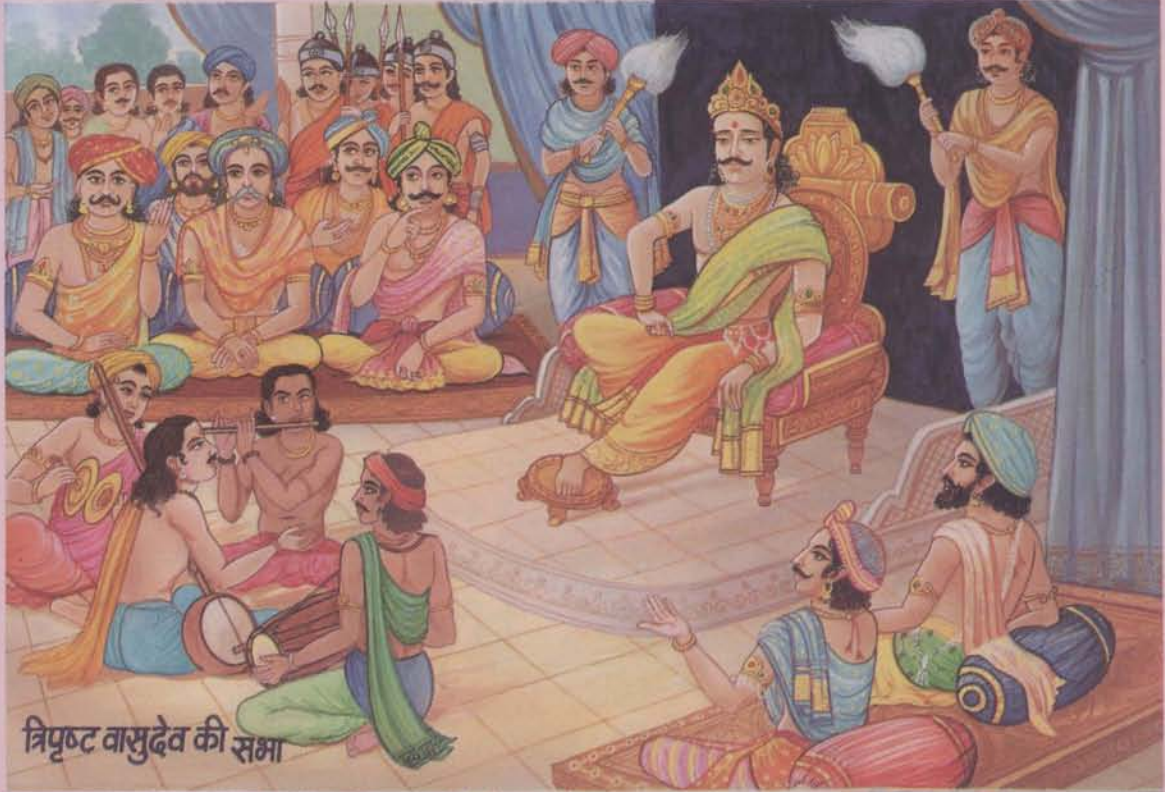
भगवान ऋषभ देव द्वारा मरीचि का भविष्य कथन तथा भरत चक्रवर्ती द्वारा भविष्य बताने पर मरीचि अहंकार में उछलना।



१८ वाँ भव  
त्रिपृष्ठ वासुदेव



त्रिपृष्ठ वासुदेव द्वारा सिंह का विनाश।



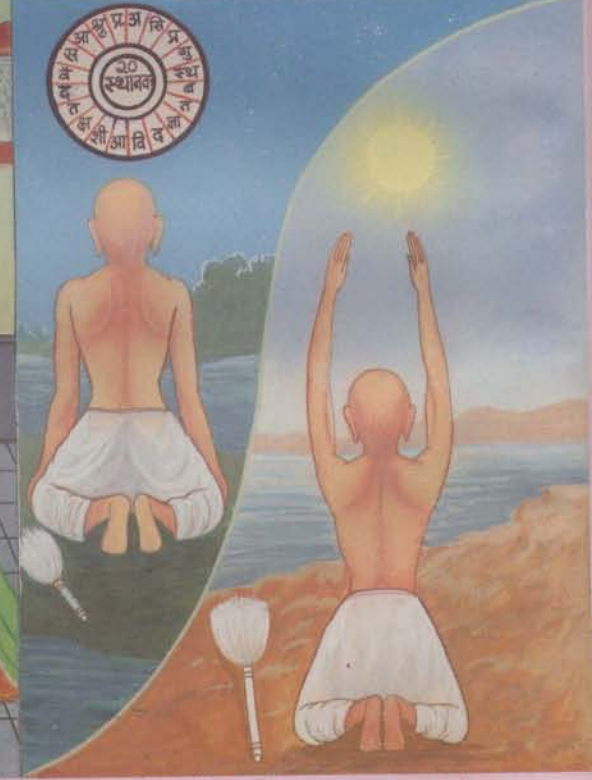
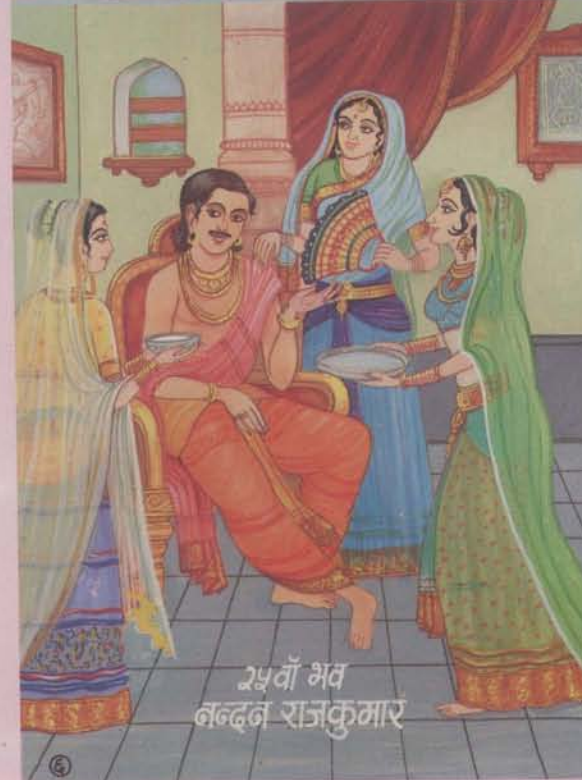
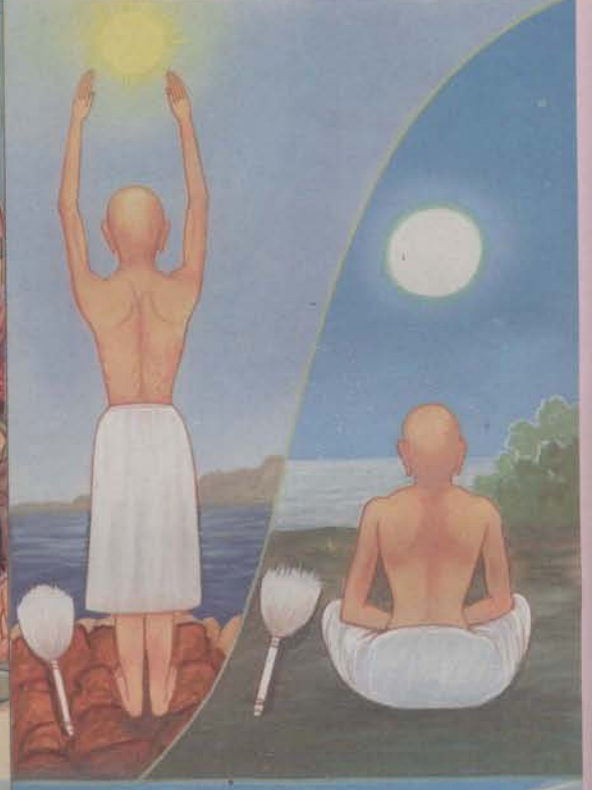
त्रिपृष्ठ वासुदेव की सभा



वैर का बदला

शय्या पालक को दण्ड

त्रिपृष्ठ वासुदेव की सभा में संगीत का कार्यक्रम तथा शय्यापालक के कानों में खौलता शीशा डालना।



प्रियमित्र चक्रवर्ती के भव में राज्य वैभव का भोग कर बाद में तपस्या। नन्दन के भव में बीस स्थानक की आराधना।



प्रजापति अपने पुत्रों को भेजना नहीं चाहता था। पर दोनों पुत्रों ने पिता से जाने की अनुमति माँगी। बहुत आग्रह करने पर पिता ने बहुत सारे शस्त्र व सैनिकों के साथ पुत्रों को रवाना किया।

वे धान के खेतों में पहुँचे। वहाँ खेत-रक्षकों से पूछा—“राजा यहाँ पर किस प्रकार और कितने समय तक रहता है?”

खेत-रक्षकों ने कहा—“जब तक धान पक नहीं जाता, राजा चतुरंगिनी सेना के साथ इस क्षेत्र का घेरा डालकर रक्षा करता है।”

त्रिपृष्ठ ने पूछा—“मुझे उस सिंह की गुफा बताओ, जहाँ आतंक मचाने वाला वह सिंह रहता है।”

ग्रामवासियों ने न चाहते हुए त्रिपृष्ठ को गुफा का रास्ता बता दिया। रथ पर सवार सशस्त्र त्रिपृष्ठ कुमार उस गुफा के समीप पहुँचा।

सिंह अँगड़ाई लेकर उठा। उसने सिंह-गर्जन किया। त्रिपृष्ठ ने विचार किया—“सिंह निहत्था है, मुझे भी शस्त्र रखकर सिंह का मुकाबला करना चाहिए।” उसने अपने शस्त्र फेंक दिये, रथ भी छोड़ दिया।

सिंह ने त्रिपृष्ठ को देखा। त्रिपृष्ठ ने सिंह को। सिंह त्रिपृष्ठ कुमार पर क्रोध पड़ा। त्रिपृष्ठ कुमार गुफा में प्रवेश कर चुका था। उसने सारथी व रथ बाहर खड़ा कर दिया था क्योंकि उसने सोचा था कि जब सिंह अस्त्र, शस्त्र व रथरहित है, तो मैं भी कायरता नहीं दिखाऊँगा। अकेले कुमार ने सिंह-गर्जना का अभूतपूर्व शौर्य से उत्तर दिया। उसने सिंह को जबड़ों से पकड़ा और पुराने वस्त्र की तरह चीर डाला। सिंह अब हार चुका था। उसके प्राण अटके हुए थे। पास में सारथी ने सिंह की इस दुर्दशा को देखा फिर सान्त्वना भरे स्वर में कहा—“हे वन के स्वामी ! तुम पशुओं में सिंह हो, मेरा स्वामी मनुष्य में सिंह है। दो सिंहों की लड़ाई थी। किसी की विजय तो होनी थी। सो तू घबरा मत। यह तो जन्म-मरण का चक्र है।” सिंह के प्रति कहे सारथी के शब्दों ने सिंह को सचमुच सान्त्वना प्रदान की, जिससे वह शान्त भाव से प्राण त्याग सका।

त्रिपृष्ठ कुमार सिंह-चर्म को लेकर जब गाँव आये, सारा गाँव उनके अभूतपूर्व साहस से धन्य-धन्य कर उठा। उन्होंने अपने कृषकों से कहा—“उस घोटक ग्रीव से कह देना—अब निश्चिन्त रहे।”

जब अश्वग्रीव को कुमार की शौर्य-गाथा का पता चला, तो वह ईर्ष्या और भय की आग में जल उठा। उसने एक षड्यन्त्र रचा। उसने दोनों राजकुमारों को अपने यहाँ राजधानी में बुलाया। दोनों वहाँ नहीं गये।

इस बात से जल-भुनकर उस अश्वग्रीव ने पोटनपुर पर चढ़ाई कर दी। त्रिपृष्ठ कुमार भी सैन्य-बल के साथ सामने आया। उसे नरसंहार अच्छा न लगा। “हमारी आपसी दुश्मनी में इन बेचारे सैनिकों का क्या दोष? अगर युद्ध करना है तो हम दोनों करेंगे।”—विश्वभूति ने यह प्रस्ताव अश्वग्रीव के सामने रखा।

अश्वग्रीव ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दोनों में युद्ध हुआ। सभी शस्त्र-अस्त्र समाप्त हो गये, तो राजा ने चक्ररत्न फेंका। त्रिपृष्ठ ने चक्ररत्न पकड़ लिया। उसी के चक्ररत्न से राजा का सिर छेदन कर डाला। तभी दिव्य वाणी से नभमण्डल गूँज उठा—“त्रिपृष्ठ नामक प्रथम वासुदेव प्रकट हो गया है।”

यहाँ दिगम्बर उत्तरपुराण में विशाखनन्दी का जीव अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव कहा गया है वहाँ सिंह का प्रसंग नहीं है। समय आने पर अश्वग्रीव को नष्ट कर वह त्रिपृष्ठ वासुदेव बना। त्रिपृष्ठ जहाँ चोखा था, वहाँ क्रोधी भी था। उसके क्रोध के कारण उसे भगवान महावीर के भव में तपस्या काल में कई उपसर्ग आये। उदाहरण के लिए हम यहाँ एक प्रसंग दे रहे हैं—

त्रिपृष्ठ को संगीत बहुत पसंद था। एक शाम उसके यह संगीतकार गाना गा रहे थे। संगीत मधुर था। त्रिपृष्ठ के कानों को संगीत अच्छा लगा। उसने अपने सेवकों से कहा—“जब मैं सो जाऊँ, संगीत बन्द करवा देना।”

शय्यापालक ने आज्ञा को ग्रहण किया। कुछ समय के बाद सम्राट की आँख लग गई। सम्राट के सेवक संगीत की मस्ती में डूब गये। सुबह हो चुकी थी। राजा त्रिपृष्ठ की आँख खुली। संगीत अब भी चल रहा था। राजा ने शय्यापालक से संगीत बन्द न करवाने का कारण जानना चाहा। सेवकों ने कहा—“संगीत इतना अच्छा था कि हम इसे छोड़ नहीं सकते थे। इस कारण संगीत चलता रहा।”

राजा को सेवकों की बात पर क्रोध आ गया। उसने आज्ञा की अवहेलना करने वाले शय्यापालक के कानों में पिघला शीशा उँडेल दिया। बेचारा शय्यापालक भयंकर वेदना से तड़फने लगा। उसके प्राणों का अन्त हो गया। त्रिपृष्ठ वासुदेव ने सत्ता के मद में बहुत से क्रूर कृत्य किये जिसके कारण निकाचित कर्मों का बन्धन किया। महारम्भ और महापरिग्रह के कारण उसने ८४ लाख पूर्व वर्ष तक राज्य किया।

कई आचार्यों की मान्यता है कि इसी भव में नयसार के जीव का सम्यक्त्व नष्ट हुआ। वह मरकर कुगति को प्राप्त हुआ।

### उन्नीसवाँ भव—सातवीं नरक

त्रिपृष्ठ वासुदेव का जीव आयुष्य पूर्ण कर सातवें तमस्तमा नरक के अप्रतिष्ठान नरकावास में नैरयिक रूप में उत्पन्न हुआ।

### बीसवाँ भव

वहाँ से मरकर वह केसरी सिंह बना। यह भव दिगम्बर ग्रन्थ उत्तरपुराण में उपलब्ध होता है। वह भयंकर सिंह किसी समय हरिण को पकड़कर खा रहा था। उस समय एक चारण लब्धिधारी मुनिराज पधारे। उन्होंने उच्च स्वर में उस जीव को धर्मोपदेश सुनाया और उसके त्रिपृष्ठ के भव के पाप गिनाये, जिसके कारण वह सम्यक्त्व से भ्रष्ट हुआ था। जिसके परिणामस्वरूप उसे सिंह का जन्म मिला। मुनि की उद्घोषणा के कारण उस जीव को जातिस्मरण ज्ञान हो गया।

उत्तरपुराण का कर्ता कहता है—मुनिराज ने उसे पुरुषवा आदि समस्त भवों का बोध करवाया और कहा—“मैंने यह भव—विवरण श्रीधर तीर्थकर के मुख से सुना है, तू दस भव पूर्ण कर तीर्थकर बनेगा।”

सिंह के जीव ने मुनि से तत्त्वचर्चा सुन श्रावक व्रत ग्रहण किये। वह मरकर सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु देव बना। दो सागर की आयु भोगकर वह धातकीखण्ड के विदेह क्षेत्र में राजा कनकपुण्ड्र और कनकमाला का पुत्र हुआ। एक बार वह अपनी पत्नी कनकवती के साथ महागिरि पर गया, वहाँ उसे प्रियमित्त मुनि के दर्शन—उपदेश का सौभाग्य मिला। उसने संयम ग्रहण कर लिया और सातवें स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। वहाँ से देवलोक की आयु पूर्ण कर जम्बूद्वीप के कौशल देश की साकेत नगरी में राजा ब्रजसेन और रानी शीलवती के यहाँ हरिषेण राजकुमार बना। यहाँ भी उसकी आत्मा जागृत थी। उसने मुनि श्रुतसागर से दीक्षा ग्रहण की। आयु पूर्ण कर महाशुक्र देवलोक में १६ सागरोपम आयु वाला देव बना।

इन भवों की चर्चा श्वेताम्बर ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है।

### इक्कीसवाँ भव—चौथी नरक

श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार सिंह का जीव मरकर चौथी नरक में गया। नरक से निकलने से पश्चात् उसने अनेक भव में तिर्यच और मनुष्य के रूप में जन्म लिया। इन भवों की गिनती संख्या से बाहर है।

## बाईसवाँ भव—मनुष्य का

सभी श्वेताम्बर ग्रन्थों में बाईसवाँ भव मनुष्य का है पर इन ग्रन्थों में नाम, आयुष्य, जीवन का प्रसंग नहीं मिलता है। “महावीरचरियं” में गुणचन्द्र ने इतना अवश्य बताया है कि इसी भव में तप-जप की साधना कर इस जीव ने चक्रवर्ती के योग्य पुण्य अर्जित किया। कल्पसूत्र में भी इस भव का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। आचार्य विजयधर्मसूरि ने इस भव में पिता का नाम प्रियमित्र व माता का नाम विमलाय बताया है। स्वयं का नाम विमल कहा गया है। विमल, संयम ग्रहण कर तप करता है। पर आचार्य जी ने यह प्रमाण कहाँ से लिया इसका उल्लेख नहीं किया है।

## तेईसवाँ भव—प्रियमित्र चक्रवर्ती

इस भव की आयु पूर्ण कर नयसार का जीव महाविदेह क्षेत्र की मूका नगरी में धनंजय राजा की पत्नी रानी धारिणी के यहाँ पैदा हुआ। उसके यहाँ चक्ररत्न पैदा होने से उसने संसार के राजाओं को अपने अधीन किया। वह प्रियमित्र चक्रवर्ती बना। चक्रवर्ती का वैभव पाकर भी उसका मन वैराग्य में लगा हुआ था। वह आर्हत वाणी का उपासक था।

उसका सौभाग्य था कि उसकी नगरी में पोट्टिलाचार्य पधारे। उसने प्रवचन सुना। दीक्षा ग्रहण की। एक करोड़ वर्ष तक संयम-आराधना की।

समवायांगसूत्र में इस भव में उसका नाम पोट्टिल था। उसने पोट्टिलाचार्य से दीक्षा ग्रहण की। नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरि ने उन्हें राजपुत्र माना है। समवायांग के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में इस भव के जीव का नाम प्रियमित्र है।

दिगम्बर आचार्य गुणभद्र ने मूका नगरी के स्थान पर पुण्डरीकिणी नाम दिया है और माता-पिता का नाम मनोरमा और सुमित्र बताया है। पोट्टिलाचार्य के स्थान पर भगवान क्षेमकर के पास प्रियमित्र एक हजार राजाओं के साथ संयम ग्रहण करता है।

## चौबीसवाँ भव—महाशुक्र

यहाँ से आयुष्य पूर्ण कर यह जीव महाशुक्र कल्प के सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ। उत्तरपुराण व समवायांगसूत्र के विमान का नाम सहस्रार आया है। यहाँ आयु किसी ग्रन्थ में १७ सागरोपम है और किसी में १८ सागरोपम है।

## पच्चीसवाँ भव—नन्दन राजकुमार

यही भव था जिस भव में भगवान महावीर ने तीर्थंकर योग्य कर्म का उपार्जन किया। वह देवलोक की आयु पूर्ण कर क्षिप्रा नगरी के जितशत्रु सम्राट् की भद्रा महारानी की कुक्षि से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम नन्दन रखा गया।

बचपन से राजकुमार वैराग्य मनोवृत्ति का था। वह दीन-दुःखियों का सहारा था। श्रमणों का सहज भक्त था। वह गुणों का भण्डार था। उसकी आयु २५ लाख वर्ष थी। एक लाख वर्ष तक उसने निरन्तर साधु-जीवन ग्रहण किया। उसके गुरु का नाम यहाँ भी पोट्टिलाचार्य था। समस्त एक लाख वर्ष के साधु-जीवन में उसने ११ लाख, ६० हजार मासखमण का तप कर कर्मों को खपाया। सेवा, स्वाध्याय व तप की त्रिवेणी उसके अन्दर बहती थी।

इसी जन्म में उसने तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन कर लिया। दिगम्बर परम्परा अनुसार महावीर के जीव ने इस भव में तीर्थंकर गोत्र के १६ बोल पूर्ण किये व श्वेताम्बर परम्परा में २० बोल, ऐसा वर्णन प्राप्त होता है। माता का नाम वीरमती तथा पिता का नाम नन्दिवर्धन है। उनका अपना नाम नन्द था। नन्दन मुनि के जीव ने इसी भव में एक मास की संल्लेखना धारण की।

## छब्बीसवाँ भव—प्राणत देवलोक में

यहाँ से आयुष्य पूर्ण कर वह प्राणत देवलोक में पुष्पोत्तरावतंसक विमान में बीस सागर की स्थिति वाला देव हुआ। उत्तरपुराण के अनुसार अच्युत स्वर्ग में पुष्पोत्तर विमान में श्रेष्ठ इन्द्र बना जहाँ उसकी आयु २२ सागरोपम थी।

## सत्ताईसवाँ भव—ऋषभदत्त ब्राह्मण के पुत्र रूप में

प्रायः लोग इसे भव नहीं गिनते। दिगम्बर परम्परा तो इसे मानती ही नहीं है।

नयसार से महावीर तक की यात्रा पूर्ण हो चुकी थी। श्वेताम्बर आगमों में इस बात का कई स्थलों पर स्पष्ट वर्णन उपलब्ध होता है। आचारांग, भगवती, कल्पसूत्र, मथुरा की प्राचीन मूर्तियों में इस भव का वर्णन है। बाद में हुए हरचारित्र लेखक ने इसका वर्णन किया है। श्वेताम्बर परम्परा में यह घटना अच्छेरा (अचम्भा) मानी जाती है। हम कल्पसूत्र के आधार पर इसका वर्णन करेंगे।

भगवान महावीर का जीव ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थ मास, अष्टम पक्ष, आषाढ़ षष्ठी के दिन हस्तोत्तर नक्षत्र का योग आ जाने पर प्राणत देवलोक के दसवें स्वर्ग के पुष्पत्रोत्तर प्रवर पुण्डरिक महाविमान से बीस सागर की आयु पूर्ण कर च्युत हुआ।

उसका जन्म जम्बूद्वीप के दक्षिण भरत क्षेत्र में स्थित ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में प्रमुख वैदिक शास्त्रों के ज्ञाता कर्मकाण्डी कोडाल गोत्रीय ब्राह्मण ऋषभदेव व जालंधर गोत्रीय ब्राह्मणी देवानन्दा के यहाँ हुआ। प्रभु के अवतरण से पूर्व देवानन्दा ने तीर्थकर योग्य १६ स्वप्न या १४ स्वप्न देखे। यह जीव गर्भ में तीन ज्ञान का धारक था।

पिता ने स्वप्न के आधार पर बच्चे की भविष्यवाणी की—“बालक सुन्दर होगा। बड़ा होकर वेद, इतिहास, निघण्टु, गणितशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, ब्राह्मण ग्रन्थ, परिव्राजक शास्त्रों में पारंगत होगा।”

स्वप्न का फल सुन माता प्रसन्नता से उछल उठी। पर देवानन्दा का यह सुख क्षण-भंगुर था। जब देवराज इन्द्र को यह सूचना मिली कि तीर्थकर का जीव ब्राह्मणी देवानन्दा के यहाँ पल रहा है तो देव शक्रेन्द्र सोचने लगा—

तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि शूद्र, अधम, तुच्छ, अल्प कौटुम्बिक, निर्धन, कृपण, भिक्षु या ब्राह्मण कुल में उत्पन्न नहीं होते। वे तो राजन्य कुल में ज्ञात, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, हरिवंश में अवतरित होते हैं।

शक्रेन्द्र ने हरिणैगमेषी देव को बुलाया। गर्भ-परिवर्तन का आदेश दिया। यह सब क्यों घटित हुआ? एक छोटे से अभिमान के कारण कर्मबन्ध का फल था, तो नयसार के जीव ने राजकुमार मारीचि के भव में बाँधा था। कर्मफल से न भगवान (महावीर) बच सकता है और न कोई जीव। इसी अहं के कारण उस जीव को ८२ रात्रि ब्राह्मणी के गर्भ में रहना पड़ा। हरिणैगमेषी देव ने दोनों माताओं को ८३वीं रात्रि में अवसर्पिणी निद्रा दी। गर्भ-परिवर्तन कर दिया।

तीर्थकर महावीर का जीव क्षत्रियकुण्ड के नरेश राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला के गर्भ में स्थापित कर दिया गया। त्रिशला का गर्भ देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में स्थापित कर दिया गया। गर्भ के समय प्रभु तीन ज्ञान के धारक होने के कारण यह जानते थे।

आचार्य भद्रबाहु ने कल्पसूत्र में इस घटना का उल्लेख किया है—“संहरण से पूर्व यह होने वाला है, उन्हें ज्ञात था किन्तु ऐसा हो रहा है इस बात को वह नहीं जानते थे। संहरण के पश्चात् भी उन्हें ज्ञात था कि ऐसा हो चुका है, संहरण हो रहा है यह उन्हें ज्ञात नहीं था। पर दोनों माताओं को या किसी अन्य प्राणियों को इस घटना का पता नहीं था, क्योंकि देवों ने यह कार्य बहुत ही सूक्ष्म समय में कर डाला।”

इस प्रकार नयसार के जीव को महावीर बनने में जन्म से पूर्व कई जन्मों में कितना संघर्ष करना पड़ा, इन भवों की कहानी इसी ओर संकेत करती है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि जैन परम्परा ने कहीं भी महावीर को न अवतार माना है, न स्वर्ग से सीधा आया निष्कलंक जीव। उनको भी स्वयं कर्मफल भोगना पड़ा, वह भी तीर्थकर के भव में। जैन इतिहास में ऐसी घटना पहले कभी नहीं हुई थी। सो इस घटना को आश्चर्यजनक माना गया। जैनदर्शन की एक बात ध्यान देने योग्य है कि कर्मफल में भगवान व इन्सान एक स्तर पर है। हम आगे देखेंगे कि कर्म के फल से कोई नहीं बच सका है।

## इन्द्र द्वारा प्रभु की वन्दना

कल्पसूत्र के अनुसार जब इन्द्र को भगवान महावीर के देवानन्दा की कुक्षि में आगमन की सूचना मिली। उन्होंने अवधिज्ञान से देखा कि चरम तीर्थंकर का जन्म हो चुका है। उसको अभूतपूर्व प्रसन्नता हुई। वह अपने सिंहासन से नीचे उतरे। अपने भिन्न-भिन्न रत्नों द्वारा जड़ित पादुका उतारीं। फर्श पर बैठे। दुपट्टे को कंधे पर डालकर हथेलियों की अंजली बाँधकर वह इन्द्रदेव सात-आठ कदम आगे बढ़े। बायें घुटने को ऊँचा कर दाहिने घुटने को धरती पर टिकाकर तीन बार मस्तक से लगाया। फिर सीधे बैठ गए। तब दोनों हाथों को इस प्रकार समेटा कि कड़े और पहुँचे आदि आभूषण स्थिर व ध्वनिरहित हो गये। दसों नाखून परस्पर जुड़ गये। इस प्रकार दोनों हथेलियों को मिलाया। करबद्ध होकर उन हाथों को मस्तक से लगाकर भगवान की इस प्रकार स्तुति की--

“नमस्कार हो उन्हें जो अरिहंत हैं, भगवंत हैं, आदिपुरुष हैं, तीर्थंकर हैं, स्वयंबुद्ध हैं, पुरुषोत्तम हैं, पुरुषसिंह हैं, पुरुषों में कमल की तरह हैं, पुरुषों में गंधहरित की तरह श्रेष्ठ हैं।”

“नमस्कार हो उन्हें जो तीन लोकों में उत्तम हैं, लोकनायक हैं, लोकहितकारी हैं, लोकदीपक हैं, लोकप्रकाशक हैं, संसार के जीवों को अभयदान देने वाले हैं, ज्ञाननेत्र देने वाले हैं, मार्गदर्शक हैं, शरणदायक हैं, जीवनदायक हैं, बोध देने वाले हैं, धर्म देने वाले हैं, धर्म की देशना देने वाले हैं, धर्मनायक हैं, धर्मसारथी हैं।”

“नमस्कार हो उन्हें जो चार घातिया कर्मों के संहारक धर्म चक्रवर्ती हैं, भव समुद्र में द्वीप के समान हैं, प्राणदायक हैं, शरणदायक हैं, अवबोध और अवलम्ब देने वाले हैं, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान व दर्शन के धारक हैं, छायावस्था से रहित हैं, जिन हैं, जिननायक हैं, पार उतर चुके हैं, तारक हैं, बुद्ध हैं, बोधदाता हैं, मुक्त हैं, मुक्तिदाता हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, शिवरूप हैं, अचल हैं, रोगरहित हैं, अनन्त हैं, अक्षय हैं, अपुनरावृत्तिरूप सिद्धगति नाम स्थान पर पहुँचे हुए हैं, अव्याबाध हैं। ऐसे जिनों को मेरा नमस्कार हो।”

“पूर्व में हुए तीर्थंकरों द्वारा कथित और पूर्व वर्णित सभी गुणों के धारक, सिद्धगति को प्राप्त करने की अभिलाषा करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, अन्तिम तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर को मेरा नमस्कार है। ‘यहाँ स्वर्ग में बैठा हुआ मैं देवानन्दा की कोख में पल रहे भगवान को वन्दन करता हूँ। प्रभु मेरा वन्दन स्वीकार करें’ यह कहकर इन्द्र प्रभु को वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं और तब अपने सिंहासन के पूर्व की ओर मुख करके बैठते हैं।”

शक्रेन्द्र द्वारा की गई स्तुति में तीर्थंकर के बारे में जैनधर्म-दर्शन की मान्यता व श्रद्धा तो व्यक्त होती ही है साथ में शक्रेन्द्र ने यह भविष्यवाणी भी की कि प्रभु महावीर पूर्व में हुए तीर्थंकरों के धर्म को बढ़ाने के लिए पैदा हुए हैं। जिन तीर्थंकरों के धर्म को जनता भूल चुकी थी।

धर्म के नाम पर बेजुबान पशुओं की गर्दन पर आरे चलते थे। नरमेध, अश्वमेध आदि यज्ञों में हजारों पशुओं की बलियों का विधान था। इस व्यवस्था में पशुधन धर्म के नाम पर समाप्त हो रहा था। यह व्यवस्था मनुस्मृति, दूसरे धर्मशास्त्र, बाल्मीकि रामायण में देखी जा सकती है।

शक्रेन्द्र ने इस अज्ञान को मिटाने वाले जीव को नमस्कार किया है। प्रभु महावीर का जीवन क्रान्तिकारी जीवन था, ऐसा जीवन संसार में कम उपलब्ध है। यह क्रान्ति अहिंसा द्वारा समाज-व्यवस्था बदलने की थी, इसीलिए वह महावीर कहलाये।

१. (क) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ३, पृष्ठ ७१

(ख) प्राकृत साहित्य का इतिहास

२. भगवान महावीर : एक अनुशीलन, पृष्ठ १६८ (आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म.)

३. आवश्यक निर्युक्ति

## भगवान महावीरकालीन परिस्थितियाँ

आज से २६०० वर्ष पूर्व के भारतीय इतिहास को कोई विद्वान् देखता है, तो हैरान हो जाता है कि भारतीय धर्म, समाज व संस्कृति इतने पतन के गड्ढे में गिर चुकी थी कि अनुमान लगाना कठिन है। शायद जिस कलियुग की बात हमारे हिन्दू पुराणों में है, उससे भी भयंकर स्थिति उस समाज की थी। उस सभ्यता को हम वैदिक सभ्यता कह सकते हैं, क्योंकि उसका आधार वेद थे। यह ब्राह्मण संस्कृति थी, क्योंकि उस समय वेद व ब्राह्मण समाज के हर क्षेत्र पर छाये हुए थे। उस समय के लोग उपनिषदों की क्रान्ति को पूर्णतः भूल चुके थे, जिन कार्यों का विरोध उपनिषदों ने किया था उसकी बात सुनने वाला, प्रचार करने वाला कोई महापुरुष नहीं था।

उपनिषदों की रचना २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के समय शुरू हुई थी। इसी कारण उपनिषदों पर भगवान पार्श्वनाथ की अहिंसा की मान्यता स्पष्ट दिखती है। आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म के बारे में नये विचार जन्म ले चुके थे।

हमें इन बातों की चर्चा करने से पहले उस युग के इतिहास से गुजरना पड़ेगा। सर्वप्रथम धार्मिक क्षेत्र को लें, तो सूत्रकृतांगसूत्र में ३६३ और बौद्ध ग्रन्थों में ६३ मतों का विवरण उपलब्ध होता है। ये सभी मत अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग की तरह एकान्तवादी थे। भगवान महावीर के समय में आस्तिकमत के साथ नास्तिक-चार्वाक, सांख्यमत भी घूम रहे थे। यहाँ हम उन मतों का वर्णन करेंगे जो आज या तो समाप्त हो गये हैं या वैदिक परम्परा के भाग बन गये हैं। उस समय तीर्थंकर पार्श्वनाथ की श्रमण परम्परा भी छिन्न-भिन्न हो गई थी। उनके कुछ ही अच्छे संत-साध्वी बचे थे।

आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म. ने “महावीर : एक अनुशीलन” पुस्तक में उस युग का सुन्दर विवेचन पृष्ठ २०६ में किया है—वह लिखते हैं—

“वैदिक दृष्टि से भी वह युग विचित्र परिस्थितियों में से गुजर रहा था। दार्शनिक चिन्तन का स्थान अन्धकार ने ले लिया था। धर्म-सम्प्रदायों की स्थिति बड़ी भ्रान्त थी। कटी हुई पतंग की तरह धर्म-जिज्ञासु मानव मन भटका हुआ था। चार्वाक के अनुयायी भौतिकता की पराकाष्ठा को जीवन का अन्तिम छोर मानते थे। कोई अक्रियावाद को मानता था। किसी का आघोष था कि अकर्मण्यता ही धर्म है, कोई क्षणिकवाद में धर्म मानकर मिथ्यावाद का खण्डन करता था, कोई मिथ्यावाद का समर्थन कर क्षणिकवाद का उपहास करता था। कोई नियतिवाद का समर्थन करता था, तो कोई उच्छेदवाद का, कोई अन्योन्यवाद को महत्त्व देता था तो कोई विक्षेपवाद को। सभी अपने वैचारिक कटघरे में आबद्ध थे। स्वर्ग व नरक बिक रहे थे। अव्यवस्था, मनमानी औद्धत्य और स्वेच्छाचार ने धर्म की पवित्रता, दर्शन की दिव्यता को खण्डित कर दिया था। इस प्रकार धर्म और दर्शन की अराजकता फैली हुई थी।”

समाज में जाति-भेद, छुआछूत हर स्तर पर छूत के रोग की तरह फैल चुका था। ब्राह्मण संस्कृति की मनमानियों के कारण क्षत्रिय राजाओं का उनकी आज्ञा को धर्म मानकर चलना था। लम्बे-लम्बे समय के यज्ञ होते थे। यज्ञ में अन्य सामग्री के साथ धन, उपयोगी पशुओं व मानवों की बलियाँ दी जाती थीं। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र वर्ण-व्यवस्था पर समाज आधारित था।

उस समय यह श्रुति आम थी—“भगवान ने यज्ञ के लिए पशुओं की रचना की है।<sup>१</sup> वेद में वर्णित हिंसा, हिंसा नहीं।<sup>२</sup> ये सब कार्य देवताओं को प्रसन्न करने व स्वर्ग-प्राप्ति के लिए किए जाते थे।

ब्राह्मण चाहे विद्वान् हो या मूर्ख, सदाचारी हो या व्यभिचारी, अग्नि की तरह सदा पूजनीय व पवित्र है।<sup>३</sup> पण्डे व पुरोहित लोगों के भाग्य के निर्माता बन गये। ब्राह्मणों के अधिकार इतने विस्तृत हो गये कि वह शूद्र के धन के स्वामी भी हो गये। ब्राह्मण ब्रह्ममुख के समान पवित्र माना जाता था।

वेद का ज्ञान देना, पढ़ना ब्राह्मण का अधिकार था। शूद्र लोगों को न वेद पढ़ने का अधिकार था, न उन्हें वेद सुनने का। शूद्रों की तरह स्त्री को भी वेद पढ़ने का अधिकारी नहीं माना जाता था।<sup>४</sup> यदि शूद्र कभी भूल से वेद का पाठ सुन लेता तो उसके कानों में गरमागरम सीसा पिघलाकर डाला जाता था। यदि वह कण्ठस्थ कर लेता तो उसे बुरी तरह मारा जाता था। वेद के ऋचा बोलने वाले शूद्र की जीभ काट दी जाती। उन्हें यज्ञ-प्रसाद ग्रहण करने व व्रतादि का उपदेश देना मना था।

स्त्री व शूद्र दोनों स्वतन्त्रता के योग्य नहीं थे। दासों व स्त्रियों की मण्डियाँ लगती थीं। उस समय यह घोष आम था—

“न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति। अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधान।”

—वशिष्ठ स्मृति, पृष्ठ ११

इन दोनों को धार्मिक व सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। बोधायन स्मृति २/२/५२ पर कहा गया है।

“बचपन में पिता, विवाह के पश्चात् पति व वृद्धावस्था में पुत्रों के संरक्षण में रहकर स्त्री को जीवन व्यतीत करना चाहिए।” सारा स्मृति साहित्य शूद्रों की करुण गाथा कहता है।

गीता ९/३२ में श्रीकृष्ण ने कहा है—

“स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र सब पाप योनि हैं, पापजन्य हैं।” इनके संस्कार बिना मंत्र के किये जाते थे ताकि मंत्र अपवित्र न हो जायें।”

## राजनैतिक स्थिति

राजनैतिक क्षेत्र में दो तरह की व्यवस्थाएँ थीं—गणराज्य व राजतन्त्र। भगवान महावीर के नाना चेटक वैशाली गणराज्य के प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त लिच्छवी गणराज्य के शाक्य, मल्ल, कोशल, आमलकप्पा, वज्जिगण, पिप्पलि वन, मोरीय गण छोटे गणराज्य थे।

इनके अतिरिक्त कोशल, वत्स, अवन्ती, कलिंग, अंग, वंग आदि स्वतन्त्र राज्य थे। गणराज्यों में परस्पर स्नेह था।

उस समय में भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के संत मुनि केशीकुमार थे, उस समय की स्थिति का सुन्दर चित्रण उत्तराध्ययनसूत्र २३/७५ में फरमाया है।

“आज चारों ओर अंधकार है। भोलीभाली जनता अंधकार में भटक रही है। इस काल-रात्रि का कब अंत होगा और कौन-सा सूर्य इस क्षितिज पर प्रकाश बिखरेगा? संसार को धर्मतत्त्व से कौन आलोकित करेगा? यह चिन्ता का विषय है।” यह बात उन्होंने प्रभु महावीर के प्रथम शिष्य इन्द्रभूति गौतम को कही थी।

उस समय भारत में ही नहीं, समस्त विश्व में व्यवस्था डौंवाडोल थी। धरती महापुरुष की बाट जोह रही थी। ऐसे समय में भारत की धरा पर बुद्ध व महावीर पैदा हुए। चीन में लाओत्से, कन्फ्यूशियस, यूनान में पाईथागोरस, अफलातून और सुकरात, ईरान में जरतुस्थ, फिलिस्तीन में जिरेनिया और इजकिल<sup>५</sup> पैदा हुए।

भगवान महावीर का जन्म धरती का सौभाग्य था। करोड़ों वर्षों से मानव जाति इसका इन्तजार कर रही थी। वह मनुष्य से परमात्मा के रूप में अपनी लीला दिखाने धरती पर प्रकट होने वाला था। इस युग में चतुर्थ आरा भी समाप्त होने वाला था। अन्तिम तीर्थंकर के आगमन की सूचना जैन परम्परा में शुरू से चली आ रही थी। भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के भिक्षु व भिक्षुणियाँ इस बात को जानते थे कि २४वाँ तीर्थंकर 'वर्द्धमान' नाम से पैदा होगा।

## दार्शनिक मत

वह समय ऐसा था जब भारत की धरती पर अनेक दर्शन व दार्शनिकों का जन्म हुआ। ये मत स्वमत की प्रशंसा कर दूसरे की निन्दा करते थे। धार्मिक वातावरण हर स्तर पर बिगड़ा हुआ था। उस समय की धार्मिक मान्यताओं को सूत्रकृतांगसूत्र में ४ समवसरण का नाम भगवान महावीर ने दिया है। इनके नाम हैं--(१) क्रियावाद, (२) अक्रियावाद, (३) विनयवाद, (४) अज्ञानवाद।

### (१) क्रियावाद

क्रियावादी आत्मा के साथ क्रिया का सम्बन्ध मानते हैं। उनका सिद्धान्त है कि कर्ता के बिना पुण्य-पाप क्रिया नहीं होती। वे जीव आदि नव तत्त्वों को एकान्त रूप में मानते हैं। इनके १८० भेद हैं।

### (२) अक्रियावाद

अक्रियावादियों का वर्णन दशाश्रुतस्कन्ध की छठी दशा<sup>६</sup> में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त सूत्रकृतांग में भी इनका वर्णन है। इनकी मान्यता है कि पुण्य-पाप आदि क्रिया स्थिर लगती है, पर उत्पन्न होते ही विनाश होने से कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं। तब इसे क्रिया कैसे लगे। वस्तु में नित्य-अनित्य भेद नहीं। इनके ८४ भेद हैं। इनकी मान्यता है—

“इहलोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, अरिहंत नहीं, चक्रवर्ती नहीं, बलदेव नहीं, वासुदेव नहीं, नरक नहीं, नारकी नहीं, अच्छे-बुरे कर्म का फल में अन्तर नहीं। अच्छे कर्म का फल अच्छा, बुरे कर्म का फल बुरा नहीं होता। कल्याण और पाप अफल है, पुनर्जन्म नहीं, मोक्ष नहीं। सभी क्रिया फल शून्य हैं।”

### (३) अज्ञानवाद

अज्ञानवाद का मानना है—“सारे झगड़े ज्ञान के कारण होते हैं। किसी को पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। सारे मत ज्ञान से पैदा हुए हैं। ज्ञान अर्जित करना व्यर्थ है। अज्ञान से जगत् का कल्याण है।”

सूत्रकृतांग में अज्ञानवाद के ६७ भेद कहे गये हैं।

### (४) विनयवाद

विनयपूर्वक व्यवहार करने वाले विनयवादी कहलाते हैं। वे हर स्थान पर बिना किसी विलम्ब के सबकी विनय करते हैं। चाहे साधु मिले, गृहस्थ मिले, गाय मिले या कुत्ता मिले, सबकी विनय करना विनयवादी का धर्म है। इन सबको वे मन, वचन व कर्म से देश और काल के अनुसार उचित मान देकर धर्म का पालन करते हैं। इनके ३२ भेद हैं।

जैन ग्रन्थों में इन वादों के संस्थापकों के नाम तो आये हैं, पर उनका विवरण प्राप्त नहीं होता। निशीधचूर्णि में इन धर्म-मतों की संख्या में बड़ोत्तरी मिलती है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में इन वादों की भाषाओं के नाम उपलब्ध होते हैं।



## छह धर्मनायक

बौद्ध ग्रन्थों में छह धर्मनायकों का बार-बार उल्लेख आया है। उनके बारे में संक्षिप्त वर्णन इसलिए जरूरी है क्योंकि इनमें ५ की मान्यता इतिहास से समाप्त हो चुकी है।

### पूर्ण काश्यप व उनकी मान्यता

यह काश्यप जाति के ब्राह्मण थे। नग्न रहते थे। इनके अनुयायियों की संख्या ८०,००० थी। एक दिन राजा ने उन्हें द्वारपाल का कार्य सौंप दिया, जिसे इन्होंने अपना अपमान समझा। वे गुस्से में अपमानित हो जंगल में निकल पड़े, जहाँ चोरों ने इनके वस्त्र छीन लिये। तब से इन्हें लोगों ने वस्त्र भी दिये, पर इन्होंने कहा—“वस्त्र लज्जा को ढकने के लिए है और लज्जा का मूल पापमय प्रवृत्ति है। मैं तो इस प्रवृत्ति से दूर हूँ। इसलिए मुझे वस्त्रों से क्या प्रयोजन?”

ये अक्रियावाद के समर्थक थे। उनका मानना था—“अगर कोई कुछ करे या कराये, काटे या कटवाये, कष्ट दे या दिलाये, शोक करे या कराये, किसी को कुछ दुःख हो या कोई दे, डर लगे या डराये, प्राणियों को मार डाले, घर में संध लगाये, डाका डाले, एक ही मकान पर डाका डाले, लूटमार करे, परदारगमन करे, असत्य बोले तो भी पाप नहीं लगता। तीक्ष्ण धार वाले चक्र से यदि कोई इस संसार के पशुओं को मारकर माँस का ढेर लगा दे, तो भी उनको पाप नहीं है। इसमें कोई दोष नहीं। गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पर जाकर यदि कोई मार-पीट करे, काटे या कटवाये, कष्ट दे या दिलाये तो भी उसमें पाप नहीं।

गंगा नदी के उत्तरी किनारे पर जाकर कोई दान करे, यज्ञ करे या करवाये, तो भी उसमें कोई पुण्य नहीं मिलता। दान, संयम, धर्म और सत्य में कोई पुण्य नहीं है।<sup>१७</sup>

### मंखलि गोशालक और उसकी मान्यता

गोशालक भगवान महावीर से बहुत समय सम्पर्क में रहा। इस संदर्भ में सूत्रकृतांग, भगवती, उपासकदशांग में विवरण प्राप्त होता है। भगवान महावीर के साधनाकाल में वह ५ वर्ष तक साथ रहा। पर बाद में उसने अलग मत चलाया उसका मन्तव्य था कि “प्राणी के अपचित होने में न कुछ हेतु है, न कारण। शुद्धि के लिए हेतु भी कोई नहीं है, कुछ भी कारण नहीं है। बिना हेतु और बिना कारण के ही प्राणी शुद्ध होते हैं। निज शक्ति या दूसरे की शक्ति से कुछ नहीं होता। बल, वीर्य, पुरुषार्थ या पराक्रम यह सब कुछ नहीं है। सब प्राणी बलहीन और निर्वीर्य हैं—वे नियति (भाग्य), संगत और स्वभाव के द्वारा परिणत होते हैं—अक्लमंद हो या मूर्ख सबको दुःखों का नाश करके ८० लाख के महाकल्पों के भ्रमण के बाद होता है।”<sup>१८</sup> इस नियतिवाद को आजीवक मत भी कहा गया है।

बौद्ध ग्रन्थों में भी मंखलि-पुत्र का स्थान-स्थान पर वर्णन आया है। वह भगवान महावीर व बुद्ध का मुख्य विरोधी था। जैन परम्परा के अनुसार वह तेजोलेश्या का स्वामी था। उसके भक्तों की गिनती लाखों में थी।

### अजित केशकम्बली और उनकी मान्यता

यह केशों के बने कम्बल के वस्त्र पहनता था। इसकी विचारधारा लोकायत मत के समान थी। कई लोग इसे नास्तिक मत मानते थे। उनका मत था—दान, यज्ञ, होम तथ्यहीन हैं। श्रेष्ठ और कनिष्ठ कर्म का फल और परिणाम नहीं है। इहलोक, परलोक, होम, माता-पिता, देवता, नरक आदि कुछ नहीं है। इनका ज्ञान देने वाले श्रमण इस संसार में नहीं हैं। यह शरीर चार धातुओं का बना है। ये धातु जब समाप्त हो जाते हैं, मृत्यु हो जाती है, मिट्टी में मिल जाते हैं। आस्तिकवाद बकवास है। इस सिद्धान्त का नाम उच्छेदवादी था।

## प्रक्रुध कात्यायन और उनके सिद्धान्त

आचार्य बुद्धघोष ने लिखा है—प्रक्रुध उसका नाम था, कात्यायन गोत्र था। वह अन्योन्यवादी था। उसका मत था—“सात पदार्थ किसी के लिए करवाये, बनाये या बनवाये हुए नहीं वे बन्ध्य कूटस्थ और नगर-द्वार के स्तम्भ की तरह अचल हैं। वे न हिलते हैं, न बदलते हैं। एक-दूसरे को सताते नहीं हैं। एक-दूसरे को सुख-दुःख उत्पन्न करने में असमर्थ हैं। वे हैं—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, सुख, दुःख व जीव। इन्हें मारने वाला, सुनने वाला, सुनाने वाला, जानने वाला कोई नहीं है। अगर कोई तीक्ष्ण शस्त्र से किसी का सिर काट डालता है तो वह उसका प्राण नहीं लेता। इतना ही समझना चाहिए कि सात पदार्थ के बीच अवकाश में शस्त्र घुस गया है।”

## संजयवेलङ्गि-पुत्र व उसकी मान्यता

इसका नाम छह बोल के साथ आया है। पर इसके बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। वह विक्षेपवादी था। उसका मत था—“यदि कोई मुझे पूछे कि क्या परलोक है और मुझे ऐसा लगे परलोक है तो मैं कहूँगा, हाँ।”

“परन्तु मुझे वैसा नहीं लगता, मुझे ऐसा भी नहीं लगता कि परलोक नहीं है। औपपातिक प्राणी है या नहीं। अच्छे-बुरे कर्म का फल होता है या नहीं। तथागत मृत्यु के बाद रहता है या नहीं। इनमें से किसी भी बात के विषय में मेरी कोई निश्चित धारणा नहीं है।”

## निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र का चातुर्याम मार्ग

बौद्ध ग्रन्थों में अनेक प्रकरणों में भगवान महावीर का वर्णन ज्ञातपुत्र के रूप में आया है। ज्ञातु प्रभु महावीर का वंश था जो लिच्छवियों की शाखा थी। राजा सिद्धार्थ इस वंश के राजा थे।

ज्ञातवंशी क्षत्रिय भगवान पार्श्वनाथ के उपासक थे। ज्ञातपुत्र भगवान महावीर नाम था। उनका धर्म निर्ग्रन्थ धर्म था।

उत्तराध्ययनसूत्र में केशी-गौतम संवाद में भगवान पार्श्वनाथ के मार्ग को चातुर्याम मार्ग बताया गया है। वहाँ लिखा है—

“प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के मुनि व साध्वियाँ पाँच महाव्रत का पालन करती हैं। पर दूसरे से २३वें तीर्थंकर के मुनि चार महाव्रतों का पालन करते थे।”

यहाँ ४ व्रतों में ब्रह्मचर्य को अपरिग्रह महाव्रत का अंग माना गया है। इस कारण इस धर्म को चातुर्याम मार्ग कहा जाता है।

१. मनुस्मृति ५/२८/३६
२. वही ५/२२/४४
३. वही ८/३१७-३१९
४. (क) गौतम धर्मसूत्र, पृष्ठ १६५  
(ख) अध्ययन ३, पृष्ठ ८९-९०
५. महावीर : एक अनुशीलन, पृष्ठ २/२
६. नास्तिकवादी : नास्तिकप्रज्ञ, नास्तिकदृष्टि, नोसम्यक्त्वादी, नोनित्यवादी, उच्छेवादी, स्व-पर लोकवादी।
७. (क) भारतीय संस्कृति और अहिंसा, पृष्ठ ४५-४६  
(ख) भगवान बुद्ध, पृष्ठ १४
८. (क) भारतीय संस्कृति और अहिंसा, पृष्ठ ४५-४६  
(ख) भगवान बुद्ध, पृष्ठ १८१-१८३

# महावीर का जन्म-महोत्सव, बचपन, विवाह व संकल्प (प्रभु महावीर का धरती पर जन्म)

## रानी त्रिशला का स्वप्न दर्शन

बिहार देश के अन्तर्गत क्षत्रिय कुण्डग्राम में भगवान पार्श्वनाथ की श्रमण परम्परा के उपासक राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे। उनकी रानी त्रिशला वैशाली नरेश चेटक की पुत्री थीं।

त्रिशला ने पूर्व वर्णित १४ स्वप्न देखे।<sup>१</sup> उन स्वप्नों को देखकर रानी जागीं। वह अपने पति के कक्ष में आईं। वह प्रसन्नचित्त थीं। उसने राजा से अपने स्वप्नों का वर्णन किया। राजा ने कहा—“देवी ! तुमने कल्याणकारी स्वप्न देखे हैं। इनके फलस्वरूप हमें अर्थ, भोग, पुत्र व सुख की प्राप्ति होगी और राज्य में भी अभिवृद्धि होगी। कोई महान् आत्मा का जन्म होगा।”<sup>२</sup>

सिद्धार्थ राजा के मुख से स्वप्न का फल सुन रानी संतुष्ट हुईं। राजा के पास से उठकर वह अपने शयनागार में आईं। मांगलिक स्वप्न कहीं निष्फल न चले जायें, एतदर्थ शेष रात्रि अध्यात्म जागरण में व्यतीत कीं।<sup>३</sup>

सुबह को राजा सिद्धार्थ उठे। उन्होंने प्रातःकाल के कार्य सम्पन्न किये। वह सर्वप्रथम व्यायामशाला में गए, वहाँ उन्होंने विभिन्न प्रकार की व्यायाम-क्रिया सम्पन्न की। शस्त्राभ्यास, व्यायाम, मल्लयुद्ध और पद्मासन आदि आसन किये। थकान मिटाने के लिए शतपाक और सहस्रमार तेल की मालिश करवाई स्नान किया। गोशीर्ष चन्दन का विलेपन किया। फिर सुन्दर वस्त्र आभूषणों से शरीर को सुसज्जित किया। सुसज्जित होकर सभाभवन में आये। राजा सिद्धार्थ ने रानी त्रिशला के सभाभवन में बैठने की स्वतन्त्र व्यवस्था करवाई। उन्होंने बीच में बड़ा परदा लगवाया। रत्नजड़ित भद्र आसन लगवाये।

फिर राजा ने कौटुम्बिक पुरुष (नौकर) को आदेश दिया कि अष्टांग निमित्त के ज्ञाता स्वप्न-पाठकों को राज्यसभा में आमन्त्रित किया जाय। कौटुम्बिक पुरुष स्वप्न-पाठकों की बस्ती में गये। उनके मुखिया को राजा का संदेश सुनाया। इस संदेश व निमन्त्रण से सारी बस्ती में खुशी छा गई। स्वप्न-पाठकों ने सभाभवन में जाने योग्य वस्त्र पहने, पुस्तकें साथ लीं और राजा सिद्धार्थ के महलों की ओर चल पड़े।

## स्वप्न-पाठकों द्वारा फलादेश

स्वप्न-पाठक राजप्रासाद में आये। उन्होंने राजा सिद्धार्थ को विधि सहित प्रणाम किया। राजा ने उनका अभिवादन स्वीकार करते हुए रानी त्रिशला के द्वारा देखे १४ स्वप्नों का फल पूछा।<sup>४</sup>

सभी स्वप्न-पाठकों ने आपस में विचार-विमर्श किया। वे यह जानते थे कि राजा के सामने सोच-समझकर बोलना चाहिए। इसी विधि का पालन करते हुए उन्होंने रानी द्वारा देखे स्वप्नों का विश्लेषण किया। ग्रन्थों से उसका मिलान किया। फिर कहा—“हे राजन् ! हमारे स्वप्न-शास्त्र में ४२ स्वप्न सामान्य फल देने वाले और ३० स्वप्न उत्तम फल देने वाले महास्वप्न कहे गये हैं। इस प्रकार कुल ७२ स्वप्न हैं। तीर्थंकर और चक्रवर्ती की माताएँ इनमें से १४ स्वप्न देखती हैं।<sup>५</sup> वासुदेव की सात,<sup>६</sup> बलदेव की चार,<sup>७</sup> माण्डलिक राजा की माता एक<sup>८</sup> स्वप्न देखती है।”

आपकी महारानी ने १४ महास्वप्न देखे हैं। इससे अर्थ-लाभ, पुत्र-लाभ, सुख-लाभ और राज्य-लाभ होगा। नौ मास और साढ़े सात अहोरात्रि व्यतीत होने पर कुलवंत, कुलदीपक, कुलकिरीट, कुलतिलक, सर्वाङ्ग सुन्दर चन्द्र के

समान योग्य आकृति वाला, कान्त प्रियदर्शी और सुरूप पुत्र को वह जन्म देगी। वह पुत्र लक्षणों और ब्यंजनों से युक्त होगा। शैशव समाप्त कर परिपक्व ज्ञान वाला होगा, जब वह यौवन में प्रवेश करेगा तो दानवीर, पराक्रमी और चारों दिशाओं का अधिशास्ता, चक्रवर्ती या चार गति का अन्त करने वाला तीर्थंकर होगा।

## महारानी त्रिशला के स्वप्नों का फल

स्वप्न	फल
(१) गज	वह चार प्रकार के तीर्थ साधु, साध्वी, श्रावक व श्राविका की स्थापना करेगा।
(२) वृषभ	बोधिबीज वपन करेगा।
(३) सिंह	वह सिंह की भाँति कामवासना का नाश कर संसार में भटकते प्राणी की रक्षा करेगा।
(४) लक्ष्मी	वह एक वर्ष दान करके तीर्थंकर पद प्राप्त करेगा।
(५) पुष्पमाला	वह त्रिलोक पूज्य होगा। सब लोग उसकी चरण-धूल मस्तक पर धारण करेंगे।
(६) चन्द्रमा	वह चन्द्रमा के समान शीतल, क्षमा आदि धर्म को धरती पर फैलाएगा।
(७) सूर्य	वह अज्ञानरूपी अंधकार का नाश करेगा।
(८) ध्वजा	वह धर्म-ध्वजा संसार में फैलाएगा।
(९) कलश	वह धर्मरूपी प्रसाद पर कलश की तरह सुशोभित होगा।
(१०) पद्मसरोवर	उसके लिए देवता स्वर्ण कमल का आसन निर्मित करेंगे।
(११) समुद्र	वह समुद्र की तरह अनन्त ज्ञान-दर्शन रूप मणि का धारक होगा।
(१२) विमान	वह वैमानिक देवों द्वारा पूजित होगा।
(१३) निर्धूम अग्नि	वह धर्मरूपी सुवर्ण को शुद्ध व निर्मल करने वाला होगा।
(१४) रत्नराशि	वह वैभव सम्पन्न होगा।

आचारांगसूत्र में स्वप्न-पाठकों का वर्णन नहीं। उत्तरपुराण में स्वप्न का फल राजा स्वयं बताता है।

## मातृ-भक्त प्रभु महावीर

भगवान महावीर का जीव गर्भ में था, तो वह तीन ज्ञान का धारक था। उसने सोचा—‘मेरे हिलने-डुलने से मेरी माता को कष्ट होता है। मुझे इसमें निमित्त नहीं बनना चाहिए।’ यह सोचकर वह निश्चल हो गये। हिलना-डुलना बन्द कर दिया, अकम्प बन गये। सारे अंगों को सिकोड़ लिया।

इस बात से माता त्रिशला को बहुत चोट पहुँची। उसने सोचा—‘क्या किसी देव ने मेरा गर्भ अपहरण कर लिया है? क्या वह मर गया है? क्या वह गल गया है?’ विविध आशंकाओं से त्रिशला को हृदयाघात पहुँचा। वह रोने लगी, फिर इसी गम में मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। परिचारिकाओं ने उपचार किया। फिर रानी से उनकी अस्वस्थता का कारण पूछा। रानी ने अपने गर्भ के जीव की क्रिया के बारे में बताया—‘मेरा गर्भस्थ जीव न हिलता है न डुलता है, उसका स्पन्दन भी बन्द हो गया है।’

यह सुनकर महल में शोर मच गया। घर में दास-दासी रानी के गर्भस्थ जीव की कुशलता माँगने लगे। महाराजा सिद्धार्थ स्वयं पधारे। उन्होंने ज्योतिषियों से इसका कारण पूछा।

पर जल्द ही सब सामान्य हो गया। भगवान महावीर के जीव से अपनी माता का शोक देखा न गया। उन्होंने गर्भ में यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मेरे माता-पिता जीवित रहेंगे, तब तक मैं साधु नहीं बनूँगा।

कुछ समय के पश्चात् महावीर के जीव ने हिलना-डुलना शुरू किया। माता के चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ आई। यह घटना महावीर के गर्भ में आने के साढ़े छह महीने की है।

इस घटना का महावीर के जीव पर गहरा असर हुआ। 'अभी तो मैं गर्भ में हूँ, माँ ने मेरा मुँह नहीं देखा, फिर भी माता को मेरे से इतना मोह है। जब मैं उनके जीवनकाल में साधु बनूँगा तो कितना दुःख होगा।'—यही सोच भगवान ने गर्भ में प्रतिज्ञा धारण की।

इस घटना का वर्णन कल्पसूत्र, आवश्यकचूर्णि, चउपत्रमहापुरिसचरियं, महावीरचरियं, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित, विशेषावश्यकभाष्य में उपलब्ध होता है। पर आचारांग, आवश्यकनिर्युक्ति, पउमचरियं व दिग्म्बर ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं मिलता है।

इस प्रकार रानी त्रिशला ने महावीर के जीव को वात्सल्य भाव से घाला। जब भगवान का जीव गर्भ में आया। धन-धान्य की वृद्धि होने लगी। शक्रेन्द्र के आदेश से वैश्रमण जृम्भक देवों के द्वारा अटूट धन राजा सिद्धार्थ के भण्डार में पहुँचाया गया। गर्भ-धारण के ६ मास पूर्व ही देवगण ने तीर्थंकर के माता-पिता के राजप्रासाद पर रत्नों की वृष्टि करनी शुरू कर दी।

### रानी त्रिशला का दोहद

गर्भ के समय माता त्रिशला को कई दोहद उत्पन्न हुए जैसे कि मैं अपने हाथों से दान दूँ। सद्गुरु को आहार प्रदान करूँ। देश में अमारि की घोषणा करवाऊँ। समुद्र, चन्द्र और पीयूष का पान करूँ, उत्तम वस्त्र धारण करूँ।

कल्पसूत्र की कल्पलता वृत्ति के अनुसार त्रिशला रानी को यह दोहद उत्पन्न हुआ कि मैं इन्द्राणी के कुण्डल पहनूँ। यह दोहद पूरा होना असम्भव था। दोहद पूरा न होने के कारण वह दुःखी रहने लगी। इन्द्र का आसन कम्पित हुआ। उसने अवधिज्ञान से जाना। अपनी शक्ति से दिव्य नगर का निर्माण पर्वत पर किया। वह वहाँ सपरिवार रहने लगा। राजा सिद्धार्थ को ज्ञात होने पर वह ससैन्य इन्द्र के पास आया और कुण्डलों की याचना की। इन्द्र ने उन कुण्डलों को देने से इन्कार किया। दोनों राजाओं में युद्ध हुआ। इस युद्ध में इन्द्र जानबूझकर हार गया। किले पर सिद्धार्थ का अधिकार हो गया। इन्द्राणी के कानों के कुण्डल छीनकर रानी का दोहद पूरा हुआ।

### जन्म और उत्सव

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—“मासानां मधुमासोस्मि!”—मैं महीनों में माघव मास—चैत्र हूँ और ऋतुओं में बसन्त।

आज से २६०० वर्ष पूर्व इसी तरह का मास था। भारत में भगवान ऋषभदेव, पवन पुत्र हनुमान भगवान राम व भगवान महावीर का जन्म इसी मास में हुआ था।

कल्पसूत्र में आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने कहा है—“नौ महीने साढ़े सात दिन पूर्ण होने पर हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग में त्रिशला क्षत्रियाणी ने आरोग्यपूर्वक पुत्र को जन्म दिया। वह देवताओं की भाँति जरायु—रुधिर व मल से रहित थे। उनके जन्म पर सारा संसार प्रकाश से जगमगा उठा था। शीतल, मन्द, सुगन्धित, दक्षिण पवन चल रहा था। सभी दिशाएँ शान्त और विशुद्ध थीं। शकुन जय-विजय के सूचक थे।”

### देवों द्वारा जन्म-महोत्सव

भगवान महावीर के जन्म के समय छप्पन दिक्कुमारियाँ अपनी परम्परा अनुसार सूतिका कर्म हेतु आईं। उन्होंने जन्म-महोत्सव मनाया और अपने स्थान पर चली गईं।

भगवान महावीर का जन्म होते ही शक्रेन्द्र का सिंहासन कम्पित हुआ। उसने अवधिज्ञान से देखा—“भगवान महावीर का जन्म हो गया है। वह बहुत प्रसन्न हुआ। वह अनेक देव-देवियों के परिवार के साथ क्षत्रियकुण्ड ग्राम में आया। उसके साथ भवनपति, बाणव्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक देव उनके इन्द्र और देवगण भी आये। सब देवों में होड़ लग गई।

सर्वप्रथम शक्रेन्द्र ने भगवान को और माता त्रिशला को तीन बार प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया। महावीर का एक प्रतिबिम्ब बनाकर माता के पास रखा। अवस्वपिनी निद्रा में माता को सुलाकर महावीर को मेरु पर्वत के शिखर पर ले गये। इसी तरह से मिलता-जुलता वर्णन आचारांगसूत्र में भी उपलब्ध होता है।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी के कल्पसूत्र व उसकी टीकाओं में इस घटना का सुन्दर उल्लेख हुआ है।

जब सभी देव-देवियाँ अपने विमानों सहित इकट्ठे होने लगे, स्वर्ग में घण्टे बजने लगे, अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने जन्म ले लिया है, ऐसी घोषणाएँ होने लगीं। सभी देव-देवी अपने विमानों में इकट्ठे होकर भगवान महावीर का जन्म-महोत्सव मनाने लगे।

इस प्रकार ईसा से ५९९ वर्ष पूर्व चैत्र सुदी त्रयोदशी को प्रभु का जन्म रानी त्रिशला व पिता राजा सिद्धार्थ के यहाँ हुआ। देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देवता इसी जोश में भगवान महावीर को मेरु पर्वत पर ले आये। अब उनका प्रथम स्नान देवी-देवताओं द्वारा भिन्न-भिन्न द्रव्यों से होना था।

### मेरु कम्पन

इन्द्र ने अपने पाँच रूप बनाये। इन्द्राणी ने बालक गोद में ग्रहण किया। देवताओं के मन में शंका पैदा हुई कि कुछ ही घड़ी पहले जन्मा बालक, इस जल-स्नान के कलशों को कैसे झेलेगा? परन्तु प्रभु तो अवधिज्ञानी थे। अवधिज्ञान के बल पर उन्होंने इन्द्र को चमत्कार दिखाया। चमत्कार तो चमत्कार होता है। तीन काल में कभी कितने भूचाल आये, मेरु पर्वत किसी स्थिति में नहीं काँपता। पर आज मेरु पर्वत का सौभाग्य था। इन्द्र की शंका को दूर करने के लिए प्रभु ने पाँव का छोटा अँगूठा मेरु पर्वत को लगाया। सारा मेरु पर्वत प्रभु की शक्ति के आगे काँपने लगा। मात पाँव के अँगूठे के स्पर्श से यह सब हुआ। सभी देवों को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। इन्द्र ने जब अपने अवधिज्ञान से देखा तो उसने जाना कि यह जिनेश्वर देव के अनन्त सामर्थ्य का परिणाम है। इन्द्र व सभी देवताओं ने अपनी भूल महसूस की। इस घटना के बारे में कल्पसूत्र, चउपन्नमहापुरिसचरियं, महावीरचरियं, दिगम्बर पउमचरियं में विस्तार से आया है।

दिगम्बर ग्रन्थों में वर्णित है कि तीर्थंकर जब बालक रूप में होता है, तब बालक के अँगूठे में अमृत का लेप होता है।

इस प्रकार देवी-देवता प्रभु के जन्म-महोत्सव पर नाचते हैं और फिर सभी कार्यक्रम सम्पन्न होने पर बच्चे को राजा सिद्धार्थ के महलों में पहुँचा आते हैं।

### सिद्धार्थ राजा द्वारा जन्म-महोत्सव

राजा सिद्धार्थ को प्रभु के जन्म की सूचना प्रातःकाल मिलती है। सूचना देने वाली दासी प्रियंवदा थी। राजा सिद्धार्थ इस सूचना से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उसे अपने मुकुट को छोड़ सभी गहने बधाई में दे दिये। यही नहीं, उसे दासता से मुक्त भी कर दिया। विपुल धन दिया ताकि वह बाकी की जिन्दगी आराम से गुजार सके।<sup>१</sup>

फिर आरक्षकों को बुलाकर आज्ञा दी—“कारागृह में सभी बन्दी मुक्त कर दो। सरकारी कर्जे समाप्त कर दो। किसी को किसी का कर्जा देना हो, तो उससे कहो कि उसका सारा ऋण राजा चुकायेगा, वह ऋण लेने न जाये।”

“बाजार में व्यापारियों से कहो कि हर जरूरतमंद को वस्तु निःशुल्क दो, उसके पैसे राजदरबार से प्राप्त करो।”

“जो वस्तुएँ माप-तोल पर दी जाती हैं उसमें आज से वृद्धि कर दो।”

“नगर में सभी स्थानों पर सफाई करवाओ। सफाई के बाद सुगन्धित द्रव्य का छिड़काव करो।”

“राजमार्गों को सजाया जाये। मुख्य मार्ग पर मंच इस ढंग से बनाया जाये कि लोग दूर से राजसी समारोह को देख सकें। दीवारों पर सफेदी करवा दो और उन पर मंगल सूत्रकथाएँ लगाओ। शहर में सभी नाटक-मण्डली, नृत्य-मण्डलियाँ, रस्सी पर खेलने वाले, कुश्ती और मुष्टि-युद्ध करने वालों को, विदूषकों को, बन्दर के समान उछल-कूद करने वालों को, गड्ढे फाँदने वालों को, नदी तैरने वालों को, कथा-वाचकों को, रास करने वालों को, बाँस पर चढ़कर खेल दिखाने वालों को, हाथ में चित्र लेकर भिक्षा माँगने वाले मंखों को, तूण नाम का वाद्य बजाने वालों को, वीणा, मृदंग व तालियाँ बजाने वालों को सुसज्जित करो। उन्हें तिक, चतुष्पथ (चौक) व चवर आदि में अपनी कला का प्रदर्शन करने की राजाज्ञा सुनाओ।”

राजाज्ञा से लगता है कि राजा सिद्धार्थ स्वतन्त्र राज्य के एकछत्र स्वामी थे। वे राज्य की राजधानी में इतना कुछ करने का आदेश देते हैं। उनकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता थी। जैसे कैदियों को छोड़ना, ऋण आदि खत्म करने का आदेश प्रमुखतः सम्पन्न राज्य के लक्षण हैं। वे कोई मामूली राजा या सामन्त नहीं थे। जैसे कि पश्चिमी विद्वानों का मत रहा है कि राजा सिद्धार्थ मामूली सामन्त थे। कल्पसूत्र में उन्हें स्पष्ट राजा कहा गया है। कल्पसूत्र जैनधर्म का प्राचीन लिखित प्रमाण है जिसमें २४ तीर्थंकरों का वर्णन है।

उसके बाद राजा व्यायामशाला में जाते हैं। दैनिक चर्या सम्पन्न करते हैं। फिर सजधजकर राजसभा में आते हैं। आनन्द और उल्लास के मधुर क्षणों में १० दिन के महोत्सव की घोषणा करते हैं जिसका नाम ‘स्थित पतित’ महोत्सव था। तीसरे दिन बालक को चन्द्र-सूर्य के दर्शन करवाये गये। छठे दिन रात्रि जागरण हुआ।

### नामकरण संस्कार

बारहवें दिन नामकरण संस्कार हुआ। उस दिन राजा सिद्धार्थ ने अपने इष्ट मित्रों, स्वजनों, स्नेहियों व भृत्यों को आमन्त्रित कर भोजन, पानी, अलंकारों से सबका सत्कार किया। सब लोग प्रसन्न थे। उन सभी के मध्य राजा सिद्धार्थ ने घोषणा की—“जिस दिन से यह बालक गर्भ में आया है हमारे राज्य-परिवार में हर प्रकार की वृद्धि होती जा रही है इसलिए हम इसका नाम वर्द्धमान रखेंगे।”

राजा सिद्धार्थ की बात का सब लोगों ने हर्ष-ध्वनि से स्वागत किया।

### राज्य-परिवार व अधिकारी वर्ग

प्रभु महावीर के पिता के तीन नाम आचारांग व कल्पसूत्र में प्राप्त होते हैं—

(१) यशस्वी, (२) श्रेयांस, (३) सिद्धार्थ।

महारानी त्रिशला जो विदेह देश वैशाली की सुपुत्री थीं उनके भी तीन नाम आये हैं—

(१) विदेहदित्रा, (२) प्रियकारिणी, (३) त्रिशला।

राजा सिद्धार्थ के लिए नरेन्द्र और क्षत्रिय शब्दों का प्रयोग हुआ है। कल्पसूत्र के अनुसार उनके दरबार में ये पदाधिकारी थे। गणनायक, दण्डनायक, युवराज, तलवर, माण्डलिक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, गणक, दैवारक, अमात्य, वीर, पीठमर्दक, नागर, निगम, कोठरी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपाल। आचार्य देवेन्द्र मुनि जी ने अपने ग्रन्थ ‘भगवान महावीर : एक अनुशीलन’ में पश्चिमी विद्वानों की कड़ी आलोचना की है कि वह बिना किसी कारण के राजा सिद्धार्थ को सामन्त लिखते हैं। वह लिखते हैं—“यदि सिद्धार्थ साधारण क्षत्रिय होता तो क्या वैशाली का महान् प्रतापी चेटक, जो १८ देशों का प्रमुख भी था, उनसे अपनी प्रिय बहिन त्रिशला की शादी करता। त्रिशला भी एक सामान्य क्षत्रियाणी नहीं थी, वह भी महारानी थी।”

उनके बड़े भैया नन्दीवर्द्धन थे। बहिन सुदर्शना थी। पत्नी यशोदा थी। भगवान की पुत्री प्रियदर्शना थी। भगवान के ससुर कलिंग सम्राट् सामन्तसेन थे। उनकी एक नातिनी भी हुई। दिगम्बर साहित्य में सामन्तसेन के स्थान पर जितशत्रु नाम मिलता है और यशोदा द्वारा दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन है।

भगवान का परिवार बहुत आदर्श परिवार था। वहाँ किसी किसम का तनाव नहीं था। सभी प्यार से रहते थे। सभी वर्द्धमान को जी-जान से चाहते थे। प्रभु वर्द्धमान के प्रसिद्ध नाम निम्न हैं—

**वर्द्धमान**—यह नाम उनके माता-पिता द्वारा प्राप्त हुआ जिसका वर्णन हम पीछे कर आये हैं। दिगम्बर पुराणों के अनुसार “वर्द्धमान” और “वीर” नाम इन्द्र द्वारा दिया गया है।

**महावीर**—जगत् प्रसिद्ध “महावीर” नाम इन्द्र द्वारा प्रभु को दिया गया है। क्योंकि किसी अन्य तीर्थंकर के जीवन में व साधना में इतने परीषह नहीं आये जितने भगवान महावीर के जीवन में आये। उन्हें शान्त भाव से जैसे उन्होंने सहा, उसका उदाहरण कहीं उपलब्ध नहीं है। बचपन में देव को हराने के कारण इन्द्र ने उन्हें “महावीर” नाम दिया।

**सन्मति**—दिगम्बर उत्तरपुराण में इस नाम की एक कथा है—“एक बार संजय और विजय दो आकाशगामी चारण मुनियों के मन में किसी तत्त्व के प्रति शंका उत्पन्न हुई। वह ज्यों ही भगवान के पालने के निकट आये उनकी शंका जाती रही।” तभी से सन्मति (अच्छी बुद्धि) यह नाम प्रसिद्ध हुआ।

**काश्यप**—यह भगवान महावीर का कुल था। बहुत से तीर्थंकरों का गोत्र काश्यप रहा है। उनका वंश इक्ष्वाकु था।

**जातपुत्र**—कल्पसूत्र में नाय, नायपुत्र, नायकुलचन्द्र, विदेह, विदेहदिन्न, विदेहजच्च और विदेहसुमाल नाम आये हैं—ये विशेषण हैं पहले तीन पितृ पक्ष के हैं। अगले तीन मातृ पक्ष के हैं। यह नाम जैन आगमों व बौद्ध ग्रंथों में भगवान महावीर को अन्य धर्मनायकों से अलग करता है। जैन आगमों में यह नाम बहुत प्रसिद्ध है।

**विदेह**—भगवान की माता विदेह देश की थी। पिछले जमाने में एक राजा के कई रानियाँ होती थीं। वह अपनी संतान को अपने देशों की पहचान देती थीं।

**वैशालिक**—यह नाम उत्तराध्ययनसूत्र में आया है। इसके टीकाकार ने कहा है प्रभु वैशालिक इसलिए कहलाये क्योंकि उनका कुल विशाल था। उनकी माता वैशाली नरेश चेटक की बहिन थीं। इसलिये वह वैशाली से संबंधित हो गये। प्रस्तुत अध्ययन में प्रभु के जन्माभिषेक का हमने संक्षिप्त वर्णन कल्पसूत्र व उसकी टीका के आधार पर किया है। यह विवरण प्राचीन आचारांग में कम मिलता है। वस्तुतः आगमों में कहीं भी प्रभु का जीवन व्यवस्थित ढंग से उपलब्ध नहीं था। इस कमी को सर्वप्रथम आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने अनुभव किया। उन्होंने आगम परम्परा को सामने रख प्रभु जीवन को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया। आवश्यकनिर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि में २४ तीर्थंकरों के बारे में अच्छा वर्णन आया है।

इन नामों में वर्द्धमान और महावीर ही प्रचलित हैं। बाकी नाम तो शास्त्रों तक ही सीमित हैं, जनसाधारण इन्हें नहीं जानता।

## प्रभु महावीर की जन्म-कुण्डली

ज्योतिष का विषय बहुत ही विस्तृत और गंभीर है। मूल आगमों में और कल्पसूत्र में प्रभु की जन्म-कुण्डली उपलब्ध नहीं होती। वैसे आचारांगसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध में उल्लेख है—ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास दूसरा पक्ष—चैत्र सुदी त्रयोदशी को हस्तोत्तरा अर्थात् उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र का योग होने पर श्रमण भगवान महावीर का जन्म हुआ।

इन उल्लेखों से वर्तमान में प्रचलित राशियों का वर्णन नहीं है। इसके बाद जैन आचार्य भद्रबाहु ने मात्र ग्रहों के बारे में उल्लेख किया है।



त्रिशला माता का स्वप्न दर्शन



गर्भ में आने पर त्रिशला माता ने १४ दिव्य स्वप्न देखे।

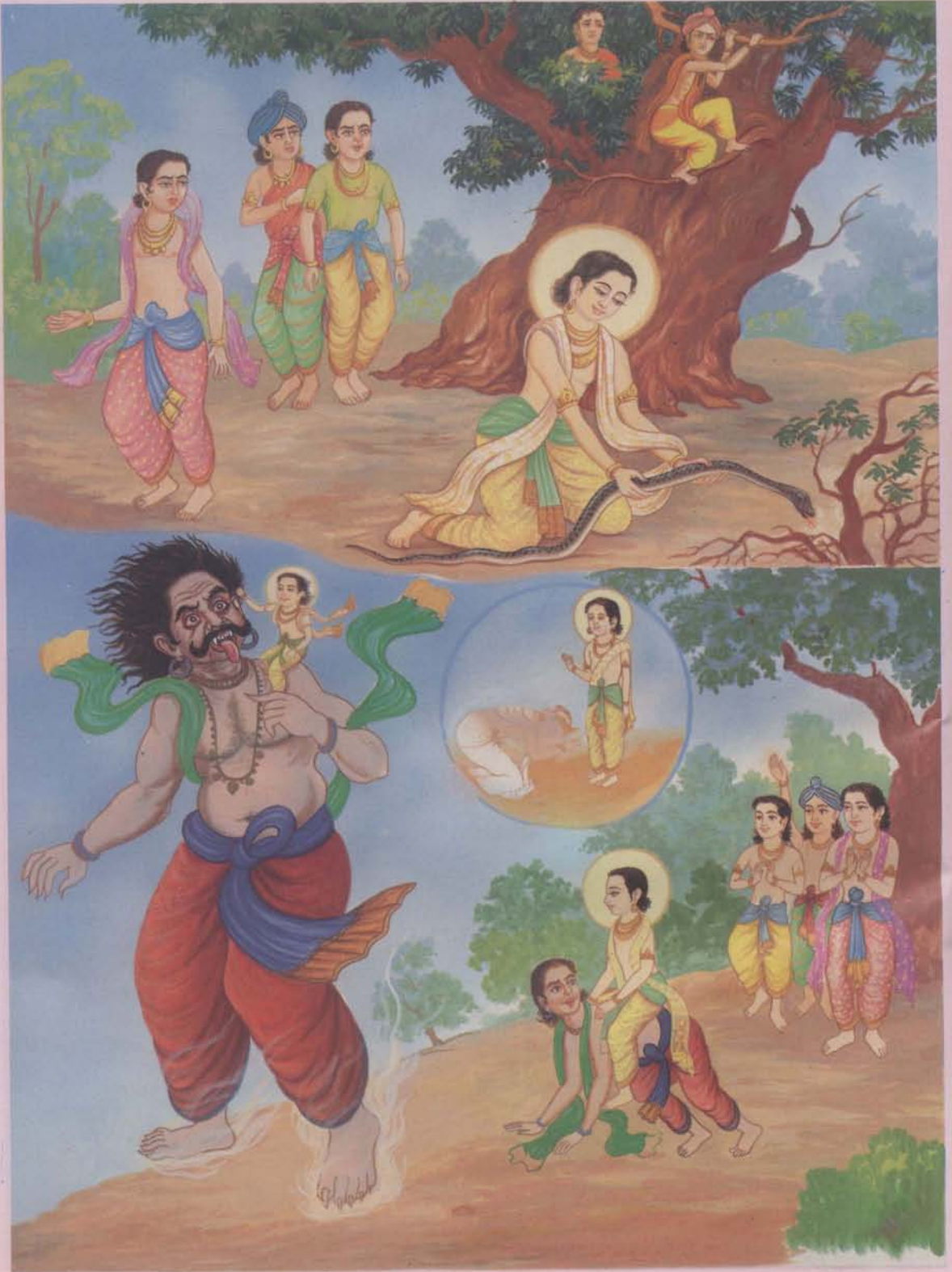


शक्रेन्द्र द्वारा प्रभु का जन्म अभिषेक करने मेरु पर्वत पर ले जाना।



नाम करण विमर्श

सिद्धार्थ राजा रानी त्रिशला से पुत्र का नामकरण करने के लिए विचार विमर्श करते हैं। सैन्य, राज्य, धन धान्य को बढ़ाने वाला पुत्र होने के कारण 'वर्धमान' नाम रखने का निश्चय।



राजकुमार वर्धमान द्वारा साँप को पकड़कर दूर करना तथा मायावी देव की पीठ पर मुक्का मारकर उसका

उपद्रव शान्त करना।

“उच्चटाणंगएसु महेसु।” अर्थात् सभी ग्रह उच्च स्थानों पर थे। दूसरे—“पुब्रस्तावरत्तकालसमयंसि।” अर्थात् प्रभु का जन्म मध्य रात्रि में हुआ। आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने ‘भगवान महावीर : एक अनुशीलन’ ग्रंथ के पृष्ठ २५४-२६३ तक उनकी कुण्डली का विवेचन किया है। वह एक स्थान पर लिखते हैं-

“इस (जैनशास्त्रों) से स्पष्ट है कि उस समय मेष आदि राशियों का प्रचलन भी नहीं था। यदि होता तो आंशिक रूप में कहीं न कहीं उल्लेख होता।”

आचार्य कल्पसूत्र के इन सूत्रों की व्याख्या कल्पसूत्र के टीकाकारों ने की है। उन्होंने ग्रहों के उच्च स्थान व अंशों का वर्णन इस प्रकार लिखा है-

ग्रह	राशि	अंश
सूर्य	मेष	१०
चन्द्रमा	वृषभ	३
मंगल	मकर	२८
बुध	कन्या	१५
गुरु	कर्क	५
शुक्र	मीन	२७
शनि	तुला	२०

जन्म-कुण्डली-भगवान महावीर		
११	१०	९
१२	म. के.	८
१ बु. सू.		७ श.
२ शु.	४ गु. रा.	६ चं.
३		५

कल्पसूत्र किरणावली टीका पत्र में कहा गया है—सुखी, भोगी, धनी, नेता, मण्डलपति, नृपति और चक्रवर्ती क्रमशः उच्च ग्रहों के प्रभाव के कारण होते हैं—

- (१) तीन ग्रह उच्च होने पर नरेन्द्र होता है।
- (२) पाँच ग्रह उच्च होने पर अर्ध-चक्रवर्ती होता है।
- (३) छह ग्रह उच्च होने पर चक्रवर्ती का भोग भोगता है।
- (४) सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर होता है।

(५) यदि एक भी ग्रह उच्च हो तो वह व्यक्ति महान् उन्नति करता है। यदि दो-तीन ग्रह उच्च हों तो वह महान् उन्नति करता है। कल्पसूत्र में राहु व केतु का उल्लेख नहीं है।

आचार्य देवेन्द्र मुनि इस कुण्डली के विवेचन से पूर्ण सहमत नहीं लगते। वह अपने ग्रंथ ‘महावीर : एक अनुशीलन’ के पृष्ठ २६१ पर लिखते हैं—

“इस पद्धति से भगवान महावीर के जन्मकालीन ग्रहों में चन्द्रमा और बुध दोनों ग्रह निश्चित रूप से उच्चतम नहीं हैं।” वह टीकाकार के इस कथन से भी सहमत नहीं कि सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर का जन्म होता है।

वर्तमान में विभिन्न लेखकों ने ज्योतिष के आधार पर निम्न प्रकार की जन्म-कुण्डली बनाई है। इसका विवेचन हम अपने विज्ञ पाठकों पर छोड़ेंगे। क्योंकि महावीर-जैसे व्यक्ति की महानता ज्योतिष से ज्यादा उनके उपदेश में है। उनकी वह क्रान्ति है कि जो उन्होंने बिना किसी के सहारे संसार के सामने रखी। दासता, अस्पृश्यता, यज्ञ, वेद, पशुबलि को दूर करना किसी के वश का कार्य नहीं था। उन्होंने मानवता के लिये अपना राजसुख, परिवार एक झटके में त्याग दिया।

माता	—	त्रिशला
पिता	—	सिद्धार्थ
जन्म-स्थान	—	क्षत्रियकुण्डग्राम
समय	—	ई. पू. ५९९
मास व तिथि	—	चैत्र त्रयोदशी
नक्षत्र	—	उत्तर फाल्गुनी
राशि	—	कन्या
लग्न	—	मकर

पाठकों को ध्यान रहे कि यह जन्म-कुण्डली महावीर के जीवन में नहीं बनी थी। अगर बनी होती तो राजा ने जहाँ स्वप्न-पाठकों को बुलाया था, वहाँ जन्म पर ज्योतिषियों से जन्म-कुण्डली का निर्माण करवाते। पर यह बहुत बाद की बात है। उस समय राहू-केतु ग्रहों का उल्लेख ग्रंथों में नहीं आया। आचार्य देवेन्द्र मुनि लिखते हैं—टीकाकार का यह स्थान आधारहीन है कि सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर का जन्म होता है। भगवान महावीर का परिवार विराट् था, कुल विराट् था, वंश विराट् था। उनके अपने व्यक्तित्व के बारे में उववाईसूत्र में सुन्दर उल्लेख मिलता है।

“उनकी आँखें पद्मकमल के समान विकसित थीं। ललाट अर्ध-चन्द्रमा के समान दीप्तियुक्त था। वृषभ के समान माँसल स्कंध थे। भुजायें लम्बी थीं। पूरा शरीर सुगठित था। सुन्दर आकार था। प्रज्वलित निर्धूम अग्नि की शिखा के समान तेजस्वी था जिसे देखते ही मन मुग्ध हो जाता है। उनके शरीर को देखने के लिए आँखें बार-बार लालायित होती थीं। उनके दर्शन के साथ ही मन में भव्यता व प्रियता का भाव जाग पड़ता।<sup>१०</sup> उनका शारीरिक संगठन संस्थान, आकार अत्युत्तम था।<sup>११</sup> उनके शरीर की प्रभा निर्मल स्वर्ण रेखा की तरह थी।<sup>१२</sup> वह एक हजार आठ लक्षणों से युक्त था।<sup>१३</sup>

भगवती सूत्र में कहा गया है—“भगवान का शरीर उदार, शृंगाररहित, अलंकाररहित होते हुए भी विभूषित, लक्षण, व्यंजन और गुण से युक्त था। अत्यंत शोभायमान था।”

भगवान का जीव तीर्थंकर गोत्र के उपार्जन करने के कारण जन्म से तीन ज्ञान का धारक था। भगवान को अपने पूर्वभवों का ज्ञान था। मनुष्य में उनकी कान्ति और बुद्धि निराली थी। यही निराला ढंग उन्हें जनसामान्य में महान् बनाता है। महापुरुष के लक्षण अलग होते हैं, जो जन्म से ही प्रकट होने लगते हैं। ऐसा कुछ महावीर के व्यक्तित्व में छिपा था। उनके बाह्य दर्शन से व्यक्ति आनंदित हो जाता। उनका चेहरा चाँद की तरह चमकता था।

भगवान महावीर का लालन-पालन बड़े पवित्र वातावरण में हुआ। उनकी देखभाल के लिए राजा ने ५ धाय माताएँ रखीं। उनके अलग-अलग कार्य थे।

१. कोई उन्हें दूध पिलाती।
२. कोई स्नान कराती।
३. कोई वस्त्र-आभूषण से सुसज्जित करती।
४. कोई उन्हें बाल-क्रीड़ाएँ करवाती।
५. कोई उन्हें गोद में बैठाती।

### बाल-क्रीड़ाएँ

महापुरुष का जीवन लीलाओं से भरा होता है। महापुरुष के जीवन में सब सहज घटित होता है। इन बाल-क्रीड़ाओं का सर्वप्रथम उल्लेख विशेषावश्यक भाष्य में और आवश्यकनिर्युक्ति में आया है जिसे बाद में आचार्यों ने विस्तृत रूप दिया।

इनमें प्रमुख उनकी आमलक-क्रीड़ा का वर्णन है। यह बात उस समय की है जब उनकी उम्र आठ वर्ष से कम थी। वह अपने गृह में स्थित उद्यान में खेल रहे थे। इस खेल में सभी बालक किसी एक वृक्ष को लक्ष्य करके दौड़ते हैं। जो बालक वृक्ष पर चढ़कर नीचे उतर जाता है वह विजयी कहलाता है। विजयी बालक पराजित बच्चों की पीठ पर चढ़कर उस स्थान पर जाता है जहाँ से दौड़ प्रारम्भ होती है।

एक दिन बालक वर्धमान यही क्रीड़ा कर रहे थे। एक द्वेषी देव साँप का रूप बनाकर प्रभु के बल-पराक्रम की परीक्षा लेने आया। वह बच्चों को डराने लगा। बालक साँप के भय से भाग गये। पर किशोर वर्धमान ने उस साँप को बिना डरे, झिझके उठाया और दूसरे स्थान पर रख दिया।<sup>98</sup>

भगवान महावीर के बचपन का जैनशास्त्रों में कम वर्णन आया है। इसका कारण यह है कि जैन शास्त्रकारों ने त्याग-प्रधान घटना को प्रमुख रखा है। सांसारिक घटनाओं पर उन्होंने ज्यादा बल नहीं दिया है।

### तिंदूषक क्रीड़ा

इसी तरह से मिलती-जुलती घटना तिंदूषक क्रीड़ा की है। आमल क्रीड़ा वाले दिन ही यह घटना हुई। बालकों ने पुनः खेलना शुरू किया। द्वेषी देव अब बालक के रूप में बच्चों के साथ मिल गया।

इस खेल में किसी वृक्ष को लक्ष्य रखकर सभी बालक दौड़ते हैं। जो वृक्ष को प्रथम छू लेता, वह विजयी बालक सभी हारने वालों के कंधे पर बैठता है। देव बच्चों के साथ खेल रहा था। वह जानबूझकर हार गया। उसे तो प्रभु के बल-पराक्रम की परीक्षा लेनी थी। यह देव इन्द्र द्वारा प्रभु की प्रशंसा सहन न कर सका था। उसका मानना था—देव-बल के सामने मनुष्य का बल तुच्छ है।

हारे देव ने बालक वर्धमान को अपने कंधे पर बिठाया। देव बना बालक चलने लगा। कुछ ही समय के बाद बालक बना देव विकराल रूप में प्रकट हुआ। उसने भयंकर पिशाच का रूप बनाया। प्रभु वर्धमान उसकी विकरालता देखने से न डरे, न घबराये अल्कि अंकप, अडोल रहे।

प्रभु ने उसके कंधे पर एक मुक्का मारा। मुक्का लगते ही देव अपनी असल स्थिति में आ गया। उसने अपनी करनी की क्षमा माँगी। फिर प्रभु की इन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा को सच्चा मानते हुए उसने कहा—“प्रभु ! प्रथम आप मेरा वन्दन स्वीकार करें। मेरी भूल को क्षमा करें। इन्द्र ने आपकी जितनी प्रशंसा की थी आप तो उससे ज्यादा वीर व धीर हैं।” देव स्तुति कर अपने स्थान पर चला गया।

### हाथी को यश में करना

इसी प्रकार की एक घटना दिगम्बर जैन ग्रंथों में भी उपलब्ध है। जब प्रभु भर यौवन में थे। एक हाथी राज्य में बिगड़ गया। सारे राज्य में आतंक मचा दिया। राजा व सेना में भगदड़ मच गई। किसी महावत के काबू नहीं आ रहा था।

तभी प्रभु महावीर वर्धमान रास्ते से गुजर रहे थे। उन्हें सामने देखकर हाथी शांत हो गया। प्रभु ने उस पर प्यार से हाथ फेरा फिर उसे महावत को सुपुर्द कर दिया। भगवान महावीर का प्रारम्भिक जीवन शोधपूर्ण था। वह हर बात को अनेकों दृष्टिकोण से परखते हैं। सारे जीवन उन्होंने कप्रगृह नहीं किया।

### पाठशाला में

जब बालक शिक्षा के योग्य होता है तो अभिभावकों को शिक्षा की चिंता लगना स्वाभाविक है। उनकी आयु कुछ बढ़ी। पिता सिद्धार्थ ने उन्हें आठ वर्ष की आयु में पाठशाला भेजा।

पिताजी ने उपाध्याय का सम्मान वस्त्र, अलंकार, नारियल से किया। पाठशाला के सब बच्चों को सामूहिक भोज दिया। फिर तीन ज्ञान के धारक प्रभु वर्धमान को सांसारिक पाठशाला में छोड़ आये। उन्होंने पाठशाला को राजकुमार के योग्य बनवाया। इसका लाभ पाठशाला के हर बच्चे को हुआ।

माता-पिता जब वर्धमान को अध्ययन के लिए भेज रहे थे, तभी इन्द्र का सिंहासन कंपायमान हुआ। उसने अवधिज्ञान से देखा—“तीन ज्ञान के धारक अंतिम तीर्थंकर को पाठशाला में भेजा जा रहा है।” इन्द्र ने उसी समय वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया फिर पाठशाला में आ गया।

उसने कहा—“उपाध्याय जी ! मेरे कुछ प्रश्न व्याकरण संबंधी हैं। अगर आप समाधान कर दे, तो मैं ऋणी रहूँगा।”

इन्द्र वेशधारी ब्राह्मण ने प्रश्न किये। बालक वर्धमान ने सभी प्रश्नों का उत्तर एक बार में ही दे डाला, जबकि उनके गुरु तक ने यह प्रश्न सुने नहीं थे। इन्द्र ने उन्हीं प्रश्नों को ‘इन्द्र व्याकरण’ का नाम दिया।

जब उपाध्याय ने इस बालक को देखा तो हतप्रभ रह गये। उन्होंने कहा—“तू तो जन्मजात ज्ञानी है। तुम्हें पढ़ाना हमारे बस की बात नहीं। वह उन्हें पहले दिन ही राजा के पास छोड़ आये।”

राजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला वर्धमान की बुद्धि से प्रसन्न थे। अब वह घर आ गये।<sup>१५</sup>

## विवाह

भगवान महावीर के चौवन के बारे में जैनशास्त्र व इतिहासकारों ने बहुत कम लिखा है। उनके पारिवारिक जीवन में, उनके परिजनों के नामों के अतिरिक्त आचारंग, कल्पसूत्र आदि में कुछ नहीं आता। यही हाल बाद का है। इस लम्बे अंतराल में कोई घटना घटित न हुई हो यह तो असम्भव है।

श्वेताम्बर आगमों में प्रभु महावीर के श्वसुर का नाम जितशत्रु था। कलिंग नरेश समरसेन ने अपनी योग्य पुत्री कोण्डीय गोत्रीय यशोदा की शादी का प्रस्ताव राजा सिद्धार्थ के सामने रखा। सांसारिक दृष्टि से राजा प्रभु महावीर का फूफा था।

दिगम्बर ग्रंथों के अनुसार महावीर के ससुर का नाम जितशत्रु था। पर श्वेताम्बर ग्रंथों के अनुसार उनका पाणिग्रहण हुआ। यह विवाह उन्होंने माता-पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए किया। जल में कमलवत् जीवन जीने का उदाहरण संसार के सामने रखा। विवाह का विस्तृत वर्णन जैन आचार्य ने शायद इसलिये नहीं किया कि जैनशास्त्र के रचयिता साधु थे। सभी ब्रह्मचारी थे। उन्होंने उन्हीं घटनाओं को महत्त्व दिया जो जीवन को वैराग्य की ओर ले जावें।

प्रभु महावीर ने शादी की। पर वह शादी कब, कितनी आयु में हुई इसका वर्णन नहीं मिलता है। वर्णन आता है उनकी पुत्री प्रियदर्शना के साध्वी बनने का। प्रियदर्शना का पति जमालि, जो प्रभु महावीर का भानजा भी था। भ. महावीर के केवलज्ञान के बाद साधु बनता है। साधु विचारधारा में उसने नये सिद्धांत की कल्पना की। वह ५०० साधुओं के साथ संघ से बाहर निकला।

अब प्रश्न है यह समय कैसे गुजरा। हमारी अपनी कल्पना है कि प्रभु जन्म से तीन ज्ञान के धारक थे इसलिए उन्हें अपना भविष्य व होने वाली घटनाओं का पूर्ण ज्ञान था। वह क्षत्रिय राजकुमार थे। भावी तीर्थंकर थे। उन्होंने कुछ समय महल में रहकर व बाहर घूमकर, संसार में फैले ब्राह्मणवाद को करीब से जरूर देखा होगा। उनके रिश्तेदार तो सब निर्ग्रंथों के भक्त थे। पर बड़े-बड़े राज्यों में यज्ञों का आयोजन होता था। ये यज्ञ कई-कई दिन चलते। राजा व प्रजा इनमें शामिल होती। हजारों पशु धर्म के नाम पर कल्ल हो जाते। इस हिंसा को देखकर उन्हें हिंसा के भयंकर रूप का अनुभव हुआ होगा। अज्ञानी तो हिंसा अज्ञानवश करता है। पर तथाकथित पंडित भी धर्म के नाम पर हिंसा करे। वेदमंत्रों द्वारा



पशु की बलि दे। खाने योग्य पदार्थ आग में 'स्वाहा' कहकर समाप्त कर दिया जाए। आज के मुकाबले तब कितना प्रदूषण रहा होगा। इसकी कल्पना असंभव है।

इसके अलावा उन्होंने समाज के निम्न कहे जाने वाले वर्ग की स्थिति को करीब से देखा होगा। शूद्र की स्थिति से वह अनभिज्ञ नहीं थे। उनकी बस्तियाँ शहर से बाहर थीं। उन्हें छोटे कार्य करने पर मजबूर किया जाता था।

अस्पृश्यता का रोग समाज में घर कर चुका था। शूद्र अस्पृश्य है। वह वेदमंत्र न सुन सकता है, न पढ़ सकता है। शूद्र के लिए सजाएँ अलग थीं। स्मृतियों में शूद्र के लिये अलग कानून व्यवस्था थी। जिन शास्त्रों में ब्राह्मणों ने इतनी असमानता भर रखी है उन्हें धर्मशास्त्रों का नाम दिया गया। उनमें ब्राह्मणों ने अपनी सुविधा अनुसार संस्कार व सामाजिक-व्यवस्था का निर्माण किया था।

यह समय था जब पशुओं के साथ-साथ स्त्री जाति की अवस्था भी दयनीय थी। उन्होंने स्त्रियों की दुर्दशा देखी। उनकी मंडियाँ लगती देखीं। दासों की मंडियाँ उस समय के सभ्य समाज का अंग थीं। किसी की अमीरी में उसके दासों व स्त्रियों की गिनती होती थी। गुलामों की मंडियाँ भी लगती थीं।

स्त्रियों को किसी स्तर पर धर्म का अधिकारी नहीं समझा जाता था। वह धर्म के किसी अनुष्ठान में महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा सकती थी। उस समय कोई पर्दा-प्रथा नहीं थी। इसके बावजूद स्त्रियों की दुर्दशा समाज के सभी वर्गों में एक-सी थी। उन्हें आत्म-कल्याण के मार्ग से वंचित कर दिया गया था।

जैनधर्म का प्राचीन रूप बिल्कुल बिखर चुका था। माँसाहार का धर्म के नाम पर प्रयोग करते थे। हिंसा के इस माहौल को बालक वर्धमान ने अपनी आँखों से देखा। उन्होंने स्त्रियों की दुर्दशा और समाज की उपेक्षा का गहन अध्ययन किया। एक बात देखने वाली है—महावीर ने अपनी जुवान बंद रखी। उन्होंने घर, परिवार में रहकर एक शब्द भी ब्राह्मण व वेद की हिंसा के विरुद्ध नहीं बोला। उपदेश देने से पहले वह अपने को कुछ बनाना चाहते थे। तपस्या की आग में तपकर आत्मा को कुन्दन बनाने का उनका लक्ष्य था। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्हें अभिनिष्क्रमण का फैसला लेना था। हम देखते हैं कि प्रभु जोर-जबरदस्ती में विश्वास नहीं रखते थे। वह अहिंसा, शांति, करुणा के मार्ग पर चलकर ही अपनी बात समझाना चाहते थे। ऐसे समय में जबकि स्त्री को अर्धांगिनी कहकर भोग की सामग्री समझा जाता था। स्त्रियों का कोई संस्कार मंत्र से नहीं होता था। ब्राह्मण चारों वर्णों की स्त्री से शादी कर सकता था। क्षत्रिय, ब्राह्मण को छोड़ तीन वर्णों की स्त्री से शादी कर सकता था। वैश्य (बनिया) ऊपर दो को छोड़ दो वर्णों की स्त्री से शादी कर सकता था। बेचारा शूद्र तो एक शादी करता था। उसके लिए हर व्यवस्था तोड़ने की सजा थी।

स्त्रियों व शूद्र को स्वतन्त्रता नहीं थी। तुलसीदास की भाषा में—

“ढोल गँवार शूद्र पशु नारी,  
यह सब ताड़न के अधिकारी।”

शूद्र पशु व नारी से एक-सा व्यवहार होता था। उन्हें कोई भी धार्मिक व सामाजिक अधिकार नहीं था। वैदिककालीन अधिकार भी उस समय के ब्राह्मण ने क्षत्रियों से छीन लिये। अपनी महिमा मंडित करवाने के लिए यह आह्वान किया “पूजनीयो विप्रः शील गुण हीनो।”

शील गुणों से हीन ब्राह्मण जन्म से पूजनीय है। शूद्र पर जुल्मों की कहानियाँ इतिहास बन गई हैं। आज भी इतना समय जाने पर हम वह अधिकार मातृ समाज व शूद्रों को नहीं दे पाये, जिनसे ब्राह्मणों ने उन्हें इस कारण वंचित कर दिया था कि वह शूद्र है।

महापुरुष तो महापुरुष होते हैं। पर महापुरुष क्रान्ति के अगुआ बने तो युगों तक उनका नाम रहता है। देखने वाली बात है कि जिन बातों के लिए महावीर ने साढ़े बारह वर्ष कठोर साधना की, वे सुधार तो राजकीय कानून द्वारा किये जा सकते थे। पर महावीर किसी की आत्मा व शरीर को मजबूर करने के खिलाफ थे।

समवायांगसूत्र में इन तीर्थकरों के बारे में बताया है कि वासुपूज्य, मल्ली, नेमि, पार्श्व और महावीर कुमारावस्था में दीक्षित हुए।

दिगम्बर परम्परा 'कुमार' का अर्थ 'कुँआरा' करती है और प्रभु को ब्रह्मचारी मानती है। पर श्वेताम्बर परम्परा में 'कुमार' का अर्थ है कुमार अवस्था अर्थात् जिन तीर्थकरों ने राज्य शासन नहीं किया हो, वह कुमार है।<sup>96</sup>

इसी तरह आचारांग एवं कल्पसूत्र में भगवान की पत्नी का नाम यशोदा स्पष्ट लिखा है। वहाँ उनके चाचा का नाम सुपाश्व आया है वह भी श्रमणोपासक था। वह प्रभु पार्श्वनाथ की परम्परा का उपासक था। भगवान महावीर ने परिवार में रहकर संसार को करीब से देखा, परखा तभी वह महान् बने। वैसे भी तीर्थकरत्व के रास्ते में विवाह कोई रुकावट नहीं है।

इस प्रकार के वातावरण में राजकुमार वर्धमान ने संसार को बड़े करीब से देखा। उन्हें घर में कोई कमी नहीं थी। माता-पिता उन्हें अथाह स्नेह करते थे।

घटनाओं का क्रम चलता रहा। लगता है २८वें वर्ष से पहले उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया होगा। नहीं तो आचार्य उनका कहीं न कहीं वर्णन करते। इसलिए यशोदा का जीवन बीते कल की बात बन गया।

आश्चर्य की बात है कि आचार्य शीलांक ने यशोदा के साथ-साथ बहुत कन्याओं के साथ शादी का उल्लेख किया है। लगता है कि उन्होंने यशोदा के साथ आये दासी-परिवार को भी शामिल कर लिया।

इसके साथ आचार्य शीलांक ने नंदीवर्द्धन को छोटे भ्राता के रूप में प्रस्तुत किया है, जो पहले किसी ग्रंथ में नहीं आया। नंदीवर्द्धन का उल्लेख भगवान के बड़े भ्राता के रूप में उपलब्ध है।

## माता-पिता की मृत्यु

दिगम्बर ग्रन्थों में भ. महावीर की प्रतिज्ञा का कोई उल्लेख नहीं है तथा जब दीक्षा ली तब माता-पिता विद्यमान थे यह भी कहा है। किन्तु श्वेताम्बर ग्रंथों में स्पष्ट लिखा है कि महावीर जब अठाईस वर्ष के हुए तब उनके माता-पिता ने अपना अंतिम समय निकट देखकर आत्मा की शुद्धि के लिए कृतपापों की आलोचना की, फिर संथारा संलषणा करके समाधि भावपूर्वक शरीर त्यागा और अच्युतकलविमान से उत्पन्न हुए।

माता-पिता स्वर्गवासी हो जाने पर प्रभु ने सोचा- 'अब मेरी गर्भस्थ प्रतिज्ञा पूरी हो गई है। अब मुझे दीक्षा लेनी चाहिये।' उन्होंने अपनी बात अपने भ्राता नंदीवर्द्धन व चाचा सुपाश्व के सम्मुख रखी।<sup>97</sup>

अपने इस विचार से उन्होंने बड़े भ्राता नंदीवर्द्धन को अवगत कराया। उनके इस फैसले से नंदीवर्द्धन बहुत दुःखी हुए। उसने कहा- 'अभी माता-पिता के वियोग के दुःख को हम विस्मृत ही नहीं कर पाये हैं और तुम प्रव्रज्या की बात करते हो। क्या यह कार्य इस समय घाव पर नमक छिड़कने के बराबर नहीं है? अतः कुछ काल तक ठहरो, बाद में प्रव्रज्या ले लेना। तब तक हम शोक रहित हो जायेंगे।'<sup>98</sup>

जब परिजनों की बात को प्रभु ने सुना, तो सोचा- 'यह लोग सचमुच दुःखी हैं। कुछ समय रुककर मुझे इन्हें धैर्य बंधाना चाहिये।' इस बात को ध्यान में रखकर उन्होंने उत्तर दिया- 'अच्छा, तो मुझे कब तक ठहरना होगा?' परिजनों ने कहा- 'कम से कम दो वर्ष, तब तक शोक शांत हो जायेगा।'<sup>99</sup>

परिवार वालों की बात सुनकर प्रभु ने उत्तर दिया—“ठीक है, मैं आपकी आज्ञा को दो वर्ष के लिए शिरोधार्य करता हूँ। उसके बाद मैं स्वतन्त्र होऊँगा। आप वायदा कीजिये कि मुझे रोकेंगे नहीं।”

इस तरह दो वर्ष का समय शुरू हुआ। वह घर में संन्यासी बन गये। शास्त्र कहते हैं—“वह विरक्तभाव से घर में रहते थे। वे सचित्त जल से स्नान नहीं करते थे। हाथ-पैरों का प्रक्षालन भी अचित्त जल से करते थे। आचमन भी उसी का लेते थे। इस अवधि में अप्रासुक आहार व रात्रि-भोजन का उपयोग भी नहीं किया।<sup>२०</sup> ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन किया। महाव्रतों का पूर्ण पालन किया। भू-शयन किया। क्रोध आदि कषायों से रहित हो एकत्व भाव में लीन रहे।”<sup>२१</sup>

## चक्रवर्ती नहीं

आचार्य देवेन्द्र मुनि जी ने एक घटना के द्वारा लिखा है कि प्रभु महावीर के जन्म के समय चक्रवर्ती के सारे लक्षण थे। कई लोगों के मन में भ्रम पैदा हो गया कि हो न हो कुमार चक्रवर्ती न हो। इस दृष्टि से श्रेणिक, चण्डप्रद्योतन आदि राजाओं ने उनकी सेवा में अपने कुमार भेजे। पर प्रभु महावीर तो वीतरागता के प्रतीक थे। प्रभु की विरक्तता देखकर सबको विश्वास हो गया कि प्रभु महावीर चक्रवर्ती बनकर हमारा राज्य नहीं छीनेंगे। हमारे साथ सद्ब्यवहार करेंगे।

फिर धीरे-धीरे सेवा में रहने वाले सभी राजाओं ने देखा—“प्रभु तो निष्परिग्रही हैं। त्यागी आत्मा हैं। घर, परिवार के मोह से कोसों दूर हैं।” तो वे चल दिये।<sup>२२</sup>

उन्होंने अपने राजाओं को बताया—“सिद्धार्थ क्षत्रिय का पुत्र तो विरक्त आत्मा है, इसे संसार से कुछ लेना-देना नहीं। इस व्यक्ति से हमें कोई भय नहीं होना चाहिये। इस तरह सभी राजा भयमुक्त हो गये।

## लोकान्तिक देवों की प्रेरणा व वर्षोदान

भगवान महावीर की दीक्षा व वर्षोदान का वर्णन कल्पसूत्र आचारांगसूत्र में आया है। कल्पसूत्र में आचार्य भद्रबाहु ने कितने सुन्दर शब्दों में कहा है—

“श्रमण भगवान महावीर दक्ष थे, दक्ष प्रतिज्ञ थे, असामान्य रूपवान थे, स्वात्मलीन थे, सरल स्वभावी थे, अनुपम कान्तिवान थे, अत्यन्त सुकुमार थे, सुप्रसिद्ध थे, ज्ञातवंश चन्द्रमा के समान थे, विदेह थे, विदेहदित्रा (त्रिशला-पुत्र) थे, विदेहजात्य थे। वे तीस वर्ष तक गृहस्थावास में रहे। पर वह निर्लेप कमल की तरह होकर विचरे। अपने माता-पिता के स्वर्गवास के बाद गर्भ में लिए संकल्प के पूर्ण हो जाने पर अपने से बड़े की अनुमति प्राप्त कर वे गृह-त्याग के लिए तैयार हुए।

उस समय लोकान्तिक जीतकल्पी देवों ने परम्परानुसार कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन को छूने वाली, उदार, कल्याण, शिव और छन्द रूप, मंगलकारी, मृदु, मधुर, मंजुल, शोभाकारी, मन में उतर जाने वाली, चित्त को प्रसन्न करने वाली, गम्भीर और पुनरुक्ति रहित वाणी में बार-बार अभिनन्दन करते हुए भगवान की स्तुति की और कहा—

“हे नन्द! आपकी जय हो! जय हो! हे लोकनाथ! हे भगवन्! बोध प्राप्त करो। सारे संसार के सभी प्राणियों के हित के लिए धर्मतीर्थ प्रवर्तन करो, जो परम हित सुख निश्रेयस करने वाला होगा।” इसके बाद देवताओं ने जयघोष किया।

यहाँ एक विभिन्नता कई आचार्यों में पाई जाती है—किसी ने पहले वर्षोदान लिखा है, किसी ने देवों के संबोधन के बाद। तीर्थंकर एक वर्ष दान देते हैं यह तीर्थंकर परम्परा का महत्त्वपूर्ण लोकोपकारी कार्य है।

विशेषावश्यकभाष्य में दान का प्रसंग इस प्रकार है—“दान देने की प्रक्रिया प्रतिदिन पूर्वाह्न में दीक्षा से एक वर्ष तक चलती रही। प्रातः भोजन के समय दान देने आते, वह भी चौराहों पर, बाजारों में, गलियों में इस प्रकार की घोषणा होती कि जिनको जो माँगना है वह माँगे, जो माँगेगा उसे वह वस्तु मिलेगी। इस प्रकार प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख सुवर्ण मुद्राओं का दान होता।”<sup>२३</sup>

आवश्यकचूर्ण और महावीरचरिय में वर्णन है कि जब दीक्षा लेने का एक वर्ष अवशेष रहा तब महावीर के मन में एक वर्ष के भीतर घर छोड़ने का ध्यान आया। उसी समय देवेन्द्र का सिंहासन कम्पायमान हुआ। उसने अपने देव-बल से राजसी खजाने में ३ अरब, ८८ करोड़ ४० लाख स्वर्ण-मुद्राएँ पहुँचाईं। फिर प्रतिदिन सभी प्रकार के जरूरतमंदों की जरूरतें पूरी करने लगे।

आचारांगसूत्र व कल्पसूत्र में सर्वस्व त्याग का वर्णन है। उन्होंने अपनी सारी सम्पदा का त्याग कर दिया। वह सम्पत्ति किसको दी, इसका वर्णन नहीं है। मात्र 'दान' का उल्लेख है। बाद के आचार्यों ने इस दान शब्द की परम्परा अनुसार व्याख्या की है। यह परम्परा पूर्व तीर्थंकरों की परम्परा का अनुसरण है।

आचारांगसूत्र में लोकांतिक देवों के आगमन का भी वर्णन नहीं आया! इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि आचारांगसूत्र में भगवान महावीर का वर्णन पहले अंग में संक्षिप्त रूप में आया है। ● ●

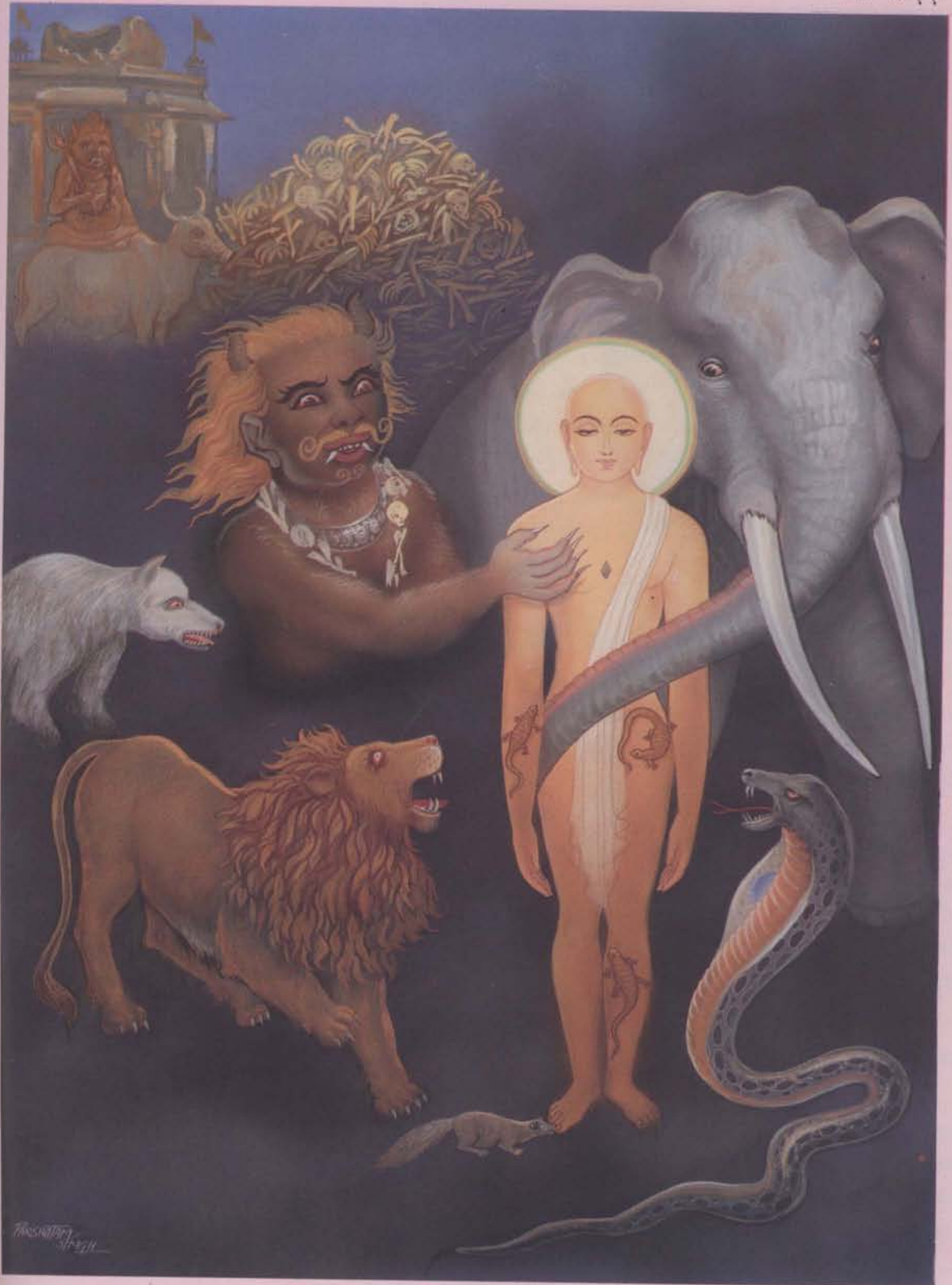
१. इनका वर्णन कल्पसूत्र में देखें—सूत्र ३४-३७
२. कल्पसूत्र ४९-५४
३. कल्पसूत्र ५६-५७
४. कल्पसूत्र ६६-६९
५. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र ४/१/२१७
६. वही ४/१/१६८
७. वही
८. काललोकप्रकाश, सर्ग ३०, पृष्ठ १९९
९. विशेषा. भा. १८४६-१८४७
१०. उववाईसूत्र १
११. (क) प्रज्ञापनासूत्र २३ (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १/१३१
१२. आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, गाथा ३७७
१३. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/२/१०२
१४. (क) आवश्यकचूर्ण, पृष्ठ २४६ (ख) हरिभद्रीया वृत्ति, पृष्ठ १८१ (ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृष्ठ २५८ (घ) चउप्यन महापुरिस चरियं, पृष्ठ २७१ (ङ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/२, १०३-१०७ (च) उत्तरपुराण ७४/२८६-२९५, (छ) महावीरचरियं-नेमिचन्द्र ७५-८६, पृष्ठ ३५, गुणचन्द्र ५४९
१५. विशेषावश्यकभाष्य १/८५७-१/८५८ आव. हरि. वृत्ति, पृष्ठ १८२, मलयगिरि वृत्ति, पृष्ठ २५९/१, महावीरचरियं, गाथा ९२-९५, पृष्ठ ३४ महावीरचरियं गुणचन्द्र, पृष्ठ १२७, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/२/१९९, आवश्यक वृत्ति २८२
१६. (क) कुमारो युवराजेऽश्ववाहके बालक शुके। शब्द रत्न समन्वय कोष, २६८  
(ख) युवराजः कुमार भर्तृदारक। अभिधान चिंततमणि, काण्ड २, श्लोक २४६
१७. (क) आवश्यकचूर्ण, पृष्ठ २४९ (ख) आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति, पृष्ठ १४३ (ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृष्ठ २६० (घ) महावीरचरियं, गुणचन्द्र, पृष्ठ १३४
१८. आवश्यकचूर्ण, पृष्ठ २४९
१९. वही, पृष्ठ २४९
२०. (क) वही, पृष्ठ २४९ (ख) आचारांग १/१/११
२१. (क) आचारांग टीका, पृष्ठ २७५ (आगमोदय समिति) (ख) आवश्यकचूर्ण १, पृष्ठ १४८
२२. कल्पसूत्र, कल्पलता व्याख्यान १२३-१
२३. आवश्यकनिर्युक्ति २०२, विशेषावश्यक १६४०  
आवश्यकनिर्युक्ति २०३, विशेषावश्यक १६४१



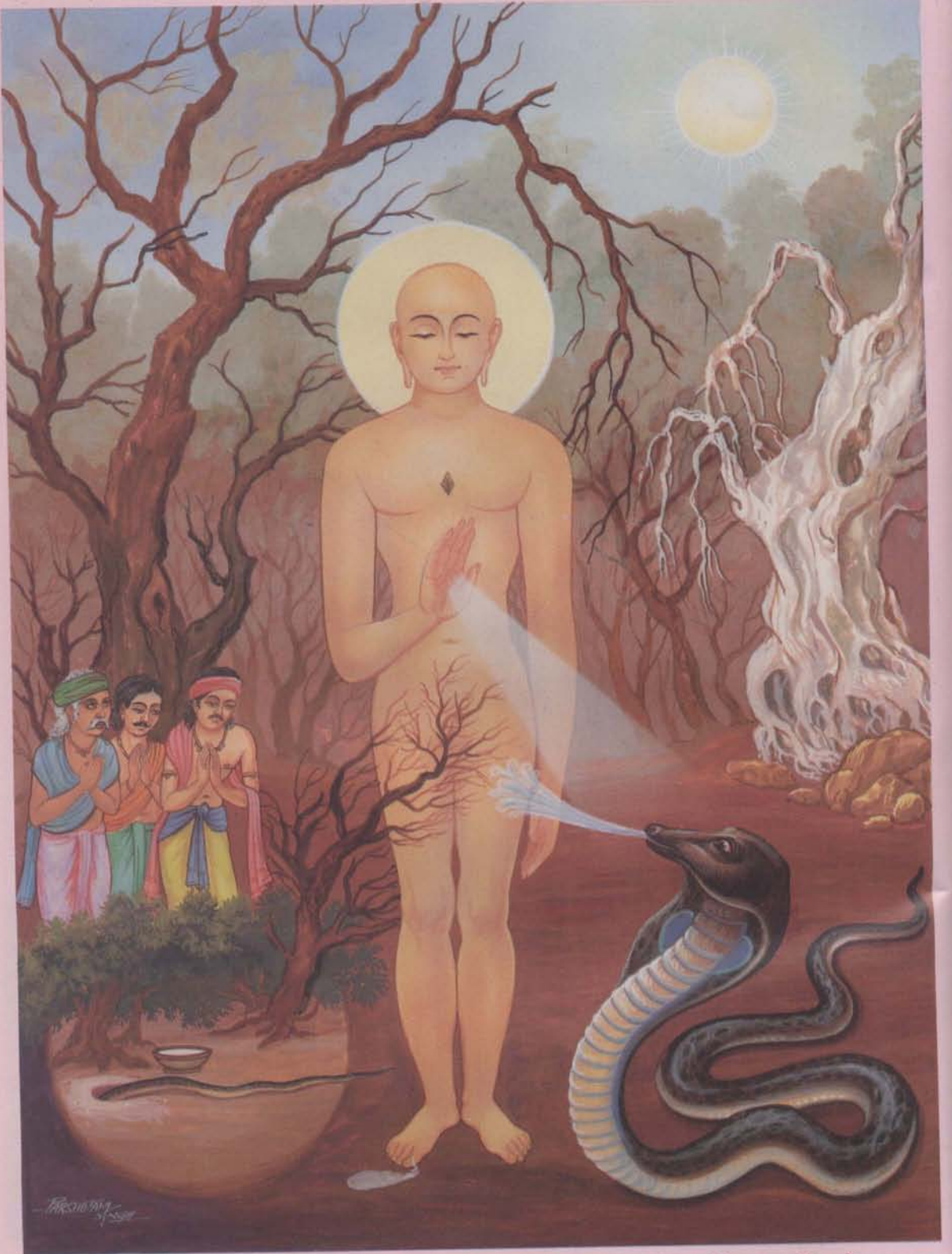
राजकुमार वर्धमान पाठशाला में। ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र द्वारा प्रश्न।



• ग्वाले द्वारा ध्यानस्थ प्रभु महावीर पर प्रहार। इन्द्र द्वारा रोकना तथा इन्द्र ने सेवा में रहने की प्रार्थना की।



शूलपाणि यक्ष द्वारा अनेक प्रकार के भीषण उपसर्ग।



चण्डकौशिक नाग द्वारा दंश मारना। दूध की धार निकलना। फिर शान्त चण्डकौशिक का बिल में घुसकर अनशन। नागरिकों द्वारा नाग देवता की पूजा।



## दीक्षा-कल्याणक

तीर्थंकर के जीवन में जो पंच-कल्याणक होते हैं उनमें तीसरा है दीक्षा-कल्याणक। यह दीक्षा-कल्याण आचारांग व कल्पसूत्र में बड़े मार्मिक ढंग से उल्लिखित है।

भगवान ने ३० वर्ष पूर्ण होने पर भरी तरुणाई में संसार-त्याग का प्रस्ताव बड़े भ्राता नन्दीवर्द्धन व चाचा सुपाश्वर्य के समक्ष रखा। इस बार किसी ने प्रतिरोध नहीं किया। वह वर्द्धमान के स्वभाव से भलीभाँति परिचित थे।

आचारांगसूत्र में कहा गया है—

“अभिनिष्क्रमण की बात जानकर भवनपति, बाणव्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक देव-देवियाँ अपनी देव-सम्पदा के साथ क्षत्रिय कुण्डग्राम में आये। उन्होंने वैक्रिय शक्ति से सिंहासन की रचना की। सभी ने प्रभु महावीर को पूर्वाभिमुख बैठाया। फिर शतपाक व सप्तपाक तेल की मालिश कर स्वच्छ जल से स्नान करवाया। गंध कषाय वस्त्र से शरीर को पोंछा, फिर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। अल्प भार वाले और बहुमूल्य वस्त्र व आभूषण पहनाये।”

इन कार्य से निवृत्त हो वह सुविस्तृत, सुसज्जित चन्द्रप्रभा नामक शिविका में आरूढ़ हुए। मनुष्यों, इन्द्र व देवों ने मिलकर उस शिविका को उठाया। राजा नन्दीवर्द्धन गजारूढ़ होकर अपनी चतुरंगी सेना के पीछे-पीछे चल रहे थे।

(आचारांग २/१५/२७-२९)

कल्पसूत्र में इस दृश्य को इस तरह चित्रित किया गया है—

“श्रमण भगवान महावीर मानव के रूप में गृहस्थ धर्म में प्रवेश से पहले ही अनुत्तर हैं। इन्द्रियातीत अप्रतिहत ज्ञान और दर्शन के धारक हैं।”

“जब उन्होंने अपने ज्ञान से यह जाना कि उनके अभिनिष्क्रमण का समय आ गया है, तब उन्होंने चाँदी, सोना, धन, राज्य, राष्ट्र, सेना, वाहन, कोष, कोषागार, पुर, अन्तःपुर, जनपद आदि सभी सांसारिक वस्तुओं का त्याग कर दिया। उन्होंने अपने अधिकार में रहे विपुल धन, सोना, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, मूंगा, माणक आदि सभी समृद्धि सूचक पदार्थों को अपने सम्बन्धियों में बाँट दिया और याचकों को दान में दे दिया।”

“हेमन्त ऋतु के प्रथम महीने का पहला पक्ष चल रहा था—मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी के दिन छाया पूर्व की ओर ढलने लगी थी और प्रमाणोपेत पौरुषी आ गई थी। उस समय सुव्रत दिवस था, विजय मुहूर्त में श्रमण भगवान महावीर को चन्द्रप्रभा पालकी पर पूर्व दिशा की ओर बैठाया गया। पालकी के पीछे देव, मानव और असुरों के समूह चल रहे थे। उस दीक्षा महोत्सव यात्रा में आगे कितने ही जन शंख बजाते हुए, चक्र लिए हुए, मुख माण्डलिक (विरुदावली बोलने वाले), वर्द्धमानक (कंधों पर बैठाने वाले), मंगल पाठक और घण्टा बजाने वाले चल रहे थे। दर्शक लोग इष्ट, मधुर, मन आह्लादित करने वाली वाणी में भगवान का अभिनन्दन और उनकी स्तुति करने लगे—

“हे नन्द ! तुम्हारी जय हो ! जय हो ! तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम्हारा कल्याण हो। निर्मल ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य द्वारा नहीं जीती हुई इन्द्रियों को जीतो और श्रमणधर्म का पालन करो।”

“हे देव ! बाधाओं पर विजय प्राप्त कर तुम मोक्ष की स्थिति में विचरण करो। तप से राग-द्वेषरूपी मल्लों का नाश करो। धैर्य रूप सुदृढ़ कच्छ बाँधकर, श्रेष्ठ शुक्ल छाया से आठ कर्म शत्रुओं का मर्दन करो। हे वीर ! अद्भुत बनकर त्रिलोक में रंग मण्डप पर आराधना की विजय ध्वजा फहराओ। अंधकार से परे अनुत्तर और श्रेष्ठ केवलज्ञान को प्राप्त करो। परीषहों की सेना का नाश करो। हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ नरपुंगव ! तुम्हारी जय-जय हो। परीषहों, उपसर्गों और भय

भैरव प्रसंगों के बीच बहुत दिनों, पक्षों, महीनों, ऋतुओं, अयनों और वर्षों तक शान्ति और क्षमा को धारण कर निर्भीक होकर विचरण करो। तुम्हारी धर्म-साधना निर्विघ्न हो।”

सूत्र ११३ में आगे इस दीक्षा की शोभा-यात्रा की भव्यता वर्णित करते हुए कहा है कि ऐसी ऐश्वर्यशाली धर्म-यात्रा सहित, श्रमण भगवान महावीर कुण्डपुर नगर में से होते हुए ज्ञातखण्डवन नामक उद्यान में, जहाँ अशोक वृक्ष था, वहाँ पहुँचे।

भगवान की पालकी को अशोक वृक्ष के नीचे रखा गया। प्रभु पालकी के नीचे उतरे। उन्होंने अपने समस्त वस्त्र, आभूषण, माला, अलंकार आदि उतारे, फिर पंचमुष्टि लोच किया। उन्होंने छद्म भक्त ग्रहण किया। उस दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र का योग आने पर मात्र एक देवदूष्य धारण किये हुए गृहवास त्याग एक अनगर बन गये। सिद्धों को नमस्कार करके सामायिक चारित्र ग्रहण किया।

शक्रेन्द्र ने प्रभु के केशों को ग्रहण किया और इन केशों को क्षीर सागर में प्रवाहित किया। कई ग्रन्थों में वस्त्र, आभूषण, कुल महत्तरा लेती है और प्रभु को संयम जीवन पालने की प्रेरणा देती है। कई ग्रन्थों में ये वस्तुएँ शक्रेन्द्र ग्रहण करता है। इन वस्तुओं को ग्रहण करने के बारे में विभिन्न मान्यताएँ हैं। दीक्षा लेते ही प्रभु को चौथा मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया जिसके प्रभाव से वे ढाई द्वीप और दो समुद्र तक समनस्क प्राणियों के मनोगत भावों को जानने लगे।<sup>१</sup>

भगवान महावीर ने देवेन्द्र द्वारा प्रदत्त देवदूष्य वस्त्र को अपना जिन आचार समझकर वाम स्कन्ध पर धारण किया।<sup>२</sup>

आचारांग, कल्पसूत्र, आवश्यकसूत्र सभी में देवदूष्य वस्त्र का उल्लेख है।

दिगम्बर परम्परा में देवदूष्य वस्त्र का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि वस्त्र को वहाँ परिग्रह की श्रेणी में रखा गया है।

इस प्रकार का व्रत ग्रहण करने के बाद प्रभु ने एक अभिग्रह और किया जिसका वर्णन आचारांगसूत्र में मिलता है। यह उल्लेख कल्पसूत्र में नहीं मिलता है।

आज से साढ़े बारह वर्ष पर्यंत जब तक केवलज्ञान उत्पन्न न हो, तब तक मैं देह की ममता को छोड़कर रहूँगा। इस बीच देव, मानव व तिर्यच जीवों की ओर से जो उपसर्ग होंगे उनका समभावपूर्वक सहन करूँगा।<sup>३</sup>

विशेषाक भाष्य में तो प्रभु ने कहा—“आज से सब पाप मेरे लिए अकरणीय-न करने योग्य हैं।”

संसार के इतिहास के अन्दर जिस जर, जोरू, जमीन के लिए संघर्ष होते रहे हैं, उन तीनों को भगवान महावीर ने सहर्ष ठोकर मार दी। संसार में इसी कारण महावीर के समान दूसरा आदर्श पुरुष मिलना दुर्लभ है। उनका जीवन असिधारा पर चलने-जैसा था।

सांसारिक दृष्टि से देखा जाये, तो तीस वर्ष की आयु क्या होती है? खाने, पीने, मजा करने की उमर होती है। पर वर्द्धमान को महावीर बनना था। उन्हें इन वस्तुओं में नाम मात्र की भी आसक्ति नहीं थी।

इसी आयु में उन्होंने परिवार व राज्य-सुख छोड़ा। वृद्ध संकल्प कर साधना के कठोर मार्ग पर कदम बढ़ाया।

१. (क) आचारो तह आचार चूला २/१५/३३ (ख) महावीर चरियं ४/८, पृष्ठ १

२. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ १६८

३. आचारो २/१५/३४

## खण्ड ३

- (१) साधनाकाल
- (२) केवलज्ञान
- (३) धर्म—प्रचार



## साधनाकाल

### प्रथम वर्ष

प्रभु महावीर का साधनाकाल बहुत सी घटनाओं से परिपूर्ण है। उनकी साधना कितनी उत्कृष्ट थी, इसका अनुमान जैन आचार्यों के इस कथन से लग जाता है -

भगवान महावीर की तप साधना एक ओर और तेईस तीर्थंकरों की तपः साधना एक ओर।

भगवान महावीर का साधनाकाल अत्यन्त कठोर घोर परीषहों से युक्त था। उस जीवन में उन्हें जो दैविक, पाशयिक एवं मानविक उपसर्ग, कष्ट एवं परीषह उपस्थित हुए; उसमें उनके अंतःकरण की करुणा, कोमलता, कठोर तितिक्षा, दृढ़ मनोबल और अविचल समाधि के जो दर्शन हमें होते हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ हैं। भगवान महावीर ने दीक्षा लेते ही कूर्मारग्राम की ओर प्रस्थान किया।

इसी समय उन्होंने संसार के सामने दान का वह उदाहरण प्रस्तुत किया, जो संसार के इतिहास में अन्यत्र देखने सुनने को प्राप्त नहीं होता। इस घटना का वर्णन आवश्यकचूर्णि,<sup>१</sup> हारिभद्रीया वृत्ति,<sup>२</sup> मलयगिरि वृत्ति,<sup>३</sup> चउपन्न महापुरुष चरियं,<sup>४</sup> महावीर चरियं,<sup>५</sup> त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र<sup>६</sup> और कल्पसूत्र<sup>७</sup> की टीकाओं में उपलब्ध होता है।

दीक्षा लेकर प्रभु ने ज्ञातृखण्ड वन से विहार किया। जन-जन के नायक को लोग उस समय तक निहारते रहे, जब तक वह आँखों से ओझल न हो गये। ओझल होते ही प्रजा की आँखों से आँसुओं की बरसात उमड़ पड़ी।

प्रभु तो अब अकिंचन भिक्षु बन चुके थे। उनके कंधे पर इन्द्र द्वारा प्रदत्त देवदूष्य के अतिरिक्त कुछ नहीं था। वे आगे बढ़ रहे थे। उन्हें रास्ते में ही सोमशर्मा नाम का वृद्ध ब्राह्मण मिला। यह ब्राह्मण राजा सिद्धार्थ<sup>८</sup> का मित्र था।<sup>९</sup>

वह महावीर के सामने आया। उसने कहा-“भगवन् ! मैं दीन और दरिद्र हूँ। न खाने को अन्न है, न पहनने को वस्त्र है और न रहने को झोंपड़ी है। भगवन् ! जिस समय आप वर्षादान दे रहे थे उस समय मैं भूख से बिलखते परिवार को छोड़कर धन की आशा में परदेश गया हुआ था।<sup>१०</sup> मुझ अभागे को क्या पता था कि यहाँ धन की वर्षा हो चुकी है। मैं घर खाली हाथ लौटा। आते ही पत्नी ने मेरे भाग्य को फटकारते हुए कहा कि यहाँ सोने का मेघ उमड़-घुमड़कर बरस रहा था, उस समय तुम कहाँ भटकते रहे? अब भी शीघ्र जाओ और प्रभु महावीर से याचना करो, वह दीनबन्धु तुम्हें अवश्य निहाल करेंगे।<sup>११</sup> “हे राजकुमार ! इस दरिद्र ब्राह्मण को कुछ तो दीजिये। कल्पवृक्ष के नीचे आकर कौन खाली जाता है? आप तो मेरी स्थिति को जानते हैं।” प्रभु ने गरीब ब्राह्मण की कथा सुनी। फिर करुणा भरे स्वर में बोले-“आर्य ! इस समय मैं अकिंचन भिक्षु हूँ।<sup>१२</sup> ब्राह्मण ने प्रभु के स्कन्ध पर पड़े देवदूष्य वस्त्र की ओर देखा फिर उसने अपने मन की बात कह डाली-“प्रभु ! आपके दर से मैं खाली कैसे जाऊँ? देना चाहो तो अभी भी बहुत कुछ है।” प्रभु ने ब्राह्मण का इशारा समझ लिया। उन्होंने उस वस्त्र में से आधा वस्त्र फाड़कर ब्राह्मण को दे दिया।<sup>१३</sup>

ब्राह्मण प्रसन्न हुआ, उसे लगा कि उसका भाग्य चमक गया है। ब्राह्मण घर आया। देवदूष्य का आधा भाग उसने ब्राह्मणी को दिया। उसके एक किनारे को ठीक करने के लिए यह वस्त्र उसने रफूगर को दिया। रफूगर उस अमूल्य वस्त्र को देखकर कहने लगा-“यह तो बहुमूल्य देवदूष्य है। यदि पूरा वस्त्र मिल जाये तो लाख स्वर्ण-मुद्राएँ मिल सकती हैं।”<sup>१४</sup> रफूगर की बात ब्राह्मण को जँच गई। वह भगवान महावीर के पीछे-पीछे चलने लगा। एक वर्ष और एक मास के पश्चात् वह आधा वस्त्र कंधे से गिर पड़ा।<sup>१५</sup>

बाकी का भाग ब्राह्मण ने उठाकर रफूगर को दिया। रफूगर ने उसे जोड़ दिया। वह वस्त्र लेकर राजा नन्दीवर्द्धन के पास गया। नन्दीवर्द्धन ने देवदूष्य को पहचान लिया। अपने त्यागी भाई की निशानी के रूप में उस वस्त्र को उसने एक लाख स्वर्ण-मुद्राओं में ब्राह्मण से खरीदा।

ब्राह्मण का दारिद्र्य जीवनभर के लिए दूर हो गया। यह घटना प्रभु के त्याग व अनासक्ति का जीवंत प्रमाण है। प्रभु के वस्त्रदान से उनकी करुणा झलकती है। भगवान महावीर ने करुणा को अहिंसा की माँ बताया है।

राजकुमार वर्द्धमान अब श्रमण बन गये थे। प्रव्रजित होते ही उन्होंने संयम की कठोर साधना की। जीवनभर वे अनासक्त रहे। भगवान महावीर का जीवन हर प्रकार से आदर्श था। वे कहने से पहले हर काम स्वयं करते थे। उन्होंने अपने शरीर को प्रयोगशाला बना रखा था।

साधनाकाल में यह उनका प्रथम दान था।

अब प्रभु वस्त्रविहीन दशा में विहार करने लगे। ठीक भी है जब शरीर का मोह नहीं रहा, तो वस्त्र की चिन्ता कौन करे। उन्हें तो अपने सभी कर्म खपाने थे। उनकी जीवन-यात्रा इस ओर अग्रसर थी।

### सहनशील प्रभु महावीर

वह कूर्मारग्राम पधारे। पक्षी अपने घोंसले से बाहर आ चुके थे। सुबह हो रही थी। प्रभु के मन में आध्यात्मिक जागरण का सुनहरा प्रभात प्रस्फुटित हो रहा था। वह गाँव के बाहर जंगल में एक वृक्ष के नीचे नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि केन्द्रित कर स्थाणु की तरह ध्यान में स्थिर हो गये।<sup>१६</sup>

उसी समय एक ग्वाला अपने बैलों के साथ आया। उस समय गोदोहन का समय था। उस ग्वाले को समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने बैलों को किसके सुपुर्द करे? उसने पास में बैठे प्रभु महावीर को देखा। फिर सरल भाव से कहा—“मेरे बैलों का ध्यान रखना। मैं गायेँ दुहकर शीघ्र आता हूँ।”<sup>१७</sup>

प्रभु समाधि में लीन थे। उन्होंने ग्वाले की बात की ओर कोई ध्यान न दिया। बैल सारे दिन जंगल में मस्ती से आजाद घूमते रहे। फिर बैल क्षुधा व प्यास मिटाने दूर निकल गये।

ग्वाला लौटा। उसने देखा, बैल नहीं थे। उसने समाधिस्थ महावीर से पूछा—“मेरे बैल कहाँ हैं?” प्रभु की ओर से कोई उत्तर न पाकर, वह बैलों की तलाश में निकल पड़ा।

कुछ समय के पश्चात् बैल खा-पीकर अपने पुराने स्थान पर आ गये। इधर दिनभर ग्वाला बैलों की तलाश में थका-माँदा, भटकता हुआ प्रभु महावीर के पास पहुँचा। वहाँ बैलों को देखकर वह क्रोधित हो गया। उसके मन में ख्याल आया—“जस्ूर इस तथाकथित साधु ने मेरे बैल छिपा रखे हैं। मुझे इसे सजा जस्ूर देनी चाहिए।”

ग्वाला प्रभु को बैलों को बाँधने वाली रस्सी से मारने को दौड़ा।<sup>१८</sup>

उसी समय इन्द्र का सिंहासन कम्पायमान हुआ। वह प्रभु की सेवा में उपस्थित हुआ। ग्वाले को ललकारते हुए कहा—“मूर्ख ! जिसे तू चोर समझता है। वह चोर नहीं है, ये तो राजा सिद्धार्थ के तेजस्वी पुत्र वर्धमान हैं। राजवैभव को लात मारकर ये आत्म-साधना के लिए निकले हैं। ये तेरे बैलों की क्या चोरी करेंगे? मूर्ख ! तू प्रभु पर व्यर्थ प्रहार कर रहा था।”<sup>१९</sup>

ग्वाला इन्द्र की बात सुन थरथर काँपने लगा। वह प्रभु की महानता को समझ चुका था। उसने गिड़गिड़ाकर प्रभु के चरण पकड़ लिये। वह क्षमा माँगने लगा। फिर प्रभु की वन्दना करके चल दिया।

## स्वावलम्बी प्रभु महावीर

इस घटना का देवराज इन्द्र पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने प्रभु से निवेदन किया—“भगवन् ! वर्तमान कालिक जनता मूर्ख व अज्ञानी है। आपको अभी साढ़े बारह वर्ष तक तप करना है। कई मिथ्यात्वी देव आपकी साधना में रुकावट बन सकते हैं। जंगली पशु आपको कष्ट पहुँचा सकते हैं। मनुष्य आपके रास्ते में मुसीबतें खड़ी कर सकते हैं। इसलिए आप आज्ञा प्रदान करें, ताकि आपके साधनाकाल तक मैं आपकी सेवा में रहकर आपके कष्ट दूर कर सकूँ।”<sup>२०</sup>

महावीर तो महावीर थे। उन्हें पता था कि कोई भी किसी का कष्ट दूर करने में सक्षम नहीं। अपने-अपने कर्मों का व्यक्ति को फल भोगना पड़ता है। कौन, किसको कष्ट देता है। दुःख-सुख, नरक-स्वर्ग निर्माण का कारण स्वयं जीवात्मा और उन्हें भोगने वाला भी वह स्वयं है।

इन्द्र की अज्ञानता पर प्रभु मुस्कराये। फिर स्वावलम्बी भाषा में कहने लगे—“देवेन्द्र ! आत्म-साधक-जीवन अरिहंतों के जीवन में यह न कभी हुआ है, न भविष्य में होगा, जो केवलज्ञान के मामले में किसी की सहायता ले। तथा आत्म-सिद्धि या मुक्ति किसी के बल पर प्राप्त की जाये। साधक तो अपनी शक्ति से मोक्ष तक को प्राप्त होता है।”<sup>२१</sup>

इस प्रकार प्रभु ने प्रथम दिवस में ही अपनी साधना बिना किसी देव-मनुष्य की सहायता से शुरू की थी। वह मनुष्य को, साधना के क्षेत्र में अपना उदाहरण प्रस्तुत कर, आत्म-निर्भर बनाना चाहते थे। वह तो आत्म-साधना के मामले में ईश्वर की गुलामी को भी स्वीकार नहीं करते थे। सिद्ध या ईश्वर उनके लिए आदर्श थे। वह जानते थे कि आत्मा-परमात्मा में कर्म का भेद होता है। जब कर्म की लकीर मिट जाती है तो आत्मा अपने सिद्ध-परमात्मा स्वरूप को प्राप्त करती है। यह मुक्तात्मा ही परमात्मा है।

प्रभु की वाणी सुनकर देवेन्द्र नतमस्तक हो गये। वह धन्य-धन्य कहते हुए अपने स्वर्ग में चले गये।

देवेन्द्र सोचने लगे—‘सत्य है आत्म-साधक संकटों से धिरने पर भी दूसरों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता। क्या विराट् काय हाथियों से धिर जाने पर सिंह कभी दूसरों के सहयोग की ओर ताकता है,<sup>२२</sup> सत्य है प्रभु महावीर हजारों सिंहों के बल के धनी धर्म-चक्रवर्ती थे।’<sup>२३</sup>

दूसरे दिन प्रभु कोल्लाम सन्निवेश पधारे। वहाँ बहुल नाम के ब्राह्मण थे। घी और शक्कर से मिश्रित परमान्न (खीर) से प्रभु ने पारणा किया।

उत्तरपुराण में लिखा है—“प्रभु महावीर विद्याधरों के नगर कुलग्राम पधारे। वहाँ राजा कुल ने उन्हें भिक्षा में खीर दी और भक्तिभाव से सम्मान किया।”<sup>२४</sup>

## तापसों के आश्रम की घटना

भगवान महावीर आगे चले। वह वहाँ से चलकर कोल्लाम सन्निवेश में पधारे। वहाँ पर दुइज्जंत तापस का विशाल आश्रम था। यह तापस प्रभु के पिता सिद्धार्थ का पुराना मित्र था।<sup>२५</sup>

प्रभु को आते देखकर उसने प्रभु का खूब सन्मान किया। भगवान ने भी पूर्व के अभ्यासवश उनसे मिलने दोनों बाहें पसारी।<sup>२६</sup>

प्रभु वहाँ एक दिन विराजे। अगले दिन प्रभु ने वहाँ से भी प्रस्थान किया।

जाने के समय आश्रम के तापसों ने प्रभु से कहा—“यह आश्रम आपका है। जब चाहो, यहाँ आकर रहो। आप वर्षावास का समय यहाँ गुजारना चाहें, तो अच्छा रहेगा।”

भगवान ने बात सुनी, पर कोई उत्तर न दिया। वह सिंह की तरह अभय विचरण करने वाले थे। उनकी दृष्टि में आश्रम व महल दोनों त्याज्य थे।

भगवान काफी समय जंगलों में साधना करते रहे। आखिर वर्षावास का समय आया। प्रभु तापसों के आश्रम में पहुँचे। कुलपति ने उनका स्वागत किया। उनके रहने के लिए झोंपड़ी का निर्माण करवा दिया। उसी कुटिया में वह ध्यान-मुद्रा में स्थित हुए।

उस वर्ष वर्षा न हुई। भूमि सूखी थी। जल के अभाव से वनस्पति पैदा न हुई। पशु भूखे मरने लगे। गाँवों के पशु जंगल में आ जाते। अपनी भूख-प्यास मिटाने की कोशिश करते। भयंकर सूखा था। पशुओं को कहाँ ज्ञान था ?

वे घूमकर तापसों के आश्रम में आने लगे। वहाँ घास-फूस की झोंपड़ियाँ थीं। वे उन्हें खाने की चेष्टा करते।

आश्रम के तापस उन्हें डण्डे लेकर भगाने की चेष्टा में रहते। पर जब पशु भगवान महावीर की झोंपड़ी में आते, प्रभु कुछ भी प्रतिकार न करते। पशुओं के लिए उनके मन में करुणा जो थी।

एक दिन पशु महावीर की सारी कुटिया खा गये। प्रभु तो विदेह थे। ध्यानमग्न थे। दीक्षा लेते समय जो शरीर पर सुगन्धित, गौशीर्ष, चन्दन आदि लगाया गया था और जिसके कारण कितने कीट, पतंग, डांस, मच्छर आदि जहरीले जीव उनके कोमल शरीर पर दंश लगाते पर उन्होंने कभी इन जीवों की ओर ध्यान न दिया।<sup>२७</sup> महावीर ने झोंपड़ी की परवाह न की। जिसे जन्म की परवाह नहीं थी, वह झोंपड़ी की कैसे करता ? इस घटना से तापस के शिष्य नाराज और क्रोधित हो गये। वे सब अपने गुरु से प्रभु की शिकायत करने गये।

तापसों ने अपने गुरु से कहा—“तुम्हारा नया मेहमान कैसा आलसी है कि अपनी कुटिया की रक्षा तक नहीं कर सकता। दूसरों की कुटिया की रक्षा कैसे करेगा ? हमने बड़ी मेहनत से अतिथि-सत्कार को ध्यान में रखकर उसकी झोंपड़ी का निर्माण किया था। पर, इस साधक ने हमारी मेहनत को मिट्टी में मिला दिया है।”

दुइज्जंत तापस पर अपने शिष्यों द्वारा की गई शिकायत का गहरा असर पड़ा। वह भी अपने शिष्यों की तरह उदासीन और अप्रसन्न हो गया। वह महाश्रमण प्रभु महावीर के पास आया और कहने लगा—

‘हे कुमार ! पक्षीगण भी अपने घोंसलों की रक्षा करते हैं। पर तुम राजकुमार होकर भी अपनी कुटिया की रक्षा नहीं कर सकते ? दुष्टों को दण्ड देना आपका कर्तव्य है, फिर कर्तव्य से विमुख क्यों होते हो ?’<sup>२८</sup>

ये बातें कहकर कुलपति तापस चला गया। प्रभु के अन्तर्मन पर इन बातों का गहरा असर हुआ। उन्होंने इन बातों का उत्तर नहीं दिया।

उन्होंने सोचा—‘मैंने राजमहल छोड़े। फिर झोंपड़ी के मोह में क्यों फँसूँ ? मेरे लिए कहीं यह झोंपड़ी ममता और अहंकार का कारण न बन जाये, कहीं मैं अपने मूल लक्ष्य से भटक न जाऊँ। साधना ही तो करनी है। वह किसी भी जगह पर की जा सकती है।’

वह गहन चिन्तन में उतरे—‘मैं झोंपड़ी की रक्षा नहीं कर सकता और झोंपड़ी पर भूखे पशु मुँह मारते हैं, जिस कारण तापस वर्ग नाराज होता है। मेरी समाधि उनकी असमाधि बन जाती है। जो मेरे लिए अनुचित है।’ यह सोचकर प्रभु ने महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया। उन्होंने ५ दिन बाद उस झोंपड़ी को अलविदा कहा।<sup>२९</sup>

इस तरह चातुर्मास में वहाँ से प्रभु विहार कर अस्थिकग्राम पधारे। दुइज्जंत के आश्रम से निकलते ही प्रभु ने पाँच प्रतिज्ञाएँ धारण कीं—

- (१) अप्रीतिकर स्थान पर नहीं रहूँगा।
- (२) सदा ध्यानस्थ रहूँगा।
- (३) मौन रखूँगा।
- (४) हाथ में भोजन करूँगा।
- (५) गृहस्थों की विनय (खुशामद) नहीं करूँगा।



आचारोग सूत्र के अनुसार प्रभु ने किसी के पाल में भोजन नहीं किया। पर आवश्यक सूत्र के टीकाकारों के अनुसार इस घटना से पहले प्रभु गृहस्थ के पाल में भोजन ग्रहण कर लेते थे।

ये कठोर एवं भयंकर प्रतिज्ञाएँ थीं जिनके कारण को अनेक विकट उपसर्ग सहने पड़े। लोग उन्हें कष्ट देते, वह आह तक न करते। लम्बे-लम्बे गुप्त तप करते।

### शूलपाणि यक्ष के उपद्रव

प्रभु ने आश्रम छोड़ा तो अस्थिकग्राम के बाहर एक मन्दिर में रात्रि ठहरने के लिए आज्ञा माँगी। पुजारी ने कहा— 'भिक्षु ! तुम्हारे यहाँ ठहरने में कोई आपत्ति नहीं है। पर यहाँ का देव बड़ा दुष्ट है। वह रात्रि को किसी को भी जिन्दा नहीं छोड़ता। हमारे गाँव में वर्षों पहले एक व्यापारी का बैल अतिबोझ के कारण मर गया था, वह यक्ष बनकर गाँव के लोगों को सताने लगा। हम लोगों ने इसकी प्रसन्नता के लिए इस मन्दिर का निर्माण उसी स्थान पर किया जहाँ यह बैल मरा था। इसी कारण वह मनुष्य के नाम से घृणा करता है। जो भी मानव यहाँ निवास करता है, सुबह मरा हुआ मिलता है।'

“आप सुकुमार हैं। किसी अच्छे घर के लगते हैं। आप कहो तो हम आपको अपने गाँव में ठहरने की सुन्दर व्यवस्था करा सकते हैं।”

पर प्रभु महावीर तो यक्ष शूलपाणि का उपसर्ग सहने और उसका उद्धार करने के लिए पधारे थे।

प्रभु ने पुनः याचना की तो ग्रामवासियों ने मजबूरी में आज्ञा दे दी। इन्द्र शर्मा पुजारी आरती करके घर को चला गया। अकेले मन्दिर में प्रभु महावीर विराजित थे।

अब रात्रि शुरू हुई। जंगल का भयंकर सन्नाटा, दूर-दूर तक मानव जाति का निशान नहीं था। काला धुआँ मन्दिर के चारों ओर से उठ रहा था। धुआँ गहरा होता गया। उस गहरे धुएँ में यक्ष की आकृति दिखाई देने लगी। बिजली की तरह चमकता भयंकर शूल उसके हाथों में था। वह तो रौद्र रूप में साक्षात् यमराज लग रहा था। भगवान के सामने आया और धमकी भरे स्वर में कहने लगा—“हे मृत्यु को चाहने वाले, तूने इन ग्रामवासियों का कहा नहीं माना, लगता है तू मेरी शक्ति से अपरिचित है।” फिर भयंकर अट्टहास हुआ।

यक्ष पुनः धमकी भरे स्वर में बोला—“तू सुन्दर है। सुकुमार है। अँधेरे में तेरा शरीर बिजली की तरह चमक रहा है। फिर तू क्या यहाँ मरने को आया है ? ठीक है कई दिनों से मानव-माँस नहीं मिला। आज तुझे खाकर तृप्त होऊँगा।” यक्ष अपनी क्रूरता पर उतर आया। इतने भयंकर अट्टहास के मध्य प्रभु मौन, ध्यानस्थ मुद्रा में खड़े रहे। यक्ष को कुछ हैरानी हुई—“लोग तो मेरे अट्टहास मात्र से भाग जाते हैं। यह व्यक्ति किस मिट्टी का बना है जो मेरे से डरता नहीं है।” यक्ष ने पूरी शक्ति लगाकर रौद्र रूप धारण किया। उसने हाथी का रूप बनाया। दाँतों के प्रहार से, पाँवों से प्रभु को रौंदने लगा। फिर पिशाच का रूप बनाया। नाखून व दाँतों से प्रभु महावीर के अंगों को नोंचने लगा। प्रभु ध्यानस्थ रहे।

पुनः उसने साँप का रूप बनाकर प्रभु को काटा पर समाधि भंग नहीं हुई। अन्त में उसने दिव्य देव-शक्ति से प्रभु के आँख, कान, नाक, सिर, दाँत, नख और पीठ में भयंकर वेदना उत्पन्न की। प्रभु निर्भय रहे। वह शान्त भाव से सब कष्ट सहते रहे। मेरु की भाँति अकम्पित रहे।

यक्ष प्रभु को कष्ट देने के लिए सारी रात्रि प्रयत्न करता रहा। अन्त में उसका अभिमान चूर हो गया। राक्षसी-बल के सामने आत्म-बल की जीत हुई। प्रभु की इस सहन-शक्ति का देवता पर असर पड़ा। उसने सिर झुकाकर क्षमा माँगी—

“प्रभु ! मुझे क्षमा करो। मेरे से घोर अपराध हुआ है। मैंने आपकी शक्ति को नहीं पहचाना।”

प्रभु की आँखों में करुणा के आँसू थे। प्रभु ने यक्ष को प्रतिबोध दिया। प्रभु के उपदेश से यक्ष के अन्तःचक्षु खुल गये। वह प्रभु महावीर का परम भक्त हो गया।

अब रात्रि का एक मुहूर्त बचा था। प्रभु ने उसी मुहूर्त में नींद ली। उन्हें १० स्वप्न दिखाई दिये।<sup>३०</sup> जिनके फल के बारे में उत्पल ज्योतिषी ने कहा था जो इसी गाँव में रहता था। १० स्वप्न इस प्रकार हैं—

- (१) मैं एक भयंकर ताड़ सदृश पिशाच को मार रहा हूँ।
- (२) मेरे सामने एक सफेद पुंस्कोकिल उपस्थित है।
- (३) मेरे सामने रंग-बिरंगा पुंस्कोकिल है।
- (४) दो रत्नमालाएँ मेरे सम्मुख हैं।
- (५) एक श्वेत गोकुल मेरे सम्मुख है।
- (६) एक विकसित पद्मसरोवर मेरे सामने है।
- (७) मैं तरंगाकूल महासमुद्र को हाथों से पार कर चुका हूँ।
- (८) जाज्वल्यमान सूर्य सारे विश्व को आलोकित कर रहा है।
- (९) मैं अपनी वैदूर्य वर्ण आँतों से मानुषोत्तर पर्वत ढक रहा हूँ।
- (१०) मैं मेरु पर्वत पर चढ़ रहा हूँ।

उत्पल ज्योतिषी पहले प्रभु पार्श्वनाथ की परम्परा का साधु था। फिर साधु जीवन छोड़ इसी गाँव में ज्योतिष से जीवन यापन कर रहा था।

जब उसने सुना कि प्रभु महावीर इस मन्दिर में रात्रि में ठहरे तो उसका माथा ठनका। वह सुबह पुजारी के साथ आया। प्रभु को सकुशल पा सारा गाँव प्रसन्न हो गया। दोनों नमस्कार कर कहने लगे—

“प्रभो ! आपका आत्म-तेज अपूर्व है। आपने यक्ष प्रकोप को समाप्त कर दिया है।<sup>३१</sup>”

### दस स्वप्नों का फल

(१) मोहनीय कर्म का समाप्त होना, (२) शुक्लध्यान, (३) द्वादशाङ्गी का निर्माण, (४) (ज्योतिषी की समझ में नहीं आया) बाद में प्रभु ने बताया कि मैं साधु धर्म व श्रावक धर्म को बताऊँगा, (५) चारों संघ सेवा करेंगे, (६) देव सेवा में हाजिर रहेंगे, (७) संसार-सागर को पार करने वाला, (८) केवलज्ञान की प्राप्ति, (९) कीर्ति-यश, (१०) समवसरण में सिंहासन पर विराजित हो विशुद्ध धर्म की संस्थापना करोगे।

अस्थिकग्राम के इस वर्षावास में फिर भगवान पर कोई उपसर्ग नहीं आया। उन्होंने १५-१५ दिन के आठ अर्ध-मास उपवास किये।<sup>३२</sup>

इस प्रकार स्वर्णिम युग की भविष्यवाणी करने वाले प्रभु महावीर ने एक रात्रि में १० स्वप्न देखे।

### दूसरा वर्ष

मार्ग शीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को भगवान ने अस्थिकग्राम से वाचाला की ओर विहार किया। इसके बीच वह कुछ समय मोराक सन्निवेश पधारे और मोराक सन्निवेश उद्यान में विराजे।<sup>३३</sup> वहाँ की जनता भगवान महावीर के तपस्वी जीवन से बहुत प्रभावित हुई। वहाँ झुण्डों के झुण्ड प्रभु को नमस्कार करने आने लगे। दिन-रात्रि मेला लगने लगा। लोग प्रभु के दर्शन के लिए स्थान-स्थान से आते। इस सन्निवेश में अच्छन्दक जाति के पाषण्डस्थ (ज्योतिषी) रहते थे। वह ज्योतिष

से अपने घर-परिवार का पोषण करते थे। प्रभु महावीर के अपूर्व प्रभाव से लोगों की मनोकामनाएँ उनके दर्शन से पूरी होने लगीं।

वह ज्योतिषी महावीर से जलने लगा। पर प्रभु महावीर के अभूतपूर्व प्रभाव के सामने उनकी ऋद्धियाँ, मंत्र-यंत्र बेकार हो गये। वह घबराकर प्रभु महावीर के पास आया। आकर निवेदन करने लगा—“भगवन् ! आपका व्यक्तित्व अपूर्व है। आप अन्यत्र पधार जायें, क्योंकि आपके यहाँ ठहरने से हमारा धन्धा चौपट हो गया है। मेरे बच्चे तो भूखे मर रहे हैं। अब हम दूसरी जगह जाने में असमर्थ हैं क्योंकि वहाँ परिचय न होने के कारण हमें कौन पूछेगा।”<sup>३४</sup>

करुणा सागर प्रभु महावीर ने ज्योतिषियों की पुकार को सुना और तत्काल वहाँ से विहार कर दिया।

वह वाचाला सन्निवेश गये। इस सन्निवेश के दो भाग थे—(१) उत्तर वाचाला, (२) दक्षिण वाचाला। दोनों सन्निवेशों में सुवर्णबालुका और रुण्यबालुका नाम की दो नदियाँ बहती थीं।

भगवान महावीर दक्षिण वाचाला होकर उत्तर वाचाला को जा रहे थे। तब उनका दीक्षाकालीन आधा देवदूष्य भी सुवर्ण बालुका नदी के तट पर गिर गया। भगवान ने उस वस्त्र को छोड़ दिया। यह वही वस्त्र था जिसको गरीब ब्राह्मण ने रफू करवाकर नन्दीवर्द्धन राजा से सवा लाख स्वर्ण—मुद्राएँ प्राप्त की थीं। प्रभु ने पुनः वस्त्र ग्रहण नहीं किया।

दक्षिण वाचाला से उत्तर वाचाला को जाने के दो मार्ग थे—एक कनखल आश्रम से होकर और दूसरा बाहर से। आश्रम का मार्ग सीधा होने पर भी निर्जन, भयानक व विकट संकटयुक्त था।

बाहर का रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा था। पर सुगम और विपत्तियों से रहित था। महावीर छोटे-छोटे गम्भीर कदमों को आगे बढ़ाते हुए चले जा रहे थे। रास्ते में ग्वाल-बालों से भेंट हुई। उन्होंने देखा एक भिक्षु अकेले मस्त चाल से उस भयानक रास्ते की ओर बढ़ रहा है। वे बालक प्रभु के ओज मण्डित मुख से प्रभावित हुए।

उन्होंने देखा, एक भिक्षु खतरनाक विषधर चण्डकौशिक की बाबी की ओर बढ़ रहा है। यह नाग हमेशा झाड़ियों में छिपा रहता है। महावीर नाग का भक्ष्य न बन जायें, इसलिए हमें इन्हें रोकना चाहिए।

ग्वाल-बाल आगे बढ़े। उन्होंने प्रभु महावीर को रास्ते में रोककर प्रार्थना की—“देवार्थ ! यह मार्ग संकट से भरा हुआ है। इसमें एक भयंकर विषधारी नाग रहता है जिसकी दृष्टि में विष है। यह नाग अपनी विष ज्वाला से मुसाफिरों को जलाकर भस्म कर देता है। यही कारण है कि यह सीधा रास्ता सुनसान है। आप इस मार्ग को छोड़ बाहर के मार्ग से जायें, तो अच्छा रहेगा।”<sup>३५</sup>

प्रभु महावीर तो जगत् गुरु जगत् का कल्याण करने वाले थे। उन्होंने शुभ चिन्तक बालकों की ओर ध्यान न देकर नाग के कल्याणार्थ आगे बढ़ना अच्छा समझा।

वह आगे बढ़े और सर्प के बिल के समीप एक देवालय में जाकर ध्यानस्थ हो गये। वह जंगल बड़ा भयंकर था। उस साँप के आतंक के कारण हरे-भरे जंगल जल गये थे। चहुँ ओर अस्थि-पिंजर नजर आ रहे थे। पर, महाश्रमण मौन, अभय और अजातशत्रु थे। वे तो आत्म-साधक थे।

इधर प्रभु ध्यानस्थ हुए। उधर साँप सारा दिन जंगल का चक्कर लगाकर वापस आ गया। उसने देखा कि एक मनुष्य जंगल में खड़ा है। उसे बहुत हैरानी हुई और उसने सोचा—“मेरे आतंक से तो वर्षों से इस रास्ते में कोई प्राणी नहीं गुजरा। अब इस मनुष्य की क्या हिम्मत कि वह यहाँ आये। ध्यान भी मेरे बिल के ऊपर लगाये।”

उसने विषमय दृष्टि फेंकी। प्रभु पर कोई असर नहीं हुआ। साधारणतः उसके एक चार से मनुष्य भस्म हो जाते थे।

साँप ने दूसरी व तीसरी बार ऐसा वार किया। पर उसका कोई फल नहीं निकला। अब साँप को क्रोध आ गया। पूरे आवेश के साथ उसने प्रभु के चरणों पर दंश मारा। इस बार उसने जो देखा वह असम्भव था। लाल रुधिर के स्थान पर दूध की धारा बह रही थी। प्रभु के चेहरे पर शान्त भरी मुस्कराहट दिखाई दे रही थी। वह अचल खड़े रहे। नागराज को विस्मय हुआ। अब सर्पराज ने प्रभु पर दूसरा आक्रमण पहले से ज्यादा भयंकर रूप में किया। पर साँप का आक्रमण विफल था। प्रभु को कौन गिरा सकता था? साँप ने तृतीय बार पुनः देवा मारा। पर वह महाश्रमण तो हिमगिरि की चट्टान की तरह अडोल रहे।<sup>३६</sup>

नागराज हार चुका था। उसने सोचा—‘वह कोई असाधारण पुरुष है जिस पर मेरा आक्रमण प्रभावशाली असर नहीं दिखा रहा।’

वह प्रभु की ओर निहारने लगा। उसका सारा शरीर बिल से बाहर आ चुका था। उसने प्रभु की आँखों में बहता करुणा अमृत देखा, तो उसका विष शान्त हो गया।

### चण्डकौशिक का पूर्वभव व प्रतिबोध

संसार के महापुरुषों ने स्त्री-पुरुषों को प्रतिबोध दिया। ये उदाहरण आम मिल जाते हैं। पर देव व पशु जगत् को प्रतिबोध देने के उदाहरण जैनशास्त्रों में कई स्थानों पर उपलब्ध होते हैं। तीर्थंकर का जीव क्योंकि तीन ज्ञान का धारक होता है, वह प्रत्येक जीव के पूर्वभव को जानता है। महावीर को देखकर नागराज शान्त हो गया, तो उस समय भगवान महावीर ने कहा—

‘उवसम भो चण्डकोसिया !’

‘चण्डकौशिक ! शान्त हो जाओ। जागृत होओ।’ अज्ञानान्धकार में क्यों भटक रहे हो? पूर्वजन्म के अशुभ कर्मों के कारण तुम इस जन्म में सर्प रूप में पैदा हुए हो। यदि अब न सँभले तो फिर कब सँभलोगे?’<sup>३७</sup>

### चण्डकौशिक—पूर्वभव

नागराज ने जब ‘चण्डकौशिक’ शब्द सुना तो उसे भी जातिस्मरण (पिछले जन्म का) ज्ञान उत्पन्न हो गया।<sup>३८</sup>

भगवान महावीर के वचनामृत सुनते ही उसके सामने उसका पूर्वभव चलचित्र की भाँति घूमने लगा। नागराज सोचने लगा—‘चण्डकौशिक’ नाम मैंने कभी कहीं सुना है।’

वह शान्त हो चुका था। उसे ध्यान आया कि अब से तीन जन्म पहले मैं एक श्रमण था। उग्र तपस्या करता था। मेरा शरीर सूख चुका था। एक बार भिक्षार्थ घूमते हुए मेरे से असावधानी के कारण एक मेढ़क पाँव के नीचे आकर मरा गया। मेरा एक छोटा शिष्य था। उसने मुझे कहा—‘गुरुजी ! इस मेढ़क-हत्या का प्रायश्चित्त लो।’

मैंने अपने शिष्य की अच्छी हितकारी बात पर ध्यान न दिया। मैंने शिष्य की ओर घूरते हुए एक अन्य मरे मेढ़क की ओर इशारा किया और उससे पूछा—‘क्या ! इसे भी मैंने मारा है?’

शिष्य ने मुझे क्रोधित देखकर उत्तर न दिया। हम दोनों उपाश्रय आ गये। सन्ध्या के प्रतिक्रमण का समय हो गया। शिष्य ने मुझे इस प्रतिक्रमण में अज्ञानवश हुए मेढ़क-वध की हत्या का प्रायश्चित्त करने को कहा।

‘मुझे शिष्य की बात पर क्रोध आ गया। उपाश्रय में अंधेरा था। मैं वृद्ध था। मैंने एक डण्डा लिया। उस डण्डे से शिष्य को पीटने के लिए दौड़ा। रास्ते में एक खम्भा था। मैं शिष्य के पीछे भागा। मेरा सिर खम्भे से टकरा गया। इस टक्कर में मैं लहलुहान हो गया। बिना डण्ड प्रायश्चित्त किये मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ।’

“वहाँ से मरकर मैं पूर्व तप के कारण ज्योतिषी देव बना और वहाँ से चलकर इसी कनखल आश्रम में कुलपति का पुत्र कौशिक के रूप में पैदा हुआ। मैं बचपन से ही क्रोधी था। इतने बड़े आश्रम का अधिकार आ जाने के कारण मैं ज्यादा अहंकारी व क्रोधी हो गया था। मेरे गुस्से के कारण मुझे लोग चण्डकौशिक कहने लगे थे।” आश्रम से मेरा बेहद लगाव था। उसके हर वृक्ष, पत्ते, पुण्य का मैं स्वयं ध्यान रखता था। अगर कोई पत्ता भी तोड़ता, तो मैं फरसा (कुल्हाड़ी) लेकर उस व्यक्ति को मारने दौड़ता।

एक दिन मैं किसी काम के कारण आश्रम में नहीं था। श्वेताम्बिका के राजकुमार खेलते-खेलते उस आश्रम में आ गये। उन्होंने मेरे आश्रम के बाग को पूर्ण रूप से उजाड़ दिया। वृक्षों को जड़ से उखाड़ दिया। सारा आश्रम अस्त-व्यस्त कर दिया। लता और पौधों को उखाड़कर ढेर लगा दिया। मैं अचानक वापस आया। अपना उजड़ा आश्रम देखा। इस परिस्थिति को देखकर मेरी आँखों में खून उतर आया। गुस्से से मेरे दिमाग की नसें फट रही थीं। मैं आपे से बाहर हो गया। मैं उन राजकुमारों को मारने के लिए एक तेज कुल्हाड़ी लेकर दौड़ा। मैंने उन्हें ललकारते हुए कहा—“अरे दुष्टो ! लो, अभी मैं तुम्हें इसका मजा चखाता हूँ, तुम्हारे गर्म व ताजे खून से वृक्षों की जड़ों को सींचूँगा।”<sup>३९</sup>

मेरे क्रोधित चेहरे को देखकर बालक घबरा गये। वे राजकुमार मुझे चिढ़ाने के लिए इधर-उधर भागने लगे। मैं उन्हें पकड़ने के लिए इधर-उधर भागा। भागते-भागते मेरा साँस फूल गया। शरीर पसीने से तर-बतर हो गया। क्रोधावेश में मैं भागा जा रहा था। मेरे हाथ में कुल्हाड़ी थी। मेरी आँखों के आगे अंधकार छा गया। मैं फिर भागा जा रहा था। रास्ते में एक गड्ढा था। मैं इस आवेश में गड्ढे में गिर गया। वही कुल्हाड़ी मेरे सिर पर लगी। मेरे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो गये। भयानक क्रोधावेश में मरकर मैं इसी कनखल आश्रम में दृष्टि-विष सर्प बना। इस जन्म में भी उसी क्रोध का क्रम चल रहा था। इसी कारण मैंने इस जंगल पर अपना साम्राज्य कायम किया। अपने जहर से सारे जंगल को जहरीला बना दिया।

पूर्वभव याद आते ही नाग को अपने किये पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह सोचने लगा—‘मैंने पूर्वभव व इस भव के क्रोध के कारण कितना नुकसान उठाया है। इस भव में अब भी मेरा आतंक इस जंगल से गुजरने वाले हर प्राणी पर है। अब प्रभु जिनेश्वर की शरण मिल गई है। इस सुन्दर पश्चात्ताप का अवसर कहाँ मिलेगा ?

चण्डकौशिक अपनी भूल का पश्चात्ताप करने लगा। भगवान के दो शब्दों से वह प्रतिबुद्ध हुआ। उस नागराज ने प्रतिज्ञा की—

“आज से मैं किसी को न सताऊँगा। भगवन ! मुझे क्षमा करो। मुझ पतित पर करुणा करो। मैंने भयंकर अपराध किये हैं। इस विष भरे जीवन से मर जाना भला।” उसने उसी समय आजीवन अनशन व्रत किया।<sup>४०</sup>

प्रभु महावीर ने वहाँ से प्रस्थान किया।

भगवान महावीर को सुरक्षित देख लोगों को हैरानी व प्रसन्नता हुई। नागराज के जीवन के इस परिवर्तन से लोग चकित थे। जिसे मारने के लिए जनता आतुर रहती थी, अब उसकी पूजा के लिए तैयार थी।

नागराज बिल में मुँह छिपाकर बैठ गया। कोई उस पर दूध डाल रहा था, कोई शक्कर, कोई कुंकुम का तिलक लगा रहा था। मधुरता और चिकनाहट के कारण वहाँ हजारों चींटियाँ आने लगीं। वह नाग के शरीर को खाने लगीं। इसी असह्य पीड़ा में चण्डकौशिक के जीव ने सर्प योनि में प्राण त्यागे। शुभ भावों के परिणामों से आयु पूर्ण कर वह आठवें स्वर्ग में देव बना। इस प्रकार भगवान ने साधक अवस्था में एक तिर्यच जीव का उद्धार किया।

इस बात से यह सिद्ध होता है कि प्रभु अन्तर्यामी थे। वह मनुष्य की भाषा के साथ-साथ पशुओं की भाषा भी समझते थे।

इस घटना से जहाँ चण्डकौशिक के जीव को सद्गति मिली, वहाँ कनखल वासियों को भी नागराज के आतंक से मुक्ति मिली। अब वाचाला के दोनों मार्ग जनसाधारण के लिए खुले थे। इस तरह प्रभु महावीर ने चण्डकौशिक नाग का उद्धार किया।

वहाँ से चलकर प्रभु उत्तर वाचाला की ओर गये। वहाँ नागसेन भक्त के घर १५ दिन के उपवास का पारणा खीर से किया।<sup>४१</sup> फिर श्वेताम्बिका नगरी पधारे।

यहाँ कनखल आश्रम की स्थिति का वर्णन करना जरूरी है। इस नाम का नगर व आश्रम उत्तर प्रदेश के हरिद्वार जिले में पड़ता है। यह क्षेत्र नदी, जंगलों से भरा पड़ा है ऐसा प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख है।

श्वेताम्बिका का राजादेशी प्रभु का बहुत बड़ा भक्त था। उसने प्रभु का स्वागत किया। वहाँ से प्रभु सुरभिपुर पहुँचे थे। इस मार्ग में सम्राट् प्रदेशी के पास जाते हुए पांच नैयिक राजाओं ने भगवान की वन्दना की।<sup>४२</sup>

सुरभिपुर का क्षेत्र कहाँ स्थित था? यह पता नहीं चला। सुरभिपुर से प्रभु गंगा को पार करने एक किशती में बैठे। किशती के नाविक का नाम सिद्धदत्त था। नौका ज्यों ही चली, त्यों ही दाहिनी ओर से उल्लू बोलने लगे। उसी नौका में खेमिल नामक एक निमित्तज्ञ बैठा हुआ था। उसने भविष्यवाणी की—

“बहुत बड़ा अपशकुन हुआ है। पर इस महापुरुष के आशीर्वाद से हम बच जायेंगे।”

नौका यात्रियों से भरी पड़ी थी। आगे बढ़ते ही नौका को आँधी का सामना करना पड़ा। भयंकर तूफान में नौका मँझधार में फँस गई। यात्री चिल्लाने लगे। पर प्रभु महावीर ध्यानस्थ रहे।

यह घटना प्रभु महावीर के पूर्वभव के शत्रु सिंह के जीव द्वारा पैदा की गई थी। सिंह अब सुदंष्ट देव था। प्रभु को देखते ही उसे अपने पूर्वजन्म का वैर याद आया जब त्रिपृष्ठ कुमार ने एक शेर को गुफा में अपने हाथों से मारा था। देव का आतंक था। प्रभु के पुण्य प्रताप से स्वयमेव शान्त हुआ। प्रभु के भक्तदेव कम्बल और शम्बल ने सारे उपसर्ग दूर किए। नाव किनारे पर लग गई।<sup>४३</sup>

### प्रभु धूणाक सन्निवेश में

आज धूणा या स्थूणा का क्षेत्र गंगा के पार वर्तमान धानेश्वर है। इसे आज भी स्थूणा ही कहते हैं। यह नया कुरुक्षेत्र व गीता उपदेश-स्थल है। यह क्षेत्र प्राचीन कुरु देश व वर्तमान अम्बाला (हरियाणा) में पड़ता है। प्रभु यहीं किशती से उतरे। गंगा तब कहीं इस क्षेत्र में जरूर बहती होगी। आज यह गंगा कनखल आश्रम को घेरे हुए है। नदियाँ अपना रुख बदलती हैं तो बहुत किलोमीटर पीछे या आगे आ जाती हैं।

कहने का अर्थ यह है कि धूणाक सन्निवेश एक क्षेत्र था जहाँ गंगा बहती थी। फिर आगे गंगा की रेत का क्षेत्र था। आज भी हस्तिनापुर नगर गंगर की रेत का जीता-जागता प्रमाण है जो कुरु देश की राजधानी थी। हो सकता है इस सारे क्षेत्र को धूणाक सन्निवेश कहते हों।

इस बात के विपरीत उत्तर प्रदेश या बिहार में स्थूणा नाम का कोई गाँव या सन्निवेश नहीं है।

इस गाँव में पुष्य नाम का निमित्तज्ञ रहता था। प्रभु गंगा को पार करने के बाद सूखी रेत पर चले जा रहे थे। उनके चरण-चिन्हों के निशान उस रेत पर पड़ रहे थे। ये चिन्ह चक्रवर्ती के थे। पुष्य ने सोचा—‘कोई चक्रवर्ती बनने वाला मनुष्य जंगल में भटक रहा है, मुझे उसकी अब सेवा करनी चाहिए। शायद किसी की साजिश के तहत उसे भागना पड़ा हो। यह एक बात तो निश्चित है कि रेत पर पड़े निशान चक्रवर्ती के हैं। अगर मैं अब उनकी सेवा करूँगा, तो भविष्य में मुझे मालामाल कर दूँगे।’<sup>४४</sup>

ठीक है सांसारिक पुरुष कभी भी वर्तमान से संतुष्ट नहीं हो पाते हैं। इसी तरह के स्वभाव का स्वामी पुष्य ज्योतिषी था। वह रेत में छपे, प्रभु के चरण-चिन्हों को खोजता-खोजता प्रभु महावीर तक आ पहुँचा। पर वहाँ प्रभु महावीर-जैसा निर्ग्रन्थ भिक्षु देखा। उसे अपने ज्ञान-ज्योतिष पर शंका हुई। उसे इतना गुस्सा आया कि वह अपने ग्रन्थों को फाड़ने ही वाला था कि तत्काल इन्द्र प्रकट हुए और ज्योतिषी को बताया-“तुम जिसे भिक्षु कहते हो सचमुच वे ही धर्म-चक्रवर्ती हैं जिनके सामने सारे चक्रवर्तियों के शीश झुकेंगे। तुम्हारा शास्त्र सत्य है।”<sup>४५</sup>

## मंखलिपुत्र गोशालक से भेंट

### दूसरा वर्ष

प्रभु नगर-नगर, गाँव-गाँव घूमकर ध्यान लगाते। कष्ट सहते। इस तरह दूसरे वर्ष का वर्षावास आ गया। प्रभु ने यह वर्षावास राजगृह के एक भाग नालंदा में करने का निश्चय किया। यही उनकी भेंट आजीवक सम्प्रदाय के एक श्रमण मंखलिपुत्र गोशालक से हुई। इतिहास दृष्टि से गोशालक का वर्णन जितना जैन ग्रन्थों में विस्तृत रूप से मिलता है अन्यत्र नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि वह साधनाकाल में प्रभु का साथी रहा था। अपने विपरीत स्वभाव के कारण वह प्रभु के लिए कष्ट का कारण बना। प्रभु से ज्ञान प्राप्त किया। शक्तियाँ प्राप्त कीं। पर वह कुपात्र निकला।

गोशालक का मत नियतिवादी (भाग्यवादी) था। गोशालक भगवान बुद्ध से मिला था। पर वह जैन श्रमणों का कट्टर दुश्मन था। इसकी दुश्मनी का उत्तर प्रभु ने क्षमा से दिया।

नालंदा में एक जुलाहे की तंतुशाला (कपड़े बुनने का कारखाना) में प्रभु ने यह वर्षावास किया। वहाँ मंखलि-पुत्र गोशालक वर्षावास के लिए पहले से टिका हुआ था। उसने प्रभु की तपस्या को करीब से देखा। वह प्रभु के क्रिया-कलापों व मौन-साधना से आकर्षित हुआ।

एक बार प्रभु ने मासखमण की तपस्या को सम्पन्न किया, वह भिक्षा के लिए पधारे। जिस श्रावक ने उन्हें भिक्षा दी, उसके घर पाँच प्रकार के दिव्य प्रकट हुए। देवदुन्दुभि बजी। रत्नों की वर्षा हुई। वह सोचने लगा-‘सचमुच ! इस श्रमण की तपस्या महान् है जिसके तप के आगे देवता भी नमन करते हैं। मुझे भी इनका शिष्यत्व ग्रहण करना चाहिए।’

उसने प्रभु से प्रार्थना की। प्रभु मौन रहे। प्रभु ने इस वर्षावास में एक-एक मास का तप किया।<sup>४६</sup>

जब वर्षावास समाप्त हो गया, तो गोशालक भिक्षा के लिए जाने से पहले पूछने लगा-‘भन्ते ! आज मुझे भिक्षा में क्या प्राप्त होगा?’

प्रभु ने उत्तर दिया-‘कोदों का बासी तन्दुल, खट्टी छाछ व खोटा सिक्का।’

गोशालक प्रभु का वचन झुठलाने उच्च घरों में गया। पर किसी ने भी उसे भिक्षा न दी। फिर वह गरीबों की बस्ती में गया तो एक लुहार ने उसे खट्टी लस्सी, बासी भात व दक्षिणा में खोटा सिक्का दिया।

यही वह घटना थी जिसके कारण मंखलिपुत्र गोशालक नियतिवाद की ओर प्रभावित हुआ।

वह सोचने लगा-‘जो होना होता है, वह होकर रहता है और सब कुछ होना पूर्व से निश्चित है।’ यह सिद्धान्त भाग्यवादी सिद्धान्त है।

भगवतीसूत्र में स्पष्टतः गोशालक के जन्म व घटनाओं का वर्णन इस प्रकार है-

गोशालक का पिता मंख था। वह चित्र दिखाकर भिक्षा माँगता था। गाँव गाँव घूमता था। एक बार वह एक गायशाला में ठहरा हुआ था। वहीं उसकी प्रसूता ने पुत्र को जन्म दिया, जो आगे चलकर गोशालक नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह ज्योतिषशास्त्र का अच्छा ज्ञाता था।’

गोशालक का स्वभाव चंचल, उद्धत व लोलुप था। यही स्वभाव प्रभु के लिए मुसीबत का कारण बना।

प्रभु ने अपना चातुर्मास नालंदा में सम्पन्न किया। वह चातुर्मास से विहार कर कोल्लाग सन्निवेश पहुँचे। यहाँ एक ब्राह्मण के घर पर प्रभु ने चातुर्मास तप का पारणा किया। चातुर्मास समाप्त पर भगवान नालंदा से विहार कर चुके थे।

गोशालक जब वापस उपाश्रय में आया, उसे प्रभु दिखाई न दिये। वह प्रभु की तलाश में उनके पीछे हो लिया। उसे कोल्लाग सन्निवेश में प्रभु महावीर के दर्शन हुए।

उसने प्रभु महावीर से पुनः शिष्य बनने की प्रार्थना की। पर इस बार प्रभु ने इस पर दया कर इसे शिष्य बनाना स्वीकार किया।<sup>४७</sup>

### तीसरा वर्ष

इस प्रकार दो वर्ष साधनाकाल के बीत चुके थे। तीसरा वर्ष शुरू हो गया था। प्रभु कोल्लाग सन्निवेश से मंखलिपुत्र गोशालक को साथ लेकर जा रहे थे। प्रभु सुवर्णखल की तरफ आ रहे थे। रास्ते में एक जगह ग्वालों की टोली मिली। ग्वाले खाली बैठे थे। मस्ती के वातावरण में उन्होंने खीर पकानी शुरू की।

जैसे पहले कहा जा चुका है गोशालक जीभ का लोलुप था। उसने प्रभु से कहा—“भन्ते ! कुछ समय यहाँ रुक जाते हैं। खीर का भोजन खाकर चलेंगे।”

फिर गोशालक प्रभु महावीर के बारे में ग्वालों को परिचय कराने लगे—“हे आर्यो ! यह मेरे गुरु त्रिकालदर्शी<sup>४८</sup> सर्वज्ञ देवार्थ हैं।”

फिर उसने प्रभु महावीर से पूछा—“प्रभु ! क्या ग्वालों की खीर पक जायेगी ?”

प्रभु महावीर ने भविष्यवाणी की—“गोशालक ! जिस खीर को खाने की तुम कामना करते हो, वह तो पकेगी नहीं, पकने से पहले इस खीर की हाँडी फट जायेगी।”

गोशालक ने यह बात ग्वालों से कही। ग्वालों को प्रभु की सर्वज्ञता पर अटूट विश्वास हो गया। वे सोचने लगे—‘यह भिक्षु झूठ कैसे बोल सकता है ? इसलिए हमें इस हाँडी पर विशेष ध्यान देना चाहिए।’

उन्होंने बाँस की खपच्चियों से हाँडी को अच्छी तरह बाँध दिया। उस हाँडी के चारों ओर घेरा डालकर बैठ गये।

इधर भगवान ने आगे प्रस्थान किया। गोशालक खीर की आशा के कारण ग्वालों के बीच बैठा रहा। खीर पक रही थी। हाँडी में दूध लबालब भरा हुआ था और ऊपर से चावलों की मात्रा भी ज्यादा डाल दी, चावल पक रहे थे। पककर चावल फूलने लगे। चावलों के फूलते ही हाँडी के फटकर दो टुकड़े हो गए। सारी खीर धूल में मिल गई।

गोशालक की आशा निराशा में बदल गई।

इस घटना से गोशालक की खीर खाने की भावना धरी की धरी रह गई। पर इस घटना से उसका नियतिवाद पर विश्वास अटल हो गया।

वहाँ से विहार कर प्रभु ब्राह्मणग्राम पधारे। इस गाँव के दो स्वामी थे—एक भाग नन्दपाटक तथा दूसरा भाग उपनन्दपाटक था। भगवान महावीर नन्दपाटक वाले भाग में घरों में भिक्षा के लिए पधारे। भगवान को बासी भोजन प्राप्त हुआ।

मंखलिपुत्र गोशालक भी उपनन्दपाटक में उपनन्द के यहाँ गया। उपनन्द की आज्ञा से उसकी दासी बासी बने तन्दुल, गोशालक को देने आई। पर गोशालक तो जीभ का लोलुपी था उसने इस भोजन को लेने से इन्कार कर दिया।



गोशालक के इन्कार से उपनन्द क्रोधित हो गया। उसने अपनी दासी को आज्ञा दी—“इसको यही भिक्षा देनी है। अगर यह भिक्षा नहीं लेता है, तो उसके सिर पर डाल दो।”

दासी ने वह बासी भोजन गोशालक के सिर पर डाल दिया। गोशालक क्रोध में इधर-उधर की बातें करने लगा। उसने उपनन्द को शाप तक दे डाला। पर गोशालक अभी इस काबिल नहीं था कि किसी को शाप या आशीर्वाद देता।

यहाँ से विहार कर प्रभु अंग देश की राजधानी चम्पानगरी पधारे। वर्षावास का समय आ गया था। वर्षावास के समय में प्रभु ने दो-दो मास के उत्कृष्ट तप के साथ विविध आसन व ध्यानयोग की साधना की।

पहले मासक्षपणक व्रत का पारणा चम्पा में किया। दूसरा पारणा चम्पा से बाहर किया।<sup>४९</sup>

इस प्रकार प्रभु गोशालक के साथ घूमने लगे।

वर्षावास सम्पूर्ण होते ही प्रभु ने कालाय सन्निवेश की ओर विहार किया।

### चतुर्थ वर्ष

कालाय सन्निवेश से वे पत्तकालाय पधारे। दोनों ही स्थानों पर उन्होंने रात्रि का समय खण्डहरों में बिताया।<sup>५०</sup> वे वहाँ ध्यानस्थ थे। इन दोनों स्थानों पर गोशालक के विपरीत स्वभाव के कारण गोशालक को लोगों से मार खानी पड़ी।

पत्तकालय से आपने कुमारक सन्निवेश की ओर विहार किया। वहाँ पर चम्पक नामक उद्यान था वहाँ प्रभु ने ध्यान लगाया। कायोत्सर्ग प्रतिमा धारण करके रहे।<sup>५१</sup>

### भगवान पार्श्वनाथ के श्रमणों में गोशालक की भेंट

जब भिक्षा का समय आया तो गोशालक ने कहा—“चलो प्रभु ! भिक्षा के लिए चलें।”

प्रभु ने कहा—“आज मेरा उपवास है।”

गोशालक निकल पड़ा। उस समय पार्श्वपत्य मुनि चन्द्र स्थविर, कुमारक सन्निवेश में कुम्हार कुवणय के स्थान पर ठहरे हुए थे। गोशालक ने रंग-बिरंगे कपड़ों में मुनि को देखा। गोशालक ने पूछा—“तुम कौन हो?”

पार्श्वपत्य—“हम श्रमण निर्ग्रन्थ परम्परा के मुनि हैं। प्रभु पार्श्वनाथ के शिष्य हैं।”

गोशालक—“तुम कैसे निर्ग्रन्थ हो? इतने सारे वस्त्र और पात्र का परिग्रह तूने इकट्ठा किया है। सच्चे निर्ग्रन्थ तो मैं, मेरे धर्माचार्य हैं जो तप और त्याग की साक्षात् प्रतिमा हैं।”<sup>५२</sup>

पार्श्वपत्य—“जैसा तू है, वैसे ही तेरे गुरु स्वयं गृहीतलिंग होंगे।”

गोशालक—“तुम मेरे तप-त्यागी गुरु का अपमान करते हो। मेरे धर्माचार्य के तप-तेज से तुम्हारा उपाश्रय जलकर भस्म हो जायेगा।”

गोशालक के कहने पर उनका कोई नुकसान नहीं हुआ।

पार्श्वपत्य—“क्यों व्यर्थ कष्ट कर रहे हो? हम तुम्हारे—जैसों के शाप से न तो स्वयं भस्म होंगे, न ही हमारा उपाश्रय।”

गोशालक इन मुनियों के उत्तर से चुप होकर वापस लौट आया। उसने आकर सारी बातें प्रभु से निवेदन कीं। प्रभु के सामने उसने कहा—“आज मेरी सारम्भ और सपरिग्रह श्रमणों से भेंट हुई। मेरे शाप देने से उनका कुछ भी नहीं बिगड़ा।”

भगवान महावीर—“गोशालक ! वह मेरे से पहले हुए प्रभु पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमण हैं।”

## चोराक सन्निवेश का उपसर्ग

प्रभु गोशालक को समझाकर चोराक सन्निवेश पधारे। इस राज्य में तस्करी चरम सीमा पर थी। इसी कारण प्रहरी को सावधान रहना पड़ता था।

आरक्षकों ने जब दो नये आगन्तुको को आते देखा तो पूछताछ की। प्रभु साधना के कारण मौन व्रत में थे। उन लोगों ने प्रभु को गुप्तचर समझकर बहुत शारीरिक यातनाएँ दीं; प्रभु साधना के कारण चुप थे।

पर साधना तो साधना है, वह बेकार नहीं जाती। जब वह प्रभु को यातनाएँ दे रहे थे, तो उस जंगल में भ्रमण करती सोमा और जयन्ती परिव्राजिकाएँ आ पहुँचीं। वे दोनों उत्पल ज्योतिषी की बहनें थीं। उन्हें ज्ञात हुआ कि ये लोग अज्ञानतावश सिद्धार्थनन्दन को गुप्तचर समझ रहे हैं, तो तेजी से आगे बढ़ीं। उस स्थान पर आईं, जहाँ सैनिक प्रभु को यातनाएँ दे रहे थे। उन्होंने आते ही सैनिकों को रोका और कहा—“यह तो क्षत्रियकुण्डग्राम के राजकुमार वर्द्धमान हैं, जो आत्म-साधना के लिए गृह त्यागकर सत्य की तलाश कर रहे हैं।” सिपाहियों ने प्रभु को मुक्त कर दिया और अपनी अज्ञानता के लिए क्षमा माँगी।<sup>५३</sup>

चोराक सन्निवेश से विहार कर प्रभु पृष्ठनंदा की ओर पधारे। यहाँ उन्होंने चतुर्थ चातुर्मास सम्पन्न किया। चातुर्मास के समय उन्होंने विभिन्न प्रकार के आसन, तप व ध्यान किए। चार महीने आहार का त्याग किया।<sup>५४</sup>

### पाँचवाँ वर्ष

वर्षावास समाप्त होने पर भगवान महावीर “कयंगला” नगरी में पधारे। वहाँ दरिद्रथेट नामधारी पाषंडस्थ लोग रहते थे। उनका अपना देवालय था। ये लोग पत्नी व सम्पत्ति के साथ रहते थे। भगवान ने एक रात्रि इसी स्थान पर व्यतीत करने का निश्चय किया।

उस रात्रि इन लोगों का कोई महोत्सव था। नृत्य-गायन हो रहा था। बाहर कड़के की ठण्ड पड़ रही थी। इस कड़कड़ाती ठण्ड की परवाह किये बिना प्रभु ध्यानस्थ खड़े थे। इधर नाच-गाना चल रहा था। गोशालक भी अपने स्वभाव के अनुसार नृत्य-गायन देख रहा था। यह उन लोगों का धार्मिक नृत्य था। गोशालक ने नाचते स्त्री-पुरुषों को देखा और कहा—“यह कैसा धर्म है, जिसमें स्त्री-पुरुष निर्लज्ज होकर नाच रहे हैं?”

लोगों ने उसे प्रभु महावीर का शिष्य समझकर स्थान दिया। जब वह उन्हीं का अपमान करने लगा, तो लोगों ने अन्दर से पकड़कर उसे बाहर जंगल में फेंक दिया।

वह ठण्ड से ठिठुर रहा था। फिर वह बोला—“संसार में सत्य बोलने की भी सजा मिल रही है।”

उन लोगों को उस पर दया आई। लोग सोचने लगे—“यह देवार्थ प्रभु महावीर का शिष्य है। प्रभु का सेवक है। इससे कोई अचानक भूल हो गई है, चलो, जाने दो। इसे पुनः अन्दर बुला लो।”

लोगों ने गोशालक को अन्दर बुला लिया। आदत से लाचार गोशालक पुनः उसी हरकत पर उतर आया और वह अपनी मूर्खतापूर्ण बातें दोहराने लगा। इसकी कीमत गोशालक को तत्काल चुकानी पड़ी। पहले कुछ युवकों ने उसे पीटा। वृद्धों ने युवकों को समझाकर गोशालक की जान बचाई।

वृद्धों ने कहा—“हमें इस मूर्ख की बातों की ओर ध्यान न देकर अपना अनुष्ठान जारी रखना चाहिए। गीत और संगीत की आवाज इतनी ऊँची करो कि इस भिक्षु की आवाज ही गुम हो जाये।”

नवयुवकों को बुजुर्गों की बात जँच गई। गीत, संगीत जोर-शोर से पुनः चला। गोशालक की ओर किसी ने ध्यान न दिया। बाजे-गाजे के स्वर में गोशालक का स्वर किसी को सुनाई न दिया।

अगली सुबह प्रभु वहाँ से विहार कर श्रावस्ती पधारे। नगर के बाहर कायोत्सर्ग तप किया।

श्रावस्ती में शिवदत्त ब्राह्मण की पत्नी ने मृत बालक के रुधिर से खीर बनाई थी। उसने वह खीर गोशालक को दी। गोशालक ने वह अपवित्र खीर खाई। प्रभु ने गोशालक को इस मूर्खता के प्रति सावधान किया। गोशालक के मन में शंका थी। प्रभु तो सर्वज्ञ थे। कुछ ही समय के बाद गोशालक ने वमन किया। वमन में वे सब वस्तुएँ देखीं, जो प्रभु ने बताई थीं। इस बात को देखकर गोशालक का नियतिवाद पर विश्वास और टूट हो गया।<sup>५५</sup>

श्रावस्ती से विहार कर प्रभु हलिंगुग गाँव पधारे। गाँव के समीप हलिंगुग नामक विराट् वृक्ष था। भगवान ने उसी वृक्ष के नीचे ध्यान लगाया।

उधर अन्य यात्रियों ने भी वहाँ निवास किया था। उन्होंने सर्दी से बचने के लिए आग जलाई। सूर्योदय के समय इन यात्रियों ने वहाँ से प्रस्थान किया। वह आग धीरे-धीरे प्रभु की ओर बढ़ने लगी।

गोशालक कायरता दिखाता हुआ भाग खड़ा हुआ। प्रभु तो ध्यानस्थ थे। बाहर की घटनाओं से अनजान थे। वह तो आत्मभाव में डूब चुके थे। जिसे आत्मा की चिन्ता है उसके लिए शरीर की कीमत्त कुछ नहीं रह जाती। आग हवा की सहायता से आगे बढ़ी। उसने प्रभु महावीर के कोमल शरीर को झुलसा दिया। उनके पाँव बुरी तरह झुलस गये।

दोपहर को प्रभु ने वहाँ से नांगला गाँव की ओर प्रस्थान किया। प्रभु बलदेव के मन्दिर में ध्यानस्थ हुए। नांगला से चलकर आवर्त गाँव पधारे, वहाँ बलदेव के मन्दिर में ध्यान लगाया।<sup>५६</sup>

आवर्त से विचरण करते हुए भगवान व गोशालक चौराक सन्निवेश होते हुए कलंबुका सन्निवेश पधारे। कलंबुका के अधिकारी मेघ और कालहस्ती जागीरदार थे, पर वे दोनों डाके भी डालते थे। जिस समय प्रभु महावीर पहुँचे, कालहस्ती अपने गिरोह के साथ डाका डालने जा रहा था।

उसने परदेशी भिक्षु को देखा फिर पूछा—“तुम कौन हो?” दोनों ने ही कोई उत्तर नहीं दिया। पहले कालहस्ती ने उन्हें पीटा, फिर दोनों को अपने भाई मेघ के पास भेज दिया। दोनों को गुप्तचर समझा।

मेघ ने महावीर को गृहस्थ अवस्था में एक बार क्षत्रियकुण्डग्राम में देखा था। उसने प्रभु को पहचान लिया। प्रभु को बन्धन-मुक्त किया। फिर क्षमा माँगते हुए कहने लगा—“प्रभु ! मेरे भाई से यह अपराध अज्ञानतावश हुआ है।”<sup>५७</sup>

प्रभु अब अनार्य देश में अपने कर्मों को खपाने के लिए भ्रमण कर रहे थे। प्रभु के कर्मों का भुगतान काफी शेष था। प्रभु जानते थे कि मुझे अर्हत् बनने से पहले इन कर्मों से मुक्ति पानी है। इसलिए वह अनार्य देशों में विचरण करने लगे। ये क्षेत्र आधुनिक बंगाल, बंगला देश, बिहार, उड़ीसा में पड़ते थे। ‘अनार्य देश में कर्मनिर्जरा में अधिक सहायता मिलेगी।’ यह सोचकर आपने राढ़ (लाढ़) भूमि की ओर विहार किया।

यह प्रदेश उपसर्ग व कष्टों से भरा पड़ा था। अनार्य लोग प्रभु को विभिन्न ढंग से कष्ट देते थे। उनके नग्न शरीर को देखकर लोग उनके पीछे कुत्ते लगा देते। कभी प्रभु के सुन्दर शरीर को देखकर वहाँ की स्त्रियाँ आसक्त हो जातीं। वे प्रभु से कामभोग की याचना करतीं। उन्हें भयंकर मच्छर सताते। भिक्षा मिलने का तो वहाँ प्रश्न ही नहीं था। श्री आचारांगसूत्र में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

इन अनार्य लोगों की अयहेलना, निन्दा, तर्जना और ताड़ना आदि अनेक उपसर्गों को सहते आपने अपनी कर्मनिर्जरा की प्रक्रिया शुरू की। यह समय दिल हिला देने वाले कष्टों से भरा पड़ा था। आदिवासी उन्हें नंगा देखकर डण्डों से पीटते थे।

भगवान राढ़ (लाढ़) भूमि से वापस आ रहे थे। उसी की सीमा प्रदेश में पूर्ण कलश नामक अनार्य गाँव से निकलकर आर्य देश की सीमा में जा रहे थे। रास्ते में दो चोर मिले, जो अनार्य देश में चोरी करने जा रहे थे। भगवान के दर्शन

को इन चोरों ने अपशकुन मानकर उन पर आक्रमण किया। उसी समय प्रभु की रक्षा के लिए स्वयं इन्द्र प्रत्यक्ष रूप में आया। अपनी सेवा का प्रमाण देते हुए उसने चोरों को भगा दिया।

आप आर्य देश मलय में घूमने लगे। पाँचवाँ वर्षावास आपने मलय की राजधानी भदिल नगरी में किया।

इस चातुर्मास में भी भगवान ने चातुर्मासिक तप और स्थान आदि आसन किये। चातुर्मास समाप्त होने पर भगवान ने भदिल नगरी के बाहर पारणा किया। फिर कदली समागम की ओर विहार किया।

प्रभु की दीक्षा को पाँच वर्ष पूर्ण हो चुके थे। छठा वर्ष शुरू हो गया था।

प्रभु कदली समागम में ध्यानस्थ हुए। कुछ समय वहाँ ठहरकर जंबुसडं पहुँचे।

## छठा वर्ष

जंबुसडं से विहार करते हुए प्रभु तंबाय सन्नवेश गये। वहाँ पहले से ही ठहरे पार्श्वपत्य नन्दिसेण स्थविर घूम रहे थे। गोशालक उनसे मिलने चला गया। वहाँ वह उनसे भी झगड़ा मोल ले बैठा।

तंबाय से प्रभु कूविय सन्नवेश क्षेत्र में पधारे। वहाँ काफी सतर्कता थी। प्रभु व गोशालक दोनों को गुप्तचर समझकर पकड़ लिया गया। राजपुरुषों ने प्रभु को खूब पीटा, पर प्रभु न बोले। वह तो मौन व ध्यान अवस्था में थे।

परन्तु वहाँ भी विजया और प्रगल्भा दो परिव्राजिकाएँ तुरन्त घटना-स्थल पर सूचना मिलते ही पहुँच गईं। वे निडरता से राजपुरुषों को फटकारने लगीं—

“तुम जिन्हें गुप्तचर समझ रहे हो, वह तो क्षत्रियकुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ के पुत्र हैं, अन्तिम तीर्थंकर हैं। क्या तुम इन्हें भी नहीं पहचानते? इनकी सेवा तो देवाधिदेवराज इन्द्र स्वयं करते हैं। जब उन्हें तुम्हारी हरकत का पता चलेगा, तो तुम्हारा और तुम्हारे राजा का विनाश निश्चित है।”

परिव्राजिकाओं की फटकार काम कर गई। राज्याधिकारी प्रभु की महानता पहचान चुके थे। उन्होंने प्रभु से क्षमा माँगी। कृपासिन्धु परमात्मा भगवान महावीर ने मौन रहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

कूविय से भगवान महावीर वैशाली पहुँचे। वहाँ का प्रमुख चेटक प्रभु का मामा था। पर प्रभु ने जो प्रतिज्ञा की थी उसे निभाया। वह एक लुहार की शाला में ध्यानस्थ हुए। अगले दिन लुहार ६ महीने की बीमारी के पश्चात् जब कारखाने में आया, तो वह प्रभु को मारने दौड़ा। उसने पहले ही दिन प्रभु के दर्शन को अमंगलकारी और अकल्याणकारी माना। पर ज्यों ही उसने कदम बढ़ाये उसके पाँव उसी धरती पर स्तम्भित हो गये। लुहार को अपनी भूल का ज्ञान हो चुका था। अज्ञानतावश उसने ऐसा मान लिया था कि यह मुण्डित भिक्षु अमंगलकारी है। वह नहीं जानता था कि यह तो क्षत्रियकुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ के सुपुत्र व वैशाली की पुत्री त्रिशला के अंगजात राजकुमार हैं।

प्रभु वैशाली से चल पड़े। फिर ग्रामक सन्नवेश में पधारे। उस ग्रामक सन्नवेश के एक उद्यान में विभेलक यक्ष था। वह प्रभु महावीर का बड़ा भक्त था। उसने वहाँ रहकर प्रभु की खूब सेवा की। प्रभु को कोई कष्ट नहीं होने दिया। वह स्वयं प्रभु की पूजा एवं भक्ति करने लगा।

## कटपूतना का उपद्रव

प्रभु फिर ग्रामक नगर से शालिशोर्ष पधारे। नगर के बाहर उन्होंने आत्मभाव में विचरण करने वाला ध्यान लगाया। वे दिन माघ की ठण्ड के थे। भगवान का शरीर वस्त्ररहित था। वहीं कटपूतना नामक एक व्यंतरी ने प्रभु को घोर उपसर्ग दिया। भगवान के भव्य व अडोल रूप को देखकर वह द्वेष की आग से जल उठी। उसने उसी समय अपना रंग दिखाया

शुरू किया। उसने सर्वप्रथम परिव्राजक रूप बनाया। अपनी बिखरी जटाओं में ठण्डा पानी भर-भरकर प्रभु के शरीर पर छिड़कने लगी। फिर उसने अपने देव-बल से शीत वायु चलाई, जो प्रभु के कंधों तक को छूती थी। उसने भीषण और असाधारण उपसर्ग दिये। प्रभु इन सब उपसर्गों में क्षणभर भी विचलित न हुए।

कटपूतना द्वारा दिये उपसर्गों को धैर्यपूर्वक सहने के कारण भगवान को “लोकाऽवधि” ज्ञान प्राप्त हो गया। इस ज्ञान के प्रभाव से आप लोकवर्ती समस्त द्रव्यों को हस्ताकमलवत् जानने व देखने लगे। अन्त में महावीर की धैर्य और क्षमाशीलता के सामने कटपूतना हार गई। उसने अपने क्रोध को शान्त किया। कटपूतना अपने असली रूप में आई। उसने अपने पापों का पश्चात्ताप किया। उसने प्रभु से क्षमा मांगी और स्व-स्थान पर चली गई।

शालिशीर्ष से विहार कर प्रभु भद्रिका नगरी पधारे। अब वर्षावास का समय आ चुका था। सो प्रभु योग्य स्थान की तलाश में घूमने लगे।

इधर गोशालक स्थान-स्थान पर भटक रहा था। वह यह सोचकर अलग हुआ था कि मुझे महावीर के कारण कष्ट उठाने पड़ते हैं। पर उसकी अब हालत बुरी से बुरी होती गई। वह ६ मास अलग विचरण करने के बाद पुनः प्रभु महावीर से आ मिला।

प्रभु ने यह चातुर्मास भद्रिका नगरी में बिताया। इस चातुर्मास में आपने चातुर्मास तप किया। भिन्न-भिन्न योगासन व ध्यान की क्रियाएँ कीं। चातुर्मास समाप्त होते ही आपने सर्वप्रथम पारणा किया।

### सातवाँ वर्ष मगध भूमि में

चातुर्मास समाप्त कर प्रभु ने मगध देश की ओर विहार किया। मगध देश में गर्मी व सर्दी के कष्टों को सहन किया। फिर इसी देश की आलंभिया नगरी में चातुर्मास किया। चातुर्मासिक तप और विविध योग साधनाएँ सम्पन्न कीं।

चातुर्मास के अन्त में पारणा कर आपने वहाँ से विहार किया। यहाँ से चलकर आप कोल्लाग सन्निवेश की ओर पधारे। आपने कोल्लाग सन्निवेश में नगर के बाहर एक उद्यान में बने वासुदेव के मन्दिर को ध्यान-स्थल बनाया। काफी दिन वह ध्यान-साधना करते रहे।

यहाँ प्रभु के किसी प्रकार के उपसर्ग का वर्णन उपलब्ध नहीं होता।

### आठवाँ वर्ष

कोल्लाग सन्निवेश में विहार कर भद्रणा सन्निवेश में पधारे। वहाँ उद्यान में बने बलदेव के मन्दिर में ध्यान लगाया। यह मन्दिर नगर से बाहर था। भद्रणा सन्निवेश से आप बहुसाल होते हुए लोहार्गला पधारे। लोहार्गला के राजा जितशत्रु पर उन दिनों शत्रुओं का काफी आतंक था। नगर-व्यवस्था में काफी चौकसी बरती जा रही थी। हर स्थान पर गुप्तचर घूम रहे थे। किसी भी बाहर के आदमी को पूरी जानकारी प्राप्त होने पर ही नगर में प्रवेश की आज्ञा थी।

प्रभु महावीर व गोशालक अपनी धुन में जा रहे थे। वे नगर-सीमा पर पहुँचे। पहरेदारों ने परिचय माँगा। दोनों ने कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों को राजा के सैनिकों ने गिरफ्तार कर लिया। बंदी बनाकर राजसभा में राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। राजसभा में उस समय उत्पल नामक नैमित्तिक उपस्थित था। भगवान को देखते ही श्रद्धावश खड़ा हो गया और कहने लगा—“ये गुप्तचर नहीं हैं; राजा सिद्धार्थ के पुत्र धर्म चक्रवर्ती हैं। चक्रवर्ती—जैसे इनके शरीर के लक्षणों को तो देखो।”

उत्पल से परिचय पाकर राजा ने दोनों को सम्मानपूर्वक मुक्त किया। क्षमा याचना माँगी।

लोहार्गला से विहार कर प्रभु पुरिमताल (अयोध्या) पधारे। वहाँ शकटमुख उद्यान था। कुछ समय इस उद्यान में ध्यान किया। यहाँ आपका स्वागत वागुर श्रावक ने किया। यह १२ व्रती श्रमणोपासक था।

पुरिमताल से विहार कर प्रभु उत्राग पधारे। फिर यहाँ से गौभूमि होते हुए राजगृह पधारे।

लगता है इस भ्रमण में प्रभु ने उत्तर प्रदेश के काफी नगरों, गाँवों का भ्रमण किया होगा। वर्णन उन गाँवों का है, जहाँ कुछ घटित हुआ है।

प्रभु चातुर्मास के लिए मगध की राजधानी राजगृह पधारे। वहाँ प्रभु ने चातुर्मासी तप किया। विभिन्न योग क्रियाएँ सम्पन्न कीं। चातुर्मास पूर्ण होते ही आपने तप का पारणा किया।

### नवमा वर्ष

इस वर्ष प्रभु का विहार मगध के विभिन्न अञ्चलों में हुआ। प्रभु ने सोचा—‘अभी मुझे कर्म की निर्जरा करनी है इसलिए अनार्य क्षेत्रों में विचरण उपयोगी रहेगा।’ जैसे पहले वर्णन किया जा चुका है। इस काल का सचित्र वर्णन आचारांगसूत्र में उपलब्ध है।

इस विचार को क्रियान्वित करने हेतु प्रभु ने सर्वप्रथम राढ़ देश के वज्र भूमि व शुभ्र भूमि जैसे अनार्य प्रदेशों में भ्रमण किया। वे उस अनार्य देश की अनार्य संस्कृति को अच्छी तरह जानते थे।

अनार्य स्त्री-पुरुषों को तो महावीर एक खिलौने से ज्यादा प्रतीत नहीं होते थे। वे खुशी से प्रभु वर्द्धमान के शरीर का शिकार करते। वे प्रभु को शिकार की वस्तु समझकर उनके कोमल शरीर को कष्ट देते थे। वे जहाँ भी प्रभु को देखते, उन्हें घेर लेते। उनके शरीर पर हथियारों से प्रहार करते। उनके पीछे शिकारी कुत्ते लगाते। लाठी, पत्थरों से उन्हें पीटते। इन सब यातनाओं को वह सहर्ष सहते थे। वह इन यातनाओं का कारण अनार्य पुरुष-स्त्रियों को नहीं मानते थे। वह हिंसा का कारण अज्ञानता को मानते थे। अज्ञान सब पापों की जननी है।

जैसे मेरु पर्वत भूचाल में भी कम्पायमान नहीं होता है। इसी तरह प्रभु भी ध्यानस्थ खड़े रहते थे। वह विचार करते कि वे पुरुष-स्त्री भी मेरे मित्र हैं जो कि मेरी कर्म की जंजीरें तोड़ने में सहायक हो रहे हैं। प्रभु ने इस प्रकार के आचरण से सभी कषायों को क्षीण कर दिया।

अनार्य देश ऐसे क्षेत्र थे, जहाँ प्रभु को ठहरने को कोई आवास स्थान नहीं मिला वे प्रायः वृक्षों के नीचे ही ध्यान करते। यह नौवाँ चातुर्मास घूमते ही बीता। प्रभु ६ मास इन क्षेत्रों में कष्ट को झेलते घूमते रहे। उन्हें भोजन-पानी मिलने का प्रश्न नहीं था। भगवान पुनः अनार्य देश से आर्य देश पधारे।

### दसवाँ वर्ष

प्रभु महावीर व मंखलि-पुत्र गोशालक सिद्धार्थपुर पहुँचे। वहाँ कुछ दिन रहने के पश्चात् वह कूर्मग्राम जा रहे थे। रास्ते में एक तिल के पौधे को देखकर गोशालक ने पूछा—‘प्रभु ! यह पौधा उत्पन्न होगा या नहीं ? अगर उत्पन्न होगा, तो एक फली से कितने तिल के दाने प्राप्त होंगे ?’ प्रभु तो ज्ञानी थे। उन्होंने गोशालक के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा—‘यह पौधा जरूर फल देगा। फूल वाले पौधे की एक फली में सात तिल निकलेंगे !’ गोशालक को प्रभु की बात का विश्वास न हुआ। उसने प्रभु की पीठ फेरते ही वह पौधा उखाड़ दिया।

दोनों आगे चले। कूर्मग्राम आया। उस ग्राम के बाहर वैश्यायन नामक एक तापस जिसने प्राणायाम दीक्षा अंगीकार की थी, धूप में औंधे मस्तक लटकता हुआ तप कर रहा था। धूप से व्याकुल हुई जटाओं से जुँए निकलकर धरती पर आ रही थीं। वह पुनः उन जुँओं को उठाकर अपनी जटा में रख लेता।

गोशालक यह तमाशा देख रहा था। अपने स्वभाव के कारण उसने यहाँ भी झगड़ा खड़ा कर दिया। वह संन्यासी का मजाक करते हुए कहने लगा—‘तू साधु है या जुँओं का स्थान।’

संन्यासी को गोशालक के मजाक पर इतना क्रोध आया कि उसने अपनी शक्ति का प्रयोग तेजोलेश्या के रूप में किया। पर धन्य हैं करुणा पुँज प्रभु महावीर, जिन्होंने गोशालक—जैसे अज्ञानी को शीतल लेश्या छोड़कर उसकी प्राण रक्षा की।

गोशालक तेजोलेश्या से अनभिज्ञ था। प्रभु की शक्ति का आभास उस वैश्यायन तापस को लग चुका था। उसने विनम्र भाव से प्रभु से कहा—“भगवन् !मैंने आपको जान लिया।

गोशालक इस संकेत को न समझ सका। वह संन्यासी को चिढ़ाने के लिए बोला—“यह जुँओं का घर क्या कह रहा है ?”

प्रभु ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—“इसने तप—तेज से प्राप्त तेजोलेश्या की शक्ति का प्रयोग किया था, पर मेरी शीतलेश्या की शक्ति से तेजोलेश्या का प्रभाव क्षीण हो गया। इसलिए यह कह रहा है कि अगर मैं पहले जानता कि यह आपका शिष्य है, तो मैं कभी ऐसा अज्ञानपूर्ण कदम न उठाता ?”

तेजोलेश्या की बात सुनकर गोशालक घबरा गया। उसे भय व आतंक सताने लगा। उसने प्रभु से पूछा—“प्रभु ! यह तेजोलेश्या क्या होती है ? इसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है।”

सहज व सरल योगी प्रभु महावीर ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा—“कोई मनुष्य ६ मास तक निरन्तर छट्ठ तप के साथ सूर्य के सामने दृष्टि रखकर खड़ा-खड़ा आतापना लेता है वह छट्ठम का पारणा भी मुट्ठीभर उड़द और चुल्लूभर गर्म पानी से करता है, उस तपस्वी को थोड़ी-बहुत तेजोलेश्या प्राप्त हो जाती है।”

गोशालक को प्रश्न का उत्तर मिल गया था। अब वह तेजोलेश्या की प्राप्ति हेतु प्रयास जुटाने लगा।

प्रभु महावीर ने कुछ समय के बाद पुनः सिद्धार्थपुर विहार किया। जब वह तिल वाले स्थान से गुजर रहे थे तो गोशालक शंकित होकर कहने लगा—“आपकी भविष्यवाणी गलत निकली है वह पौधा तो उगा नहीं।”

भगवान को पता था कि गोशालक ने वह पौधा उखाड़कर कहीं और फेंक दिया है। वह पौधा वहीं पर वर्षा के योग से पुनः स्थापित हो गया था।”

भगवान महावीर ने उसी पौधे को दिखाते हुए कहा—“तेरे द्वारा उखाड़ा पौधा वह स्थापित है।”

गोशालक ने पौधे को देखा, तो उसे विश्वास न हुआ। वह तिल के पौधे के समीप गया। उसने एक फली तोड़ी। उसमें तिलों की संख्या सात थी। इस घटना ने गोशालक को नियतिवाद की ओर ज्यादा आकर्षित किया। उसे विश्वास हो गया। इस प्रकार हर जीव भरकर पुनः उस योनि में उत्पन्न होते हैं।

अब गोशालक के मन में तेजोलेश्या की प्राप्ति की चाह इतनी बढ़ गई कि उसने अपने गुरु प्रभु महावीर को छोड़ दिया। वह श्रावस्ती नगरी आया। वही श्रावस्ती आगे जाकर नियतिवाद के प्रचार का केन्द्र भी बना। उसने वहाँ एक हालाहला नाम की सम्पन्न कुम्हारिन के यहाँ अड़्डा जमाया। वहीं रहकर वह तेजोलेश्या की साधना प्रभु द्वारा बताई विधि अनुसार करने लगा।

इस प्रकार गोशालक ने ६ मास निरन्तर छट्ठम तप किया। सूर्य के सामने आतापना ली। प्रभु के बताये ढंग के अनुसार पारणा किया। उसे इस तप के प्रभाव से तेजोलेश्या प्राप्त हो गई।

तेजोलेश्या का अब प्रयोग करना शेष था। एक दासी कुएँ से पानी भर रही थी। बेचारी उस दासी पर गोशालक ने तेजोलेश्या का दुरुपयोग किया। दासी के प्राण जाने का कारण गोशालक की शक्ति बनी।<sup>१८</sup> उसने शोण, कनिन्द्र, कार्णीक, अहिल्या, अप्रिवेश्या और अर्जुन से यहीं रहकर निमित्तशास्त्र के कुछ अंश पढ़े, जिससे वह सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन-मरण इन बातों में सिद्ध वचन नैमित्तिक बन गया।

तेजोलेश्या व निमित्तशास्त्र के कारण गोशालक का प्रभाव इतना बढ़ा कि उसे मानने वालों की संख्या करोड़ों में पहुँच गई। वह साधारण भिक्षु से अब एक धर्मचार्य के रूप में प्रतिष्ठित था।<sup>५९</sup> अपने आजीवक सम्प्रदाय का वह तीर्थंकर कहलाता था। उसका मुख्य केन्द्र श्रावस्ती हालाहला कुम्हारिन का घर बन गया।

भगवतीसूत्र के १५वें शतक में आजीवक सम्प्रदाय के भिक्षुओं का रहन-सहन व गोशालक के जीवन का अन्तिम काल का वर्णन आया है, जिसका वर्णन आगे होगा। इतना जरूर है कि वह भगवान महावीर के तप के १०वें वर्ष में स्वतन्त्र विचरने लगा। उसके सम्प्रदाय को कई राजकुमारों ने भी अपनाया, पर साधारणतः निम्न कहा जाने वाला वर्ग ही उसका उपासक था।

उपासकदशांगसूत्र में देवता को भी गोशालक मत का प्रशंसक दिखाया गया है, जो सहालपुत्र जैसे श्रावक को प्रभावित करता है।

सिद्धार्थपुर से भगवान वैशाली पधारे। एक दिन वैशाली के बाहर ध्यान लगाये खड़े थे। उस समय नगर के बालक जंगल में खेलने आ गये। उन्होंने प्रभु को पिशाच समझा। वह प्रभु को भिन्न-भिन्न ढंगों से सताने लगे।

इसी समय पिता राजा सिद्धार्थ का मित्र गणराज शंख भी अचानक उस जंगल में आ गया। उन्होंने बालकों को फटकार लगाई और जंगल से भगा दिया।<sup>६०</sup>

### प्रभु का नौका विहार

चोराक सन्निवेश से प्रभु वैशाली पधारे थे। वैशाली से आप वाणिज्यग्राम पधारे। बीच में गण्डकी नदी पड़ती थी।

भगवान महावीर ने उसे नौका द्वारा पार किया। उसे पार करके किनारे पहुँचे। नाविक ने किराया माँगा। प्रभु महावीर मौन रहे। नाविक को गुस्सा आ गया। उसने प्रभु को गर्म रेत पर खड़ा पर दिया। संयोगवश उसी समय शंखराज का भांजा "चित्र" जो राजदूत बनकर कहीं जा रहा था, वहाँ आ गया। उसने नाविक को प्रभु का परिचय देकर छुड़ाया।<sup>६१</sup>

भगवान महावीर वहाँ से वाणिज्यग्राम पहुँचे। वाणिज्यग्राम में एक १२ व्रती श्रावक आनन्द रहता था। उसे उसी समय अवधिज्ञान की प्राप्ति हुई थी। वह महावीर के चरणों में उपस्थित हुआ। उसने प्रभु से कहा—“भगवन् ! आपको थोड़े ही समय में केवलज्ञान व केवलदर्शन उत्पन्न होगा।”<sup>६२</sup>

आचार्य देवेन्द्र मुनि जी का कहना है—“यह आनन्द, उपासकदशांगसूत्र के प्रथम श्रावक आनन्द से भिन्न है, हालांकि गौच व नाम तो एक है। अवधिज्ञान की बात वहाँ भी है। पर वह आनन्द तो प्रभु महावीर के तीर्थंकर जीवन में आया था। उस आनन्द ने तो प्रभु महावीर से १२ व्रत ग्रहण किये थे।

अवधिज्ञान होने पर गणधर गौतम का संशय दूर किया। इस आनन्द का वर्णन मूल सूत्र में है। वैसे भी आनन्द नाम के कई श्रावकों का वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध है।

वाणिज्यग्राम से प्रभु महावीर सीधे श्रावस्ती नगरी पधारे। १० वर्षावास वहीं सम्पन्न हुए। वहाँ विभिन्न प्रकार की तप व साधनाओं की क्रियाएँ सम्पन्न कीं।<sup>६३</sup>

### ग्यारहवाँ वर्ष

प्रभु महावीर की साधना का यह वर्ष बड़ा ही रोमांचकारी व दिल को हिला देने वाली घटनाओं से भरा पड़ा है।

वर्षाकाल समाप्त होते ही प्रभु महावीर स्वतन्त्र भ्रमण के लिये सानुलद्वीप सन्निवेश पधारे। भद्रा, महाभद्रा व सर्वतोभद्रा प्रतिमाएँ नामक तप की आराधना की।<sup>६४</sup>



चारों दिशाओं में चार प्रहर तक कायोत्सर्ग करना भद्र प्रतिमा है।<sup>६५</sup> इस प्रतिमा की आराधना करने वाला प्रथम दिन पूर्व की ओर मुख कर कायोत्सर्ग करता है। रात्रि को दक्षिण दिशा की ओर मुख कर कायोत्सर्ग ध्यान लगाता है।

दूसरे दिन पश्चिम दिशा की ओर मुख कर कायोत्सर्ग करता है। रात्रि को उत्तर की ओर मुख कर कायोत्सर्ग तप करता है। भगवान ने भद्र प्रतिमा के पश्चात् ही महाभद्र प्रतिमा की आराधना की। उसमें चारों दिशाओं में एक दिन-रात्रि का कायोत्सर्ग किया जाता है। भगवान महावीर ने चार अहोरात्रि में इस तप की आराधना की।<sup>६६</sup>

इसके पश्चात् सर्वतोभद्र में १० दिन-रात्रि लगते हैं। इस प्रतिमा में १० दिशाओं की ओर मुख करके कायोत्सर्ग तप किया जाता है।

इस प्रकार भगवान ने १६ दिन-रात्रि में सतत ध्यान कर उपवास के साथ इन प्रतिमाओं की आराधना की।<sup>६७</sup>

तप की समाप्ति पर आप तप के पारणे हेतु आनंद गाथापति के यहाँ पधारे। आनंद की एक दासी, जिसका नाम बहुला था, बचा-खुचा अन्न फेंकने बाहर आ रही थी। सामने प्रभु महावीर आ गये। दासी ने पूछा-“भिक्षु ! क्या इच्छा है, बताओ ?” प्रभु ने दोनों हाथ पसार दिये। दासी समझ गई कि यह भिक्षु भिक्षा की याचना कर रहा है। उसने बचा खुचा अन्न भक्तिपूर्वक प्रभु के हाथों में रख दिया। सुपात्रदान से देवों ने जय-जयकार की। प्रभु महावीर को अपनी साधनाकाल में कैसा भोजन मिला, यह इसका उदाहरण जो है।

सानुलक्षिप से भगवान महावीर ने वृद्ध भूमि की तरफ विहार किया। उस नगर के बाहर स्थित पोलास चैत्य में अट्टम तप कर रातभर एक अचित्त पुद्गल पर निर्निमेष दृष्टि से ध्यान किया। भगवान महावीर की इस निर्मल दृष्टि और ध्यान से स्वर्ग का इन्द्र बहुत प्रभावित हुआ।

### संगम द्वारा उपसर्ग

स्वर्ग में देवों की सभा लगी हुई थी। देवाधिदेव इन्द्र अपने सिंहासन पर विराजमान थे। उन्होंने प्रभु के ध्यान की प्रशंसा करते हुए कहा-“ध्यान और धैर्य में भगवान महावीर का कोई मुकाबला नहीं कर सकता। मनुष्य तो एक तरफ, किसी देव में इतनी शक्ति नहीं कि प्रभु महावीर को उनकी साधना व ध्यानमार्ग से गिरा सके।”

इन्द्र ने यह प्रशंसा देव-सभा में की। उस सभा में एक संगम नामक देव भी बैठा हुआ था। उससे प्रभु की यह प्रशंसा सहन न हुई। वह सोचने लगा-‘इन्द्र ने प्रभु महावीर की प्रशंसा कर समस्त देवताओं का अपमान किया है। मैं अभी धरती पर जाता हूँ और वर्द्धमान महावीर को उनके ध्यान से गिराकर इन्द्र को झूठा सिद्ध करूँगा। आखिरकार मनुष्य चाहे कितना शक्तिशाली हो वह देवताओं की शक्ति के आगे टिक नहीं सकता। मैं अभी जाकर उन्हें ध्यान से पथभ्रष्ट करता हूँ।’

यह प्रतिज्ञा कर वह पोलास चैत्य में आया। प्रभु को ध्यान से विचलित करने के लिए विभिन्न प्रकार के कष्ट देने लगा। उसने प्रभु महावीर को एक रात्रि में २० उपसर्ग दिये जिनका विवरण दिल हिला देने वाला है।

संगम का प्रभु के जीवन में आगमन काफी रुद्र-कष्टकारी रहा। दिगम्बर परम्परा में भी एक देवता प्रभु महावीर को उजैनी के शमशान में कष्ट देता है। पर श्वेताम्बर जैन परम्परा में यह देव प्रभु को निरन्तर छह महीने कष्ट देता है। इन कष्टों का विवरण हम निम्न पंक्तियों में करेंगे-

संगम ने प्रभु महावीर को इतने भयानक उपसर्ग दिये, जो एक महावीर ही सहन कर सकता है। साधारण मानव तो इन उपसर्गों की कल्पना भी नहीं कर सकता। संगम के उपसर्ग प्रभु के कर्मों की निर्जरा करने में सहायक बने।

आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने-‘महावीर : एक अनुशीलन’ नामक ग्रंथ में इन उपसर्गों पर अच्छा प्रकाश डाला है। वह पृष्ठ ३३२ से ३३४ पर लिखते हैं-

“गगन-मंडल से तरुण सुन्दरियाँ उतरतीं। हाव-भाव कटाक्ष करती हुई प्रभु महावीर से संभोग याचना करने लगीं। प्रभु महावीर तो निष्प्रकम्प थे, प्रस्तर मूर्ति की तरह थे। इसलिए उन पर कोई असर नहीं हुआ। वह सुमेरु की तरह अडिग रहे। संगम ने एक राति में बीस विकट उपसर्ग दिये वे इस प्रकार हैं-

(१) सर्वप्रथम उसने प्रलय काल की तरह धूलि की भीषण वृष्टि की। उस धूलि से प्रभु महावीर के कान, नेत्र, नाक सर्वथा सन गये।

(२) जब प्रभु महावीर पर पहले उपसर्ग का कोई कष्ट न हुआ तो उसने वज्रमुखी चीटियाँ उत्पन्न कीं जिन्होंने प्रभु महावीर के शरीर को खोखला कर दिया।

(३) मच्छरों के झुण्ड बनाये और उन्हें महावीर पर छोड़ा। मच्छर प्रभु महावीर का खून चूसने लगे।

(४) तीक्ष्णमुखी दीमक उत्पन्न की। वह महावीर के शरीर पर चिपट गई। उन्हें काटने लगी।

(५) जहरीले बिच्छुओं की सेना तैयार की। उन्होंने एक साथ प्रभु महावीर के शरीर पर आक्रमण किया। अपने पैने डंक से उन्हें डसने लगे।

(६) नेवले छोड़े। वे भयंकर शब्द करते हुए महावीर पर एक साथ टूट पड़े। उनके माँस पर भिन्न-भिन्न करने लगे।

(७) विषधर सर्प छोड़े, जिनके दाँत नुकीले थे। वे महावीर को काटने लगे।

(८) चूहे उत्पन्न किये। वे अपने तीक्ष्ण दाँतों से महावीर को काटने लगे। साथ में अपने मल-मूत्र का विसर्जन प्रभु पर करने लगे। कटे हुए घाव पर यह मूत्र नमक की तरह काम करता था।

(९) लम्बी सूड़ वाले हाथी तैयार किये। उन्होंने महावीर को बार-बार आकाश में उछाला और गिरने पर हर बार रौंद डाला। उनकी छाती पर तीखे दाँतों से प्रहार किया।

(१०) हथिनियाँ बनाई उन्होंने भी प्रभु के शरीर को रौंदा।

(११) भयंकर पिशाच का रूप बनाया और कर्ण कटु किलकारियाँ करता हुआ, हाथ में पैनी बरछी लेकर महावीर पर मारा। अपनी संपूर्ण शक्ति से उन पर आक्रमण किया।

(१२) विकराल बनकर वज्र के समान दाँतों से और नाखूनों से प्रभु महावीर के शरीर को विदारण किया।

(१३) राजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला का रूप बनाया। फिर करुणामय स्वर से इन दोनों के मुख से कहलाया-  
“बेटा ! हमें इस वृद्धावस्था में अकेले क्यों छोड़ चले हो ?”

(१४) संगमदेव ने अगला भयंकर उपद्रव यह किया कि उसने प्रभु के दोनों पाँव के मध्य में आग जलाई और उस पर खीर पकने को रख दी। पर प्रभु महावीर को कोई शक्ति गिरा नहीं सकी। वह तो अकम्प, अडोल ध्यान में लीन रहे।

(१५) संगम ने अगला कार्य यह किया कि उसने बहुत सारे पक्षियों के अस्थि-पिंजर लिये। उन्हें प्रभु के शरीर के ऊपर लगा दिया। पक्षी आये। उन्होंने उन पिंजरो को अपनी चोंच और पंजों से दन्त-विक्षत करने का प्रयत्न किया।

(१६) अगले कदम में जब संगम ने देखा-“कोई भी उपसर्ग प्रभु महावीर का ध्यान से डिगा नहीं सका है तो उसने भयंकर आंधी चलाई। आँधी के प्रकोप से वृक्ष अपनी जड़ों से उखड़ने लगे। मकान की छतें उड़ने लगीं। प्रभु महावीर भी इस आँधी के प्रभाव से कई बार गिरे या उड़े।

(१७) चक्राकार पवन चली। महावीर उसमें चक्र की तरह घूमने लगे।

(१८) फिर उसने कालचक्र चलाया। महावीर घुटने तक भूमि में धँस गये। किंतु फिरभी ध्यान भंग नहीं हुआ। अब संगम ने देखा कि प्रतिकूल परीषह तो प्रभु महावीर को नहीं गिरा सके। अब उसने अनुकूल परीषह उपस्थित किये।

(१९) उसने सर्वप्रथम एक देव विमान की रचना की। उसमें स्वयं बैठकर वह प्रभु महावीर के पास आकर कहने लगा—“आपको स्वर्ग चाहिये या अपवर्ग। मैं आपकी हर इच्छा पूरी करूँगा। आप मेरे साथ विमान में बैठिए।”

(२०) उसने अन्तिम उपसर्ग दिया—अप्सराओं का प्रलोभन। इंसान की कमजोरी है स्त्री। स्त्रियों के हावभाव साधक को साधना से गिरा देते हैं। इन स्वर्ग की अप्सराओं ने पहले सुन्दर नृत्य किये। भोग—विलास के साधनों की सुन्दर रचना की। प्रभु स्थिर रहे। प्रभु महावीर तो प्रभु महावीर थे। उनको गिराना तीर्थंकर को गिराना था। तीर्थंकर परमात्मा को गिराने की शक्ति किसी भी प्राणी में तीन लोक व तीन काल में नहीं होती।

इन उपसर्गों का अध्ययन करने से हमें पता चलता है कि प्रभु अपनी देह के ममत्व से कितने दूर थे। वह विदेह थे।

यहाँ आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म. ने एक प्रश्न का समाधान निकालने की सुन्दर चेष्टा की है। प्रश्न उठ सकता है कि संगम ने अनेक रूप बनाकर प्रभु महावीर के शरीर को जर्जर और घावों से भर दिया, तो सारे घाव किस प्रकार मिटे ?

इस प्रश्न के उत्तर में वह लिखते हैं कि तीर्थंकरों के शरीर में एक विशिष्ट प्रकार की संरोहण शक्ति होती है जिससे उनके शरीर का घाव उसी समय ठीक हो जाता है जब घाव बनता है। जैसे वृद्ध पुरुष का घाव भरने में समय लगता है। तरुण पुरुष का घाव शीघ्र अतिशीघ्र भर जाता है। उसी तरह तीर्थंकर परमात्मा के शरीर की रचना होती है।<sup>१८</sup>

बीस भयंकर उपसर्ग सहने पर भी उनके मुख पर गुस्से—भय का निशान नहीं था। उनका शरीर तो मुस्कराहट दे रहा था। मुख कुन्दन की तरह ऐसा चमक रहा था, जैसा मध्याह्न का सूर्य हो।

संगम के कष्टों का यह अंत नहीं था। जिसकी शुरुआत उसने एक रात्रि में २० भयंकर उपसर्ग देकर की थी। प्रभु महावीर की आत्मा तो ध्यानस्थ थी। उनकी यात्रा तो अन्दर की यात्रा थी। बाहर से वह अपने शरीर का मोह छोड़ चुके थे। जब मोह ही छूट गया, तो फिर कोई शरीर आदि की सुरक्षा का ध्यान क्या रखेगा ?

शायद ये उपसर्ग उनकी साधना के फल की कसौटी थे। एक बात ध्यान रखनी चाहिये कि प्रभु महावीर राजकुमार थे। उनका शरीर बहुत कोमल था। रूप सुन्दर था। पर आत्मा से वह अभय थे। डरना उनका स्वभाव नहीं था। शायद इसी स्वभाव के कारण उनका शरीर इतने कष्ट सहने में सक्षम हो सका।

इन उपसर्गों के अध्ययन करने से पता चलता है कि संगम ने ज्यादातर प्रतिकूल ही कष्ट दिये। २-३ उपसर्ग अनुकूल कहे जा सकते थे जिससे शरीर को कष्ट न पहुँचा हो। पर प्रभु महावीर को शरीर से ज्यादा आत्मा की चिंता थी। आत्म-चिंतन में डूबे रहने के कारण उन्हें कोई स्वर्ग का प्रलोभन गिरा न पाया।

इस प्रकार रात्रि व्यतीत हो गई। सूर्योदय होते ही प्रभु महावीर का जब ध्यान सम्पन्न हो गया तो उन्होंने आगे की ओर बढ़ना शुरू किया।

इतनी परीक्षा लेने के बाद भी संगम प्रभु के साथ ही था। उसे अपने देवत्व की शक्तियों के बेकार जाने का दुःख था। प्रभु महावीर को पथ से गिराने के लिये वह भी प्रभु के साथ ही लिया।

प्रभु बालुका (नालुका), सुभोग, सुच्छेत्ता, मलय और हस्तिशीर्ष आदि नगरों में जहाँ भी पधारे, संगम कष्ट देता रहा। वह अपने अभद्र व्यवहार से प्रभु महावीर को कष्ट पहुँचाता रहा।<sup>१९</sup> प्रभु महावीर धन्य थे। उनके चेहरे पर कोई थकान नहीं थी, कोई शिकायत नहीं थी। उनकी सरलता, सहजता, विनय में कोई कमी नहीं आई थी। उनके पाप तो

अल्प रह गये थे। मंजिल नजदीक थी। प्रभु महावीर अपने भविष्य को जानते थे। इसीलिये उन्होंने हर परीषह को कर्मफल मानकर सहन किया।

## प्रभु पर चोरी का आरोप

एक बार प्रभु महावीर तोसली गाँव के उद्यान में ध्यानस्थ थे। वहाँ संगम जैन श्रमण की वेशभूषा धारण कर गाँव में चोरी करने गया। उसने घरों में सेंध लगाई। सेंध लगाते ही वह पकड़ा गया।

लोगों को वह कहने लगा—“मुझे पकड़कर क्यों दण्डित करते हो? जिसकी आज्ञा से मैं यह कार्य करता हूँ, उस मेरे गुरु को क्यों नहीं पकड़ते? मेरे गुरु आज ही बाहर उद्यान में तप कर रहे हैं। यह चोरी का कार्य मैं उनके लिए करता हूँ।”

संगम की बात का लोगों को सहज विश्वास हुआ। वे उद्यान में गये। वहाँ प्रभु महावीर को ध्यानस्थ देखा। उन्होंने उन्हें रस्सियों से कसकर बाँध दिया। वे गाँव की ओर आ रहे थे। तब महाभूतिल ऐन्द्रजालिक ने प्रभु वर्द्धमान को पहचान लिया। उसने लोगों को बताया—“यह पुरुष कोई चोर नहीं, ये तो सिद्धार्थ नन्दन क्षत्रियकुण्डग्राम नरेश के सुपुत्र हैं। सत्य की तलाश में इन्होंने घर-परिवार तक को छोड़ दिया है। पर-कल्याणार्थ व आत्म-कल्याणार्थ साधनारत हैं। यह कोई चोर नहीं है। सो इन्हें छोड़ दो।”

ऐन्द्रजालिक की बातों का लोगों पर गहरा असर हुआ। उन्होंने प्रभु महावीर से क्षमा माँगते हुए उनको छोड़ दिया। झूठी बात कहने वाले वेशधारी की तलाश की, पर उसका कोई पता नहीं चला।<sup>90</sup>

## भगवान मोसली गाँव में

प्रभु महावीर यहाँ से मोसली गाँव पधारे। वहाँ उद्यान में ध्यानस्थ हुए। यहाँ भगवान महावीर पर तस्कर होने का आरोप लगा। राजपुरुषों ने प्रभु महावीर को पकड़ा और राज्य दरबार में पेश किया।

इसी दरबार में राजा सिद्धार्थ के मित्र सुमागध नामक राष्ट्रीय (प्रांत का प्रमुख) बैठा था। उन्होंने प्रभु महावीर को देखकर उनका अभिवादन किया। प्रभु महावीर का परिचय राजा को दिया। राज्य परिषद् ने प्रभु महावीर को सम्मानपूर्वक मुक्त कर दिया।<sup>91</sup>

## प्रभु महावीर को फाँसी की सजा

दुष्ट संगम प्रभु महावीर को साधना से गिराने में ऐड़ी-चोटी का जोर लगा रहा था। वह कोई भी साधन नहीं छोड़ना चाहता था। प्रभु को उसने शारीरिक व मानसिक यातनाएँ दीं। प्रभु के चेहरे पर शोक की लहर न थी।

प्रभु साधना हेतु पुनः तोसली गाँव आये। यहाँ संगम ने ऐसी काली करतूत की कि समस्त देवलोक के देव भी संगम की करतूत पर शर्मिन्दा हो गये। उसने चोरो के हथियार लाकर प्रभु महावीर के पास रख दिये। वहाँ की जनता ने प्रभु महावीर को तस्कर समझकर पकड़ लिया।

उनसे परिचय पूछा गया। पर प्रभु तो मौन-साधना में थे वह कुछ नहीं बोले।

प्रश्न का उत्तर न मिलने पर तोसली के क्षत्रिय ने प्रभु महावीर को भेषधारी श्रमण चोर मान लिया। उसने प्रभु महावीर को फाँसी की सजा सुनाई।

प्रभु के गले में फंदा डाला गया। सत्य को फाँसी देने की चेष्टा थी। पर सत्य सत्य था। फाँसी के बाद ज्यों ही नीचे का तख्ता सरकाया गया, तत्काल फंदा टूट गया।

दूसरी बार राजपुरुषों ने फंदा डाला, पर इस बार भी वही हुआ जो पहली बार हुआ था। राजा व राजपुरुषों ने फाँसी देने वाले उपकरणों का निरीक्षण किया। पर उपकरण तो अपनी जगह सही थे।

इस प्रक्रिया को पाँच बार पुनः दुहराया गया। इस बार भी फंदा टूट गया। सात बार फंदा टूटने से राजपुरुष चकित थे।

इस बार क्षत्रिय ने अपने राजपुरुषों से सारी बात पूछी। राजपुरुषों ने सर्व सत्य बता दिया।

क्षत्रिय ने प्रभु महावीर की महानता को परख लिया। उसने सोचा—“यह मौनधारी पुरुष मृत्यु से भी नहीं डरा। यह तो कोई महान् साधक है। हमें इससे किये गए दुर्व्यवहार की क्षमा माँगनी चाहिये।”

इस प्रकार उस क्षत्रिय ने प्रभु महावीर की महानता को पहचानते हुए उन्हें सम्मानपूर्वक मुक्त कर दिया।<sup>७२</sup>

संगम प्रभु महावीर के पीछे इस प्रकार लगा हुआ था जैसे शिकार के पीछे कुत्ता। प्रभु महावीर जहाँ भी पधारते; संगम अपनी देव-शक्ति के बल पर पहले से वहाँ पहुँच जाता। प्रभु महावीर कहाँ झुकने वाले थे।

मोसली से प्रभु महावीर सिद्धार्थपुर आये। संगम ने वहाँ भी उन्हें चोरी के आरोप में पकड़वा दिया।

यहाँ घोड़े का एक व्यापारी कोशिक रहता था। वह प्रभु महावीर के गृह-त्याग की घटना का जानकार था। जब उसे पता चला कि राजपुरुषों ने प्रभु महावीर को चोर समझकर पकड़ लिया है और उन्हें शीघ्र दण्डित करने जा रहे हैं तो वह शीघ्रतिशीघ्र राजदरबार में पहुँच गया। राजा को बताया—“यह तो दिव्य पुरुष वर्द्धमान हैं। क्षत्रियकुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ के नन्दन हैं। जगत्-कल्याण के लिए इन्होंने गृह-त्याग किया है। इन्हें चोर मत समझो। यह तो लोगों के भले के लिये राजपाट छोड़कर संन्यासी बने हैं।”

कोशिक, जो घोड़ों का व्यापारी था, राज्यसभा में अच्छे स्थान का स्वामी था। उसका जीवन आदर्श था। आदर्श पुरुष ही महात्मा लोगों की पहचान रखते हैं। दुष्टों को दुष्टों की पहचान होती है।

राजपुरुष को कोशिक की बात का विश्वास हो गया। उन्होंने प्रभु से क्षमा माँगते हुए सम्मानपूर्वक उन्हें मुक्त कर दिया।<sup>७३</sup>

इस तरह हम देखते हैं कि भगवान महावीर ने संगम के हर उपसर्ग को हर्ष से झेलने का मन बना लिया था। यह बात आगे की घटनाओं में सिद्ध हो जाती है।

संगम के उपसर्ग निरंतर जारी थे। इन उपसर्गों को सहने वाले राजकुमार वर्द्धमान का शरीर, यह सोचकर हृदय काँप उठता है कि प्रभु महावीर ने लगातार यह कष्ट कैसे सहें होंगे? इन उपसर्गों से प्रभु महावीर के समय के लोगों की मनोवृत्ति का पता चलता है।

संगम की परीक्षाएँ अभी संपूर्ण नहीं हुई थीं। प्रभु महावीर सिद्धार्थपुर के भंयकर कष्टों को झेलते हुए ब्रज गाँव में आये। यह ब्रज गाँव मथुरा के पास पड़ने वाले गाँवों से भिन्न दिखता है। ब्रज गाँव में उस दिन कोई नगर उत्सव था। हर घर में खीर बनी हुई थी। प्रभु महावीर अपनी तपस्या के पारणे के लिये भिक्षा माँगने निकले। संगम उस गाँव में पहुँच गया। उसने प्रभु महावीर के आगमन से पहले गाँव की सारी खीर को दूषित-अनेषणीय कर दिया।

प्रभु महावीर भिक्षा के लिए घर-घर गये। न लेने योग्य पदार्थ जानकर उन्होंने कोई अन्न ग्रहण नहीं किया। वह वापस जंगल में आ गये।

## संगम द्वारा क्षमा याचना

संसार में अनेक राजपुरुषों को मनुष्यों ने तो कष्ट दिये हैं, पर श्रमण भगवान महावीर को तो देवों ने भी कष्ट दिये हैं। छह महीने तक संगम के कष्ट जारी रहे। पहले गोशालक मनुष्य के रूप में प्रभु महावीर के लिए मुसीबत बना रहा।

गोशालक के जाते ही संगम देव प्रभु महावीर की साधना में विघ्न डालने आ गया। प्रभु महावीर को उसने न निर्विघ्न ध्यान करने दिया, न पारणे हेतु भोजन करने दिया।

प्रभु महावीर को ध्यान से च्युत करने के लिए अनगिनत परीषह उसने प्रभु महावीर के सामने उपस्थित किये। प्रभु महावीर की अडोलता के सामने समस्त देव-बल हार गया।

प्रभु महावीर ने इस सहनशीलता से यह दिखाया कि मनुष्य-जन्म कितना श्रेष्ठ है, यह विषय-विकारों में गँवाने के लिये नहीं है। मनुष्य-जन्म परम दुर्लभ है। देव व नारकी तो कर्मबन्धन के अनुसार क्रमशः सुख व दुःख भोगते हैं।

मनुष्य कर्मशील है, कर्म-प्रधान है। सभी योनियों में मनुष्य-योनि श्रेष्ठ है क्योंकि इसी योनि में रहकर मनुष्य चाहे तो स्वर्ग या मोक्ष पा सकता है और विपरीत कर्म के द्वारा नरक भी पा सकता है। मनुष्य-जन्म में ही धर्म किया जा सकता है। देवता धर्म करने में असमर्थ हैं। देवता किसी भी प्रकार की साधना नहीं करते। वे पूर्व संचित कर्म द्वारा सुखों का उपार्जन करते हैं। लम्बे समय तक भोगते हैं। नरक व स्वर्ग दोनों भोग की भूमियाँ हैं। कर्मभूमि तो यह संसार है, जहाँ करनी व भरनी साथ-साथ चलती है।

जब संगम देव ने देखा कि मेरे द्वारा दिये गए उपसर्गों से प्रभु महावीर न तो साधना से डगमगाये हैं, न इनके चेहरे पर घबराहट का निशान है, न ही मेरे प्रति क्रोध है।

अब संगम ने अवधिज्ञान से देखा तो पाया कि मेरे कष्ट देने से तो प्रभु महावीर का मनोबल पहले से ज्यादा दृढ़ हो गया है। उसे अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ कि मैंने देवराज इन्द्र की बात को सत्य क्यों न माना? अब वह प्रत्यक्ष रूप में प्रभु महावीर के सम्मुख प्रस्तुत हुआ और प्रभु महावीर से क्षमा माँगते हुए कहने लगा-भगवन् ! देवराज इन्द्र ने जो आपके सम्बन्ध में कहा था, वह पूर्ण सत्य है। मैं भग्न प्रतिज्ञ हूँ। आप सत्य-प्रतिज्ञ हैं। अब आप प्रसन्नता से भिक्षा के लिए पधारिये। मैं किसी प्रकार की विघ्न-बाधाएँ उपस्थित नहीं करूँगा ?”<sup>७४</sup>

“मैंने छह मास आपको अनेक प्रकार के भयंकर कष्ट दिये हैं, जिसके कारण आप अच्छी प्रकार से साधना नहीं कर सके हैं। अब आनंद से साधना कीजिए। मैं जा रहा हूँ। अन्य देवों को भी ऐसा करने से रोकूँगा। वे आपको कष्ट नहीं देंगे।”

संगम की बात का उत्तर देना महावीर प्रभु ने जरूरी समझा। उन्होंने कहा-“हे संगम ! मैं किसी की प्रेरणा से प्रेरित होकर या किसी के कथन को संकल्प में रखकर तप नहीं करता। मुझे किसी भी प्रकार के आश्वासन की जरूरत नहीं है।”

इतने कष्ट झेलने वाले प्रभु महावीर का संगम को दिये गये मार्मिक उत्तर से सिद्ध होता है कि उनका शरीर का मोह इतना छूट चुका था कि कोई देव, दानव भी उन्हें कष्ट पहुँचाने में असमर्थ था।

बीस उपसर्गों के बाद का समय कहाँ बीता। इस छह मास का वर्णन किसी भी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। यह कोई विचारणीय प्रश्न नहीं; हो सकता है कि इतने समय में प्रभु महावीर की साधना में कोई भी उल्लेखनीय उपसर्ग न आया हो। इसीलिये किसी भी ग्रंथ में प्रभु महावीर के इन छह माह का वर्णन नहीं।

इसी सन्दर्भ में संगम के उपसर्ग के बारे में परम श्रद्धेय आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म. ने एक महत्वपूर्ण घटना की तरफ उनका ध्यान दिलाया है।

“संगम जब क्षमा माँगकर जाने लगा तो प्रभु महावीर की आँखों में आँसू आ गये। संगम को प्रभु महावीर की आँखों में आँसू देखकर हैरानी हुई।”

उसने प्रश्न उठाया है-“प्रभु ! आप-जैसे महाश्रमण की आँखों में आँसू क्यों हैं ? क्या कोई विकट वेदना है ?”

प्रभु महावीर ने कहा—“संगम ! यह आँसू इसलिए नहीं आये कि तुमने मुझे उपसर्ग दिये। उपसर्ग तो मेरे साधक जीवन की कसौटी है। आँसू इसलिए आये हैं कि छह मास तूने मुझे परीषह (कष्ट) दिये। तूने अज्ञान अवस्था में अपनी आत्मा का इतना पतन कर लिया है कि मैं जब भी तुम्हारे अंधकारपूर्ण भविष्य को देखता हूँ तो सोचता हूँ कि एक अबोध जीव मेरे कारण कष्ट उठायेगा। नरक की यातनाएँ झेलेगा।”

“जिस श्रमण के निमित्त हजारों प्राणी कर्मबन्धन से मुक्त होते हैं वही साधक किसी प्राणी के कर्मबंध का निमित्त बने और कोई उसके कारण दुःख पाये, यह आँसू बहाने की बात है। संगम ! जीव अज्ञानता में कर्मबंध कर तो डालता है, पर ये ही कर्मबंधन उसके लिए महान दुःखदायी होते हैं।

प्रभु महावीर की बात सुनकर संगम का अहंकार नष्ट हो गया। उसने देखा कि प्रभु महावीर की महानता, सहनशीलता के सामने कोई जीव न महान् है, न सहनशील। मैंने इन्द्र की बात पर व्यर्थ अविश्वास किया। संगम स्वर्ग में गया। उसके भयंकर दुष्कृत्य पर इन्द्र अत्यधिक क्रोधित हुआ। उसकी भर्त्सना करते हुए इन्द्र ने संगम को देवलोक से निष्कासित कर दिया। वह अपने देव-परिवार के साथ मेरु पर्वत की चूलिका पर रहने लगा।<sup>७५</sup>

संगम जा चुका था। प्रभु महावीर दूसरे दिन पुनः ब्रज गाँव में पधारे। पूरे छह मास के बाद एक बूढ़ी ग्वालिन वत्सपालक से भोजन ग्रहण कर तप का पारणा किया। उसने प्रसन्नतापूर्वक प्रभु महावीर को पायस रस दिया।

### पुनः श्रावस्ती में

यहाँ से प्रभु महावीर क्रमशः आलंभिया, श्वेताम्बिका, श्रावस्ती पधारे।

उन दिनों श्रावस्ती में स्कन्द महोत्सव चल रहा था। लोग उत्सव में इतने व्यस्त थे कि भगवान महावीर की तरफ किसी ने ध्यान न दिया।

सारा गाँव स्कन्द के मन्दिर में इकट्ठा हो गया था। भक्तजन देव-मूर्ति को वस्त्र अलंकार से सजाने में लगे हुए थे। मूर्ति सजाई गई। उसे रथ में बिठाने जा रहे थे कि मूर्ति स्वयं चलने लगी। भक्तों के आनन्द का पार न रहा। वे समझे कि देव स्वयं रथ पर चढ़ने जा रहे हैं। हर्ष से नारे लगाते सब मूर्ति के पीछे चलने लगे। मूर्ति उसी उद्यान में पहुँची, जहाँ प्रभु महावीर ध्यानस्थ थे। मूर्ति प्रभु महावीर के चरणों में गिर पड़ी। लोगों ने हर्षनाद किया। उन्होंने प्रभु महावीर को देवाधिदेव मानकर पूजा-भक्ति की। प्रभु महावीर की महिमा का गुणगान सारे गाँव में फैलाया।

श्रावस्ती से कौशाम्बी, वाराणसी, राजगृह, मिथिला आदि नगरों में घूमते हुए प्रभु महावीर चातुर्मास को सम्पन्न करने के लिए वैशाली नगरी पधारे।

यों वैशाली प्रभु का ननिहाल था, पर साधनाकाल में वह कभी भी किसी परिजन से नहीं मिले। वैशाली के बाहर कामवन नाम का उद्यान था। वहाँ इसी नाम का मन्दिर था।

आवश्यक चूर्णिकार ने यह चातुर्मास मिथिला का लिखा है। पर अधिकांशतः प्राचीन व आधुनिक इतिहासकार यह चातुर्मास वैशाली का ही मानते हैं। आचार्य देवेन्द्र मुनि जी भी चूर्णिकार के मत से सहमत नहीं हैं।

आचार्य देवेन्द्र मुनि ने समरोद्यान के बाहर बलदेव का मन्दिर लिखा है।<sup>७६</sup>

### जीर्ण सेट व पूरण सेट

वैशाली नगरी भारत की प्राचीनतम नगरियों में से एक है। इसका वर्णन महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण में भी आया है। प्रभु महावीर के समय तो यह ४,४०४ गण राजाओं की राजधानी थी। इन सबका अध्यक्ष श्रमणोपासक चेटक था, जो महान् शूरवीर था। महात्मा बुद्ध ने वैशाली को धरती का स्वर्ग और वैशाली निवासियों को देवता कहा है। वैशाली

अपनी सम्पन्नता में भी मशहूर थी। यहाँ करोड़पति सेठ रहते थे। आम्रपाली यहाँ की नगर वधू थी, जिसने महात्मा बुद्ध को निमन्त्रण कर अपना सारा उद्यान दान किया था। वह स्वयं भिक्षुणी बनी थी।

राजा चेटक भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का कट्टर अनुयायी था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह अपनी राजकुमारी की शादी जैन राजा के साथ से सम्पन्न करेगा। उसके चरित्र का वर्णन भगवतीसूत्र में भी उपलब्ध है।

उस नगरी में एक सेठ रहता था। कभी वह बहुत अमीर था। पर यह पैसा, जिसका नाम माया है, छाया की तरह आता-जाता है। माया का एक नाम चंचला है। यह चलती रहती है। कभी यह सेठ इतना सम्पन्न था कि इसे नगरसेठ माना जाता था।

पर सारे दिन एक से नहीं रहते। एक दिन ऐसा आया कि लक्ष्मी उस सेठ से रूठ गई। वह श्रमणोपासक सेठ था। धन की कीमत व सदुपयोग वह जानता था। धन के आने-जाने का उसे गम नहीं था। वह तो परम प्रभु भक्त था। इतना गरीब हो जाने पर भी वह लोगों के हृदय में अपने गुणों के कारण राज्य करता था। लोग उसे “जीर्ण” सेठ कहते थे। लोगों में उसकी दान, शील, तप, भावना के किस्से मशहूर थे।

धनहीन जीर्ण भक्तिहीन नहीं था। वह सामुद्रिक शास्त्र का ज्ञाता था। एक दिन वह सुबह उठा। भगवान महावीर के पद चिन्हों को देखते-देखते वह उसी उद्यान में पहुँचा, जहाँ प्रभु महावीर ध्यानस्थ थे। वह प्रभु महावीर को देख बहुत प्रसन्न हुआ।<sup>७७</sup>

प्रतिदिन वह उस उद्यान में आता और प्रभु महावीर के दर्शन करता। उन्हें वह आहार-पानी हेतु पधारने की प्रार्थना भी करता। निरंतर चार मास जीर्ण सेठ चातक की तरह प्रभु महावीर का श्रद्धावश इन्तजार करता रहा। प्रभु अभी तक पधारे नहीं थे। सेठ ने सोचा-“मासिक तप होगा। महीना बीतने पर प्रभु महावीर पधारेंगे।”

सेठ ने पहले एक मास इंतजार किया। प्रभु महावीर नहीं आये। फिर इसी तरह दूसरा मास इंतजार करने लगा। प्रभु महावीर ध्यानावस्था में थे। वह भिक्षा के लिए नहीं निकले थे।

वर्षावास का तीसरा मास बीत रहा था। प्रभु महावीर ने यह मास भी तप में गुजारा। भिक्षा ग्रहण नहीं की।

चातुर्मास समाप्ति पर था। इधर जीर्ण सेठ की भावना बलवती हो रही थी। उसे हर क्षण प्रभु का इंतजार था।

इंतजार इंतजार होता है। जीवन ही एक लम्बे इंतजार का नाम है। हम हर क्षण में इंतजार करते हैं। इंतजार सहनशीलता का पर्याय है। चातुर्मास समाप्त होने वाला था। उसने प्रभु महावीर से भिक्षार्थ पधारने की प्रार्थना की। प्रार्थना करके वह प्रभु महावीर का इंतजार करने लगा। जैन श्रमण किसी के निमन्त्रण पर भिक्षा ग्रहण नहीं करता। भिक्षा के ४२ दोष होते हैं जो भिक्षु को टालने होते हैं। जहाँ दोष न हो, साधु वहाँ से भोजन ग्रहण करता है।

दोपहर का समय आया। प्रभु महावीर भिक्षा के लिये उपवन से बाहर आये। वह वैशाली नगरी के उच्च, मध्यम, नीच सभी कुलों में भिक्षा की गवेषणा करने लगे। शुद्ध पिण्डैषणा करने लगे।

पिण्डैषणा करते हुए वह एक गृहस्थ के घर पधारे। उस गृहस्थ का नाम पूरण था। वह नया-नया सेठ बना था। बड़ी बात यह थी कि वह जीर्ण सेठ का पड़ोसी था। पूरण सेठ ने बड़ी बेरुखी से प्रभु महावीर को देखा। फिर उसने अपनी दासी को कहा-“इस भिक्षु को जो कुछ भी घर में तैयार है दे दो।” दासी ने एक चम्मच कुल्लत्थ (बाकुले) दिये। प्रभु महावीर ने चार मास की तपस्या का पारणा एक चम्मच भर बाकुलों से किया।

दान की भावना भरते हुए जीर्ण सेठ ने सोचा-“कल्पवृक्ष को अमृत से सिंचन करना सुलभ है पर तपोमूर्ति महावीर को दान देना दुर्लभ है। अक्षय पुण्योदय से यह अवसर मिलता है।” इस प्रकार कल्पनाओं में डूबा जीर्ण सेठ प्रभु के



आगमन व दान देने की प्रतीक्षा को एकटक देख रहा था। प्रतीक्षा से आँखें पथरा गई थीं। वह सोच रहा था—“प्रभु अब पधारें, अब पधारें।” पर प्रभु महावीर की उसे छवि दिखाई न दी।

जीर्ण के हृदय में भावनाओं का तूफान आ गया। श्रद्धा का ज्वार-भाटा उमड़ पड़ा। इस आध्यात्मिक प्रतीक्षा के पलों में उसका हृदय अपूर्व प्रसन्नता अनुभव कर रहा था। उसकी आत्मा भावों की उच्चता की ओर बढ़ रही थी।

इधर पूरण सेठ के दान से देवों में प्रसन्नता छा गई। सहसा देव-दुन्दुभि बजी। पंच दिव्य-वृष्टि हुई। “अहोदान अहोदान” की देवता पुकार करने लगे। उसी समय देव-घोषणा हुई—

“प्रभु महावीर का चातुर्मासिक तप का पारणा हो गया है।”

जीर्ण सेठ ने जब यह दिव्य ध्वनि सुनी तो उसका दिल टूट गया। हृदय पर वज्राघात हुआ। उसकी श्रद्धा डगमगा गई। वह अपने भाग्य को कोसने लगा। निराश होकर वह सोच रहा था—“मैं कैसा अभागा हूँ। चार मास तक निरन्तर इन्तजार करने पर भी प्रभु महावीर ने मेरे ऊपर कृपा नहीं की। आखिर मैं सचमुच जीर्ण हो गया हूँ। क्योंकि मैं जीर्ण धन के अभाव से नहीं हूँ, धन तो जन्म से प्राप्त हुआ है। मैं सचमुच जीर्ण हूँ क्योंकि मैं प्रभु महावीर की नजर में जीर्ण हूँ। उसे अपने आप पर क्षोभ हुआ।

यह तो जीर्ण सेठ का पश्चात्ताप था। शास्त्रकार कहते हैं कि उसकी आत्मा उस समय इतने दिव्य परिणामों की ओर बढ़ रही थी कि अगर वह दो घड़ी और देव-दुन्दुभि न सुनता तो उसे प्रभु महावीर से पहले केवलज्ञान प्राप्त हो जाता।

यह घटना दिखाती है कि भक्ति के क्षेत्र में अमीर-गरीब का प्रश्न नहीं है। भगवान तो भक्ति के वश में हैं। जीर्ण सेठ ने अपनी भक्ति द्वारा एक नये इतिहास का सर्जन किया।

उधर पूरण सेठ ने प्रभु महावीर को जब पारणा कराया तो देवकृत दिव्य अतिशय देखे। उसके घर के बाहर लोगों का ताँता लग गया। लोगों ने पूछा—“हे भाग्यशाली ! तूने इस भिक्षुक को क्या भिक्षा दी है, जिस कारण देवता भी तेरे से प्रसन्न हो रहे हैं ?”

पूरण सेठ अहंकारवश झूठ बोलने लगा। उसने सोचा कि अगर मैं सत्य बोलूँगा तो मेरी प्रतिष्ठा नहीं रहेगी।

फिर उसने होशियारी से काम लेते हुए, शेखी बघारते हुए कहा—“भाई ! मैंने इस भिक्षु को अपने हाथों से शुद्ध क्षीर का भोजन कराया था।” लोग पूरण सेठ के भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

इस झूठ से पूरण को लाभ नहीं मिला पर जीर्ण सेठ, जिसने अपने हाथों से कुछ नहीं दिया था, सिर्फ भावना की थी, मात्र प्रतीक्षा की थी। उसी शुभ भाव से वह मरकर बारहवें देवलोक में देव बना।

इस कथा से पता चलता है कि जैनधर्म में भावनाओं का कितना महत्त्व है, शुभ भावना अच्छे कर्म का कारण है, अशुभ भावना मनुष्य को भटकाती है।

## बारहवाँ वर्ष

प्रभु महावीर ने यह चातुर्मास वैशाली में सम्पन्न किया। वहाँ चातुर्मास की समाप्ति पर सुसुमारपुर को तरफ विहार किया। यहाँ आप गाँव के बाहर अशोक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हुए। आप कायोत्सर्ग में खड़े थे। इसी स्थान पर देवता चमरेन्द्र ने इन्द्र के वज्र प्रहार से भयभीत होकर आपके चरणों में शरण ग्रहण की।

यहाँ से प्रभु महावीर विहार करते हुए मेड़िया गाँव पधारें। वहाँ एक गोपालक ने आपको कष्ट देने की चेष्टा की।

## घोर अभिग्रह व चन्दना दासी का उद्धार

मेढिय ग्राम से प्रभु महावीर कौशाम्बी पधारे। उस दिन पौष कृष्णा प्रतिपदा का दिन था। प्रभु महावीर ने उस दिन अपने जीवन का घोर अभिग्रह किया।<sup>१०८</sup>

‘सिर मुडित हो, पाँवों में बेड़ियाँ हों, तीन दिन की भूखी हो, दाता का एक पैर देहली के अंदर दूसरा बाहर हो, उड़द के बाकुले हों, भिक्षा का समय बीत जाने पर द्वार के बीच में खड़ी हुई हो, दासी हो, राजकुमारी हो, तीन दिन से भूखी प्यासी हो, ऐसे संयोग मुझे मिले, तब मुझे भिक्षा लेनी है अन्यथा छह मास तक मुझे भिक्षा ग्रहण नहीं करनी है।’<sup>१०९</sup>

इस प्रकार कठोर अभिग्रह कर प्रभु महावीर प्रतिदिन भिक्षा के लिए निकलने लगे। पर कौशाम्बी नगरी के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में प्रभु महावीर भ्रमण करते। वह सेठों की हवेलियों में जाते। गरीब, मजदूर, दासों की झोपड़ियों में जाते। वह उन सब कुलों में जाते जिनका आहार शुद्ध हो।

रोजाना दिन निकलता। प्रभु महावीर निकल जाते। कोई नहीं जानता था कि देवार्थ क्या चाहते हैं ?

लोग प्रभु महावीर को भिक्षा देना चाहते थे। वे सोचते—‘ये कैसा निर्ग्रन्थ श्रमण है, जो रोजाना भिक्षा के लिए निकलता है, पर वापस हो जाता है। ‘कोई भी प्रभु महावीर के हृदय के भावों को न जान सका। हर नर-नारी के मन में एक प्रश्न बार-बार उभरता, वह था—‘इस भिक्षु को क्या चाहिये?’

प्रभु महावीर के अभिग्रह और भिक्षा हेतु भ्रमण की चिंता अब आम विषय हो गई थी। लोग प्रभु महावीर को भिक्षा देने हेतु बहुत भावुक थे। बात वहीं रुक जाती कि प्रभु महावीर किस तरह और किस भाग्यशाली से अन्नदान ग्रहण करेंगे। प्रभु की तपस्या का बारहवाँ साल चल रहा था। प्रभु महावीर का शरीर घोर उपसर्ग व परीषह सहने का आदी हो चुका था। वह चार ज्ञान के धारक हो चुके थे। मंजिल उनके करीब आने वाली थी।

प्रभु महावीर की साधना का प्रसंग बड़ा अनुपम रहा है। उन्हें जन्म से दासों से लगाव रहा है। उनका जन्म होते ही प्रियंवदा दासी मुक्त हुई। इसके बाद जितने भी पारणे हुए, सब दासियों के हाथों हुए।

प्रभु महावीर के साधनाकाल का यह अंतिम पारणा होना था। प्रभु महावीर एक दिन घूमते हुए कौशाम्बी-नरेश के अमात्य सुगुप्त के घर पधारे। अमात्य की पत्नी नन्दा प्रभु महावीर की परम भक्त थी। उसे जब पता चला कि प्रभु महावीर हर सुबह निकलते हैं और वापस हो जाते हैं। अपने मन की बात किसी को बताते नहीं हैं। पता नहीं, कितने समय से प्रभु महावीर ऐसे ही चल रहे हैं ?

नन्दा प्रभु महावीर के प्रति समर्पित श्रमणोपासिका थी। वह प्रभु महावीर की कठोर साधना व अभिग्रहों से परिचित थी। इसी कारण वह बहुत दुःखी रहने लगी। भक्त का इष्ट किसी मुसीबत में हो, तो क्या नहीं कर गुजरता।

चार मास बीत चुके थे। प्रभु महावीर भिक्षा लेने का नाम नहीं लेते थे।

एक दिन प्रभु महावीर अमात्य सुगुप्त के घर पधारे। नन्दा ने प्रभु महावीर को भिक्षा देनी चाही, पर वह बिना कुछ ग्रहण किये वापस हो गये। नन्दा तड़फ उठी। उसकी तड़फ दासियों से देखी न गई। उन्होंने अपनी मालकिन से पूछा—‘आर्या ! क्या बात है आप कई दिनों से उदास-उदास, बुझी-बुझी-सी नजर आ रही हैं ? कहीं हमारे स्वामी से तो अनबन नहीं हुई ?’

नन्दा दासियों के कहने से और खुलकर रोई। फिर उसने कहा—‘मेरी आपके स्वामी व मेरे पति से कोई अनबन नहीं हुई। वह तो बेचारे दयालु, भद्र पुरुष हैं। असल में मेरे परमात्मा प्रभु महावीर की हालत मुझसे देखी नहीं जाती।

उन-जैसा तपस्वी इस युग में कोई नहीं है। वह रोजाना घूमते रहे। पर भिक्षा नहीं ली। आज मेरे गृह आये। हाथ पसारा पर मेरे ऐसे भाग्य कहाँ? प्रभु महावीर को आहार देने का सौभाग्य तो किसी भाग्यशाली को प्राप्त होता है। मेरी भक्ति में कमी लगती है। अगर कमी न होती, तो घर पर आये प्रभु खाली हाथ क्यों लौटते?"

दासियों ने कहा-“प्रभु महावीर गुप्त तपस्वी हैं। यह बात आज की नहीं, वह तो चार-चार मास बिना अन्न-जल ग्रहण किये तप करते हैं। उनके लिए यह नई बात नहीं है। और यह क्रम अब भी चार माह से चल रहा है।”

दासियों की बात सुनकर नन्दा और भावुक हुई। आखिर वह कौशाम्बी के मंत्री की धर्मपत्नी थी। जब अमात्य सुगुप्त घर आये, तो उसने अपने पति से विनम्र निवेदन किया-“आप कैसे महामंत्री हैं कि चार मास पूर्ण हो गये हैं, मेरे भगवान महावीर भिक्षा के लिए आते हैं, चले जाते हैं। आपकी बुद्धि किस काम की? अगर आप प्रभु महावीर के मनोगत भावों का पता नहीं लगा सकते। आपको क्या चिंता है कि वह भोजन के लिए रोजाना निकलते हैं पता नहीं भोजन क्यों ग्रहण नहीं करते।”

अमात्य को प्रभु महावीर के इस तरह घूमने का तो पता था, पर उसने कभी ध्यान नहीं दिया था कि ऐसा क्यों हो रहा है? अमात्य सुगुप्त ने अपनी पत्नी को आश्वासन दिया कि वह शीघ्र पता लगायेंगे कि प्रभु महावीर भोजन ग्रहण क्यों नहीं करते? ऐसा यत्न करेंगे कि प्रभु महावीर के मनोभाव को जानकर उन्हें भिक्षा प्रदान करें।

अमात्य और उसकी पत्नी की सारी बातों को विजया नाम की दासी ने सुना।

उसने यह बात महारानी मृगावती को बताई। मृगावती दासी की बात सुनकर चिंतित हुई। मृगावती सांसारिक दृष्टि से प्रभु महावीर की मौसी थी। मृगावती ने प्रभु महावीर के बिना कुछ ग्रहण किये जाने के बारे में राजा शतानीक को बताया। सम्राट् शतानीक और अमात्य सुगुप्त ने भरसक प्रयत्न किया कि प्रभु महावीर का यह अभिग्रह पूर्ण हो जाए, पर वह कुछ भी करने में असफल रहे। प्रभु महावीर का अभिग्रह अपूर्ण रहा। तब राजा शतानीक ने प्रजा को भी साधु के नियमों का ज्ञान कराया और प्रभु महावीर का अभिग्रह पूर्ण करने की सूचना दी।

पाँच मास और पच्चीस दिन बीत गये। प्रभु महावीर का क्रम इसी प्रकार चलता रहा। उनके तप-तेज में कोई अंतर नहीं आया।

एक दिन अपने नियम के अनुसार भ्रमण करते हुए धन्ना श्रेष्ठी के द्वार पर पहुँचे। यह सेठ श्रमणोपासक था। यहाँ राजकुमारी चन्दना सूप में उड़द के बाकुले लिए तीन दिन की भूखी-प्यासी द्वार के बीच बैठी थी। उसका सिर धन्ना सेठ की पत्नी ने मुंडा दिया था। वह चन्दना को अपनी सौत समझती थी। वह चन्दना के हाथ-पाँव में हथकड़ियाँ पहनाकर अपने मायके चली गई।

चन्दना ने आते हुए प्रभु महावीर को देखा। उसका हृदय-कमल खिल उठा। मन मोर नाचने लगा। हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ झनझना उठीं। उसने प्रभु महावीर को दूर से आते देखा और सोचा-“मेरा धन्य भाग्य है कि मेरे भगवान मेरे पर अनुकम्पा कर यहाँ पधार रहे हैं। पर मेरे पास देने को क्या है? उड़द के बाकुले!”

“ऐसी तुच्छ वस्तु प्रभु महावीर को दूँगी। मेरे पास दान देने को सुपात्र सामने आ रहा है, पर देने वाला पदार्थ तुच्छ है।”

यह सोचकर चन्दना की आँखों में आँसू आ गये। उसे अपनी दासी होने का भय नहीं था। उसे भय था तो देने योग्य पदार्थ का। इस तुच्छ पदार्थ से प्रभु महावीर व्रत का पारणा करेंगे।

इधर चन्दना की आँखों में आँसू थे। भगवान महावीर के सभी अभिग्रह पूर्ण हो चुके थे। भगवान महावीर ने हाथ आगे बढ़ाया। अश्रु भरी आँखों से प्रभु महावीर को आहार बहराया।

प्रभु महावीर ने उड़के बाकुले से पारणा किया। देवताओं ने 'अहोदानं अहोदानं' की घोषणा की। इस तरह प्रभु महावीर ने यह आहार एक दासी के हाथ किया।

## महासाध्वी चन्दना

चन्दना से प्रभु महावीर का आहार करना दासत्व के प्रति क्रान्ति थी। श्वेताम्बर ग्रंथों में चन्दना को राजा दधिवाहन की पुत्री कहा गया है।

कथानक इस प्रकार है : कौशाम्बी के राजा शतानीक ने अचानक ही चम्पा पर आक्रमण कर दिया। दधिवाहन राजा के भय से भाग गया। शतानीक के सैनिक चम्पा को लूटने लगे।

एक सैनिक महारानी धारणी और चन्दना को लेकर भागा। सैनिक ने धारणी का शील भंग करने का प्रयत्न किया। रानी धारणी ने धर्म-संकट को पहचान कर शील भंग के भय से आत्म-हत्या कर ली।

चन्दना की अवस्था छोटी थी। उसने चन्दना को एक वेश्या के पास बेच दिया। चन्दना ने वेश्या के पास जाने से इंकार कर दिया। वेश्या ने चन्दना को धन्ना सेठ के पास बेच दिया। धन्ना श्रमणोपासक था। उसने करुणावश चन्दना को उचित दाम देकर मोल ले लिया।

उसकी पत्नी मूला बहुत शंकालु स्त्री थी। चन्दना का असली नाम वसुमति था। वह अत्यंत सुन्दर राजकुमारी थी। मूला को भय था कि मेरा पति इस सुन्दर दासी को पत्नी बना लेगा। किसी न किसी ढंग से इस दासी को घर से निकालना चाहिये, ताकि मेरा जीवन सुरक्षित रह सके। मूला इसी ताक में रहने लगी कि कब मैं इस दासी को निकालूँ।

दूसरी ओर धन्ना सेठ चन्दना को अपनी पुत्री समझता था। चन्दना भी उसे अपने पिता से ज्यादा सम्मान देती थी। दोनों में पिता-पुत्री का रिश्ता था।

जीवन चल रहा था। एक दिन की बात है कि सेठ कहीं बाहर गया हुआ था। वह वापस आया। थका-माँदा था। वह सेठजी की सेवा के लिए गर्म जल लेकर आई। सेठ चौकी पर बैठा था। चन्दना उसी समय केश स्नान करके केश सुखा रही थी। उसके लम्बे व काले केश सुखाने के लिए खुले थे।

सेठ के पाँव धोने के लिए चन्दना जमीन पर बैठी। चन्दना ने पाँव धोने शुरू किये। उसके केश उसके माथे पर गिरने लगे। सेठ ने इन केशों को उठाकर गोद में रख लिया, ताकि बाल पानी में न भीग जायें।

सेठानी यह सब देख रही थी। सेठानी पुत्री-पिता के रिश्ते को गलत ढंग से समझ रही थी।

सेठानी शंका से जलने-कुढ़ने लगी। उसने चन्दना को रास्ते से हटाने का निर्णय किया। आखिर एक दिन आ गया, जब सेठानी के मन की मुराद पूरी हो गई। एक दिन सेठ बाहर गया हुआ था। सेठानी ने दासी को बुलाकर लम्बे सुन्दर केश मुंडवा दिये। फिर सेठानी ने चन्दना को घर के भोंहरे में डाल दिया। उसने भोंहरे के आगे ताला लगा दिया। ताला लगाकर वह भायके चली गई।

तीन दिन चन्दना भोंहरे में भूखी-प्यासी बैठी रही। तीसरे दिन सेठ वापस आया। वापिस आकर सेठ ने अपनी धर्मपुत्री को आवाज दी, पर कहीं भी चन्दना का पता न चला। सेठ ने घर का कोना-कोना छान मारा। चन्दना का कोई पता नहीं चल रहा था।

आखिर वह उस भोंहरे की ओर गया, जहाँ वह कैद थी। वहाँ उसे चन्दना की धीमी आवाज सुनाई दी। सेठ ने भोंहरे का दरवाजा खोला। वहाँ चन्दना को पाया। चन्दना की दुर्दशा देखी। चन्दना भूखी-प्यासी थी। सेठ ने घर में भोजन की तलाश की। रसोईघर खाली था। अचानक उसकी दृष्टि घोड़ों के लिये उबले बाकुलों पर पड़ी। उसने वह बाकुले एक छाज में डालकर चन्दना को दिये। फिर वह लोहार को लेने गया, ताकि चन्दना के बन्धन काट सके।

इधर सेठ लोहार को लेने गया। उधर चन्दना ने अपने सामने पड़े बाकुले देखे। फिर उसने सोचा—“आज तीन दिन का मेरा उपवास हो गया है कितना अच्छा हो कि किसी सुपात्र को दान देकर मैं स्वयं भोजन करूँ।”

इतना सोचना था कि चन्दना की भावना अनुसार प्रभु महावीर पधार गये।

इधर चन्दना के सुपात्रदान से उसके बंधन ही नहीं टूटे, बल्कि समस्त स्त्री-जाति के लिए मोक्ष का द्वार भी खुल गया।

यह चन्दना ही थी कि जिसे प्रभु महावीर की प्रथम शिष्या बनने का सौभाग्य मिला। प्रभु महावीर ने इसी चन्दना को अपनी ३६,००० साध्वियों का प्रमुख बनाया। चन्दना जो पहले राजकुमारी बनी, फिर दासी बनकर प्रभु को आहार देने का सौभाग्य प्राप्त किया। अंत में प्रभु के हाथों दीक्षित होकर मोक्षमार्ग प्राप्त किया।

## दिगम्बर परम्परा

दिगम्बर उत्तरपुराण में चन्दना की कथा दूसरे ढंग से वर्णन की गई है। उसे वैशाली-नरेश चेटक की पुत्री बताया गया है। एक दिन चन्दना उद्यान में क्रीड़ा कर रही होती है, तभी एक विद्याधर उसे उठाकर ले जाता है। पर विद्याधर भी पत्नी के भय से उसे जंगल में छोड़ देता है।

वहाँ वह एक भील को प्राप्त होती है। वह चन्दना को ऋषभदत्त को बेच देता है, ऋषभदत्त की पत्नी सुभद्रा सेठ पर शंका करती है। सेठानी उसे खाने के लिये मिट्टी के सकोरे में भाजी मिला थोड़ा-सा भात देती है और क्रोधवश उसे सदा साँकल से बाँधे रखती है।

आगे की कहानी श्वेताम्बर ग्रंथों के अनुसार ही है। प्रभु महावीर का अभिग्रह पूर्ण कराने के कारण उसकी हथकड़ियाँ स्वयं टूट जाती हैं, नये केश आ जाते हैं। हथकड़ियाँ आभूषणों का रूप बन जाती हैं। शील के प्रभाव से मिट्टी का बर्तन स्वर्णमय बन जाता है। भात चावलों का रूप ले लेता है।

इस तरह दोनों परम्पराओं में चन्दना द्वारा प्रभु महावीर के अभिग्रह का पारणा रखने का वर्णन श्रद्धा से किया गया है। दोनों परम्पराएँ उन्हें भगवान महावीर की प्रथम साध्वी मानती हैं।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार वह राजा शतानीक की रानी मृगावती के यहाँ आ जाती है। देवों द्वारा प्रभु महावीर के केवलज्ञान की सूचना पाकर वह भी पावापुरी के समवसरण में दीक्षित होती है।

प्रभु महावीर ने इस प्रकार साध्वी के माध्यम से समस्त स्त्री-जाति का उद्धार किया। उस समय के किसी भी महापुरुष ने स्त्री-स्वतन्त्रता के प्रति इतनी आवाज नहीं उठाई। ब्राह्मण लोगों ने तो स्त्री को वेद व संस्कारों से मुक्त रखा। यहाँ तक कि बौद्ध धर्म में भी भगवान बुद्ध ने स्त्रियों को अपने संघ में स्थान अपने शिष्य आनंद के अनुरोध पर दिया। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में दासों, स्त्रियों और अस्पृश्य माने जाने वाले मानवों को प्रभु महावीर ने गले लगाया। सारी मानव जाति की समानता का उदाहरण प्रस्तुत किया।

कौशाम्बी से विहार करके प्रभु महावीर सुमंगल, सुच्छेत्ता पालक प्रभृति क्षेत्रों को पावन करते हुए चम्पानगरी पधारे।<sup>८१</sup> वर्षावास का समय आ चुका था।

प्रभु महावीर ने यह वर्षावास स्वातिदत्त ब्राह्मण की यज्ञशाला में किया। यहाँ प्रभु महावीर ने चातुर्मासिक तप किया। इस तप के प्रभाव से पूर्णभद्र और मणिभद्र यक्ष प्रभु महावीर के भक्त बन गये। वह प्रभु महावीर की सेवा में रहने लगे।

स्वातिदत्त ब्राह्मण पर भी यक्षों द्वारा पूजित भगवान महावीर के तप का अच्छा प्रभाव पड़ा।

उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह विचार करने लगा--‘देवार्य अवश्य ही कोई विशिष्ट ज्ञानी हैं।’<sup>८२</sup>

वह प्रभु महावीर के पास आया। आकर उसने प्रभु महावीर के समक्ष अपने मन में वर्षों से उत्पन्न प्रश्नों का समाधान किया।

### स्वातिदत्त के प्रश्न व प्रभु का समाधान

स्वातिदत्त जहाँ क्रियाकाण्डी ब्राह्मण था, वहाँ विशिष्ट ज्ञानी भी था। वह अपनी परम्परा से चिपका नहीं था। वह गुणग्राही था। उसने जो प्रश्न किये, वे उसकी विशिष्ट बुद्धि के परिचायक हैं। हमारे विचार में प्रश्न करना बहुत कठिन कार्य है, क्योंकि जिसे कुछ ज्ञान होगा वही प्रश्न करेगा। अज्ञानी क्या प्रश्न करेगा? स्वातिदत्त के प्रश्न और प्रभु महावीर के उत्तर का विवरण हम निम्न पंक्तियों में दे रहे हैं--

स्वातिदत्त--“हे भिक्षु ! आत्मा क्या है ?”

प्रभु महावीर--“जो शब्द ‘मैं’ का वाच्यार्थ है वही आत्मा है अर्थात् जो शक्ति ‘मैं’ का अहसास कराती है वही आत्मा है।”

स्वातिदत्त ने पुनः प्रश्न किया--“आत्मा का स्वरूप व लक्षण क्या है ?”

प्रभु महावीर--“आत्मा अत्यंत सूक्ष्म है। रूप, रस, गंध, स्पर्श से रहित है। चेतना गुण ही इसका लक्षण है।”

स्वातिदत्त--“सूक्ष्म क्या है ?”

प्रभु महावीर--“जो इन्द्रियों द्वारा न जाना जाये।”

स्वातिदत्त जिज्ञासु था। उसने कहा--“क्या आत्मा को शब्द, रस, गंध और वायु के सदृश सूक्ष्म माना जा सकता है ?”

प्रभु महावीर ने स्पष्टीकरण करते हुए समझाया--“स्वातिदत्त ! ऐसा नहीं है जैसा तूने मान रखा है। ये सभी पदार्थ तो इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जा सकते हैं। श्रोत्र के द्वारा शब्द, नेत्र के द्वारा रूप, घ्राण के द्वारा गंध और शब्द, स्पर्श के द्वारा वायु ग्राह्य है। जो इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं हो, वही सूक्ष्म कहलाता है।”

स्वातिदत्त ने पुनः पूछा--“क्या ज्ञान को हम आत्मा कह सकते हैं ?”

प्रभु महावीर--आर्य ! ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है, पर मात्र ज्ञान आत्मा नहीं। ज्ञान का आधार आत्म-ज्ञानी है। यानि ज्ञान भी आत्मा में ठहरता है।”

स्वातिदत्त--“भगवन् ! प्रदेशन क्या है ?”

प्रभु महावीर--“हे देवानुप्रिय ! प्रदेशन का अर्थ उपदेश होता है। वह उपदेश धर्म सम्बन्धी भी हो सकता है और अधर्म के सम्बन्ध में भी। इसलिए धार्मिक उपदेश भी प्रदेशन है और अधर्म के सम्बन्ध में किया गया उपदेश भी प्रदेशन है।”

स्वातिदत्त--“प्रभु ! प्रत्याख्यान आप किसे मानते हैं ?”

प्रभु महावीर--“हे आर्य ! प्रत्याख्यान का अर्थ निषेध है, रोकना है। यह दो प्रकार का है--

(१) मूलगुण प्रत्याख्यान, तथा (२) उत्तरगुण प्रत्याख्यान।

आत्मा के दया, अनुकंपा, श्रद्धा, भक्ति व सत्य आदि मूलगुण हैं। इनकी रक्षा मूलगुणों की रक्षा है।

हिंसा, असत्य और चोरी आदि पाप के परित्याग को मूलगुण प्रत्याख्यान कहते हैं।

इन्हीं मूलगुणों के सहायक, सदाचार के विरुद्ध आचरण के त्याग का नाम उत्तरगुण प्रत्याख्यान है।”

स्वातिदत्त प्रभु महावीर से अपने प्रश्नों के समाधान पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।<sup>८३</sup>

## ग्वाले का उपसर्ग

वर्षावास समाप्त होते ही प्रभु जंभियग्राम से मेढियाग्राम पधारे। मेढियाग्राम से छम्माणि पधारे। ग्राम के बाहर ध्यान-मुद्रा में ध्यानस्थ हुए।<sup>८४</sup>

सायंकाल का समय था। एक ग्वाला उसी स्थान पर बैल लिये घूम रहा था। उसने देखा जंगल में यह भिक्षु खड़ा है, यह मेरे बैलों का ध्यान रखेगा। इस कारण उसने बैल प्रभु के समीप छोड़ दिये। उसे कोई घरेलू कार्य था। उसकी पूर्ति के लिये वह सारा दिन नगर में घूमता रहा। बैल स्वामी को न पाकर आगे जंगल में चले गये। वे घास खाते-खाते जंगल में और आगे निकल गये। वहाँ झाड़ियों के झुण्ड थे। बैल उसके पीछे जाकर बैठ गये।<sup>८५</sup>

नगर से थका-माँदा ग्वाला आया। उसने देखा कि उसके बैल नहीं हैं। उसने बैलों के बारे में प्रभु से पूछा—‘हे देवार्थ ! क्या आपने मेरे बैल देखे हैं ?’

प्रभु महावीर मौन समाधि में लीन, आत्म-साधना में विचरण कर रहे थे। इसी कारण वह चुप रहे।

प्रभु महावीर को देखकर ग्वाला गुस्से से लाल-पीला हो गया। उसने कहा—‘एक तो चोरी, दूसरी सीना जोरी। मेरे बैल भी गुम कर दिये और बोलता भी नहीं। ठहरो, मैं तुम्हें तुम्हारी करनी की अभी सजा देता हूँ।’

यह ग्वाला और कोई नहीं था। यह वही शय्या-पालक का जीव था, जिसके कानों में संगीत बंद न करने के कारण त्रिपृष्ठ वासुदेव के भवन में महावीर के जीव ने कानों में पिघला सीसा डाला था। उसी समय त्रिपृष्ठ वासुदेव जीव के रूप में जो भयंकर कर्मबंध हुआ था उसको भोगने का समय आ गया था।

जन्म-जन्मातारों के बाद वही जीव ग्वाले का रूप धारण करके आया था। यह बात प्रभु महावीर से छिपी नहीं थी।

ग्वाले ने पूर्वभव का बदला लेते हुए प्रभु महावीर के कानों में तीक्ष्ण कीले गाढ़ दीं। यह भयंकर उपसर्ग प्रभु महावीर ने सहा। ऐसा उदाहरण संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिलता। प्रभु महावीर को इन कीलों से भयंकर शारीरिक वेदना हुई। प्रभु ने इस वेदना को प्रसन्नता से सहा। उनके मन में ग्वाले के प्रति क्षण मात्र भी क्रोध न आया।

वह चिंतन कर रहे थे कि त्रिपृष्ठ वासुदेव के मन में मैंने जो शय्या-पालक के कान में सीसा डाला था, उसे कितनी पीड़ा हुई होगी। ये पीड़ा तो उससे कहीं कम है। कर्मफल तो भोगना है। कर्म क्षीण करने के लिए तो मैंने राज्य, परिवार छोड़ा है। फिर मेरा किया मुझे भोगना है। मेरे कर्म का फल कोई दूसरा कैसे भोग सकता है ?

मनुष्य अकेले कर्म करता है, अकेले ही भोगता है। अकेले ही जन्म-मरण की परम्परा बाँधता है, अकेले ही इस परम्परा से मुक्त होता है।

## कीले निकालना

प्रभु महावीर वहाँ से चलकर मध्यम पावा पधारे। भिक्षा के लिये वह घूम रहे थे। उनके कानों में कीले तुकी हुई थीं। असाधारण वेदना में भी प्रभु महावीर घूम रहे थे। प्रभु महावीर का यह अंतिम उपसर्ग था। उनका पहला उपसर्ग भी ग्वाले ने किया था। अंतिम भी ग्वाले ने किया था।

इस नगर में सिद्धार्थ नामक एक वणिक रहता था। जब प्रभु महावीर भिक्षार्थ घूम रहे थे, तो उस वणिक के पास वणिक का मित्र एक वैद्य खरक बैठा था। दोनों बातें कर रहे थे। सामने प्रभु महावीर को आते देखा। दोनों उठे। उठकर प्रभु को आदरपूर्वक वंदन किया।

उसी समय खरक वैद्य अपने मित्र सिद्धार्थ से बोला—‘इस भिक्षु का शरीर वैसे सुन्दर लक्षणों से परिपूर्ण है, पर लगता है कि यह सशल्य है। कोई दुःख जरूर है।’

सिद्धार्थ ने अपने मित्र से पूछा—“प्रभु को क्या कष्ट है? क्या शल्य है? देखकर बताओ?”

वैद्य ने प्रभु महावीर के पवित्र शरीर का निरीक्षण किया। उसे रोग समझ आ गया। उसने कहा—“किसी दुष्ट प्राणी ने इस तपस्वी के कानों में कीले ठोक दी हैं।”

सिद्धार्थ को कीलों की बात सुनकर बहुत दुःख हुआ। उसने अपने मित्र खरक वैद्य से कहा—“देवानुप्रिय ! इस भिक्षु के कानों में से कीले जल्दी निकालो। हमें बहुत पुण्य मिलेगा। ऐसा तरुण तपस्वी कहाँ मिलता है? यह तो साक्षात् भगवान का रूप है? हमारे घर अपनी तप की पूर्ति हेतु पधारे हैं। इनकी सेवा करने से हमारे जन्म-जन्मान्तर के कष्ट समाप्त हो जायेंगे।”

सिद्धार्थ की वाणी श्रद्धामय थी। वह इस गुरु की पीड़ा को दूर करने के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार था। वह श्रद्धा व भक्ति से भरा हुआ था। वैद्य खरक व सिद्धार्थ तो कीले निकालने को तैयार हुए। प्रभु महावीर ने उन्हें स्वीकृति न दी। वह सचमुच महावीर थे। कोई महावीर ही इतने संकट झेल सकता है। वह उस दिन बिना भिक्षा ग्रहण किये जंगल की ओर चल दिये।

खरक वैद्य व सिद्धार्थ भी अपनी धुन के पकड़े थे। भक्त होते ही ऐसे हैं। कच्चा व्यक्ति क्या भक्ति करेगा? भक्ति के लिये श्रद्धा की आवश्यकता है? जो व्यक्ति मात्र तर्क रखता है वह प्रभु का प्यार नहीं पा सकता।

दोनों जंगल में गये। प्रभु महावीर वहाँ ध्यानस्थ थे। उन दोनों के पास औषधि व जरूरत के उपकरण थे। वे उद्यान में पहुँचे। प्रभु महावीर को देखा। उन्हें शरीर की सुध ही कहाँ थी? वह तो आत्म-साधना में लीन थे।

उन्होंने प्रभु महावीर के कानों से कीले निकाल दीं। दोनों कानों से खून के फुआरे छूट पड़े। इतने बड़े उपसर्ग में भी प्रभु महावीर ने कठोर साधना जारी रखी थी।

कहा जाता है कि इस अतीव भयंकर वेदना से भगवान महावीर के मुँह से एक भयंकर चीख निकली। इस चीख से अंदाज लगाया जा सकता है कि यह पीड़ा कितनी भयंकर थी। जो प्रभु महावीर १२ वर्ष पीड़ाएँ, अवहेलनाएँ, यातनाएँ सहकर भी नहीं डोले। तब उन्होंने कोई दुःख अनुभव नहीं किया। उनकी इस चीख से सारा देवलोक काँप उठा।

वैद्य ने शीघ्र ही संरोहण औषधि से रुधिर को बन्द कर दिया। घाव पर दवाई लगाई। फिर प्रभु महावीर को श्रद्धापूर्वक नमन कर, क्षमा याचना कर घर को आ गये।<sup>६</sup>

धन्य है ऐसे भक्त और उनका भगवान। भक्त भगवान के पीछे ही चलता है। यह घटना इस परम्परा को दर्शाती है कि भक्त अपने भगवान का अनुकरण करता है।

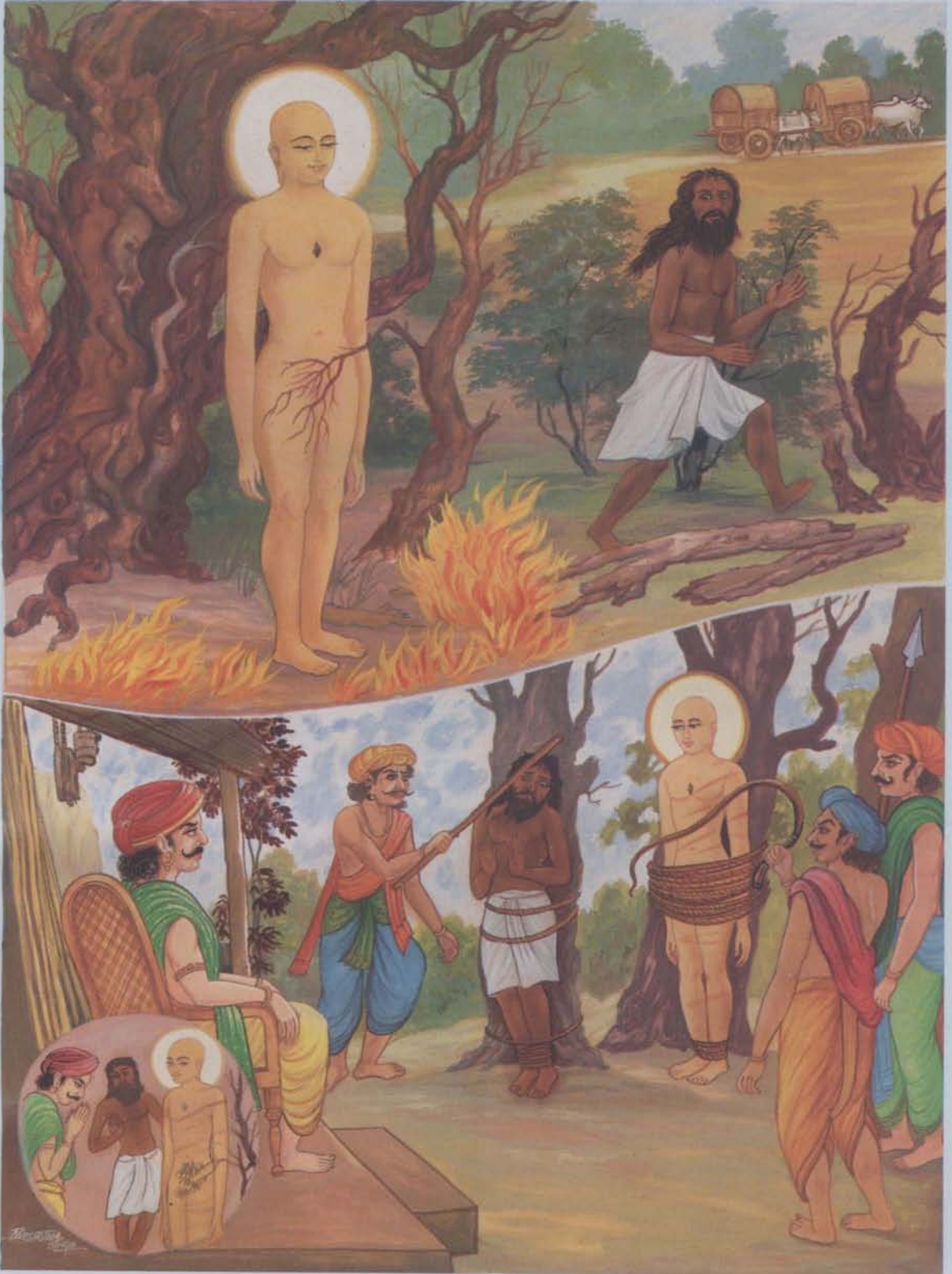
## भगवान महावीर की विदेह साधना

प्रथम अंग आचारांगसूत्र में प्रभु महावीर की साधना का अनुपम ढंग से वर्णन किया गया है जिसके कुछ अंश हम पाठकों के ज्ञान के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं—

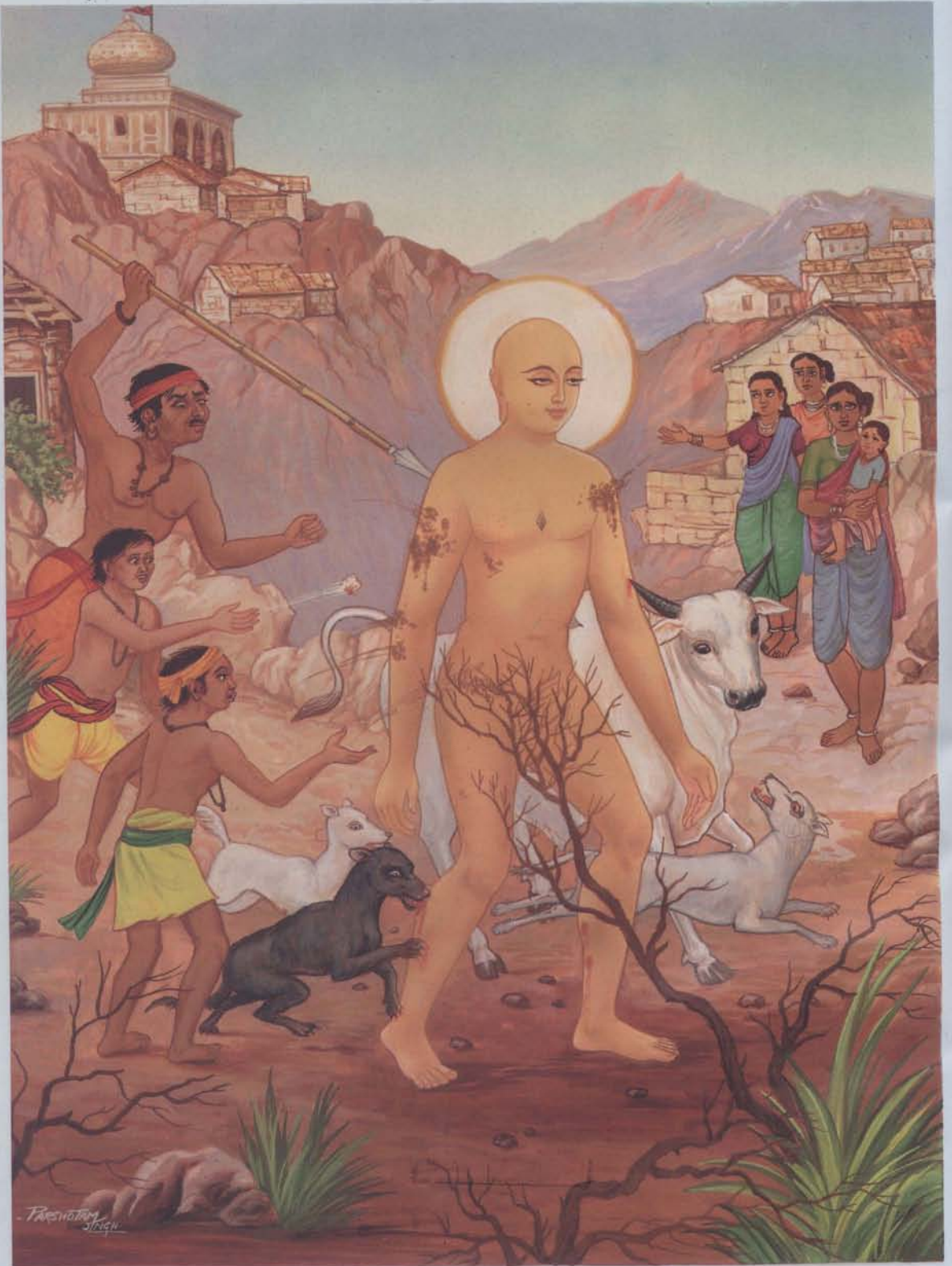
शीतकाल की ठंड और गर्मी की आग की लू, वर्षा की तूफानी हवायें उनको कभी विचलित न कर सकीं।

दीक्षा के समय प्रभु महावीर के शरीर पर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया गया था। सुगन्धित विलेपन और उबटन किये गये थे। उस विलेपन की सुगन्ध कई मास उनके शरीर पर बनी रही। प्रभु महावीर के लिए यह सुगन्ध ही कष्ट का कारण बनी। प्रभु महावीर जब जंगल में खड़े होकर ध्यान करते थे, तो उनकी देह से मीठी सौरभ हवा के साथ फैलकर वातावरण को सुगन्धित बना देती थी। इस मधुर सौरभ से खिंचे भँवरे प्रभु महावीर के शरीर पर आकर लिपटने लगते जैसे फूलों से लिपट रहे हों।





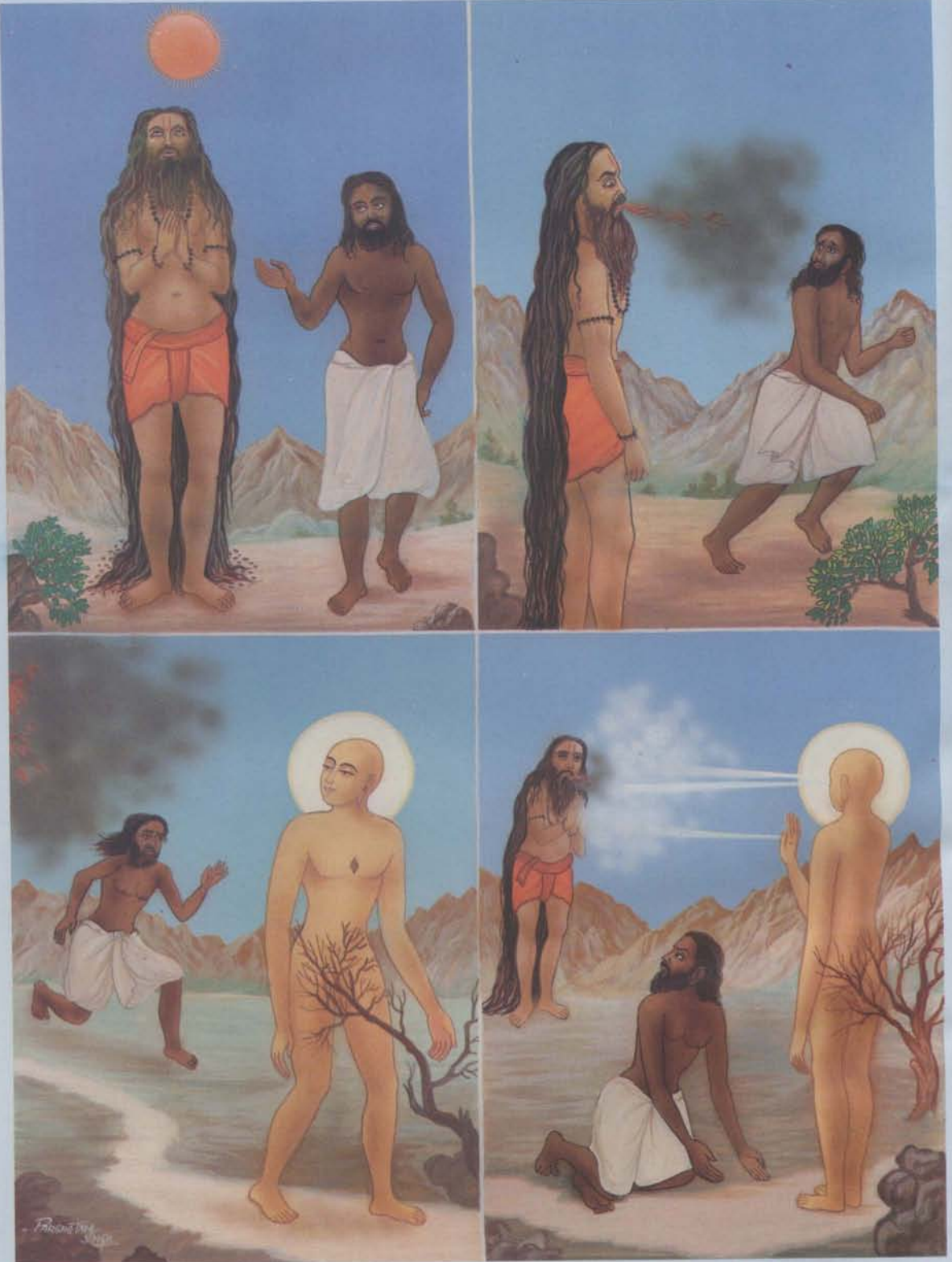
वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े भगवान के चारों तरफ अग्नि की लपटें देखकर गौशालक भाग खड़ा हुआ। कलंबुका में भगवान को तथा गौशालक को चोर समझकर रस्सों से बाँध दिया। पीड़ा देने पर भी प्रमु मौन रहे। गौशालक हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा। असलियत पता होने पर प्रमु ने क्षमा माँगी।



लाढ़ भूमि में अनार्य लोगों द्वारा प्रभु को अनेक प्रकार के उपद्रव



प्रभु को ध्यानस्थ देखकर कटपूतना नामक व्यन्तरी ने जटाओं में ठण्डा पानी भरकर उसकी तेज बौछारें प्रभु के शरीर पर डालने लगी। कूविय सन्निवेश में गुप्तचर समझकर प्रभु को कारागार में बन्द कर दिया। तब विजया व प्रगल्भा परिव्राजिका ने प्रभु का परिचय देकर वहाँ से मुक्त कराया।



गौशालक ने वैश्यायन तपस्वी को बार-बार चिढ़ाया तो उसने क्रुद्ध होकर उस पर तेजोलेश्या छोड़ दी। गौशालक " प्रभु ! बचाओ, बचाओ !" कहता हुआ भागा, उसने प्रभु की चरण-शरण ले ली। तपस्वी ने "प्रभु ! जान लिया." कहकर क्षमा माँगी।

शरीर से रस खींचने के बाद वह उन्हें तीखे डंक मारते। माँस नोच लेते। खून पीते। इस पीड़ा को भगवान महावीर ने समता से सहन किया।

साधनाकाल का कुछ समय प्रभु महावीर ने कर्म-निर्जरा हेतु लाढ़ देश (बंगाल क्षेत्र) की ओर प्रस्थान किया। यही प्रदेश अनार्य माना जाता था। साधु जीवनचर्या के अनुसार यहाँ घूमना अत्यन्त दुष्कर था।

उस प्रांत के दो भाग थे—एक वज्र भूमि तथा द्वितीय शुभ्र भूमि। यह दोनों भाग उत्तर राढ़ व दक्षिण राढ़ के नाम से प्रसिद्ध थे। इन दोनों के मध्य में अजय नदी बहती थी। प्रभु महावीर ने इस क्षेत्र में विहार किया। वहाँ के उपसर्ग इतने भयंकर थे कि प्रभु महावीर के ही प्रमुख गणधर सुधर्मा ने स्वयं अपने मुख से उनका विवरण इस प्रकार किया है

प्रभु महावीर को रहने के लिए अनुकूल आवास नहीं मिला। रूखा-सूखा भोजन भी कठिनता से उपलब्ध हुआ। कुत्ते उनको दूर से देखकर ही काटने के लिए झपटते।<sup>८७</sup> वहाँ पर ऐसे व्यक्ति विरले थे जो काटते, नौचते हुए कुत्तों को हटाने। वहाँ अधिकांश व्यक्ति दुष्ट बुद्धि के थे। वे हटाने के स्थान पर उन कुत्तों को छुछकारकर प्रभु महावीर को काटने की प्रेरणा देते।

प्रभु महावीर किसी के प्रति मन में क्षोभ न लाते। तन के प्रति उनमें किसी प्रकार का ममता भाव नहीं था। वह तो इन उपसर्गों के विकास में सहायक समझकर इन्हें सहर्ष सहते थे।<sup>८८</sup>

जैसे लड़ाई में हाथी शत्रु के तीखे वार की तनिक परवाह नहीं करते। वे हाथी तो आगे बढ़ते रहते हैं। उसी प्रकार प्रभु महावीर उपसर्गों-परीषहों की परवाह किये बिना आगे बढ़ते रहे। वहाँ (अनार्यों) क्षेत्रों में ठहरने के लिए दूर-दूर तक गाँव उपलब्ध नहीं होते थे। ऐसी स्थिति में वह भयंकर अरण्य में ठहरते थे।<sup>८९</sup>

जब वे किसी गाँव में जाते, तो गाँव के निकट पहुँचते ही गाँव के लोग बाहर निकलकर उन्हें मारने-पीटने लगते और गाँव छोड़ने को कहते।<sup>९०</sup>

वे अनार्य लोग प्रभु महावीर पर दण्ड, मुष्टि, भाला, पत्थर व ढेलों से प्रहार करते और फिर प्रसन्न होकर चिढ़ाते।<sup>९१</sup>

वहाँ क्रूर मनुष्यों ने प्रभु महावीर के सुन्दर शरीर को नोच डाला। उन पर विविध प्रकार के प्रहार किये। भयंकर परीषह उनके लिए उपस्थित किये। उन पर धूल फेंकी।<sup>९२</sup>

वे अनार्य लोग भगवान महावीर को ऊपर उछाल-उछालकर गेंद की तरह पटकते थे। आसन से धकेल देते, तब भी प्रभु महावीर ऐसी स्थिति में विदेह रहते थे। वह इच्छा व आकांक्षा से रहित संयम-साधना में स्थिर होकर कष्टों को शांति से सहन करते।<sup>९३</sup>

जिस प्रकार कवच पहने हुए शूरवीर का शरीर युद्ध में अक्षत रहता है वैसे ही अचल भगवान महावीर ने अत्यंत कठोर कष्टों को सहते हुए भी अपनी संयम-साधना को अक्षत रखा।<sup>९४</sup>

वह समभावपूर्वक सभी उपसर्गों को अनार्य प्रदेशों में सहन करते रहे। पुनः आर्य प्रदेशों में कदम बढ़ा रहे थे कि पूर्ण कलश सीमा प्रांत पर दो तस्कर मिले। वे अनार्य प्रदेश में चोरी करके आ रहे थे, उन्होंने प्रभु महावीर को अशुभ समझकर कष्ट दिया।

इन परीषहों और उपसर्गों को शांत भाव से सहन करने में समर्थ, भिक्षु-प्रतिमाओं का पालन करने वाले, धीमान, शोक और हर्ष में समभाव, सब गुणों में आगार, अतुलबली होने के कारण देवताओं ने उन्हें महावीर नाम दिया।<sup>९५</sup>

प्रभु महावीर का जैसे राज्य, परिवार छूट चुका था इसी तरह पहला नाम भी छूट चुका था। अब तो वह श्रमण थे। महावीर थे। निर्ग्रथ थे। बौद्ध कथानकों में प्रभु महावीर को निर्ग्रथ ज्ञातापुत्र कहा गया है।

आचार्य हरिभद्र ने लिखा है—“जो शुद्ध-विक्रान्त होता है वह वीर कहलाता है। कषायादि महान् अन्तरंग शत्रुओं को जीतने से यह विक्रान्त-महावीर होता है।”

### शरणदाता : प्रभु महावीर

तपस्याकाल में हमने जीर्ण सेठ का जहाँ वर्णन किया है। वही चमरेन्द्र द्वारा शरण ग्रहण करने का वर्णन करना भी जरूरी है। जब प्रभु महावीर सुंसुमारपुर पधारे, उस समय शक्रेन्द्र से भयभीत हुआ, चमरेन्द्र प्रभु महावीर की शरण में आया था इसका वर्णन तो हम साधना काल में कर आये हैं।

अब वह क्यों आया था इसका स्पष्टीकरण भी करना आवश्यक है—

“असुरराज चमरेन्द्र पूर्वभव में ‘पूरण’ नाम का एक बाल (हठयोगी) तपस्वी था। वह दो-दो व्रतों का तप करता था। पारणे के दिन काठ के पात्र में भिक्षा माँगता था। इस पात्र के चार भाग थे। पहले भाग की भिक्षा वह पथिकों को प्रदान करता। दूसरी तह की भिक्षा पक्षियों के आगे डालता। तीसरी तह की भिक्षा जल के जीवों (मछली आदि) को खिलाता। चतुर्थ तह में ग्रहण की भिक्षा स्वयं ग्रहण करता। उसने १२ वर्ष तक इसी प्रकार साधना की। अंत समय में एक मास के निराहार अनशन के बाद चमरचंचा राजधानी का इन्द्र बना।

इन्द्र बनते ही उसने अवधिज्ञान के माध्यम से अपने ऊपर बैठे सौधर्मावतंसक विमान में शक्र नामक सिंहासन पर शक्रेन्द्र को दिव्य भोग भोगते देखा।

उससे यह सुख सहा न गया। पर उसमें शक्रेन्द्र से लड़ने की शक्ति नहीं थी।

असुरराज अपनी राजधानी छोड़ प्रभु महावीर की शरण में आया। तप का यह बारहवाँ वर्ष था। वहाँ उसने विशाल विकुर्वणा की। वह देवराज इन्द्र, शक्रेन्द्र को डराने लगा।

इधर शक्रेन्द्र ने भी कोप करके अपना वज्रायुध उसकी तरफ फेंका। आग की चिनगारी उगलते हुए वज्र को देख भयभीत हुआ। इस भयंकर शस्त्र से चमरेन्द्र जिस मार्ग से आया उसी मार्ग से पुनः लौट गया।

शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान से देखा तो पता चला कि यह श्रमण भगवान महावीर की शरण लेकर आया है और पुनः वहीं भागा जा रहा है। कहीं प्रभु महावीर को यह वज्र कष्ट न दे, उसने शीघ्र ही इस शस्त्र को रोका।

उधर चमरेन्द्र ने सूक्ष्म रूप बनाया। वह प्रभु महावीर के चरणों में छिप गया। शक्रेन्द्र ने प्रभु महावीर के करीब आते वज्र को सँभाला। चमरेन्द्र को भगवान महावीर की शरण में आया जानकर उसे क्षमा कर दिया।

यह घटना जैन इतिहास में एक अचम्भा है कि असुरराज कभी सौधर्म सभा में नहीं जाते। पर अनंत काल के पश्चात् यह आश्चर्य घटित हुआ।

सुंसुमारपुर से प्रभु महावीर भोगपुर, नन्दिग्राम होते हुए मेढियाग्राम पधारे। यहीं ग्वाले का उपसर्ग हुआ था।

प्रभु महावीर के साधना काल का वर्णन तो देव भी करने में असमर्थ हैं फिर हमारे में यह शक्ति कहाँ कि इसका श्रद्धापूर्वक वर्णन किया जाये। पूर्व आचार्यों ने जैसा कथन किया है, उसी को आधार मानकर हमने १२ वर्षों का वर्णन किया है।

## भगवान महावीर की साधना का लेखा—जोखा

प्रभु महावीर ने १२ वर्ष १३ पक्ष की लम्बी अवधि में से केवल ३४९ दिन आहार किया। शेष दिन निर्जल और निराहार रहे।

सक्षिप्त में भगवान महावीर का तप का ब्यौरा इस प्रकार है—

तपकाल	गिनती
६ मास	१ तप
५ दिन कम ६ मास	१
चातुर्मासिक	९
तीन मास	२
सार्ध—द्विमासिक	२
दो महीने	६
सार्ध—मासिक	२
मासिक	१२
पाक्षिक	७२
उपवास	१६
अष्टम भक्त	१२
षष्ठम भक्त	२२९

इसके अतिरिक्त दशम भक्त आदि की तपस्या का विवरण आचारांगसूत्र में मिलता है।

कुल मिलाकर प्रभु महावीर ने साधक जीवन के ४,५१५ दिनों में ३४९ दिन भोजन ग्रहण किया। ४,१६६ दिन निर्जल तपस्या द्वारा कर्म को खपाया।

प्रभु महावीर के गुणों का वर्णन कल्पसूत्र में स्वयं आचार्य भद्रबाहु ने विभिन्न उपमाओं द्वारा किया है, जिसका वर्णन इस प्रकार है—

- (१) कांस्य पात्र की तरह निर्लेप।
- (२) शंख की तरह निरंजन राग रहित।
- (३) जीव की तरह अप्रतिहत गति।
- (४) आकाश की तरह आलम्बन रहित।
- (५) वायु की तरह अप्रतिबद्ध।
- (६) शरद ऋतु के स्वच्छ जल की तरह निर्मल।
- (७) कमल—पत्र की तरह भोग से निर्लेप।
- (८) कूर्म (कछुए) की तरह जितेन्द्रिय।

- (९) गैडे के शृंग की तरह एकाकी।
- (१०) पक्षी की तरह अप्रतिबद्ध विहारी।
- (११) भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त।
- (१२) श्रेष्ठ हाथी की तरह शूरवीर।
- (१३) वृषभ के समान पराक्रमी।
- (१४) सिंह की तरह दुर्द्धर्ष।
- (१५) सुमेरु की तरह परीषहों को सहने में अकंप।
- (१६) सागर की तरह गम्भीर।
- (१७) चन्द्रमा की तरह सौम्य।
- (१८) सूर्य की तरह देदीप्यमान।
- (१९) स्वर्ण की तरह कान्तिमान।
- (२०) पृथ्वी की तरह सहनशील।
- (२१) आग की तरह जाज्वल्यमान, तेजस्वी।

ये गुण उनकी महानता को सिद्ध करते हैं। आखिर इंतजार की घड़ियाँ समाप्त हो रही थीं। उनके जीवन का लक्ष्य सामने दिखाई दे रहा था। १२ वर्ष तप करने का उद्देश्य पूरा होने को था।

तीर्थकरों के जीवन का चौथा मंगलमय केवलज्ञान कल्याणक आ गया था। अब वह साधक से भगवान के रूप में प्रस्तुत होने वाले थे। समस्त जगत् के जीवों के कल्याणार्थ वह धर्म उपदेश देने वाले थे जिसकी मानव जाति को जरूरत थी।



### उद्धृत सन्दर्भ स्थल

- |   |  |
|---|--|
| १. आवश्यक चूर्णि, पृ. २६८                           | ११. महावीर चरियं पृ. १४५               |
| २. आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. १८७/१             | १२. (क) महावीर चरियं गुण १४३-१४४       |
| ३. आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ. २१६                   | (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२ |
| ४. चउपन्न महापुरुष चरियं, पृ. २६३-२७४               | १३. (क) आवश्यक चूर्णि, पृ. २६८         |
| ५. (क) महावीर चरियं-नेमिचन्द्र, गाथा ५७ ६७ और ३६-३७ | (ख) महावीर चरियं-नेमिचन्द्र, पृ. ६३-६४ |
| (ख) महावीर चरियं-गुणभद्र पृ. १४२-१४४                | (ग) महावीर चरियं गुणभद्र, पृ. १४४      |
| ६. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, पृ. १०/३/२-१५       | (घ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२ |
| ७. कल्पसूत्र सुबोधिका                               | (ङ) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. १२  |
| ८. आवश्यक चूर्णि पृ. २६६                            | (च) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ. १०७     |
| ९. महावीर चरियं, पृ. १४५                            | १४. (क) महावीर चरियं ५/१४४             |
| १०. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/३              | (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/९ |
|   | १५. महावीर चरियं ५/१५२                 |



१६. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २६७  
 (ख) आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति १२२  
 (ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/१४
१७. (क) आवश्यक चूर्णि, पृ. २६९  
 (ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ. १६७  
 (ग) महावीर चरियं, पृ. ४/१४४
१८. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ. २६७  
 (ख) हरिभद्रीया वृत्ति, पृ. २८८
१९. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, २६७  
 (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२५
२०. (क) महावीर चरियं ५/१४५  
 (ख) मलयगिरि, पृ. २६७  
 (ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२८
२१. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ. २६७  
 (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२९-३१  
 (ग) महावीर चरियं गुणचन्द ५/४५
२२. महावीर चरियं (नेमिचन्द) ४४२
२३. (क) समवायांग  
 (ख) आवश्यक निर्युक्ति ३४४  
 (ग) विशेषावश्यक भाष्य १८९३  
 (घ) मलयगिरि वृत्ति २६४
२४. उत्तरपुराण ७४/३/४/३२१
२५. आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २४४
२६. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, २६८  
 (ख) आवश्यकचूर्णि २७१  
 (ग) महावीर चरियं गुणचन्द ५/१७  
 (घ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/३०
२७. आवश्यकचूर्णि २६९
२८. (क) आवश्यकचूर्णि २७१  
 (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र ७७-८१, पृ. १४८
२९. (क) मलयगिरि वृत्ति पृ. २८८  
 (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/५/३५
३०. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २०७०/१  
 (ख) महावीर चरियं ५/१५५  
 (ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/१४२०

३१. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७५  
 (ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २२०  
 (ग) महावीर चरियं ५/१५५  
 (घ) भगवतीसूत्र १६/६/५५६
३२. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७४  
 (ख) महावीर चरियं ५/१५५  
 (ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/५/२८
३३. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७०  
 (ख) आवश्यकचूर्णि २७५  
 (ग) आवश्यक हरिभद्रीया १९४  
 (घ) महावीर चरियं ५/१५६
३४. तुम्हे अत्रथवि पुञ्जा, अहे कर्हि जासि।

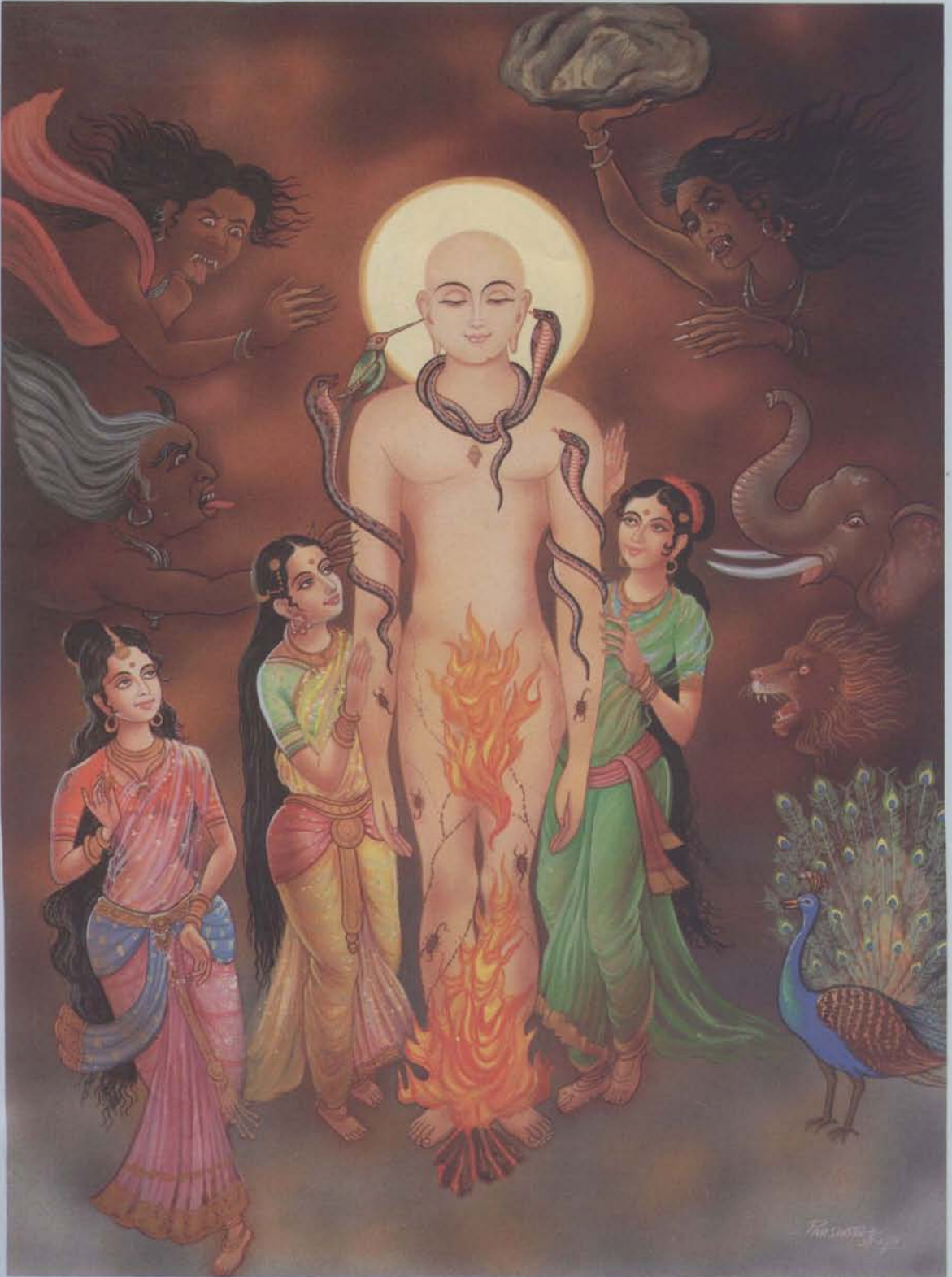
--मलयगिरि वृत्ति

३५. (क) आवश्यकचूर्णि २७४,  
 (ख) मलयगिरि वृत्ति २७३ एवं आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति १९५  
 (ग) महावीर चरियं नेमिचन्द १९९३  
 (घ) महावीर चरियं गुणभद्र ५/१८५  
 (ङ) चउपत्र महापुरिष चरियं १०/५/१२५
३६. (क) आवश्यकचूर्णि २८  
 (ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७५  
 (ग) आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति १४७  
 (घ) महावीर चरियं ५/१०९  
 (ङ) नीति. ९८४  
 (च) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र २/२४५-२५१
३७. (क) आवश्यकचूर्णि २७५  
 (ख) महावीर चरियं (नेमिचन्द) ९८४  
 (ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र ७०/३/६०
३८. (क) आवश्यकचूर्णि २७५  
 (ख) महावीर चारेयं (नेमिचन्द) ९८९  
 (ग) महावीर चरियं गुणभद्र  
 (घ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२३६  
 (ङ) आवश्यकनिर्युक्ति ३४०  
 (च) विशेषावश्यक भाष्य १९०२

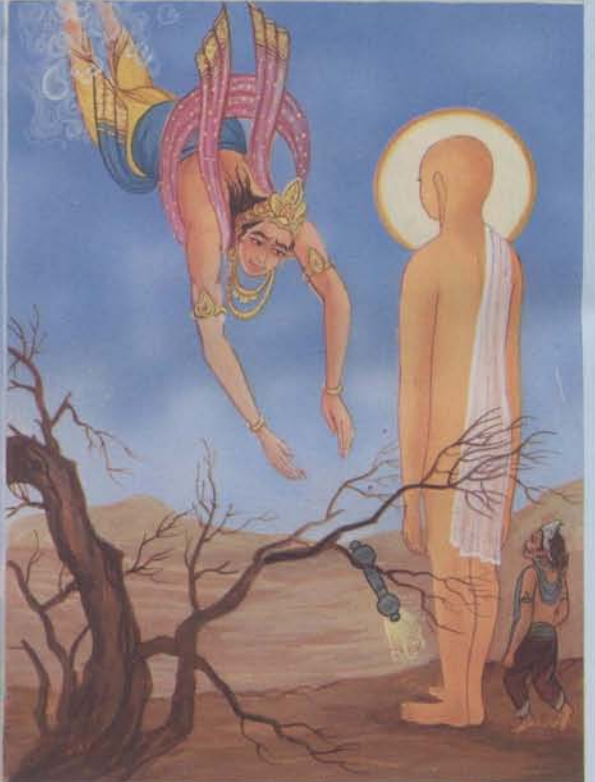
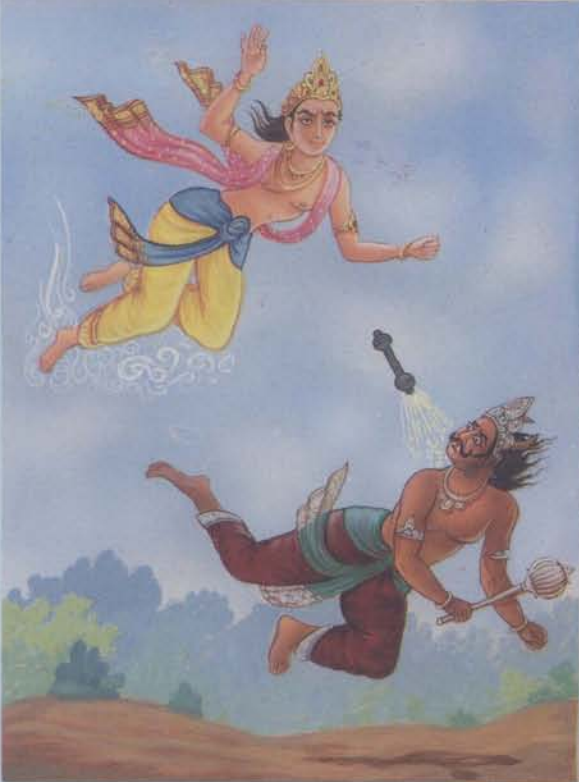
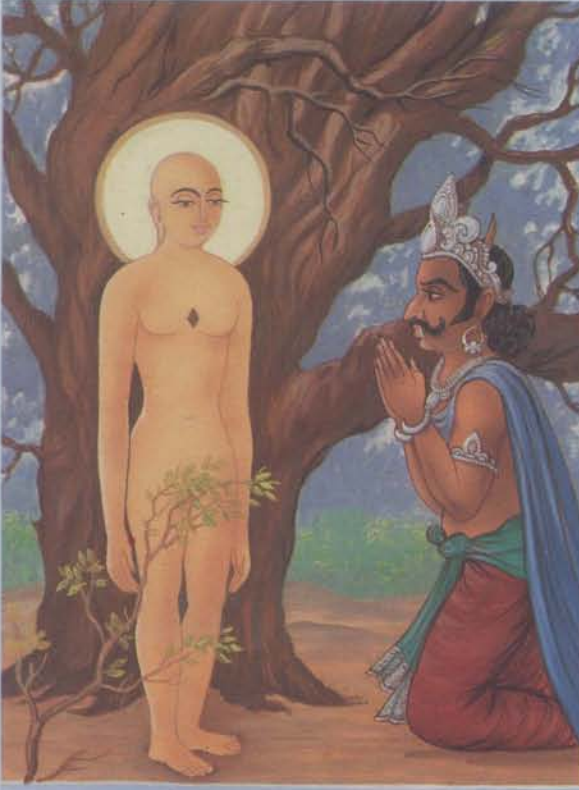
३९. महावीर चरियं गुणभद्र १७५
४०. (क) आवश्यकचूर्णि २७८  
(ख) मलयगिरि वृत्ति २७३,  
(ग) महावीर चरियं १७६
४१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५१  
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९०३  
(ग) आवश्यकचूर्णि २७९  
(घ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/२८१-२८५
४२. (क) आवश्यकचूर्णि २७९-२८०  
(ख) विशेषा. १९०३  
(ग) आवश्यकचूर्णि २७९-२८०
४३. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५८  
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९०४-१९०६  
(ग) आवश्यकचूर्णि, पृ. २८०-२८१  
(घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७४  
(ङ) महावीर चरियं गुणभद्र १७८  
(च) निशोधभाष्य ४२१८, पृ. ३६६ तृतीय
४४. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५५  
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९०७  
(ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७५  
(घ) महावीर चरियं १८१  
(ङ) भद्रगणि २८२  
(च) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/३४८-३५१
४५. (क) आवश्यकचूर्णि २८२  
(ख) महावीर चरियं नेमिचन्द्र १०३
४६. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५५,  
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९०७  
(ग) आवश्यकचूर्णि २८२  
(घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७३१  
(ङ) महावीर चरियं (नेमिचन्द्र), पृ. १०३६  
(च) महावीर चरियं ६/१८३  
(छ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/३७२
४७. (क) आवश्यकचूर्णि २८२  
(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७६,  
(ग) विशेषावश्यकभाष्य १९०९
४८. (क) आवश्यकचूर्णि २८३  
(ख) आवश्यकनिर्युक्ति ३५७  
(ग) आवश्यकभाष्य १९०९  
(घ) आवश्यक मलयगिरि २७६  
(ङ) महावीर चरियं नेमिचन्द्र १०५६-१०५९
४९. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५८  
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९१०  
(ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७७  
(घ) महावीर चरियं गुणभद्र ६/१८८
५०. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५९  
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९११  
(ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति पृ. २७७  
(घ) महावीर चरियं ६/१८७
५१. (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७८  
(ख) महावीर चरियं गुणभद्र ६/१८९
५२. (क) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/४५३-४५६  
(ख) आवश्यकचूर्णि २८५
५३. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३६०  
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९१२  
(ग) आवश्यकचूर्णि २८७  
(घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २७८-२७९
५४. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३६१  
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९१३
५५. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/५०६-५१८
५६. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३६५  
(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९१५  
(ग) आवश्यक मलयगिरि वृ. २८१/१
५७. (क) आवश्यकचूर्णि २८९-२९०  
(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८१

- (ग) हारिभद्रीया २०६  
 (घ) महावीर चरियं ६/१९५  
 (च) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/३/५४३-५५२
५८. (क) भगवती १५/३, ५/७५  
 (ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८७  
 (ग) महावीर चरियं ६, पृ. २२३  
 (घ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/४/१२९
५९. (क) भगवती १५ पृ. ३७५  
 (ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८७  
 (ग) महावीर चरियं ६, पृ. २२३-२२४  
 (घ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/४/१३४-१३७  
 त्रिषष्टिशलाका में इन लोगों को प्रभु पार्श्वनाथ का शिष्य कहा गया है।
६०. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३७७  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९२९  
 (ग) आवश्यकचूर्णि २९९  
 (घ) महावीर चरियं ७/२२४/१
६१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३७७  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९२९  
 (ग) आवश्यकचूर्णि २९९  
 (घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८७  
 (ङ) महावीर चरियं ७/२२४  
 (च) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/४/१३९-१४२
६२. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३७९  
 (ख) आवश्यक मलयगिरि १९३०  
 (ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/४/१४३-१४७  
 (घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८५
६३. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३७८  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९३०
६४. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३७९  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९३१
६५. (क) स्थानांग टीका पत्र ६५-२  
 (ख) स्थानांग वृत्ति प्रपत्र ६५-२  
 (ग) स्थानांग वृत्ति पत्र ५-२
६६. (क) महावीर चरियं गुणभद्र ७७/२३५  
 (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/४/१४९-१५९
६७. स्थानांग वृत्ति पत्र ५-२ हारिभद्रीया वृत्ति २१५
६८. (क) महावीर : एक अनुशीलन-आचार्य देवेन्द्र मुनि ३५२-३७५  
 (ख) आवश्यकनिर्युक्ति ३८५ ३९९  
 (ग) आवश्यकचूर्णि ३९०  
 (घ) आवश्यक हारिभद्रीया २१६-२१७  
 (ङ) महावीर चरियं गुणभद्र ७/२२८  
 (च) महावीर चरियं नेमिचन्द्र ११०५-१०१४  
 (छ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८२-२८९
६९. आवश्यकनिर्युक्ति ३९०-३९१
७०. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ९२  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९४४  
 (ग) आवश्यकचूर्णि ३१२  
 (घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९१-९२  
 (ङ) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २१९
७१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३९३  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९४५  
 (ग) आवश्यकवृत्ति २९२  
 (घ) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २१९
७२. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३९३  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९४५  
 (ग) आवश्यकचूर्णि ३१३  
 (घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९२  
 (ङ) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २१९-२२०
७३. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३९४  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९४६  
 (ग) आवश्यकचूर्णि ३१३  
 (घ) आवश्यक मलयगिरि २९२
७४. (क) आवश्यकचूर्णि २१४  
 (ख) आवश्यक मलयगिरि २९२  
 (ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २२०

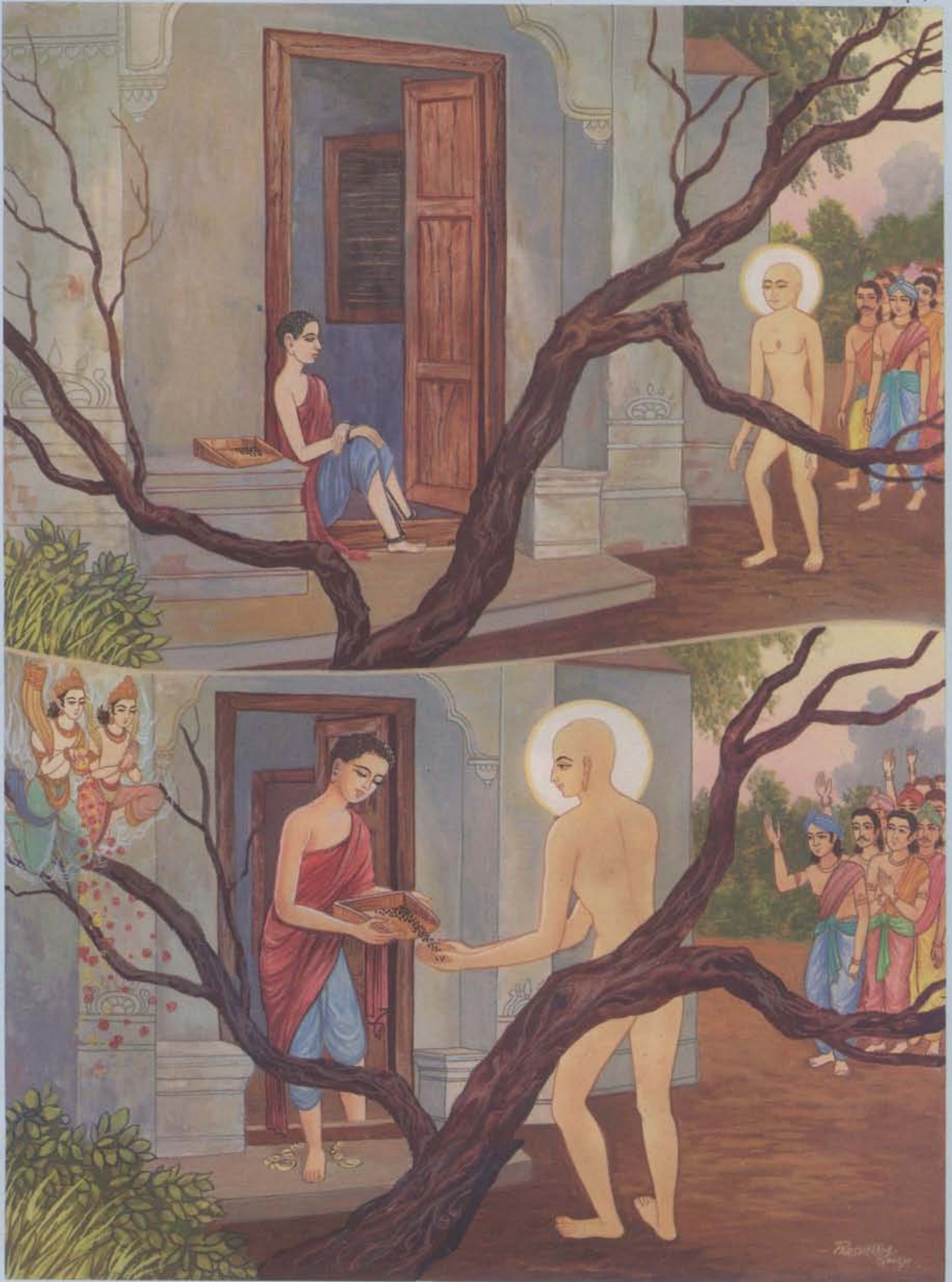
७५. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३५५, ९६  
 (ख) आवश्यकचूर्ण ३१४  
 (ग) महावीर चरियं १/१९ १२
७६. भगवान महावीर : एक अनुशीलन, पृष्ठ ३४०
७७. जीर्ण सेठ का प्रसंग : महावीर चरियं (नेमिचन्द्र) ११४४ व  
 त्रिषष्टिपुरुषशलाका पुरुष चरित्र में उपलब्ध है।
७८. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४०२  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९५४
७९. (क) आवश्यकचूर्ण ३१६ ३१७  
 (ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९४-२९५
८०. (क) आवश्यकचूर्ण ३१७  
 (ख) आवश्यकवृत्ति २९५  
 (ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २२३  
 (घ) महावीर चरियं १२६०
८१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४०४  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९५  
 (ग) आवश्यकचूर्ण ३२०  
 (घ) आवश्यकवृत्ति २२५  
 (ङ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९६  
 (च) महावीर चरियं (गुणभद्र) ७/२४७
८२. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४०५  
 (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९५७
८३. (क) आवश्यकचूर्ण ३२० ३२१  
 (ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २२५-२२६  
 (ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९७
- (क) महावीर चरियं (गुणभद्र) ७/२४८  
 (ख) आवश्यकभाष्य १९५९  
 (ङ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/६०५-६१३
८४. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४०७  
 (ख) आवश्यकभाष्य १९५९
८५. (क) आवश्यकचूर्ण २२१ २२२  
 (ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २२६  
 (ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९७  
 (घ) महावीर चरियं (नेमिचन्द्र) १३३५-१३४०
८६. (क) आवश्यकचूर्ण ३२२  
 (ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति ३२६-३२७  
 (ग) आवश्यक मलयगिरि २९७-२९८  
 (घ) महावीर चरियं (नेमिचन्द्र) १३४३-१३५१  
 (ङ) महावीर चरियं (गुणभद्र) ७/२४८-२४९  
 (च) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २९८-२९९  
 (छ) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/६/६२७-६४६
८७. आचारांग १/९/३/२  
 ८८. वही १/९/३/५  
 ८९. वही १/९/३/८  
 ९०. वही १/९/३/९  
 ९१. वही ५१/९/३/१०  
 ९२. वही १/९/३/११  
 ९३. वही १/९/३/१२  
 ९४. वही १/९/३/१३  
 ९५. (क) आवश्यक २/१५-१६  
 (ख) कल्पसूत्र १२



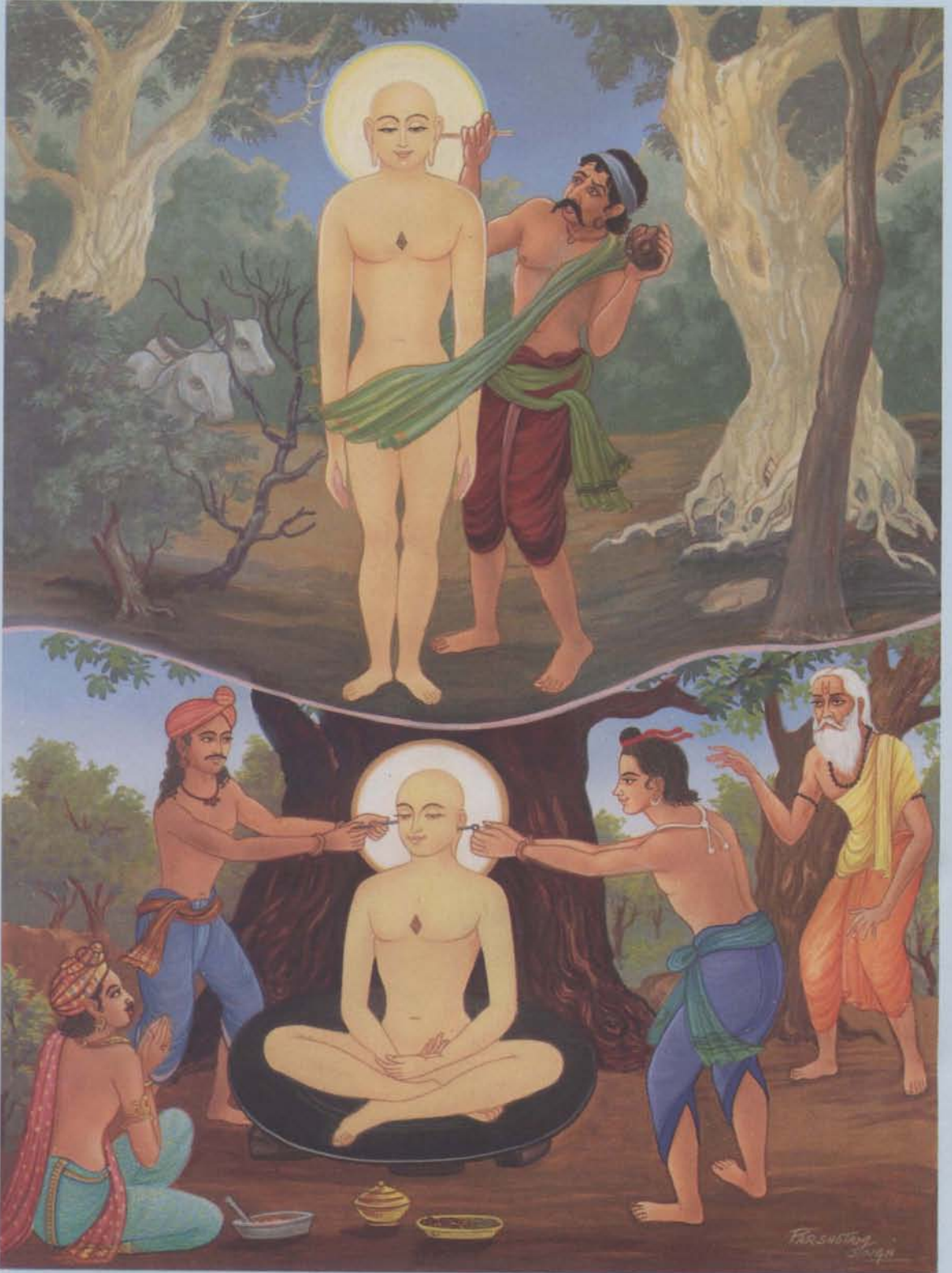
संगम ने एक ही रात में प्रतिकूल-अनुकूल बीस प्रकार के मारणान्तिक कष्ट दिये।



चमरेन्द्र ने प्रभु की शरण लेकर सौधर्मेन्द्र को जाकर ललकारा। सौधर्मेन्द्र ने उस पर वज्र फेंका। फिर ज्ञान से देखा कि वह तो प्रभु महावीर की शरण लेकर आया है तो वज्र रोकने के लिए दौड़ा। चमरेन्द्र भागकर प्रभु के चरणों में आकर झुप गया।



चन्दना द्वार पर बैठी है। प्रभु छह मासी अभिग्रह की पूर्ति हेतु भिक्षा लेने उसी की तरफ आ रहे हैं। प्रभु को द्वार पर पधारा देखकर हर्ष विभोर चन्दना ने उड़द के बाकलों का दान दिया। घोर अभिग्रह पूर्ण हुआ।



अपने बैलों का पता नहीं लगने से ग्वाले ने प्रभु को ही दोषी समझकर उनके कानों में कीलें ठोक दीं। तब सिद्धार्थ व खरक वैद्य ने आकर प्रभु के कानों की कीलें निकलवाईं।



## खण्ड ४

- (१) केवलज्ञान महोत्सव
- (२) गणधर संवाद
- (३) तीर्थ स्थापना



## केवलज्ञान महोत्सव

श्रमण महावीर की साढ़े बारह वर्ष की घोर तपस्या अब सिद्धि के द्वार पर पहुँच रही थी। प्रभु महावीर की क्षमा, सहनशीलता, सरलता, मृदुता अनुपम थी। कषायहीन थी। उनका तप किसी क्षुद्र उद्देश्य के लिए नहीं था क्योंकि उद्देश्य से किया गया तप मोक्ष का कारण नहीं बनता। उनका तप तो जन्म-मरण की परम्परा समाप्त कर, शाश्वत सुख के लिए था। उनकी साधना आत्मा से परमात्मा बनने की थी। मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता का यह शिखर था।

प्रभु महावीर आत्म-साधना में लीन होते हुए जंभीय गाँव पधारे। गाँव के बाहर ऋजुबालुका नदी बहती थी। प्रभु महावीर ने श्यामाक नामक गाथापति के धान के खेत में गोदोहिका आसन ग्रहण किया। इसका वर्णन कल्पसूत्र में इस प्रकार आया है—

अनुत्तर ज्ञान, असीम दर्शन, उत्कृष्ट चारित्र्य, निर्दोष आश्रय, प्रशस्त विहार, अनन्त पराक्रम, सहजतम सरलता, दिनम्रता, अनुपम लघुता, प्रशस्ति, शान्ति, अनुपम अपरिग्रह, चरम गुप्ति, शाश्वत प्रसन्नता तथा अनुत्तर सत्य, संयम, तप आदि गुणों से आत्मा को परिपूर्ण करके, सम्यक् आचरण करते हुए मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ते हुए भगवान को १२ वर्ष बीत गये। तेरहवें वर्ष के मध्य की गर्मी का दूसरा महीना था। चौथा पक्ष चल रहा था।

वैशाख शुक्ल दशमी के दिन जब छाया पूर्व की तरफ ढलने लगी थी। प्रमाणोपेत पौरुषी आ गई थी। सुव्रत नाम का दिन था। विजय मुहूर्त था। जंभीय गाँव के बाहर ऋजुबालुका नदी के किनारे खण्डहर बन रहे विजयावर्त चैत्य से न अधिक दूर न अधिक पास, श्यामाक नामक गृहस्थ कृषक के खेत में शाल वृक्ष के नीचे भगवान महावीर गोदोहिका आसन में तपस्थारत व चरम एकाग्रपूर्व ध्यानमग्न थे।

प्रभु महावीर का निर्जल बेला चल रहा था। ऐसे में हस्तोत्तरा नक्षत्र का योग आने पर श्रमण भगवान महावीर को अनंत, सर्वोत्कृष्ट, अब्याघात, निरावरण, समग्र तथा परिपूर्ण केवलज्ञान व केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

(कल्पसूत्र १२०-१२३)

शास्त्रकार आगे कहते हैं—

तब श्रमण भगवान महावीर अर्हत् हुए, जिन हुए और केवलज्ञानी सर्वज्ञ—सर्वदर्शी बन गये।

भगवान महावीर अब देव, मनुज, असुरादि के साथ-साथ संसार के सभी पर्यायों को जानने—देखने लगे। समस्त लोक में समस्त जीवों के आने, जाने, रहने, गिरने, उठने, विचार, मनःस्थिति, संकल्प भाव, भोग्य, कृत और सेवित भाव प्रकट तथा गुप्त कार्यों और कर्मों को भगवान महावीर जानने—देखने लगे। उनके अर्हत् हो जाने से उनके लिए रहस्य—जैसा कुछ भी अनजाना नहीं बचा। उस समय सर्वलोकों के मन, वचन, काया की वृत्तियों में लगे सभी जीवों में सभी भावों को जानते—देखते अर्हत् महावीर विचरने लगे।

भगवान महावीर के केवलज्ञान से समस्त देवलोक व मनुष्यलोक में खुशी की लहर दौड़ गई। देव परम्परा को निभाते हुए देवों ने प्रथम समवसरण (धर्म सभा) की रचना ऋजुबालुका नदी पर की। इसमें केवल देव शामिल हुए। मनुष्यों के शामिल न होने के कारण तीर्थ की स्थापना न हो सकी। तीर्थंकर का कोई उपदेश बेकार नहीं जाता। हर उपदेश में कोई व्रत ग्रहण करता है। पर यह उपदेश बेकार गया किसी ने नियम व्रत ग्रहण नहीं किये। यह भी तीर्थंकर महावीर के जीवन का (अच्छेरा) अचम्भा था। इस प्रकार प्रभु महावीर अब अंतिम तीर्थंकर महावीर बन गये। केवली अवस्था का सुन्दर चित्रण उत्तर भारत प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द जी म. के शिष्य उपप्रवर्तक पूज्य श्री अमर मुनि जी ने तीर्थंकर चरित्र के पृष्ठ १५७ पर इस प्रकार किया है—

साधनाकाल के १५ वर्ष, ५ मास, १५ दिन बीत चुके थे। प्रभु महावीर विहार करते हुए ऋजुबालुका नदी के तट पर एक उद्यान में शाल वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित हुए। उकडू आसन में बैठे। वैसाख महीने की कड़ी धूप में भी प्रभु (महावीर) शीतलता अनुभव करते हुए तन, मन, प्राणों को अकम्प सुस्थिर बनाकर शुक्लध्यान में लीन हो रहे थे। उनकी घनघाति कर्मों की शृंखला आवरण हटते ही सहसा केवलज्ञान, केवलदर्शन का लोकालोक प्रकाश-भास्कर उदित हो गया। प्रभु महावीर अब निश्चय दृष्टि से भगवान्, जिन, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बन गये। केवलज्ञान होते ही कुछ क्षणों के लिए स्वर्ग-नरक और तिर्यक् लोक में प्रकाश-सा फैल गया।”

प्रथम धर्म-उपदेश में जिस समवसरण की देवों ने रचना की, उसका शब्दार्थ क्या है? समवसरण का जैनधर्म में क्या महत्त्व है? देव इसकी रचना कैसे करते हैं? इन बातों की चर्चा हम आगे करेंगे।

एक बात यहाँ स्पष्ट करना जरूरी है कि समवसरण तीर्थंकर केवली को ही प्राप्त होता है, सामान्य केवली को नहीं। समवसरण में ही अष्ट प्रातिहार्य, ३४ अतिशय शोभायमान होते हैं। यह देवताओं का कल्प है, परम्परा है कि तीर्थंकर का केवलज्ञान महोत्सव देवगण धूमधाम से मनाते हैं। फिर सारी आयु उनके लिए समवसरण की रचना करते रहते हैं।

समवसरण की सारी रचना तीर्थंकर की बाह्य शक्ति को प्रदर्शित करती है। सामान्य केवली तीर्थंकर की मौजूदगी में किसी प्रकार का उपदेश भी नहीं करते। वे तो आत्म-भाव में ही लीन रहते हैं। समवसरण का ऐसा वर्णन किसी अन्य धर्म में देखने को नहीं मिलता है।

### समवसरण : रचना व स्वरूप

समवसरण वह स्थल है जिस स्थल पर तीर्थंकर प्रभु धर्म-उपदेश देते हैं। देखा जाए तो यह प्राचीनकाल की व्यवस्था है, जिसकी जिम्मेदारी मनुष्यों पर न होकर देवों पर होती है। समवसरण देवकृत है, जहाँ तीर्थंकर विराजते हैं। भगवान् के पधारने से पहले देवता उसी की रचना कर देते हैं।

तीर्थंकर परमात्मा की सेवा में ६४ इन्द्र अपने भिन्न-भिन्न रूपों में स्वयं रहते हैं। अन्य देवी-देवता अपने परिवार समेत धर्म-उपदेश सुनते हैं। समवसरण में लाखों मनुष्य ही नहीं, अनगणित पशु व देव भी आते थे।

लगभग एक योजन (१२ किलोमीटर) के क्षेत्र में अगणित देवी-देवता के बैठने की व्यवस्था होती थी। उनके वाहन खड़े होने की व्यवस्था भी होती थी। तीर्थंकरों के दर्शन, चिन्तन और अनुप्रेक्षण करने से भावना, प्रतीति और सम्यक्त्व की स्पर्शना निर्मल एवं सुदृढ़ होती थी। वीतरागी के सान्निध्य में बैठकर उनके दर्शन-प्रवचन से विभिन्न अतिशय अनुभव होते थे। शुभ भाव प्रकट होते थे। आपसी वैर-विरोध स्वयमेव समाप्त हो जाता था।

भगवतीसूत्र २/२३-५/१११ और औपपातिकसूत्र ३४ में समवसरण में आने का फल बताया गया है। गणधर गौतम कहते हैं—“हे देवानुप्रिय ! यह हमारे लिए महाफल का कारण है तथारूप अरिहंत भगवन्तो का नाम-गोत्र सुनना भी महाफल रूप है फिर उनके सम्मुख वन्दना, नमन, परिपृच्छा (प्रश्न पूछना), पर्युपासना का तो कहना ही क्या? तीर्थंकरों का एक भी सुवचन का श्रवण बहुत बड़ी बात है। उनका वन्दन, नमनादि इस भव में, पर-भव में, जन्म-जन्मांतर में हमारे लिए हितकर, सुखकर, शांतिप्रद, निःश्रेयस्प्रद मोक्षप्रद होगा। समवसरण तीर्थंकर परमात्मा की धर्म-परिषद् है। सम्यक् रूप से एक जगह जहाँ मिलना हो उसे समवसरण कहते हैं।”

### समवसरण रचना-प्रतिरूप

जिस ग्राम, नगर या क्षेत्र में अभूतपूर्व समवसरण की रचना देवों द्वारा करनी होती है, वहाँ वे देव पहले महाऋद्धिक देव अभियोग्य देवों को सूचित करते हैं। तब वह अभियोग्य देव एक योजन परिमंडल भूमि की संवर्तक वायु को साफ और समतल कर देते हैं। फिर सुगन्धित जल से वर्षा करते हैं। फिर इस भूमि को सुगन्धित करने के लिए पुष्प-वृष्टि करते हैं। तत्पश्चात् व्यन्तर देव चारों दिशाओं में मणि, कनक और रत्नों से जटित (मुख्य द्वार) बनाते हैं। उन द्वारों पर छत्र, स्तम्भ पूतिलका मकर मुख-ध्वज और स्वस्तिकादि चिन्हों की रचना करते हैं। फिर सुरेन्द्र जाते हैं। अपनी शक्ति से रत्नों के तीन श्रेष्ठ परकोटे बनाते हैं जो मणिकांचन के कंगूरों द्वारा सुशोभित होते हैं।

इनमें पहला परकोटा चाँदी का होता है जो भवनपति के इन्द्र बनाते हैं, मध्य वाला सोने का होता है जो ज्योतिष्क देवों के देवेन्द्र बनाते हैं और अन्तरंग का परकोटा रत्नमय होता है जिसकी रचना वैमानिक देवेन्द्र करते हैं। इन तीनों परकोटों पर ये देव स्वर्ण-रत्न मणियों के कंगूरे बनाते हैं तथा सारे रत्नों के द्वार भवनपति देव बनाते हैं। फिर चारों ओर सभी दिशाओं में अगारू, चन्दन आदि की मनोरम गन्ध से बनी धूप की धूपदानी व्यन्तर देव स्थापित करते हैं।

इतनी रचना करने के बाद ईशानदेव रत्नमय, आभ्यन्तर प्रकार के मध्य देश भाग में भगवान के शरीर से १२ गुणा ऊँचा श्रेष्ठ अशोक वृक्ष की उत्पत्ति करते हैं। उससे नीचे सर्वरत्नमय पीठ बनाते हैं। पीठ के ऊपर चैत्य वृक्ष फिर उसके नीचे देवच्छंदक का निर्माण करते हैं। उसके आभ्यन्तर पादपीठ सहित स्फटिक मणि सिंहासन का निर्माण करते हैं। उस पर क्रमशः तीन छल्ले स्थापित करते हैं। सिंहासन के दोनों ओर बलीन्द्र और चामर देव चामर हाथ में लेकर खड़े रहते हैं।

व्यन्तर देव सिंहासन के आगे कुछ दूरी पर धर्मचक्र स्थापित करते हैं। तीर्थंकर प्रभु के चरणों में आने वाले सभी देव उत्कृष्ट हर्ष भाव से प्रेरित होकर सिंहनाद करते हैं।

ऐसा नियम है कि जिस समवसरण में सभी देवेन्द्र आते हैं वहाँ इस प्रकार समवसरण की रचना उक्त प्रकार से अलग-अलग देव करते हैं पर जहाँ विशिष्ट ऋद्धिपति, इन्द्र सामानिक आते हैं, वहाँ परकोटों आदि की रचना वे नहीं करते हैं। यदि वे नहीं तो भवनपति आदि दूसरे देव समवसरण की रचना करते भी हैं, नहीं भी करते हैं।

### तीर्थंकर के समवसरण में प्रवेश की मर्यादा

इस समवसरण में सूर्योदय होते ही प्रथम पौरुषी अथवा पिछली पौरुषी में आ रहे हों उस समय तीर्थंकर पूर्व दिशा से प्रवेश करते हैं। वे सारे रास्ते देवों द्वारा निर्मित कमल पर चलते हैं। भगवान के आगे और पीछे ७ कमल स्थापित रहते हैं। तत्पश्चात् भगवान पूर्व द्वार से प्रविष्ट होकर चैत्य वृक्ष की प्रदक्षिणा कर पूर्व दिशा में मुख करके बैठ जाते हैं।

शेष तीन दिशाओं में देव अपनी शक्ति से उनकी प्रतिमाएँ स्थापित करते हैं। लोगों को चारों ओर भगवान दिखाई देते हैं।

भगवान के पादमूल (चरणों के पास) में ज्येष्ठ गणधर प्रणाम करके बैठ जाते हैं। सभी गणधर दक्षिण-पूर्व विदिशा में भगवान से न अतिदूर, न अतिनिकट वन्दन करके बैठते हैं।

फिर केवली और अतिशय ज्ञानी मुनि पूर्व द्वार से तीन बार प्रदक्षिणा कर गणधरों के पीछे बैठ जाते हैं। इनके पीछे मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, १४ पूर्वधर आदि पूर्व द्वार से आते हैं, प्रभु को वन्दना करके अतिशयधारी साधु के साथ बैठ जाते हैं।

इसके पश्चात् साध्वियाँ पूर्व द्वार से प्रवेश करती हैं। प्रभु समेत सभी को वन्दन करती हैं। वे वैमानिक देवों के पीछे खड़ी हो जाती हैं, बैठती नहीं हैं।

उनके पीछे वैमानिक देवियाँ पूर्व द्वार से आकर भगवान समेत सभी मुनिजनों को वन्दन कर खड़ी रहती हैं। फिर भवनपति देवियाँ, व्यन्तर देवियाँ और ज्योतिष देवियाँ दक्षिण द्वार से प्रविष्ट हो दक्षिण-पश्चिम दिशा में क्रमशः खड़ी रहती हैं। वे भी तीर्थंकर व मुनियों को वन्दन करके अपने स्थान पर खड़ी रहती हैं। फिर पश्चिम द्वार से भवनपति, ज्योतिष और व्यन्तर देव प्रभु की प्रदक्षिणा और वन्दना करते हैं फिर अन्य साधु वन्दना कर क्रमशः एक के पीछे एक बैठ जाते हैं।

उत्तर द्वार से वैमानिक देव, मनुष्य-पुरुष और स्त्रियाँ भगवान को तीन बार प्रदक्षिणा कर वन्दना-नमस्कार करते हैं। वे उत्तर-पूर्व दिशा में बैठते हैं। सभी अपने नियत स्थान पर बैठते हैं।

आगे वैमानिक देव बैठते हैं, उनके पीछे मनुष्य, फिर स्त्रियाँ।

इन देवों व मनुष्यों की एक मर्यादा भी है कि अगर अल्प ऋद्धि वाला देव पहले बैठा है, तो महर्द्धिक देव उन्हें प्रणाम करते हैं। अगर महाऋद्धिक देव समवसरण में हो तो अल्प ऋद्धि वाला बैजता है। पूर्व आदि चारों दिशाओं में

सोम, यम, वरुण व कुबेर देव पहरा देते हैं। समवसरण में सभी जीव अपने परस्पर के वैर भूल जाते हैं। किसी प्रकार का भय नहीं होता।

यह प्रथम परकोटे का वर्णन है।

## समवसरण का दूसरा व तीसरा परकोटा

समवसरण के दूसरे परकोटे में सभी प्रकार के पशु-पक्षी बैठते हैं। ये सभी पंचेन्द्रिय होते हैं। परकोटे के अंदर-बाहर तिर्यच जीव बैठते हैं। तीसरे प्रकार के निचले विभाग में देव व मनुष्यों के वाहन खड़े होते हैं। इसके बाहर खुली जगह में तिर्यक् (पशु), मनुष्य व देव भी होते हैं। वे कभी-कभी तीनों मिलकर समवसरण में प्रवेश करते हैं, निकलते हैं। इतनी भीड़ होने पर भी वहाँ शोर का नामोनिशान दिखाई नहीं देता। किसी भी प्रकार की मैं-मैं-तू-तू जैसे शब्द सुनाई नहीं देते।

समवसरण की जैनधर्म में बहुत महिमा है। जिस मुनि ने पहले समवसरण नहीं देखा, वह बारह योजन चलकर समवसरण में आता है। समवसरण के प्रभाव से १२-१२ योजन के साधु समवसरण में प्रभु-दर्शन व उपदेश ग्रहण करने आते हैं। अगर कोई समवसरण में नहीं आता तो उसके व्यवहार, सम्यक् दर्शन में चल, मल और अगाढ़ दोष की संभावना होने से उसकी शुद्धि में चार उपवास का प्रायश्चित्त है।<sup>१</sup>

समवसरण में प्रभु का रूप अतिशय सुन्दर होता है। इसके बारे में शास्त्रकार ने एक उदाहरण दिया है—“अगर समस्त देवलोक के देव भी सम्पूर्ण वैक्रिय शक्ति से ऐसा रूप बनाना चाहें, तो वह प्रभु के अंगूठे का रूप भी नहीं बना सकते। शरीर बनाना तो दूर की बात है।

समवसरण में तीर्थकर परमात्मा के नामकर्म उदय से सभी लोग धर्माचरण करते हैं, प्रतिबोध पाते हैं, त्याग करते हैं, साधु या श्रावक दीक्षा ग्रहण करते हैं।

शास्त्रकार कहते हैं—“भगवान का उत्कृष्ट रूप देखकर सबका अहंकार गल जाता है। इन सब कारणों से प्रभु महावीर का रूप प्रशंसनीय है।”<sup>२</sup>

समवसरण में उपदेश प्रारम्भ करने से पहले प्रभु विनयपूर्वक साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारूपी तीर्थ को वन्दन करते हैं। वे अर्ध-मागधी भाषा में उपदेश करते हैं, जिससे उनका उपदेश पशु तक अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं। बाकी बातें तीर्थकर की वाणी में ३५ गुणों में कही गई हैं।

तीर्थकर का उपदेश एक योजन तक दसों दिशाओं में सहज सुना जा सकता है।

समवसरण में १२ प्रकार की परिषद् होती हैं। तीर्थकर का उपदेश कभी खाली नहीं जाता। उनके उपदेश का प्रभाव मन पर इस प्रकार जम जाता है कि उनकी वाणी के प्रभाव से लोग यथा-शक्ति व्रत ग्रहण करते हैं। तिर्यच व देव को छोड़ सभी मानव कुछ न कुछ उपदेश अमृत का फल पाते हैं।

तीर्थकर समवसरण में प्रथम पहर उपदेश देते हैं। फिर अपनी धर्मकथा को सम्पन्न कर उत्तर द्वार से प्रथम परकोटे से निकलकर द्वितीय परकोटे के अंदर पूर्व दिशा में स्थित देवच्छन्दक में विराजित होते हैं।

दूसरे प्रहर में गणधर धर्मकथा करते हैं भगवान नहीं। गणधर या तो राजा आदि द्वारा समवसरण को भेंट किये सिंहासन पर बैठकर कथा करते हैं या तीर्थकर सिंहासन के पादपीठ पर। गणधर तीर्थकरों के उपदेशों को दोहन करते हैं। श्रोताओं द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते हैं। समवसरण में सभी जीवों को सुनने के लिए कुछ न कुछ मिलता है।



१. आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरि वृत्ति ५६४

२. आवश्यकनिर्युक्ति ५७४

## गणधर संवाद

सभी आचार्यों ने प्रायः एक-दो को छोड़कर प्रभु की प्रथम देशना को असफल जाना आश्चर्य माना है। भगवान महावीर ने भी एक क्षण उपदेश दिया था। फिर वे मौन हो गये।

पर महावीर चरियं में आचार्य गुणचन्द्र इसमें मानव की उपस्थिति मानते हैं।<sup>१</sup> शीलाकाचार्य ने तो ११ गणधरों की दीक्षा प्रथम देशना में दिखाई है।<sup>२</sup> आचार्य देवेन्द्र मुनि जी म. आगमों के आधार पर इस बात से सहमत नहीं हैं।

प्रस्तुत खण्ड में हम तीर्थंकर काल की प्रथम घटना का वर्णन करने जा रहे हैं।

### ग्यारह गणधर व उनका संक्षिप्त परिचय

जैनधर्म में ११ गणधरों का बहुत महत्त्व है। ये महापुरुष अपनी परम्परा के सिद्धहस्त विद्वान् व अध्यापक थे। उन दिनों मध्यम पावा में एक विशाल यज्ञ का आयोजन सीमिल ब्राह्मण के द्वारा किया गया। इसमें इन्द्रभूति आदि ११ गणधर व उनके शिष्य शामिल थे।

यहाँ एक बात स्पष्ट करना जरूरी है कि गौतम एक ब्राह्मण-क्षत्रिय गोत्र है। इन्द्रभूति उनका नाम है। इस नाम के जैन परम्परा में कई व्यक्ति हुए हैं। महात्मा बुद्ध को भी गौतम बुद्ध कहते हैं। गौतम नाम का ऋषि वैदिक परम्परा में हुआ है। विदेशी लेखकों ने इसी भ्रमवश महावीर व बुद्ध को एक मान लिया था।

इन्द्रभूति गौतम का जन्म-स्थान नालंदा के पास का गोबरग्राम था। उनके अग्निभूति व वायुभूति विद्वान् भ्राता थे। इन सभी के ५००-५०० विद्यार्थी शिष्य थे, जो वेद, वेदांग, पुराण व इतिहास सीखते थे। वे गुरुकुल में रहकर अपना अध्यापन सम्पन्न करते थे। इनकी माता पृथ्वी व पिता वसुभूति थे।

व्यक्त व सुधर्मा नाम के दो वैदिक विद्वान् कोल्लाक सन्निवेश के रहने वाले थे। व्यक्त का गोत्र भारद्वाज था और सुधर्मा का अग्नि वैश्यायन। इनके भी ५००-५०० छात्र थे। सुधर्मा की माता भदिला और पिता धम्मिल थे। व्यक्त की माता वाराणी व पिता धनमित्र थे।

यज्ञ में मण्डित व मौर्यपुत्र-मौर्य सन्निवेश से आये थे। मण्डित का वशिष्ठ गोत्र था मौर्यपुत्र का काश्यप गोत्र। दोनों के ३५०-३५० शिष्यों का परिवार था। मण्डित की माता विजयादेवी और पिता धनदेव थे। दोनों भाई थे।

अकम्पित, अचलभ्राता, मैतार्य, प्रभास नाम के चार विद्वान् भी उस सभा में थे, जो क्रमशः मिथिला, कौशल, तुंगिया (कौशाम्बी) व राजगृह से आये थे। अकम्पित का गोत्र गौतम व अचलभ्राता का हारित था। मैतार्य व प्रभास का गोत्र कौण्डिन्य था। इन सभी के ३००-३०० छात्र थे।

अकम्पित की माता जयन्ती व पिता देव थे। अचलभ्राता की माता का नाम नन्दा और पिता वसुदेव थे। मैतार्य की माता वरुणादेवा व पिता पन्त थे। प्रभास जी की माता का नाम अतिभद्रा व पिता बल थे। सभी गणधरों की आयु प्रभु महावीर के समवसरण में दीक्षा ग्रहण करने से पहले क्रमशः इस प्रकार थी-५०, ४६, ४२, ५०, ५०, ५३, ६७, ४८, ४६, ३६, १६ वर्ष थी।

जिस समय प्रभु महावीर ने केवलज्ञान की प्राप्ति की तो उनकी आयु ४२ वर्ष की थी। मैतार्य और प्रभास को छोड़ सभी गणधर प्रभु महावीर से आयु में बड़े थे। सभी कुलीन ब्राह्मण परिवारों से सम्बन्धित क्रियाकाण्डी ब्राह्मण थे।

प्रथम और पाँचवें गणधरों को छोड़ सभी गणधर प्रभु महावीर के जीवनकाल में मोक्ष पधार गये। यह गणधरों का संक्षिप्त परिचय है। हम गणधरों व प्रभु महावीर में हुई धर्मचर्चा की बात करेंगे क्योंकि इसी धर्मचर्चा के बाद ही धर्मतीर्थ की स्थापना हुई थी।

सभी गणधर अध्यापक तो अच्छे थे, पर गुरु नहीं बन पाये थे। वे पढ़ा सकते थे, पर पढ़ते हुए जो उनके मन में शंका उत्पन्न हो चुकी थी, उसके निराकरण के लिए उन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किया। इस शंका को निवारण न करने का कारण था उनका जातिमद। वे समझते थे ब्राह्मण को ब्रह्म ने स्वयं उत्पन्न किया है। ब्राह्मण कभी गलत नहीं हो सकता। वह त्रैलोक्य पूज्य है। वेद को पढ़ने-पढ़ाने का उसका अधिकार है। हर तरह की शिक्षा पर उसका अधिकार है। धर्मग्रन्थों की व्याख्या मनमाने ढंग से करने में वह स्वतन्त्र है। वह नये ग्रन्थ अपनी सुविधा के अनुसार लिखने के अधिकारी है।

क्षत्रियों के वह प्रधानमंत्री थे। यह ब्राह्मणवाद ही था। जिसने भारत के जनमानस की आत्मा को अज्ञान के बन्धनों से इतना जकड़ रखा है कि आज तक हम ब्राह्मणवाद के विरोध में कोई शब्द निकालना पाप समझते हैं।

प्रभु महावीर क्षत्रिय थे। पर उन्हें कोई भय नहीं था। वह अज्ञानतम मिटाने आये थे। उनका क्रान्तिकारी जीवन का पहला दिन ऐसा सौभाग्यशाली था कि संसार के किसी महापुरुष को ऐसा सौभाग्य नहीं मिला।

प्रभु महावीर की लड़ाई ब्राह्मण के विरोध में नहीं थी। उनका संघर्ष ब्राह्मणवाद के विरोध में था। ब्राह्मणवाद की आड़ में क्षत्रिय को छोड़ सभी वर्ण न्यून रह गये थे। वैश्य भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता था। कृषक, मजदूर, दलित, शूद्र, स्त्री जाति की कोई पुकार सुनने वाला नहीं था। धर्म के नाम पर हिंसा का बोलबाला था।

वह दिन भी आया, जब एक नहीं ४,४४० ब्राह्मणों ने एक दिन ही प्रभु महावीर के चरणों में स्वयं को समर्पण कर दिया। यह क्रान्तिकारी उपदेश का प्रभाव था।

यह क्रान्ति क्यों और कैसे घटी? इसके बारे में हम शास्त्रों के आधार पर चर्चा करेंगे। यहाँ इतना निवेदन करना चाहते हैं कि इन्हीं गणधरों में प्रथम इन्द्रभूति गौतम प्रभु महावीर के धर्मतीर्थ के प्रमुख साधु कहलाये।

परन्तु आज पाँचवें गणधर सुधर्मा स्वामी की वाचना ही उपलब्ध है। आज श्वेताम्बर जैन साहित्य में गणधर सुधर्मा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्हीं की कृपा से प्रभु महावीर का उपदेश सुरक्षित रह सका।

उन्होंने जो प्रभु से सुना, वह अपने शिष्य अन्तिम केवली जम्बू स्वामी को सुनाया। सभी गणधरों के मन में स्वाध्याय करते हुए कुछ शंकाओं ने जन्म ले लिया था। प्रभु महावीर ने इन शंकाओं का इन्हीं की मान्यतानुसार निराकरण किया। वे शंकायें क्या थीं इसका विवरण इस प्रकार है-

- (१) प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम की आत्मा के बारे में शंका थी।
- (२) दूसरे गणधर अग्निभूति को कर्म-सिद्धान्त के प्रति शंका थी।
- (३) तीसरे गणधर वायुभूति को आत्मा व शरीर के बारे में शंका थी।
- (४) चतुर्थ गणधर व्यक्त के मन में पाँच भूत आदि तत्त्वों के प्रति शंका थी।
- (५) पाँचवें गणधर सुधर्मा स्वामी के मन में इहलोक व परलोक के प्रति शंका थी।
- (६) छठे गणधर मण्डिक के मन में बंध और मोक्ष के बारे में शंका थी।
- (७) सातवें गणधर मौर्यपुत्र के मन में देवों के अस्तित्व के बारे में संदेह था।
- (८) आठवें गणधर अकम्पित के मन में नरक के बारे में संदेह था।
- (९) नौवें गणधर अचलभ्राता के मन में पुण्य व पाप तत्त्वों के बारे में संदेह था।



(१०) दसवें गणधर मैतार्य के मन में परलोक के बारे में संदेह घर कर चुका था।

(११) ग्यारहवें गणधर प्रभास के मन में मोक्ष के बारे में संदेह था।

ये सभी प्रश्न ऐसे हैं जो आस्तिक व नास्तिक जगत् में भेद-रेखा खींचते हैं। इन ब्राह्मण विद्वानों को प्रभु महावीर ने अनुपम ढंग से प्रभावित किया था। यह प्रभाव अहिंसा का था, जोर-जबर्दस्ती का नहीं था।

### प्रभु महावीर का पावापुरी पधारना और इन्द्रभूति का समाधान

प्रभु महावीर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बन चुके थे। उन्होंने अपने ज्ञान के बल से जाना कि पावापुरी में एक विशाल यज्ञ का आयोजन हो रहा है जिसमें हजारों क्रियाकाण्डी ब्राह्मण सम्मिलित हो रहे हैं। मुझे तीर्थंकर गोत्र के उदय के कारण जगत् के जीवों के कल्याणार्थ तीर्थ की स्थापना करनी है। मेरे पावापुरी जाने से जन-साधारण को अभूतपूर्व लाभ होगा।

इस भाव से प्रभु महावीर ने मध्यम पावापुरी की ओर विहार किया। वहाँ धनवान ब्राह्मण सोमिलाचार्य का यज्ञ चल रहा था। समवसरण की रचना के कारण आकाश में देव-देवियों का आगमन हो रहा था। इन्द्रभूति गौतम इस यज्ञ का मुख्य पुरोहित था। इसमें वह व अन्य ब्राह्मण अपने शिष्य-परिवार सहित सम्मिलित हुए थे।

आकाश से उड़ने वाले देव-देवियाँ यज्ञ-स्थल के ऊपर से उड़कर जाने लगे। देव आगमन से इन्द्रभूति प्रसन्न होकर झूम उठा। वह कहने लगा—“देखो, मेरे मंत्रों का आह्वान ! देवता तक मेरे इस यज्ञ में विमानों में बैठ धरती पर आ रहे हैं।”

पर शीघ्र ही देव यज्ञ-स्थल के ऊपर से आगे निकल गये। इन्द्रभूति गौतम का अहंकार समाप्त हो गया। उसने सोचा ‘जरूर कोई गड़बड़ है, कोई (इन्द्र जालिया) यज्ञ में विघ्न डाल रहा है। उसके इन्द्रजाल में देव भी आ गये हैं, जो यज्ञ-स्थल को छोड़ दूसरी जगह जा रहे हैं। मुझे जल्द ही उस इन्द्रजालिये का पता लगाना चाहिए और जनता को सतर्क करना चाहिए। मैं अभी उसके पास जाकर जनता के सामने उसकी पोल खोल दूँगा।’

इन्द्रभूति इस समय प्रभु महावीर से ८ वर्ष बड़े थे। बड़े सरल, भद्र प्रकृति के ब्राह्मण थे। उन्होंने वस्तु-स्थिति का पता लगाया तो पता चला कि राजकुमार वर्धमान अपने को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी मानता है। देवता उसके प्रवचन-स्थल की ओर जा रहे हैं। वर्धमान के बारे में इन्द्रभूति गौतम ने समस्त सूचनाएँ सोमिल ब्राह्मण से प्राप्त की थीं।

वह यज्ञ-स्थल को छोड़ अपने ५०० शिष्यों के साथ प्रभु महावीर के समवसरण में आये। जब रास्ते में आ रहे थे, तो वह सोच रहे थे—‘वह ऐसा कौन है जिसने देवताओं को भ्रम में डाल दिया है। ऐसे में यज्ञ थोड़ा चल सकता है? जिन-जिन देवताओं का आह्वान हम मंत्रों से यज्ञ में करते हैं, उन्हें बलि देते हैं, अन्न देते हैं वे अन्यत्र घूमें।’

फिर सोचा—‘चलो ! अब जाता हूँ। देखता हूँ, वह कैसे लोगों को वेद व यज्ञ से दूर करता है? उसका यह कदम तो समस्त ब्राह्मण जाति के नियमों के विरुद्ध है। संसार में पहले तो कोई वेद और ब्राह्मण से विरोध करने वाला पैदा नहीं हुआ। मैं उसे उसके किये की सजा दूँगा।’

पुनः गौतम इन्द्रभूति सोचने लगे—‘मैं उसके पास जा रहा हूँ। उससे चर्चा तो होगी ही। पर अगर मैं चर्चा में हार गया तो उसका शिष्य बन जाऊँगा। अगर मैं जीत गया, तो उसे अपना शिष्य बना लूँगा। उसके सर्वज्ञता की परीक्षा तो करनी होगी।’

“धन्य है गौतम इन्द्रभूति के भाव, जो यह सोचते हैं कि मैं हारा तो उनका शिष्य बन जाऊँगा।” भगवान के सम्मुख जीत-हार का प्रश्न नहीं होता है। शिष्य की हार में ही उसकी जीत है। गौतम गोरे रंग के आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। गौतम स्वामी के कदम समवसरण की ओर बढ़े। समवसरण के अतिशय को देखते ही प्रभु महावीर के प्रति सारे संशय दूर हो गये, बचे थे मात्र प्रश्न।

यह चर्चा वेद, ब्राह्मण, यज्ञ, अस्पृश्यता का अन्त करने वाली थी। प्रभु महावीर को शिष्य-परिवार की प्राप्ति होने वाली थी।

जैनधर्म में गणधर गौतम इन्द्रभूति का अपना स्थान है, उन्हें महावीर के बाद द्वितीय मंगल माना जाता है। लब्धियों व ऋद्धि-सिद्धि का भण्डार माना जाता है, उनके प्रश्न करने का ढंग कृष्ण-अर्जुन, बुद्ध-आनन्द-जैसा है। उनकी विद्वत्ता हर शास्त्र में उनके द्वारा प्रभु महावीर से किये गए प्रश्नों से झलकती है। संसार में प्रश्न करना भी सहज नहीं है। प्रश्न वही कर सकता है जिसे स्वयं काफी कुछ पता है। प्राप्त ज्ञान पर श्रद्धा है, पर संशय के कारण ज्ञान प्राप्त नहीं हो रहा, वही व्यक्ति अपने गुरु से संशय का समाधान विनयवान होकर करता है।

जो प्रश्न का उत्तर पाकर संतुष्ट हो जाये तो वह ज्ञानी है, अगर श्रद्धा आने पर थोड़ा सा भी मिथ्यात्व का उदय हो जाये तो वह जीवनभर संशयवान रहेगा। संशयवान का पतन निश्चित है। इसलिए प्रश्न करना बुरा नहीं है। पर प्रश्न करने का ढंग गणधर गौतम जैसा होना चाहिए। तत्त्व के प्रति प्रश्न करना धर्म पर सम्यक्त्व को वृद्ध करता है।

इन्द्रभूति गौतम ने समवसरण में प्रवेश किया तो प्रभु महावीर ने आते ही प्रश्न किया-“गौतम ! आ गये ?”

अपना नाम प्रभु महावीर के मुख पर सुनकर गौतम को आश्चर्य नहीं हुआ। वह सोचने लगे-‘इन्द्रभूति गौतम के नाम से तो हर कोई परिचित है। इस इन्द्रजालिया ने मेरा नाम पहले से सुन रखा है। मुझे अपना ज्ञान दिखाने के लिए इसने मुझे मेरे नाम से पुकारा है। वेद के ज्ञाता इन्द्रभूति को हर कोई जानता है। फिर आजकल मैं पावापुरी में प्रमुख पुरोहित की भूमिका निभा रहा हूँ। प्रमुख होने के कारण बच्चे-बच्चे की जीभ पर मेरा नाम है।’

इन्द्रभूति का अहंकार बढ़ता ही जा रहा था। इस अहंकार के कारण उसका ज्ञान समाप्त हो रहा था।

प्रभु महावीर ने पुनः कहा-“गौतम ! अपने मन में वेदों के प्रति शंका लिए तुम मेरे पास आये हो। तुम्हें आत्मा के अस्तित्व के प्रति शंका है क्योंकि तुम मानते हो कि अगर आत्मा का अस्तित्व है तो वह छायादि पदार्थों की तरह प्रत्यक्ष क्यों नहीं ? वह तो आकाशकुसुम की भाँति सर्वथा अप्रत्यक्ष है। इसलिए इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।”<sup>३</sup>

इन्द्रभूति गौतम-“हाँ आर्य ! मेरे मन में इस विषय के बारे में हमेशा शंका बनी रहती है। क्योंकि-

“विज्ञानघन ऐवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय नान्देवातु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति।”<sup>४</sup>

यह वेद वाक्य भी इस बात का समर्थन करते हैं कि भूत समुदाय में चेतन पदार्थ उत्पन्न होता है और उसी में लीन हो जाता है। परलोक की कोई संज्ञा नहीं। भूत समुदाय से ही विज्ञानमय आत्मा की उत्पत्ति का अर्थ तो यही है कि भूत समुदाय के अतिरिक्त पुरुष (आत्मा) का अस्तित्व नहीं।’

प्रभु महावीर-“हे गौतम ! दूसरी ओर तुम्हें यह भी पता है कि वेद से पुरुष का अस्तित्व सिद्ध होता है।’

इन्द्रभूति-“हे आर्य ! मैंने यह श्रुति वाक्य पढ़ा है-“स वै अयमात्मा ज्ञानमयः।”<sup>५</sup>

इसमें आत्मा का अस्तित्व सिद्ध है। दोनों की परस्पर बातों में विरोधाभास झलकने के कारण मेरे मन में शंका बनी हुई है। क्योंकि ‘विज्ञानघन’ इत्यादि श्रुत वाक्य को प्रमाण मानकर भूत शक्ति को ही आत्मा माना जाये या आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व माना जाये।’

प्रभु महावीर-“विज्ञानघन आदि का जैसा अर्थ आप लगा रहे हो वैसा यह अर्थ नहीं है। तुम्हारे अर्थ से परस्पर विरोध झलकता है। पर विज्ञानघन-इस श्रुति वाक्य का अर्थ और ही है। तुम विज्ञानघन का अर्थ पृथ्वी आदि भूत समुदाय से उत्पन्न ‘चेतना पिण्ड’ ऐसा करते हो पर विज्ञानघन का यह अर्थ नहीं है। विज्ञानघन का तात्पर्य ज्ञान-पर्याय से है। आत्मा में प्रतिक्षण नवीन ज्ञान-पर्याय का आविर्भाव तथा भूतकालिक ज्ञान-पर्यायों का तिरोभाव होता रहता है। जैसे एक पुरुष घर को देखता है, उसका चिन्तन करता है, तो उस समय उसकी आत्मा में घर-विषयक ज्ञानोपयोग होता है जिसे हम घर-

विषयक ज्ञान-पर्याय कहते हैं। जब वही पुरुष घर के पश्चात् पटादि अन्य पदार्थों को देखेगा तब उसे पटादि का ज्ञान होगा और पूर्वकालीन ज्ञान तिरोहित हो जायेगा। अन्यान्य पदार्थ-विषयक ज्ञान के पर्याय ही विज्ञानघन (विविध पर्याय का पिण्ड) है, जो भूतों से उत्पन्न होते हैं। यहाँ भूत शब्द का अर्थ पृथ्वी आदि पंचभूत नहीं है। यहाँ इसका अर्थ प्रमेय है अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ही नहीं परन्तु समस्त जड़-चेतन को ज्ञेय (जानने योग्य) पदार्थ है।

सब ज्ञेय पदार्थ आत्मा में अपने स्वरूप में भासमान होते दिखाई देते हैं। घट-घट रूप में भासता (अनुभव) है, पट-पट रूप में भासता है।

ये भिन्न-भिन्न प्रतिभास ही ज्ञान-पर्याय है। ज्ञान और ज्ञानी (आत्मा) ये कथंचित् अभेद होने के कारण भूतों से अर्थात् भिन्न-भिन्न ज्ञेयों से विज्ञानघन अर्थात् ज्ञान-पर्याय का उत्पन्न होना और उत्तरकाल में उनका तिरोहित होना कहा है।

‘न प्रेत्य संज्ञास्ति’ का अर्थ-‘परलोक की संज्ञा नहीं है।’ ऐसा अर्थ करना गलत है। वास्तव में इसका अर्थ है ‘पूर्व पर्याय का उपयोग नहीं’ है। जब पुरुष में नये-नये ज्ञान-पर्याय उत्पन्न होते हैं तो पूर्वकालिक उपयोग तिरोहित हो जाने से उसकी स्मृति पर स्फुटित नहीं होते। इसी अर्थ को लक्ष्य रखकर न प्रेत्य संज्ञास्ति कहा गया है।’

इन्द्रभूति ने ज्यों ही इस वेद सूक्ति के अर्थ के वास्तविक अर्थ को सुना, उनका अज्ञान-अंधकार मिट गया। दोनों हाथ जोड़कर प्रभु महावीर से कहा-“प्रभु ! आप मुझे निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या दीजिये। मैं आपकी वाणी सुनने को तरस रहा हूँ।”

प्रभु महावीर ने गणधर गौतम व ५०० विद्यार्थी शिष्यों को जीव, अजीव आदि तत्त्वों का उपदेश दिया। गौतम इन्द्रभूति तो प्रभु महावीर के प्रति समर्पित हो चुके थे। उन्होंने समर्पण का वह मापदण्ड स्थापित किया, जिसका उदाहरण अन्यथा दुर्लभ है।

इन्द्रभूति ने पुनः प्रभु महावीर से याचना की-“प्रभु ! आप मुझे अपना शिष्य बनाने की अनुकम्पा करें।”

इन्द्रभूति के साथ ही उनके ५०० विद्यार्थी भी मुनि बन गये।

इन्द्रभूति की प्रभु महावीर का शिष्य बनने की चर्चा जंगल की आग की तरह समस्त पावापुरी में फैल गई। गली, बाजार, चौराहे पर यह जन-चर्चा बन गई।

सोमिल ब्राह्मण की यज्ञशाला के सभी ब्राह्मण घबरा गये। सबने एक सभा बुलाई, जिसमें तय हुआ कि जिस तरह भी हो सके उस तरह इन्द्रभूति गौतम व उनके विद्यार्थी को वर्द्धमान के इन्द्रजाल से निकाला जाये क्योंकि यह धर्म-रक्षा का प्रश्न था।

उसी स्थल पर अनुष्ठान में इन्द्रभूति के दो भाई बैठे थे। पहले अग्निभूति का जोश उबाल खाने लगा कि एक ब्राह्मण कैसे एक क्षत्रिय को गुरु मान सकता है ? यह तो वेद परम्परा के विरुद्ध है। अपने भाई को निकालने के लिए वह स्वयं प्रभु महावीर के समवसरण में गये।

वह अपने भाई को मुक्त कराने अपने शिष्यों के साथ चले। पर अग्निभूति नहीं जानते थे कि वह अपने भाई को मुक्त कराने नहीं जा रहा, वह तो स्वयं प्रभु महावीर के पास समर्पित होने जा रहा है।

### अग्निभूति के समाधान व प्रव्रज्या

अग्निभूति समवसरण में पहुँचे। दूर से अष्ट प्रातिहार्य देखे। उन प्रातिहार्यों को देखते ही उनकी प्रभु महावीर के प्रति अश्रद्धा श्रद्धा में बदल गई। जोश ठण्डा पड़ चुका था। वह सोचने लगे-‘यह तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी व्यक्ति है। इसी कारण मेरा भाई अपने शिष्यों के साथ इनका शिष्य बन गया है।’

फिर अग्निभूति ने सोचा-‘अगर यह सचमुच सर्वज्ञ है तो यह मेरे मन की बात को प्रकट कर देगा। अगर ऐसा हुआ तो मैं इन्हें सर्वज्ञ मान लूँगा।’

अग्निभूति प्रभु महावीर के द्वार पर आ पहुँचे। प्रभु महावीर ने उन्हें देखते ही प्रश्न किया—

‘‘देवानुप्रिय ! तुम्हारे मन में कर्म के अस्तित्व के बारे में शंका है ?’’

प्रभु महावीर की सर्वज्ञता का प्रमाण उन्हें मिल चुका था। अब पुनः प्रश्न करने का सवाल ही पैदा नहीं हो रहा था। अग्निभूति ने स्वीकार करते हुए कहा—‘‘हाँ महाराज ! कर्म के अस्तित्व के विषय में मेरी शंका है। क्योंकि कर्म प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध नहीं होता। इसलिए यह आकाश कुसुम की भाँति अभाव रूप है।’’

क्योंकि ‘‘पुरुष एवेदं’’। यह श्रुति पुरुषाद्वैत का प्रतिपादन कर रही है। जब दृश्य-अदृश्य, बाह्य-आभ्यन्तर, भूत एवं भविष्य सब कुछ पुरुष ही है तो पुरुष के अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है।

युक्तिवाद भी कर्म के अस्तित्व को सिद्ध नहीं कर सकता। कर्मवादी कहता है—‘‘जीव पहले कर्म करता है, फिर उसका फल भोगता है। पर तर्क की कसौटी पर यह सिद्धान्त नहीं टिक सकता।’’ ‘‘जीव’’ नित्य, अरूपी और चेतन माना जाता है। और कर्म अनित्य, रूपी और जड़। इन परस्पर विरोधाभास में जीव और कर्म का सम्बन्ध कैसे माना जाये, सादि या अनादि ?

जीव और कर्म का सम्बन्ध ‘सादि’ मानने का अर्थ होगा कि यह (आत्मा) पहले कर्मरहित था और अमुक काल में कर्म का संयोग बाद में हुआ। यह मान्यता कर्म-सिद्धान्त के विपरीत है।

कर्म-सिद्धान्त के अनुसार जीव की मन, वचन, काया की प्रवृत्तियाँ कर्मबन्ध का कारण हैं। यह कर्म संयोग का कारण है। मन, वचन, काय ये स्वयं कर्मफल हैं। क्योंकि पूर्वकृत कर्म से ही मन आदि तत्त्वों की प्राप्ति जीव को होती है।

इस दशा में ‘अबद्ध’ जीव किसी भी प्रकार से बद्ध नहीं हो सकता क्योंकि उसके पास बंधन का कारण नहीं है। यदि बिना कारण ही कर्मबन्ध मान लिया जाये तो कर्म-मुक्त सिद्ध आत्माओं को भी पुनः कर्मबद्ध मानने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

इस प्रकार कर्मवादियों का मोक्ष नाममात्र रह जायेगा। वस्तुतः कोई भी आत्मा ‘मुक्त’ नहीं ठहरेगा। अतः अबद्ध जीव का बन्ध मानना दोषयुक्तिपूर्ण है।

जीव और कर्म का अनादि सम्बन्ध भी सिद्ध नहीं हो पाता, क्योंकि जीव कर्म सम्बन्ध अनादि होगा तो आत्म-नित्य भी होगा। और नित्य पदार्थ का कभी नाश न होने से वह कभी कर्म-मुक्त नहीं होगा। जब जीव की कर्म से मुक्ति नहीं तो वह इसलिए प्रयत्न क्यों करेगा ?

प्रभु महावीर—‘‘अग्निभूति ! तुमने जो शंका प्रस्तुत की है उससे लगता है कि तूने ‘वेद वाक्य’ के वास्तविक अर्थ को नहीं समझा। ‘पुरुषं खल्वेदं’ यह श्रुति वाक्य ‘पुरुषाद्वैत’ का साधक नहीं, परन्तु यह एक स्तुति वाक्य है।’’

अग्निभूति—‘‘इस श्रुति वाक्य को ‘स्तुति वाक्य’ क्यों माना जाए ? ‘पुरुषाद्वैत साधक’ क्यों न माना जाये ?’’

प्रभु महावीर—‘‘पुरुष अद्वैतवाद दृष्टि अपलाप और अदृश्य कला दोषों से दूषित है।’’

अग्निभूति—‘‘आपका कथन कैसे सत्य है ?’’

प्रभु महावीर—‘‘पुरुषाद्वैत के स्वीकार में पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु आदि प्रत्यक्ष दृश्य पदार्थों का अपलाप होता है। सत्-असत् में विलक्षण ‘‘अनिर्वचनीय’’ नामक एक अदृष्ट पदार्थ की कल्पना करनी पड़ती है।’’

अग्निभूति—‘‘आर्य ! इस सिद्धान्त में कल्पना की कोई बात नहीं, क्योंकि पुरुषाद्वैतवादी इस दृश्य जगत् को पुरुष से अभिन्न मानते हैं। जड़-चेतन का भेद तो कल्पना मात्र है। वस्तुतः जो कुछ दृश्यादृश्य और चराचर पदार्थ हैं सब पुरुष रूप हैं।’’

महावीर—“पुरुष दृश्य है या अदृश्य?”

अग्निभूति—“पुरुष रूप, रस, गंध और स्पर्शहीन अदृश्य है। यह इन्द्रियों द्वारा देखा नहीं जा सकता।” कहा भी है—“सर्वस्याऽस्य वासतः।”

प्रभु महावीर—“वे पदार्थ कौन से हैं, जो इन्द्रियों द्वारा देखे—सुने जा सकते हैं, सूँधे जा सकते हैं, चखे जा सकते हैं, स्पर्श किये जा सकते हैं।”

अग्निभूति—“यह सब नामरूपात्मक जगत् है।”

प्रभु महावीर—“क्या यह पुरुष से भिन्न है या अभिन्न?”

अग्निभूति—“यह सब पुरुष से अभिन्न है।”

प्रभु महावीर—“अभी तूने कहा था कि पुरुष अदृश्य है, इन्द्रियातीत है। इस ‘पुरुषाभिन्न’ नाम रूपात्मक जगत् को इन्द्रियों से देखा जा रहा है?”

अग्निभूति—“इस जगत् की भी उत्पत्ति माया से होती है। माया तथा उसका कार्य नाम रूप सत् नहीं है क्योंकि कालांतर में उसका नाश हो जाता है।”

प्रभु महावीर—“तो क्या यह दृश्य जगत् असत् है?”

अग्निभूति—“नहीं ! जैसे यह सत् नहीं वैसे असत् भी नहीं। क्योंकि ज्ञान काल में यह सतरूप भासित होता है।”

प्रभु महावीर—“सत् भी नहीं, असत् भी नहीं तब इसे क्या कहेंगे?”

अग्निभूति—“सत्असत् से विलक्षण इस माया को हम अनिर्वचनीय कहते हैं।”

प्रभु महावीर—“अतः तुम्हें पुरुष के अतिरिक्त ‘माया’ नामक विलक्षण तत्त्व को मानना पड़ा। तब कहाँ रहा, तुम्हारा पुरुषाद्वैतवाद? प्रिय ! जरा सोचो, यह दृश्य पदार्थ पुरुष से अभिन्न कैसे हो सकता है? यह दृश्य जगत् यदि ‘पुरुष’ ही हो तो ‘पुरुष’ की ही तरह इन्द्रियातीत होना चाहिये। तुम प्रत्यक्ष देखते हो कि यह इन्द्रियगोचर है। प्रत्यक्ष दर्शन को तुम भ्रान्ति नाम नहीं दे सकते।”

अग्निभूति—“भंते ! इसे भ्रान्ति मानने में क्या आपत्ति है?”

प्रभु महावीर—“भ्रान्ति ज्ञान उत्तरकाल में भ्रांत सिद्ध होता है। जिसे तुम भ्रांत कहते हो वह कभी भ्रांत सिद्ध नहीं होता। यह निर्बाध ज्ञान है, भ्रान्ति नहीं।”

अग्निभूति—“यह माया पुरुष की ही शक्ति है और पुरुष विवर्त में नाम रूपात्मक जगत् बनकर भासमान होता है। वस्तुतः माया पुरुष से भिन्न नहीं।”

प्रभु महावीर—“यदि माया पुरुष की शक्ति ही है तो यह भी पुरुष के ज्ञानादि गुणों की तरह अरूपी होनी चाहिये। परन्तु यह तो दृश्य है अतः सिद्ध होता है कि माया पुरुष की शक्ति नहीं, यह स्वतन्त्र पदार्थ है।”

पुरुषविवर्त मानने से भी पुरुषाद्वैत की सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि पुरुषविवर्त का अर्थ है—“पुरुष के मूल स्वरूप की विकृति।” परन्तु पुरुष में विकृति मानने से उसे सकर्मक ही मानना पड़ेगा, अकर्मक नहीं। जिस प्रकार खालिस पानी में खमीर नहीं उत्पन्न होता, उसी तरह अकर्म जीव में विवर्त नहीं हो सकता।

पुरुषवादी जिस पदार्थ को माया अथवा अज्ञान का नाम देते हैं वह वस्तुतः आत्मा के अतिरिक्त जड़ पदार्थ है। पुरुषवादी इसे सत् या असत् न कहकर अनिर्वचनीय कहते हैं जिससे सिद्ध होता है कि यह पुरुष से भिन्न पदार्थ है। इसलिए तो वह इसे पुरुष की तरह सत् नहीं मानते। असत् न मानने का अर्थ केवल यह ही है कि यह माया आकाशद्रव्य की तरह कल्पनीय वस्तु नहीं है।

अग्निभूति—“भंते ! ठीक है। दृश्य जगत् को ‘पुरुषमात्र’ मानने से प्रत्यक्ष के अनुभव का निर्वाह नहीं हो सकता। परन्तु, जड़ तथा रूप कर्म द्रव्य चेतना तथा अरूपी आत्मा के साथ कैसे संबंध हो सकता है और अच्छा-बुरा असर कैसे डाल सकता है ?”

प्रभु महावीर—“जिस प्रकार अरूपी आकाश के साथ रूपी द्रव्यों का सम्पर्क होता है उसी तरह अरूपी आत्मा का रूपी कर्मों के साथ संबंध होता है। जैसे मदिरा बुरा असर डालती है, ब्राह्मी औषधि शुभ। उसी तरह अरूपी चेतन आत्मारूपी जड़ चेतन पर भला-बुरा असर डालते हैं।”

संसार में हम जो विभिन्नताएँ देखते हैं। सुख-दुःख देखते हैं उसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य है। तुम कर्म को प्रत्यक्ष नहीं देख सकते किन्तु अनुमान से सिद्ध कर सकते हो। सुख-दुःख रूप कर्मफल को तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो। उससे उसके कारण रूप कर्म का अनुमान भी किया जा सकता है। सुख-दुःख का कोई अवश्य कारण होना चाहिये। चूँकि वह कार्य है, जिस प्रकार अंकुर रूप कार्य का हेतु बीज है उसी प्रकार सुख-दुःख रूप कार्य का जो हेतु है वह कर्म है।<sup>15</sup>

दृष्ट कारण में जो व्यभिचार दिखाई देता है अतः अदृष्ट कारण मानना जरूरी है क्योंकि सुख-दुःख के दृष्ट कारणों के समान रूप से रहने पर उनके कार्य में जो तारतम्य दिखाई देता है वह निष्कारण नहीं हो सकता। इसका जो कारण है वही कर्म है।<sup>16</sup>

हम जो भी दान आदि क्रिया करते हैं उसका कोई फल अवश्य होना चाहिए, क्योंकि वह सचेतन व्यक्ति कृत क्रिया है जिस प्रकार खेती, दान आदि क्रिया का जो फल है वही कर्म है।

अग्निभूति, क्या तुम नहीं जानते कि मन की शांति भी एक प्रकार की क्रिया ही है। इसलिए सचेतन को अन्य क्रियाओं के समान ही उसका भी मानना कर्मफल है। इससे सुख-दुःख आगे चलकर पुनः हमारे अनुभव में आते हैं।

स्थूल शरीर भूत है पर उसका आत्मा से संबंध प्रत्यक्ष देखते हैं। इसी तरह एक भव से दूसरे भव में जाते हुए जीव का कार्मण शरीर से संबंध होना ही चाहिये, नहीं तो नवीन स्थूल शरीर ग्रहण कदापि संभव नहीं है।”

अग्निभूति ने कहा—“यदि ईश्वरादि को जगत् वैचित्र्य का कारण मान लें तो कर्म की आवश्यकता नहीं है ?”

प्रभु महावीर ने इसका समाधान करते हुए कहा—“कर्म की संज्ञा मानकर मात्र शुद्ध जीव को ही देह आदि की विचित्रता का कर्ता माना जाए या ईश्वर आदि को इसका कर्ता-निर्माता माना जाये तो हमारी पूर्वकथित सभी मान्यताएँ असंगत सिद्ध होंगी, क्योंकि शुद्ध जीव या ईश्वर आदि को कर्म साधन की अपेक्षा नहीं है। वह शरीरादि का आरम्भ ही नहीं कर सकता। चूँकि उसके पास आवश्यक उपकरणों का अभाव है। जिस प्रकार कुम्हार बिना डंडे के चाक नहीं घुमा सकता, न ही बर्तन का निर्माण कर सकता है उसी प्रकार ईश्वर कर्म आदि साधनों के अभाव में शरीर आदि (निर्माण नहीं कर सकता) इसी तरह निश्चेष्ट, अमूर्तता आदि हेतुओं से ईश्वर के कर्ता का खण्डन होता है।

इस प्रकार प्रभु महावीर ने अग्निभूति के पहले संशय का निवारण किया। उसे श्रुति वाक्य के अर्थ का ठीक ज्ञान कराया। फिर इसे जैनधर्म के अनुसार कर्म के अस्तित्व को सरल ढंग से समझाया।

अग्निभूति भी अपने बड़े भ्राता इन्द्रभूति की तरह प्रभु महावीर के आगे समर्पित हो गये। अपने विद्यार्थी-परिवार सहित महावीर से दीक्षा ग्रहण की। जब इन्द्रभूति व अग्निभूति के साधु बनने की सूचना यज्ञ-मंडप में पहुँची, वायुभूति तत्क्षण प्रभु महावीर के समवसरण में पहुँचे। वह जब चले तो सोचने लगे—‘पता नहीं ! क्या बात है ? उस वेद विरोधी श्रमण में जिसने मेरे दोनों भ्राताओं को अपना शिष्य बना लिया है। लगता है, जरूर उसके पास कुछ सत्य है। मेरे भ्राता इतने अज्ञानी तो नहीं हैं। अगर वह मेरी शंका दूर कर सका, तो मैं भी उनका शिष्य बन जाऊँगा ? वह भी प्रभु महावीर के ज्ञान-वैराग्य की परीक्षा लेने महासेन उद्यान में पहुँच गये।

## वायुभूति की धर्मचर्चा और प्रव्रज्या

इन्द्रभूति और अग्निभूति के अपने शिष्य सहित प्रव्रजित होने के समाचार सुनकर वायुभूति को संबोधित करते हुए कहा—“वायुभूति ! तुम्हारे मन में यह संशय है कि जीव और शरीर एक ही हैं या पृथक् हैं। तुम्हें वेद-वाक्यों का सही अर्थ ज्ञात नहीं, इसीलिए तुम्हें इस प्रकार का संदेह हो रहा है।”

तुम्हारी मान्यता है कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतों के समुदाय से चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे मदिरा पैदा करने वाली भिन्न वस्तुओं से मद शक्ति दृष्टिगोचर नहीं होती तथापि उनके समुदाय से मद शक्ति उत्पन्न होती है। इसी प्रकार पृथ्वी आदि किसी भी पृथक् भूत में चैतन्य शक्ति दृष्टिगोचर नहीं होती तथापि उसके समुदाय से सद्शक्ति पैदा होती है और कुछ समय तक स्थिर रहकर उसके पश्चात् कालान्तर के विनाश की सामग्री उपस्थित होने पर फिर से नष्ट हो जाती है। इसी तरह भूतों के समुदाय से चैतन्य उत्पन्न होता है और कुछ समय तक विद्यमान रहने पर उसके पश्चात् विनाश की सामग्री मिलने पर फिर से नष्ट हो जाता है इसलिए पदार्थ में मद शक्ति का अस्तित्व अवश्य मानना चाहिए।<sup>16</sup>

इस चर्चा को सुन वायुभूति ने पुनः प्रश्न किया—

“आर्य ! मैं अब भी ऐसा समझता हूँ कि शरीर से भिन्न कोई जीव की सत्ता नहीं है। क्योंकि विज्ञानघन इत्यादि श्रुति वाक्य भी यही प्रतिपादन करता है कि यह ज्ञानात्मक है ‘आत्म-पदार्थ’ इन भूतों से प्रकट होता है, इन्हीं में विलीन हो जाता है। पूर्वजन्म जैसा कोई भाव नहीं है।”

प्रभु महावीर—“मैं आपके भूत समुदाय की मान्यता का पहले ही स्पष्टीकरण कर चुका हूँ। रही बात श्रुति वाक्य की, वेदों से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है—“सत्येन लभ्यस्तपसा द्वेष आत्मा इत्यादि श्रुति वाक्य से आत्मा के अस्तित्व को भी सिद्ध करते हैं।”

वायुभूति—“प्रभु ! यदि यह मान भी लें कि जड़ से चेतन की उत्पत्ति होती है तो भी भूतों के अतिरिक्त आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण क्या है ?”

प्रभु महावीर—“मैं तुम्हें आत्मा की सिद्धि के लिए अपना पक्ष प्रस्तुत करता हूँ—

(१) जिस प्रकार पाँच झरोखे से भिन्न स्वरूप देवदत्त का धर्म चैतन्य है। उन झरोखों को देखने वाला देवदत्त एक ही है। झरोखे पाँच हैं। इस प्रकार पाँचों इन्द्रियों से ग्रहण किये पदार्थ का स्मरण करने वाला इन्द्रियों से भिन्न कोई न कोई तत्त्व अवश्य होना चाहिये। इसी तत्त्व का नाम आत्मा या जीव है। यदि इन्द्रियों को उपलब्धिकर्ता मान लिया जाता है, तो सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इन्द्रिय-व्यापार के बन्द होने या विनाश होने पर भी इन्द्रियों द्वारा गृहीत वस्तु का स्मरण होता है। कभी-कभी इन्द्रिय-व्यापार का अस्तित्व में भी अन्यमनस्क को वस्तु का ज्ञान नहीं होता। इसलिये यह मानना चाहिये कि किसी वस्तु का ज्ञान इन्द्रियों को नहीं होता। अपितु इन्द्रियों से भिन्न किसी द्रव्य पदार्थ को होता है वह ज्ञाता तत्त्व आत्मा है।

(२) द्वितीय अनुमान यह है कि आत्मा इन्द्रियों से अलग है। चूँकि वह एक इन्द्रिय से ग्रहण किये पदार्थ का दूसरी अन्य इन्द्रिय से भी ग्रहण करता है। वस्तु का ग्रहण एक इन्द्रिय से होता है किन्तु विकार दूसरी इन्द्रिय से होता है जैसे नेत्रों के द्वारा इमली, निम्बू आदि पदार्थ देखते हैं पर जिह्वा से उसके स्वाद का पता चलता है इसीलिए मानना पड़ता है आत्मा इन्द्रिय से अलग है।<sup>17</sup>

(३) तृतीय अनुमान यह है कि जीव इन्द्रिय से पृथक् है। चूँकि वह सभी इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये हुए अर्थ का स्मरण करता है। जैसे अपनी इच्छा से रूप आदि एक-एक गुण के ज्ञाता ऐसे पाँच पुरुषों से रूप आदि ज्ञान को जानने वाला पुरुष अलग है। उसी तरह पाँचों इन्द्रियों से उपलब्ध अर्थ का स्मरण करने वाले, पाँचों इन्द्रियों से अलग कोई तत्त्व होना चाहिए। वह तत्त्व आत्मा है।<sup>18</sup>

वायुभूति 'आत्मा शरीर से अलग है। यह सिद्ध हो जाने पर भी वह शरीर के समान क्षणिक है। वह शरीर के साथ ही विनष्ट हो जाता है फिर उसको शरीर से अलग सिद्ध करने से लाभ भी क्या है?'

महावीर इस प्रकार की शंका करना ठीक नहीं है। पूर्वजन्म का स्मरण करने वाले जीव का उसके पूर्वजन्म का शरीर विनष्ट हो जाने पर भी क्षय नहीं मान सकते। जीव का क्षय मानने पर पूर्वभव का स्मरण नहीं कहते। जैसे बाल अवस्था का स्मरण करने वाली वृद्ध की आत्मा का बाल्यकाल में सर्वथा नाश नहीं हो जाता, चूँकि वह बाल्यावस्था का स्मरण करती हुई प्रत्यक्ष दिखाई देती है। इस प्रकार जीव भी पुनर्जन्म का स्मरण करता है यह सिद्ध है।

जैसे कोई व्यक्ति विदेश यात्रा के लिये गया है वह अपने देश की बात का स्मरण करता है। इसी प्रकार पूर्वजन्म का स्मरण करने वाले भव का सर्वथा नाश नहीं मान सकते।<sup>११</sup>

चैतन्य भूतों का धर्म है और भूत रूप शरीर व चैतन्य रूप आत्मा का अभिमान है।<sup>१२</sup>

इस संशय का निवारण करते हुए भगवान महावीर ने कहा—'तुम्हारा यह संवाद उचित नहीं है। चूँकि चैतन्य केवल भूतों के समुदाय से पैदा नहीं हो सकता। वह स्वतन्त्र रूप से सत् है, क्योंकि प्रत्येक भूत में उसकी सत्ता का अभाव है। जिसका प्रत्येक अवयव में अभाव हो, वह समुदाय में भी उत्पन्न नहीं हो सकता। जैसे रेत के किसी कण में यदि तैल नहीं है तो रेत समुदाय से तैल नहीं निकल सकता। तिल समुदाय से तैल निकलता है। चूँकि प्रत्येक तिल में तैल की सत्ता है। तुम्हारा यह कथन भी अयुक्त (युक्तिरहित) है कि मदिरा के प्रत्येक द्रव्य में मद अविद्यमान है। सही बात यह है कि मदिरा के प्रत्येक अंग में कम या ज्यादा मद विद्यमान है इसलिए वह समुदाय से उत्पन्न होती है।<sup>१३</sup>

'मदिरा के अंग के समान प्रत्येक भूत में चैतन्य की मात्रा विद्यमान है इसलिए वह समुदाय से भी उत्पन्न हो जाता है।' यदि ऐसा मान लें तो क्या आपत्ति है? किन्तु आपका यह कथन भी उचित नहीं है क्योंकि जैसे मदिरा के हर एक अंग -धातकीपुष्प, गुड़, द्राक्षा, गन्ने का रस आदि में मद शक्ति दिखाई देती है; उसी प्रकार प्रत्येक भूत में चैतन्य का दर्शन नहीं होता इसलिए केवल यह नहीं कहा जा सकता कि भूत समुदाय में चैतन्य उत्पन्न होता है।<sup>१४</sup>

मदिरा के प्रत्येक अंग में भी यदि मद शक्ति न मानें तो क्या आपत्ति है? यदि भूतों में चैतन्य के समान मद्य के प्रत्येक अंग में मद शक्ति हो यह नियम कदापि नहीं बन सकता कि मद्य के धातकीपुष्प आदि तो कारण हैं और दूसरे पदार्थ नहीं। ऐसी अवस्था में राख, पत्थर आदि कोई भी वस्तु मद का कारण बन जायेगा और किसी भी समुदाय से मदिरा उत्पन्न हो जायेगी, किन्तु व्यवहार में भी हम देखते हैं कि ऐसा कभी नहीं होता। अतः मदिरा के हर अंग भूत पदार्थ में मद शक्ति का अस्तित्व मानना चाहिए।<sup>१५</sup>

भगवान महावीर ने क्षणिकवाद का विरोध करते हुए कहा—'वायुभूति ! क्षणिकवाद भी अनेक दोषों से भरा हुआ है क्योंकि ज्ञान संतति का जो सामान्य रूप है वह नित्य है इसलिए उसका भी व्यवच्छेद नहीं होता। उसे ही आत्मा कहते हैं।' प्रभु महावीर ने आत्मा के विषय को आगे स्पष्ट करते हुए कहा—'वायुभूति ! आत्मा शरीर से अलग है तो वह शरीर में प्रवेश करते समय, वहाँ निकलते समय क्यों दिखाई नहीं देती?'

इसका उत्तर इतना है—'आत्मा स्वभाव से अमूर्त है और उसके साथ जो कर्मण शरीर है वह परमाणु के समान सूक्ष्म है इसलिये हमारे शरीर में प्रवेश करते समय या बाहर निकलते समय दिखलाई नहीं देती।'

वायुभूति—'अच्छा, यदि वह मान भी लें कि जड़ से चेतन की उत्पत्ति नहीं होती तो भी भूतों के सिवाय आत्मा के अस्तित्व का क्या प्रमाण है?'

प्रभु महावीर—'वायुभूति ! ज्ञानी को प्रमाण की जरूरत नहीं होती। वह इसे हस्ताकमलवत् साक्षात् देखते हैं। यह कर्म नेत्र वाले जीवों के लिये पहेली है। पर वह इसे अनुमान से जान सकते हैं।



दिखाई देने वाले जीवों की प्रवृत्तियों को देखो। सब अपने अनुकूल वंदनीय की ओर प्रवृत्त और प्रतिकूल वंदनीय से निवृत्त होते हैं। सब अनिष्ट से बचना चाहते हैं। क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि यह चाहने वाली शक्ति, जो अदृश्य है, क्या है? जो भले-बुरे का विचार करती है। अवश्य ही उस नियामक शक्ति का उद्गम स्थल शरीर से भिन्न है और वही क्रियावादियों की आत्मा है। “मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैंने खाया, मैंने अमुक कार्य किया इत्यादि वाक्य “मैं” शब्द से तो अपना सूचन होता है वह वास्तव में शरीर नहीं है। हाँ यह स्वभाव शरीराश्रित आत्मा है। मृत शरीर में इस प्रकार की कोई भी चेष्टा नहीं होती है। मृत शरीर पर कितनी कीमती औषधियों के प्रयोग किए जायें, क्या वह जिंदा होगा? क्या मृत शरीर का घाव ठीक होगा? क्या वह बात करेगा? जिस शक्ति से जीवन शरीर का योग ठीक होता है, इन्द्रियाँ कार्यरत हैं वह शक्ति आत्मा है और इन्द्रियों से अलग है।

प्रभु महावीर ने पुनः वायुभूति से पूछा—“वायुभूति! इस संसार की विचित्रता की ओर देखो। कोई सुखी है, कोई दुःखी है, कोई धनवान है, कोई निर्धन है, कोई स्वामी है, कोई सेवक है। इन विविधताओं का कारण तुम क्या मानते हो?”

वायुभूति—“भंते! मैं तो इनका कारण स्वभाव को मानता हूँ।”

प्रभु महावीर—“किसका स्वभाव?”

वायुभूति—“पदार्थों का।”

प्रभु महावीर—“यदि तुम्हारी मान्यतानुसार संसार के भूतों के सिवा कोई पदार्थ नहीं है, तब तो इसका कारण तर्कसंगत नहीं है।

‘भूत’ जड़ पदार्थ है। इन जड़ों में ऐसी कौन-सी नियामक शक्ति है, जो संसार की विभिन्नताओं को प्रकट करे। भले ही आग में जलने-जलाने की शक्ति है। पर वह स्वयं नहीं जल सकती। इस तरह भूतों में भले ही सब कुछ करने की शक्ति हो, पर वह स्वयं कुछ नहीं कर सकते। इनका कोई नियोजक चेतन होगा, तभी ये संसार की विचित्रता का कारण हो सकेंगे। अतः भूतों में विलक्षण चेतन मानना पड़ेगा।

आत्मा का अस्तित्व मान लेने पर भी संसार की विविधता सिद्ध नहीं हो सकती, जब तक कि चेतन और जड़ के बीच में कोई विशिष्ट संबंध न माना जाये। क्योंकि जड़ से निर्लेप रहता हुआ चेतन जड़ पदार्थ का कोई नियमन अथवा उपयोग नहीं कर सकता। मिट्टी का स्पर्श न करने वाला कुम्हार मिट्टी के बर्तन नहीं बना सकता।”

वायुभूति—“तब क्या कुम्हार की तरह चेतन भी जड़ पदार्थों में इस संसार की रचना करता है?”

वायुभूति ने एक नया प्रश्न पुनः खड़ा कर दिया। प्रभु महावीर ने बड़ी सरलता से इसका समाधान किया।

प्रभु महावीर—“मेरा अभिप्राय यह नहीं है जैसा तुम समझ रहे हो। कुम्हार की तरह कोई चेतन शक्ति संसार की रचना नहीं करती। मेरे कहने का भाव यह है—

“इस जगत् में चेतन और जड़ दो शक्तियाँ काम करती हैं। इन दो शक्तियों के बीच वह संबंध है जो विजातीय दो पदार्थों के बीच हो सकता है। चेतन, जिसे हम आत्मा कहते हैं और जड़, जिसे हम कर्म कहते हैं। अनादिकाल से दूध और घृत की तरह एक-दूसरे में मिले हुए हैं। दूध को देखते ही घृत का अनुमान हो जाता है। इसी प्रकार सचेष्ट शरीर को देखते ही आत्मा का अनुमान करते हैं। चेतन में लिप्त कर्माणुओं से संसार में यह विचित्रता उत्पन्न होती है। जो चेतन शुभ कर्मों में लिप्त होता है वह संसार में अच्छी स्थिति पाता है। जो अशुभ कर्म अणुओं में लिप्त होता है वह बुरी स्थिति पाता है।

इस प्रकार संसार में देखी जाने वाली विभिन्नताओं का कारण संसारी जीवों और उनके शुभ-अशुभ कर्म हैं। केवल भूतों का स्वभाव नहीं।

वायुभूति पर चार्वाक का भी कुछ असर था। इस लम्बी धर्मचर्चा से वायुभूति का संशय दूर हो गया। उन्होंने भी अपने दोनों भ्राताओं का अनुकरण करते हुए प्रव्रज्या ग्रहण की। उनके ५०० शिष्यों ने भी साधु-जीवन ग्रहण किया।

उधर पावा की यज्ञशाला में यज्ञ रुक गया। सभी उन तीन वेद-विद्वान् ब्राह्मणों की चिंता करने लगे।

इन्द्रभूति, अग्निभूति व वायुभूति तीनों पंडित अपने शिष्यों के परिवार सहित प्रभु महावीर के शिष्य बन चुके थे। यज्ञशाला के हर सदस्य को अब देवताओं के समवसरण में जाने का रहस्य समझ आ रहा था। उन्हें पता चल चुका था कि उस वर्द्धमान को अवश्य ही सर्वज्ञता हासिल हो गई है इसीलिये वह हमारे विद्वानों से शास्त्रार्थ करने में सक्षम है।

बाकी चार विद्वानों ने भी सोचा-‘चलो ! हम भी चलें। उस व्यक्ति को देखें, परखें। अगर वह योग्य होगा, तो हमारे मन की बातें बता देगा। हमारे अंदर वर्षों से पल रहे संशय का निवारण हो जायेगा।’

### आर्य व्यक्त की शंका और प्रव्रज्या

वायुभूति के दीक्षित होते ही आर्य व्यक्त अपने शिष्यों सहित प्रभु महावीर के समवसरण में उपस्थित हुए। प्रभु महावीर ने उनको संबोधित करते हुए कहा-‘व्यक्त ! तुम्हारे मन में संशय है कि भूत है या नहीं। तुम्हें ब्रह्मा के सिवाय सारे पदार्थों की वास्तविकता पर संशय है ?

व्यक्त ! तुम्हारे मन में यह धारणा है कि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले ये सभी भूत स्वप्न के समान हैं और जीव, पुण्य, पाप आदि परोक्ष पदार्थ माया के समान हैं। इस तरह सम्पूर्ण संसार यथार्थ में शून्य-सा है।’

प्रभु महावीर से अपनी संशय भरी बातें सुनकर आर्य व्यक्त ने स्वीकृति दी। फिर खुलकर प्रभु महावीर की बातें व अपनी संशय का समाधान पाने लगे। प्रभु महावीर ने आगे कहा-‘महानुभाव ! स्वप्नोपम वै इत्यादि वेद वाक्य को तूने ठीक रूप में नहीं समझा। सब कुछ स्वभावतुल्य होने का अर्थ यह नहीं कि ब्रह्म के अतिरिक्त कोई सत् पदार्थ नहीं।

संशय की उत्पत्ति बिना ज्ञेय के संभव नहीं। इसलिए ज्ञेय है तो संशय उत्पन्न किस प्रकार होगा ? सब कुछ शून्य होने पर भी संशय रहता है, यह कहना उचित नहीं। जो स्वप्न में संदेह होता है वह भी पुर्वानुभूत वस्तु के स्मरण से ही होता है। इसलिए सभी वस्तुओं का सर्वथा अभाव हो तो स्वप्न में संशय न हो।

स्वप्न के कारण ये हैं-(१) अनुभूत अर्थ-स्नानादि, (२) दृष्ट अर्थ-हाथी, घोड़े, (३) चिन्तित अर्थ प्रियतम आदि, (४) श्रुत अर्थ-स्वर्ग, नरक आदि, (५) प्रकृति विकार-वात, पित्त आदि, (६) अनुकूल-प्रतिकूल वेदना, (७) सजल-प्रदेश, (८) पुण्य और पाप। इसलिए स्वप्न भी भावरूप हैं। चूँकि घट विज्ञान आदि के समान वह विज्ञान रूप है या स्वप्न स्वभाव रूप है। क्योंकि वह अपने कारणों से उत्पन्न होता है। जैसे घट आदि अपने कारणों से उत्पन्न होता है।

इस तरह हमें पृथ्वी, जल, अग्नि आदि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले भूतों पर संदेह नहीं करना चाहिये। वायु, आकाश भी अवश्य है। स्पर्श आदि गुणों का कोई गुणी अवश्य होना चाहिये। चूँकि वह गुण है। जैसे सब गुण का गुणी घट है। स्पर्श आदि गुणों का जो गुणी है वह वायु है। इन सबका आधार भी कोई न कोई जरूर होना चाहिये। चूँकि ४ तत्त्व मूर्त हैं। जो मूर्त होता है उसका कोई आकार होता है। जैसे पानी का आधार घट होता है, पृथ्वी का आधार आकाश है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सचेतन जीव हैं उनके जीव लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं। आकाश अमूर्त है क्योंकि यह जीवों का आधार है, यह जीव तत्त्व नहीं है। भूत पदार्थों में जीवन है। इनका अपना भोजन है।

पृथ्वी सचेतन है। चूँकि उससे जन्म, जरा, जीवन, मरण, क्षत-संरोहण, आहार, दोहद, रोग, चिकित्सा आदि जीव के लक्षण पाये जाते हैं। लाजवंती क्षुद्र जीव की तरह स्पर्श से संकुचित हो जाती है।

लता अपना आश्रय प्राप्त करने की दृष्टि से मानव के समान वृक्ष की ओर बढ़ती है। शमी आदि में निद्रा, प्रबोध, संकोच के लक्षण पाये जाते हैं। बबूल शब्द का, अशोक रूप का, कुरूनक गंध का, विरहंक रस का, चम्पक स्पर्श का उपभोग करते हुये दिखाई देते हैं।

जल भी सचेतन है। पृथ्वी का उत्खनन करने से स्वाभाविक रूप से जल निकलता है, वह मेढ़क के समान है। चूँकि मेढ़क भी ऐसे ही निकलते हैं। और मत्स्य के समान स्वाभाविक रूप से आकाश से गिरने के कारण जल को सचेतन मानना चाहिये। गाय बिना किसी प्रेरणा से अनियमित रूप से तिर्यक् गमन करती है, वैसे ही वायु भी है। इसलिये वह सजीव है। अग्नि सजीव है। उसे मनुष्य में आहार आदि से वृद्धि और विकार दिखाई देता है। वैसे ही आग में भी काष्ठ आहार से वृद्धि और विकार दिखाई देते हैं।<sup>१६</sup>

सो पाँच भूत अचेतन नहीं हैं। इसलिए क्षणिकवाद का सिद्धान्त स्वीकार करने योग्य नहीं है। क्योंकि संसार में कुछ भी इस सिद्धान्त में नहीं आता। सांसारिक जीवों का नियम है कि क्षणिक सुखों को, क्षणिक मानकर इसमें न फँसें आत्म-हित की चिंता करें।

इसके बाद प्रभु महावीर ने आर्य व्यक्त को जड़-चेतन का स्वरूप समझाया।

आर्य व्यक्त भी प्रभु महावीर से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गये। उनके साथ ५०० शिष्य भी साधु बने।

आर्य व्यक्त भी अपने शिष्यों सहित प्रभु महावीर की शरण ग्रहण कर चुके थे। अब आये जैन इतिहास व शास्त्रों के मुख्य संदेशवाहक आर्य सुधर्मा।

आर्य सुधर्मा का नाम ४५ आगमों में शुरू में ही उपलब्ध हो जाता है। इसका मुख्य कारण है कि वह भगवान महावीर के दीर्घकाल तक शिष्य रहे। उन्होंने अपने शिष्य अंतिम केवली आर्य जम्बू को वही सुनाया, जो उन्होंने अपने प्रभु महावीर के श्रीमुख से सुना था। यही गुरु-शिष्य संवाद श्वेताम्बर जैन आगम है। आप दीर्घायु थे। लम्बे समय तक प्रभु महावीर को बहुत निकट से देखा था इसी कारण आपने 'वीरत्थुई' की स्वतन्त्र रचना की। आप संसार के पहले कवि थे। आपकी यह रचना सूक्तकृतांग में है। डॉ. गेटे के अनुसार यह संसार की पहली छन्द, अलंकार व कविता के सभी गुणों से संपूर्ण है। सुधर्मा जैसा विद्वान् प्रभु महावीर के आगे कैसे समर्पित हुआ। सुधर्मा भी सोमिलाचार्य की यज्ञशाला में अपने शिष्यों के साथ यज्ञ में संलग्न थे।

### आर्य सुधर्मा की शंका व प्रव्रज्या

वह भी प्रभु महावीर के समक्ष अपने शिष्य-परिवार सहित आये। प्रभु महावीर ने सुधर्मा को देखते ही कहा—“आर्य सुधर्मा ! क्या तुम मानते हो कि सब प्राणी मरकर अपनी ही योनि में पैदा होते हैं। जो इस भव में है व पर-भव में भी ऐसा रहेगा।”

आर्य सुधर्मा प्रभु महावीर की सर्वज्ञता की बात सुन चुके थे। अब तो वह यह प्रश्न प्रभु महावीर की परीक्षा हेतु नहीं, संशय मिटाने हेतु पूछ रहे थे। अब श्रद्धा आ चुकी थी। तर्क-वितर्क समवसरण में आते ही समाप्त हो चुके थे।

बड़े श्रद्धाभाव से आर्य सुधर्मा ने कहा—“हा आर्य, वेद-वाक्य भी मेरी बात का समर्थन करते हैं—

“पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वम्।”

अर्थात् पुरुष पुरुषत्व को पाता है पशु पशुयोनि पाता है।”

प्रभु महावीर—“आर्य ! तुम एक वाक्य में ही उलझ गये हो। इसके विपरीत भी श्रुति वाक्य उपलब्ध होता है।”

सुधर्मा—“हाँ प्रभु ! मैंने वह विपरीत वाक्य भी पढ़ा है—“शृगालो वै एष जायते य सपुरीषो दह्यते।” इस वाक्य में मनुष्यपन छोड़ अगले भव में शृगाल होना लिखा है। पर मुझे प्रथम श्रुति वाक्य पर ज्यादा श्रद्धा है। क्योंकि यह एक अटल नियम है कि कार्य हमेशा कारण अनुरूप होता है। गेहूँ से गेहूँ की ही उत्पत्ति होती है, जौ की नहीं। इस तरह मनुष्य आदि प्राणी मरकर पुनः मनुष्य ही बनते हैं किसी अन्य योनि में नहीं पैदा होते।”

आर्य सुधर्मा के तर्क को प्रभु महावीर ने काटते हुए समाधान किया—“महानुभाव सुधर्मा ! कार्य कारण के समान ही होता है इसलिए गेहूँ से गेहूँ और जौ से जौ की उत्पत्ति होती है, पर-भव की नहीं। यह बात सत्य है पर इसका यह अर्थ कभी नहीं हो सकता कि उसी कारण रूप गेहूँ जीव ने उससे उत्पन्न होने वाले गेहूँ के दानों में जन्म लिया है। कारण और कार्य रूप गेहूँ के दानों में केवल शारीरिक कार्य-कारण भाव होता है, आत्मिक नहीं।

इसी प्रकार मनुष्य तथा तिर्यच आदि में भी शारीरिक कार्य-कारण भाव होता है। मनुष्य के मनुष्य देहधारी संतान होती है, पशु के पशु देहधारी। यदि यह नियम न होता, तो मनुष्य से पशु उत्पन्न हो जाता और पशु मनुष्यों को जन्म देते। सो इसका कारण शरीर है आत्मा नहीं।

आर्य सुधर्मा ! मेरी बात ध्यान से सुनो। हर जीव-जंतु का जीव (आत्मा) जुदा है और शरीर जुदा है। पूर्व शरीर उत्तर शरीर का कारण तो हो सकता है पर उत्तर भव का नहीं।

भव की प्राप्ति पूर्व कृत्य शुभ-अशुभ कर्मों का समूह है। जो जीव भले-बुरे कर्म करता है उसी प्रकार से भले-बुरे कर्मों से अपनी आत्मा को बाँध लेता है जिसे मैं कर्मबंध कहता हूँ।

उसी कर्म के हिसाब से अच्छी-बुरी गति बाँधता है। उसका पूर्वभव का शरीर इस प्रणाली पर कोई असर नहीं डालता।

कार्य-कारण के समान ही होता है यह कोई एकान्त नियम नहीं है। शृंग से भी शर नामक वनस्पति उत्पन्न होती है। उसी पर यदि सरसों का लेप किया जाए तो फिर उसी में से एक विशेष प्रकार की घास उत्पन्न होती है। गाय, भेड़, बकरी के केशों से ऊन उत्पन्न होती है। इसी तरह विभिन्न प्रकार के द्रव्यों के संयोग से विलक्षण वनस्पति की उत्पत्ति का वर्णन वृक्षायुर्वेद में है। इसलिये यह मानना चाहिये कि कार्य-कारण से विलक्षण भी उत्पन्न हो सकता है।<sup>१७</sup>

इस भव का मनुष्य मन, वचन द्वारा अशुभ प्रवृत्तियों से अशुभ कर्म बाँध लेता है वह मरकर नारकी व पशु बनता है। इस तरह से इस भव का पशु अशुभ कर्मों से फिर तिर्यच और नारक भी हो सकता है। वह तिर्यच पशु शुभ कर्मों द्वारा मनुष्य और देव तक हो सकता है।

मेरी बातों का सार यह है कि शुभ कर्म जीव को शुभ गति देने वाले हैं। अशुभ कर्म अशुभ गति देने वाले हैं।”

सुधर्मा—“आर्य ! अगर कर्म के अभाव से यदि भव मान लें तो क्या आपत्ति है ?”

प्रभु महावीर—“महानुभाव ! इस प्रकार की स्थिति में भव का नाश भी निष्कारण मानना होगा और मोक्ष के लिए तपस्या आदि तप-जप, अनुष्ठान बेकार सिद्ध होंगे। इस कारण तुम्हारा सिद्धांत अपने आप में ठीक नहीं है। इस तरह कर्म के अभाव से अनेक दोष उत्पन्न हैं।”

सुधर्मा—“आर्य ! कर्म के अभाव में स्वभाव से ही परभाव मान लें तो क्या दोष है ?”

प्रभु महावीर—“महानुभाव ! स्वभाव क्या है ? क्या वह कोई वस्तु है ? या निष्कारणता है ? या वस्तु धर्म है ?

वस्तु मानने पर उसकी उपलब्धि होनी चाहिये। पर आकाश कुसुम के समान उसकी उपलब्धि नहीं होती, वह वस्तु नहीं है। यदि अनुपलब्ध होने पर भी स्वभाव का अस्तित्व माना जाए तो अनुपलब्ध होने पर कर्म का अस्तित्व मानने में क्या आपत्ति है ?

दूसरी बात—स्वभाव की विसदृशता आदि की सिद्धि के लिए हेतु प्राप्त नहीं होता, जिससे जगत् वैचित्र्य सिद्ध हो सके। स्वभाव की निष्कारणता में भी बहुत से दोषों की संभावना है। वस्तु धर्म में भी स्वभाव नहीं माना जा सकता। चूँकि उसमें भी वैसे दृश्य के लिए किसी प्रकार का स्थान नहीं रहता। स्वभाव को पुद्गल रूप मानकर वैसे दृश्य की सिद्धि की जाए तो वह कर्म रूप में ही सिद्ध होगा।

इस प्रकार सुधर्मा ! तुम्हारी सभी मान्यताएँ शंकाग्रस्त हैं। तुम्हारा यह मानना इसी बात का प्रतीक है क्योंकि श्रुति में परस्पर वाक्य तुम्हें मिले। पर वास्तविकता से इन श्रुति वाक्यों का कुछ लेना-देना नहीं है।”

आर्य सुधर्मा भी विद्यार्थी—परिवार सहित प्रभु महावीर के शिष्य बन गये। पर अभी तो पहले दिन का पहला उपदेश था। चर्चाएँ चल रही थीं। इसके बाद आर्य मंडिक यज्ञशाला से सीधे प्रभु महावीर के चरणों में पहुँचे। उनका भी शिष्य—परिवार साथ था।

### मंडिक स्वामी की शंका व प्रव्रज्या

सुधर्मा के पश्चात् ही मंडिक स्वामी प्रभु महावीर के सामने आ गये। उन्हें देखते ही महावीर बोले—“आर्य मंडिक ! क्या तुम्हें आत्मा के बंध-मोक्ष के विषय में शंका है ?”

मंडिक—“हे आर्य ! आप सत्य कहते हो। मेरी ऐसी मान्यता है कि आत्मा एक स्वच्छ-सा पदार्थ है। इसका कर्मबंध और नये-नये रूपों में जन्म लेकर भटकना मेरे दिमाग में नहीं बैठता। मेरी बुद्धि इस सिद्धांत को मानने को तैयार नहीं है। फिर शास्त्र में भी आत्मा को त्रिगुणातीत, अबद्ध और विभु बताया गया है।

श्रुति वाक्य है—“स एष विगुणे विमूर्त वध्यते, संसक्ति व न मुच्यते मोचयति वा, नवा एष बाह्याभ्यन्तर न वेद।”

अब आप ही समझायें कि जो अवगुण (सत्व, रज, तम) बाह्य तथा आभ्यन्तर (शारीरिक व मानसिक) सुख-दुःख के प्रभावों से परे है उसे कर्मबद्ध होगा ? और जिसका बन्धन है उसका छूटने की बात बेकार है। इस प्रकार जो आबद्ध है, वह भव-भ्रमण कैसे करेगा ?”

प्रभु महावीर—“इस श्रुति वाक्य में आत्म-स्वरूप का जो वर्णन है वह कर्म समाप्त करके गई सिद्ध आत्मा का है। सांसारिक आत्माओं का नहीं है।”

मंडिक स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—“सिद्ध और संसारी आत्माओं में क्या भिन्नता है ?”

प्रभु महावीर—“यूँ तो आत्म-स्वरूप से सभी आत्माएँ एक-सी हैं परन्तु उपाधि भेद से भिन्नता मानी गई है। जो आत्माएँ सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र्य के माध्यम से समस्त कर्म का नाश कर देती हैं, जिनका जन्म-मरण समाप्त हो गया है, जो त्रिकाल पूज्य हैं, निराकार हैं, स्वयंबुद्ध, अविनाशी हैं वह सिद्धात्माएँ हैं।

जो कर्मबंधन में जकड़ी होने के कारण जन्म-मरण करती हैं। बुरे या अच्छे कर्मों के अनुसार जिन्हें बुरी या अच्छी योनि मिलती है वह संसारी आत्माएँ हैं। उक्त वेद वाक्य में जो विभु आत्मा का निरूपण किया गया है वह कर्म-मुक्त सिद्धात्माओं पर ही लागू होता है क्योंकि उन्हीं मुक्त आत्माओं में यह विशेषताएँ पाई जाती हैं।”

मंडिक बहुत अच्छा दार्शनिक व शास्त्रार्थ करने में कुशल थे। उन्होंने प्रभु महावीर से पुनः प्रश्न किया—“सिद्ध और संसारी दो तरह की आत्माओं की कल्पना करने की क्या जरूरत है ? हमें सभी आत्माओं को सिद्ध स्वरूपी मानने में क्या दोष है ?”

प्रभु महावीर—“हे आर्य ! इस तरह मानने से संसारी आत्माओं को कर्म द्वारा प्राप्त सुख-दुःख के अनुभव की जो प्राप्ति होती है वह बेकार सिद्ध हो जायेगी। हम कहते हैं—“मैं सुखी हूँ. मैं दुःखी हूँ।” इन व्यवहार वाक्यों का आधार

कर्मफल को प्रकट करता है। यदि हम सभी जीवों को कर्मरहित मान लेंगे तो इस सुख-दुःख का कारण क्या माना जाएगा ?”

मंडिक ने तर्क उपस्थित किया—“आत्मा तो बुद्धि और शरीर से स्वतंत्र है। आत्मा को इसका ज्ञान नहीं है। आत्मा इसी प्रभाव के कारण बुद्धि पर होने वाले सुख-दुःख से उन्हें प्रकट करता है। पर परमार्थ दृष्टि से यह असर आत्मा में नहीं, अन्तःकरण में होता है।”

प्रभु महावीर—“तब तो आत्मा का शरीर और अन्तःकरण के साथ ऐसा गूढ संबंध होना चाहिये, जिससे वह उनमें अपनापन मान लेने की भूल करता है।”

मंडिक—“हाँ भंते ! ऐसा ही है। दूध में रहा हुआ घी दूध से अलग होते हुए भी भिन्न नहीं दिखाई देता। ऐसे ही आत्मा शरीर से भिन्न होते हुए भी घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण वह अपने को भिन्न नहीं समझती। इसी अभेद ज्ञान के वश अपने में बुद्धि द्वारा पड़ते हुए शारीरिक सुख-दुःख के प्रतिबिंबों को वह अपना सुख-दुःख मानकर अपने को सुखी-दुःखी मान लेता है।

स्फटिक स्वयं उज्वल है फिर भी सन्निधि के कारण लाल, पीला, काला अनेक रूपों में दिखाई देता है। यही दशा आत्मा की है। यह शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल होते हुए भी उपाधि वश वह अनेक रूपों में दिखाई देती है।”

प्रभु महावीर—“आत्मा का शरीर या अन्तःकरण के साथ जो घनिष्ठ संबंध है उसी को हम बन्ध कहते हैं। आत्मा अपने स्वरूप से उज्वल है, यह कथन बिल्कुल सत्य है पर जब तक यह कर्म-सम्पर्क है, शरीरधारी है तब तक कर्मबंध के कारण मलिन है। इस मलिन प्रकृति के कारण नये-नये कर्मों को बाँधती रहती है और उन कर्मों के अनुसार उच्च-नीच गतियों में भटकती है। यही संसार-भ्रमण है। सुख-दुःख की उत्पत्ति अन्तःकरण में होती है और अंतःकरण अनुभव करता है। यह मान्यता भी तर्कसंगत नहीं है। ज्ञान चेतन का धर्म है जड़ का नहीं। अन्तःकरण जड़ पदार्थ है। उसे सुख-दुःख का ज्ञान कभी नहीं हो सकता। अनुभव का होना तो निर्विवाद है। अतः सुख का अनुभव कर्म और वचन द्वारा प्रकट अन्तःकरण से भिन्न है। इसी तत्त्व को आत्मा कहते हैं।

जब तक आत्मा को संसार से मुक्त होने का साधन प्राप्त नहीं होता वह चार गतिरूपी संसार के कर्मवश भटकता रहता है। शरीर और कर्म की संतति अनादि है। दोनों में कार्य-कारण भाव है जैसे बीज और अंकुर। जैसे बीज में अंकुर होता है वैसे अंकुर से बीज पैदा होता आ रहा है। यह अनादिकाल का क्रम है।

जीव कर्म के द्वारा शरीर पैदा करता है। इसलिए वह शरीर का कर्त्ता है और शरीर द्वारा कर्म उत्पन्न होता है इसीलिए वह कर्म का कर्त्ता है। शरीर व कर्म की संतति अनादि है इसलिए जीव और कर्म की त्रिसंतति को भी अनादि मानना चाहिये। इस तरह जीव और कर्म का बंध अनादि है।

आपका यह मानना गलत है कि जो अनादि होता है वह अनन्त भी होता है। बीज और अंकुर की संतति अनादि होने पर भी आदि भी है। इस तरह अनादि कर्म सन्तति का भी अन्त हो सकता है। बीज और अंकुर में से यदि किसी का भी अपना कार्य उत्पन्न करने से पहले नाश हो जाए तो उसकी सन्तान का भी अंत हो जाता है। यह नियम मुर्गी व अंडे के लिए भी है।

सोने और मिट्टी का संयोग अनादि संतति कहा है तथापि उपाय विशेष से नष्ट हो जाता है। ठीक जीव और कर्म का अनादि संयोग भी सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चरित्र द्वारा नष्ट हो जाता है। जब शरीर व कर्म का जीव (आत्मा) नाश कर देता है तो सिद्धत्व को प्राप्त कर लेता है। कर्मों के कारण ही जन्म-मरण, उच्च-नीच आदि विभिन्नताएँ दिखाई देती हैं। क्योंकि स्वयं कर्म करता है, स्वयं भोगता है, स्वयं ही धर्म-आराधना द्वारा इस कैद से मुक्ति पा लेता

है। कर्मबंध का कारण कषाय है। राग-द्वेष कर्मबंध का बीज है। यह जड़ होते हुए भी चेतन को उसी प्रकार फल देता है जैसे शराब शराबखाने में पड़ी कुछ नहीं कहती। पर शरीर के अंदर जाकर विभिन्न असर दिखाती है। ऐसे कर्म जड़ पदार्थ चेतन को कर्मफल देने में सक्षम हैं। कर्म के बंधन सघन हैं। इन्हें काटना बहुत कठिन है। आत्मा जन्मांतर से इन्हीं बंधनों से बँधी चली आ रही है। बंध का स्वरूप आपको बता चुका हूँ। बंधन से छूटते ही आत्मा की मंजिल मोक्ष है जो शाश्वत सुख का स्थान है।

इस प्रकार मंडिकपुत्र भी बंध व मोक्ष संबंधी प्रश्नों का समाधान पाकर शिष्य-परिवार के साथ दीक्षित हो गये। मंडिकपुत्र की दीक्षा के पश्चात् मौर्यपुत्र अपने शिष्य-परिवार सहित प्रभु महावीर के समक्ष आये।

### मौर्यपुत्र के समाधान व प्रव्रज्या

मौर्यपुत्र के समाधान व प्रव्रज्या प्रभु महावीर ने उन्हें देखते ही पूछा—“हे आर्य ! तुम्हें देवों के अस्तित्व पर शंका है ?”

मौर्य—“हाँ देवानुप्रिय ! मुझे यही शंका है ‘देव’ नाम के मनुष्यों को हम देव कह सकते हैं क्योंकि जो सम्पन्न हैं, सुखी हैं वे सब देव ही हैं।

शास्त्र में मुझे कोई एकरूपता दिखाई नहीं दी।

श्रुति वाक्य है—“को जानाति मायोपमान् गीर्वाणाविन्दु।”

अर्थात् यम, वरुण कुवेरादी इत्यादि वाक्यों इन्द्र, यम, वरुणों, कुवेर देवों को स्वप्नोपम बताते हैं।”

दूसरी ओर “स एष यज्ञाषुधि यजमानोऽज्जमा स्वर्गलोकं गच्छति।”

इस श्रुति वाक्य से प्रकट होता है यजमान के यज्ञ की सहायता से स्वर्ग गति प्राप्त होती है।

प्रस्तुत वेद वाक्य से भी देवों की सिद्धि दिखाई देती है—

अपाय सोमभद्रता अभागमनज्योतिऽविदाव देवम्। किं नून मात्मा णवदराति, किम धूर्तिरभृमृतम् धर्मस्य।<sup>१८</sup>

यह वेद वाक्य भी देवलोक के अस्तित्व को सिद्ध करता है। प्रभु महावीर ने समाधान करते हुए फरमाया—“हे आर्य ! तुम मायोपमान् इत्यादि श्रुति वाक्य का अर्थ ठीक से नहीं जान सके। यही तुम्हारी शंका का कारण है। इस वाक्य से देवों का निषेध नहीं सिद्ध होता। देवों में अनित्यता पाई जाती है इस बात की ओर इशारा है। देव जो दीर्घायु होते हैं वह भी आखिर स्वप्न की तरह नाम शेष हो जाते हैं तो मनुष्य आदि कम आयु के पुरुषों का तो कहना ही क्या है ?

मौर्यपुत्र—“देवलोक नामक एक नई दुनियाँ की कल्पना करने के बदले यह क्यों न मान लिया जाये कि विशिष्ट स्थिति सम्पन्न मनुष्य ही देव है ?”

प्रभु महावीर—“मनुष्य वह गति है जहाँ जन्म पाये प्राणी सुख-दुःख मिश्रित जीवन व्यतीत करते हैं। मनुष्यलोक में हर व्यक्ति न तो पूर्ण सुखी और न ही पूर्ण दुःखी है। कर्म का दुःख सब भोगते हैं। शारीरिक व मानसिक दुःख अलग हैं। इस संसार में कोई भी अपनी इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाता। महानुभाव ! मानव संसार की इस अपूर्ण सुख-सामग्री को देखकर मानना होगा कि मनुष्यलोक केवल पुण्यफल भोगने का स्थान नहीं, यहाँ पाप भी भोगा जाता है।

इसलिए पुण्य फल भोगने का कोई दूसरा स्थान है जहाँ जीव दीर्घायु तक सुख भोगता है इसी स्थान का नाम देव लोक है। वहाँ उत्पन्न होकर हजारों, लाखों, करोड़ों, अरबों, खरबों वर्ष से भी अधिक समय पुण्य कर्म के फल भोगने वाले देव होते हैं।

हाँ, व्यवहार से उत्तम, भद्र प्रकृति के जीवों को हम देव कह सकते हैं। पर उत्पत्ति से तो वही देव कहलायेंगे जो स्वर्गलोक में पैदा होकर मनुष्य से अनेक गुणा शक्ति और विलक्षण दिव्य शक्ति को धारण करने वाले होंगे।”

मौर्यपुत्र—“यदि देव है तो वे अपनी इच्छानुसार धरती पर मनुष्यलोक में क्यों नहीं आते ?”

यह वह शंका थी जो आज भी संसार के नास्तिकों के प्रश्नों का आधार है। प्रभु महावीर ने इस प्रश्न का भी सहज, सरल, सुन्दर उत्तर दिया। प्रभु महावीर—“हे आर्य ! सामान्य रूप से देव इस देवलोक में इसलिये नहीं आते कि वे स्वर्ग के दिव्य पदार्थों में आसक्त रहते हैं। वहाँ के विषयभोगों में लित रहते हैं। इन भोगों में विचरण करते हुए उन्हें अवकाश ही नहीं प्राप्त होता कि वे धरती पर आवें।

मनुष्यलोक में इतनी दुर्गन्ध भरी है कि यह भी उनके धरती पर आने में रुकावट है।

वे धरती पर बिना प्रयोजन नहीं आते। फिर भी वे कभी-कभी इस लोक में आते हैं।

वे तीर्थकरों के पंच-कल्याणकों के समय आते हैं। पूर्वभव के राग द्वेष के कारण आते हैं। बिना प्रयोजन वे धरती पर नहीं आते।”

इस प्रकार प्रभु महावीर की बातें सुनकर मौर्यपुत्र को देवताओं के अस्तित्व पर पूर्ण विश्वास हो गया।

वह भी प्रभु महावीर के समक्ष आये। दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की- “हे देवानुप्रिय ! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश दीजिए।” प्रभु महावीर ने उनकी इच्छा पूर्ण की। वह भी प्रभु महावीर के पास अपने शिष्यों सहित प्रव्रजित हो गये।

### अकम्पित के संशय व प्रव्रज्या

इसके बाद इसी यज्ञ में सम्मिलित अकम्पित नामक विद्वान् अपने शिष्य-परिवार सहित प्रभु महावीर के समवसरण में पहुँचा। प्रभु महावीर ने उसे देखते ही कहा- आर्य अकम्पित ! तुम्हारे मन में नरक के अस्तित्व के बारे में संशय है।”

अकम्पित—“जी हाँ ! यद्यपि दार्शनिक लोग ‘नरक’ नामक एक अगम्य स्थान की कल्पना करते हैं पर मेरी समझ में तो यह कोरी कल्पना मात्र है जिसे विद्वान् लोग नरक कहते हैं। मेरे विचार से उसका तात्पर्य मनुष्य जीवन की एक निकृष्ट दशा से है।”

प्रभु महावीर—“तुम्हारे इस प्रकार मानने से कर्म-सिद्धांत चल नहीं सकता। मनुष्य कितना भी दुःखी क्यों न हो, फिर भी उसमें सुख का अंश रहता ही है। जो जीव जीवन-पर्यन्त हिंसा, असत्य, चोरी और परिग्रह में लीन रहते हैं। हजारों जीवों के प्राणघातक हैं। दुनियाँ भर की सम्पत्ति इकट्ठी करने में अपना जीवन समझते हैं। इस प्रकार के जीवन को पूर्ण कर अंत समय मृत्यु को प्राप्त करते हैं। उनके लिए क्या निकृष्ट मनुष्यगति अथवा कीट-पतंग आदि के जन्म ही काफी होंगे ? ऐसे पापियों का छुटकारा मनुष्य अथवा तिर्यचगति से नहीं हो सकता। उनके कर्मफल भोगने का कोई स्थान तो चाहिये, जहाँ सुख का अंश भी न हो। जहाँ आयु करोड़ों, अरबों वर्ष हो। इस दुःखात्मक स्थान को मैं नरक कहता हूँ।”

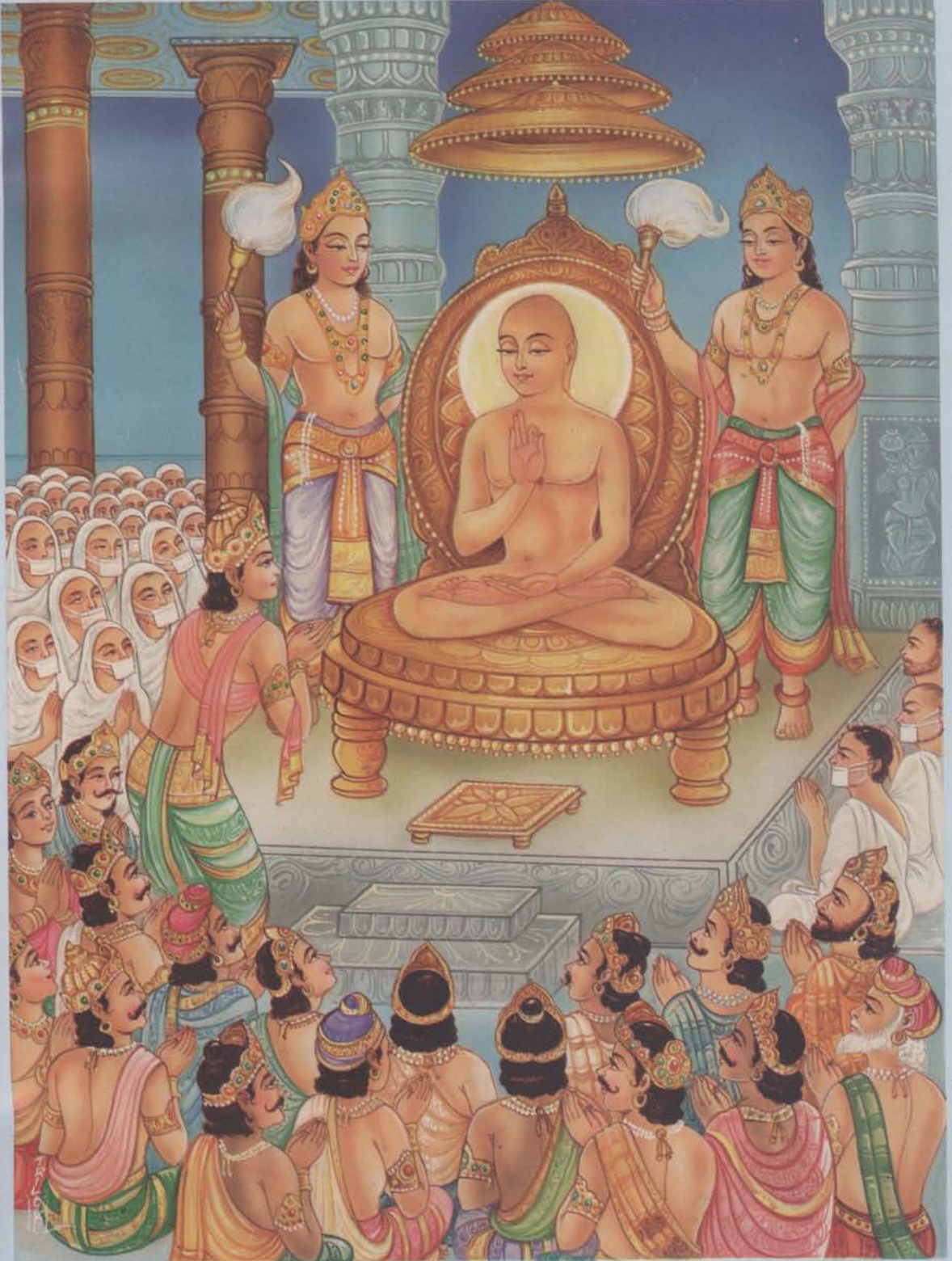
अकम्पित—“लेकिन “न ह्ये प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति।”

इस बात से सिद्ध होता है कि मरकर नरक में नारक नहीं होते फिर नरक की कल्पना बेकार है।”

प्रभु महावीर—“शास्त्र में नरक का प्रतिपादन भी किया गया है—“नारको वै एष जायते यः शुद्रान्ममश्नाति।”

इस वेद वाक्य में ये शूद्र का अन्न खाने वाले को नारक होना लिखा है।





पावापुरी में प्रभु की अन्तिम देशना का दृश्य।



प्रभु की निर्वाण यात्रा का एक दृश्य।

अकम्पित—“फिर इन दोनों बातों में हम कैसे समन्वय कर सकते हैं?”

प्रभु महावीर—“महानुभाव ! इन दोनों बातों में विरोधाभास नहीं है, तुम्हारे समझने में विरोधाभास है। प्रथम शास्त्र वाक्य नरक गति से निकलने वाले जीवों को लक्ष्य करके कहा गया है कि नारक मरकर नरक में जन्म नहीं लेता। इसी भाव को आगे रखकर प्रथम वाक्य में नरक में नारकी की उत्पत्ति का निषेध है अन्य जीवों की उत्पत्ति का नहीं।”

इस प्रकार अकम्पित के नरक संबंधी प्रश्न का भगवान महावीर ने बड़ी सरलता, सहजता व सुन्दरता से उत्तर दिया। जैसे सुख के भोगने का उत्कृष्ट स्थान स्वर्ग है वैसे दुःख के भोगने का उत्कृष्ट स्थान नरक है। पशु व मानव-जीवन के सुख-दुःख दोनों के सुख-दुःख के सामने तुच्छ है।

प्रभु महावीर से समाधान पाकर अकम्पित व उसके विद्यार्थी शिष्यों ने प्रभु महावीर से निर्ग्रन्थ प्रवचन सुने और फिर श्रद्धा से प्रव्रज्या स्वीकार की।

6

अकम्पित के मुनि बन जाने के बाद उसी यज्ञ के एक और पुरोहित अचलभ्राता अपने शिष्य-परिवार के साथ प्रभु महावीर के सामने आये।

### अचलभ्राता का संशय व प्रव्रज्या ग्रहण

अचलभ्राता को देखते ही प्रभु महावीर ने अचलभ्राता के मन की बात कह डाली—“हे पंडित ! क्या तुम्हें पुण्य-पाप के अस्तित्व के बारे में संशय है?”

अचलभ्राता—“जी हाँ ! मुझे यही संशय है क्योंकि एक ओर तो हमारे शास्त्र में—

“पुरुष एवेदं कित्त सर्व यद् भूतं यन्न भाव्यम ! उतामृत त्वस्पेशवती यदेन्नं नातिरोहति।”

इत्यादि “मुक्तिवाद” का प्रतिपादन किया गया है। दूसरी ओर “पुण्य : पुण्येन पाप पापेन कर्मणा।”

आदि वेद वाक्य पुण्य-पाप का अस्तित्व सिद्ध करते हैं।

इस विरोधाभास में कठिन हो जाता कि पुण्य-पाप कोई वास्तविक यदार्थ है या कल्पना ?”

प्रभु महावीर—“हे महानुभाव ! “पुरुष एवेदं” इत्यादि वेद वाक्य अर्धवाद मात्र हैं। इनमें पुरुष का महत्त्व स्थापित होता है न कि अन्य तत्त्वों का अभाव सिद्ध होता है।

“पुण्यः पुण्येन” इत्यादि वाक्य भी कोई औपचारिक वचन नहीं, सैद्धान्तिक वचन है। पूर्वजन्म और कर्मतत्त्व का अस्तित्व इसमें गर्भित है जो तर्क सम्मत और व्यावहारिक बात है। बाकी पुण्य-पाप के बारे में निम्न विकल्प पाये जाते हैं—

(१) केवल पुण्य है पाप नहीं।

(२) केवल पाप ही है पुण्य नहीं।

(३) पुण्य और पाप एक ही है भिन्न नहीं।

(४) पुण्य और पाप भिन्न-भिन्न हैं।

मैं इस संदर्भ में इतना ही कहता हूँ—

(१) केवल पुण्य है पाप का सर्वथा अभाव है। पुण्य की ज्यों-ज्यों अभिवृद्धि होती है वैसे-वैसे सुख की वृद्धि होती है। पुण्य की ज्यों-ज्यों हानि होती है त्यों-त्यों सुख हरता है। पुण्य का सर्वथा क्षय होने पर मोक्ष होता है।

(२) इसी प्रकार पाप को अकेला मानने से जब पाप है दुःख में वृद्धि होती है पर जब पाप छँटता है तब पुण्य के प्रभाव से सुख अनुभव किया जा सकता है पाप का पूर्ण क्षय मोक्ष है।<sup>१९</sup>

(३) पुण्य और पाप अलग-अलग न होकर एक साधारण वस्तु के भेद हैं। वस्तु में पुण्य की मात्रा अधिक हो तो पुण्य कहलाता है और पाप की मात्रा बढ़ने से पाप कहलाता है।

(४) पुण्य और पाप दोनों स्वतंत्र हैं। सुख का कारण पुण्य और दुःख का कारण पाप है।

(५) इस संसार में पुण्य और पाप-जैसी कोई वस्तु नहीं है, समस्त भव प्रपंच स्वभाव में होता है।

ये जो पाँच विकल्प संसार में पाये जाते हैं उनमें से चतुर्थ विकल्प सही है। पुण्य-पाप दोनों स्वतंत्र हैं। सुख-दुःख का कारण हैं। स्वभाववाद आदि युक्ति से बाधित है। दुःख की प्रकृष्टता उसके अनुरूप कर्म के प्रकर्ष से प्रकट होती है जैसे सुख के प्रकृष्ट अनुभव का आधार पुण्य प्रकर्ष है वैसे ही दुःख के प्रकृष्ट अनुभव का आधार पाप प्रकर्ष है। इसलिए दुःखानुभव का कारण पुण्य का उत्कर्ष नहीं अपितु पाप का प्रकर्ष है।

इस प्रकार अचलभ्राता का पुण्य-पाप सम्बन्धी सारा संशय जाता रहा। वह भी अपने ३०० विद्यार्थी शिष्यों के साथ तीर्थंकर प्रभु महावीर की शरण में आया। निर्गृह प्रवचन सुना। प्रभु महावीर से दीक्षा की प्रार्थना की। प्रभु महावीर के सान्निध्य में वह भी अन्य मुनियों के साथ बैठ गया।

अब दो पुरोहित ही रह गये थे-मेतार्य व प्रभास। दोनों अपने शिष्यों के साथ प्रभु महावीर के पास आए। सर्वप्रथम मेतार्य स्वामी पधारे।

### मेतार्य का संशय निवारण व प्रव्रज्या

अचलभ्राता की दीक्षा के बाद मेतार्य भी अपने ३०० शिष्य-परिवार के साथ प्रभु महावीर के सामने आये। प्रभु महावीर ने उन्हें देखते ही कहा-“महानुभाव ! तुम्हारे मन में परलोक के प्रति संशय है। इसका कारण 'विज्ञानघन' आदि श्रुति वाक्य है। यदि भूत परिणाम ही चैतन्य हो तो उनके विनाश के साथ ही उसका विनाश निश्चित है।

मेतार्य ! तुम्हारा यह मानना है कि मद्यांग और मद की तरह भूत और चैतन्य में किसी प्रकार का भेद नहीं है इसलिए परलोक मानना जरूरी नहीं है। जब भूत संयोग के नाश से चेतना का नाश हो जाता है तो परलोक को मानने की जरूरत नहीं, इस तरह सर्वव्यापी एक ही आत्मा का अस्तित्व मानने पर भी परलोक की सिद्धि नहीं हो सकती।

मैं तुम्हें पहले बता चुका हूँ भूत, इन्द्रिय आदि से पृथक् स्वरूप आत्मा का धर्म चैतन्य है। इस बात की सिद्धि मैं पहले कर चुका हूँ। इसलिए आत्मा को भी स्वतंत्र द्रव्य मानना चाहिये। इस तरह अनेक आत्मा का अस्तित्व भी पहले सिद्ध किया जा चुका है। इसलिए लोकालोक से अलग देव आदि परलोक का सद्भाव भी मौर्यपुत्र और अकम्पित की चर्चा में बता चुका हूँ।<sup>२३</sup> इसलिए परलोक का सद्भाव तर्कसंगत है। आत्मा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, स्वभावयुक्त है। इसलिए मृत्यु के बाद उसका सद्भाव सिद्ध है।”

संशय दूर होते ही मेतार्य भी अपने शिष्य परिवार सहित दीक्षित हो गया।

अब अन्तिम पुरोहित प्रभास अपने विद्यार्थी शिष्यों के साथ यज्ञशाला से चला था। उसे प्रभु महावीर पर श्रद्धा होने लगी थी। अतः वह भी प्रभु महावीर के समवसरण में अपने ३०० शिष्यों सहित पहुँचा।

### प्रभास का संशय निवारण व प्रव्रज्या

आर्य प्रभास को देखते ही प्रभु महावीर ने उसके मन की बात कह डाली-“प्रभास ! तुम्हारे मन में मोक्ष के प्रति संशय है ?”

प्रभास—“हाँ महाराज ! मुझे यही संदेह है। क्योंकि मोक्ष का अर्थ कर्म से मुक्त होना है तो यह असंभव है; क्योंकि जीव और कर्म का संबंध अनादि है उसे अनंत होना चाहिये। जो अनादि है वह अनन्त भी है, जैसे-आत्मा। वेद में भी मोक्ष की कोई चर्चा नहीं है। शास्त्र में तो “जरामर्य व यदग्निहोत्रेय”<sup>३४</sup> इत्यादि वचनों से जीवन पर्यन्त के लिए अग्निहोत्र ही विधेय कर्म लिखा है। यदि वास्तव में मोक्ष होता तो उसकी सिद्धि का कोई अनुसरण भी बताया जाता।”

प्रभु महावीर—“प्रभास ! तुम्हारा यह कहना सही नहीं कि अनादि वस्तु अनंत होनी चाहिये। यह कोई शाश्वत नियम नहीं है। स्वर्ण खनिज पदार्थ अनादिकाल से मृत्तिका से संबंध होते हुए भी अग्नि के संयोग में निर्मल हो जाते हैं। इस प्रकार जीव भी अनादिकाल से कर्मफल से सम्बन्ध होते हुए; ज्ञान, दर्शन आदि उपकरणों की सहायता से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

यह हो सकता है कि कर्मकाण्ड प्रधान वैदिक ऋचाओं में मोक्ष व उसके साधन का उल्लेख न हो परन्तु वेद के ही अन्तिम भाग, उपनिषदों में तो इसके स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं।

“द्वे ब्राह्मणी वेदितव्ये परमपदं, तत्र परं, सत्यं ज्ञान अनन्तरं ब्रह्म।”<sup>३५</sup> इत्यादि वेद वाक्यों द्वारा वैदिक ऋषियों ने वहाँ अथवा अनन्त ब्रह्म के नाम से जिस तत्त्व का निर्देश किया है उसी को हम निर्वाण अथवा मुक्तावस्था कहते हैं। यही सिद्ध अवस्था है। जीवन पाने का सार है। आत्मा इस रूप में परमात्मा बन जाती है। जहाँ बंधन टूटते हैं वहाँ जीव ब्रह्मज्ञानी बन जाता है। केवलज्ञानी केवलज्ञान के बल से ४ कर्मों को तोड़ता है। ४ कर्म उसके मरण के समय छूटते हैं। शरीर का जन्म-मरण समाप्त हो जाता है।”

इस प्रकार प्रभास को मोक्ष तत्त्व के प्रति श्रद्धा हो गई। उसने समाधान पाते ही प्रभु महावीर से प्रव्रज्या स्वीकार कर ली।

इस प्रकार मध्यम पावा की इस धर्मसभा में एक ही दिन ४,४११ ब्राह्मणों ने निर्ग्रथ प्रव्रज्या को स्वीकार कर देवाधिदेव प्रभु महावीर के द्वारा प्रतिपादित श्रमण धर्म को स्वीकार किया।

### दिगम्बर जैन परम्परा अनुसार इन्द्रभूति की दीक्षा

दिगम्बर जैन शास्त्रों में गणधर इन्द्रभूति का वैसा प्रकरण नहीं मिलता, जैसा श्वेताम्बरों में मिलता है। वहाँ एक दूसरी तरह की घटना का वर्णन मिलता है।

ऋजुबालुका नदी के तट पर केवलज्ञान प्राप्त कर प्रभु महावीर ६६ दिन मौन रहे। उनके सात प्रतिहार्य तो प्रकट हो गये पर आठवाँ दिव्य ध्वनि वाला प्रतिहार्य प्रकट नहीं हो रहा था। प्रभु महावीर घूमते-घूमते केवलज्ञानावस्था में राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर पधारे। उधर इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से जाना कि प्रभु महावीर की दिव्य ध्वनि क्यों प्रकट नहीं हो रही है? उसका कारण यह था कि अभी तक जिनधर्म सुनने वाला कोई सुपात्र पैदा नहीं हुआ था।

इन्द्र ने वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया और इन्द्रभूति की पाठशाला में आ गया। उसने इन्द्रभूति से पूछा—“ब्राह्मण ! मेरे गुरु ने मुझे एक गाथा सिखाई है उसका मैं अर्थ समझ नहीं पा रहा। आपकी प्रतिष्ठा सुनकर आया हूँ। कृपया मुझे इस गाथा का अर्थ बता दें।”

इन्द्रभूति गौतम ने मायाधारी इन्द्र से कहा—“मैं आपके हर प्रश्न का उत्तर दे सकता हूँ, अगर आप मेरे शिष्य बन जायें।”

इन्द्र तो चाहता यही था। वह किसी न किसी बहाने इन्द्रभूति को प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षित कराना चाहता था।

इन्द्रभूति ज्ञान के अहंकार में डूबा ब्राह्मण था।

इन्द्र ने कहा-“शिष्य ! बोलो क्या गाथा है ? आपको अगर मैंने अर्थ बता दिया, तो क्या मेरे शिष्य बनोगे ?”

मायाधारी इन्द्र ने कहा-“हाँ ! अवश्य बनूँगा।”

मायाधारी इन्द्र के कहा-“मेरे गुरु अभी मौन में हैं इसलिये आपको कष्ट दे रहा हूँ। गाथा इस प्रकार है-

“पंचेव अस्थिकाया, छज्जीवणकाया महव्वया पंच।  
अट्टम पवयणमाला सहेउओ वंध मोक्खो यं।”

इन्द्रभूति इस गाथा को सुनते ही असमंजस में पड़ गये। ये पाँच अस्तिकाय, षट्जीविकाय, महाव्रत, आठ प्रवचन माता कौन-कौन-सी हैं ?”

इन्द्रभूति ने चालाकी से काम लेते हुये कहा-“तुम मुझे अपने गुरु के पास ले चलो। मैं उन्हीं के सामने तुम्हें इस गाथा का अर्थ समझाऊँगा।”

इन्द्र तो यही चाहता था कि किसी प्रकार से यह अहंकारी ब्राह्मण अपने ५०० शिष्यों सहित प्रभु महावीर के समवसरण में पहुँचे। यहाँ समवसरण के दिव्य प्रभाव से उसके मन की शंका समाप्त हो गई। वह प्रभु महावीर का शिष्य बन गया। उसके विद्यार्थी शिष्यों ने भी उसका अनुकरण किया। दीक्षा लेते ही उसे चार ज्ञान व आठ ऋद्धियाँ प्राप्त हो गईं।

दिगम्बर परम्परा में ग्यारह गणधरों का प्रभु महावीर का शिष्य बनने के पीछे इन्द्र की प्रेरणा है। जबकि श्वेताम्बर जैन परम्परा में पावापुरी के विशालतम यज्ञ में यह पुरोहित वर्ग इकट्ठा होता है। वहाँ महासेन चैत्य में ये ब्राह्मण दीक्षा लेते हैं।

प्रभु महावीर ने ग्यारह गणधरों को नौ गणों का प्रमुख बनाया। प्रभु के साधु संघरूप के गण को धारण करने वाले गणधर कहलाये। इन सबका निर्वाण राज्यगृही में हुआ। ग्यारह गणधरों में गणधर इन्द्रभूति व गणधर सुधर्मा को छोड़ सब प्रभु महावीर के जीवनकाल में मोक्ष पधार गये।

इधर प्रभु महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उधर देव-देवियों का आगमन धरती पर होने लगा। कुछ मित्र देवों ने चन्दना को प्रभु महावीर के केवलज्ञान की सूचना दी।

वह भी राज्य परिवार के साथ पावापुरी पहुँच गई। तो इस तरह प्रभु महावीर ने साधु-साध्वी, श्रावक व श्राविकारूपी चतुर्मुखी तीर्थ की स्थापना की। चन्दनबाला को साध्वियों की प्रमुखा बनाया गया। इस प्रकार एक दासी रूप में बिकी नारी को धर्म प्रमुख बनने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रभु महावीर के प्रमुख श्रावकों में आनन्द प्रमुख थे। श्राविकाओं में रेवती, सुलसा प्रमुख श्राविकायें थीं।

● ●

### सन्दर्भ स्थल सूची

१. महावीर चरियं ७/भा. ४४, पृ. २५१
२. चउपत्र महापुरिस चरियं, पृ. २९९-३०३
३. यहाँ आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि ने विशेषावश्यक भाष्य को गणधरवाद का आधार बनाया है। पर मुनि कल्याणविजय जी ने आवश्यक निर्युक्ति को आधार बनाया है। हम उसी आधार पर इस चर्चा का उल्लेख कर रहे हैं।

४. यह वेद वाक्य आवश्यक टीका से लिया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में यह वाक्य उपलब्ध होता है  
 “विज्ञानघन ऐवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय नान्देवातु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीववे क्रीवीति होवाच।” —याज्ञवल्क्य २२-५३५
५. ऐसा मिलता-जुलता वाक्य बृहदारण्यक १४-४-५५ में मिलता नहीं था। एक विज्ञानमय पुरुष। प्रस्तुत संदर्भ आवश्यक टीका से लिया गया है।
६. विशेषावश्यक भाष्य १६१०
७. विशेषावश्यक भाष्य १६१४
८. विशेषावश्यक भाष्य १६५४
९. विशेषावश्यक भाष्य १६५९
१०. विशेषावश्यक भाष्य १६६०
११. विशेषावश्यक भाष्य १६७१
१२. विशेषावश्यक भाष्य १६५०
१३. विशेषावश्यक भाष्य १६५२
१४. विशेषावश्यक भाष्य १६५३
१५. विशेषावश्यक भाष्य १६५४
१६. विशेषावश्यक भाष्य १७५०-१७५८
१७. विशेषावश्यक भाष्य १७७०-१७७५
१८. इस श्रुति वाक्य का भाव सांख्यकारिका पृ. ६२ के भाव से मिलता-जुलता है -  
 “तस्मान्न बध्यते नाभि मुच्यते नाभि संसरति क्वचित् संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति।”
१९. यह वाक्य ऋग्वेद संहिता ८/४८/३ तथा अथर्ववेद उपनिषद् में मिलता है।
२०. विशेषावश्यक भाष्य १९०५-१९१०
२१. विशेषावश्यक भाष्य १९४९-१९५८
२२. यह वाक्य आवश्यकनिर्गुक्ति से लिया गया है।
२३. आवश्यक टीका में उक्त वाक्य है। ‘तैत्तिरीयोपनिषद्’ १८२ में सत्यं ज्ञान मनंतब्रह्मा प्राप्त होता है।

## तीर्थ स्थापना

जब कोई भव्य जीव तीर्थकर बनता है तब उसको अष्ट प्रातिहार्य, ३४ अतिशय, देवों द्वारा रचित समवसरण, ६४ इन्द्रों की सेवा हर समय प्राप्त होती है। इस प्रकार उस दिन वैशाख शुक्ल दशमी का दिन था। मध्यम पावा नगरी के महासेन उद्यान में साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना की।

४,४११ ब्राह्मण मुनि बन चुके थे। आर्या चन्दनबाला तथा सैकड़ों महिलाएँ दीक्षित होकर साध्वी संघ में मिलीं। हजारों श्रावक व श्राविकाओं ने प्रभु महावीर की वाणी को सुनकर आत्म-कल्याण का मार्ग चुना।

इस शिष्य-परिवार के साथ प्रभु महावीर राज्यगृह में पधारें। वहाँ राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनके अनेक रानियाँ व राजकुमार थे। सबसे छोटी रानी चेलना वैशाली गणराज्य के गणाध्यक्ष चेटक की पुत्री थी। वह श्रमणोपासिका थी। राजा श्रेणिक उस समय तक प्रभु महावीर का भक्त नहीं बना था। राजकुमारों में प्रमुख महावीर के भक्त राजकुमार अभय थे।

राजगृह का गुणशील चैत्य श्रमणों के आवास के लिए बहुत ही अनुकूल स्थान था। प्रभु महावीर के अधिक वर्षावास यहीं हुए। हजारों जीवों को मोक्ष का संदेश यहाँ से मिला। प्रभु महावीर के ११ गणधर भी यहाँ से मोक्ष पधारें। इसी स्थान पर श्वेताम्बर परम्परा अनुसार प्रभु महावीर ने देवों द्वारा निर्मित समवसरण में प्रथम उपदेश दिया।

भगवान महावीर ने फरमाया—“अनादि अनंत संसार में भटकते हुए जीवों को मनुष्यत्व, धर्म श्रवण, सत्य श्रद्धा तथा संयम में पुरुषार्थ करना परम दुर्लभ है। मानव-भव दुर्लभ है। आत्मा की मुक्ति मनुष्य-भव में ही होती है अन्य योनियों में नहीं। देवभव पुण्य फल भोगने का स्थान है। नरक पाप का फल भोगने का स्थान है। तिर्यच जीव को मोक्ष असम्भव है। मनुष्य को छोड़ तीनों गतियों के जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते।

मोक्ष के लिए देश, काल, जाति, रंग, नस्ल, लिंग का भेद करना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व ही असली पाप है, अज्ञानता का दूसरा नाम है। मिथ्यात्व को पहचानकर उसे छोड़ो, सम्यक्त्व को ग्रहण करो।

अगर मनुष्य-जन्म कभी शुभ कर्मोदय से मिल भी जाए, तो सच्चा धर्म सुनना परम दुर्लभ है। यह संसार अनार्य, पापी, दुराचारी, अज्ञानियों से भरा पड़ा है। ऐसे में धर्म का उपदेश सुनना बहुत दुर्लभ है। अनार्य स्वयं को आर्य बताते हैं। दुर्जन सज्जन बने फिरते हैं। अनार्य तो धर्म सुन ही नहीं सकते, सभी आर्य भी धर्म सुनने के योग्य नहीं होते। इसका कारण है—प्रमाद, लोभ, भय, अहंकार, अज्ञान और मोह।

अन्तराय कर्म क्षीण हों, दर्शनावरणीय व ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हों तो जीव धर्म सुन सकता है। धर्म सुन भी ले तो सत्य धर्म पर श्रद्धा होना बहुत कठिन है। मिथ्या अहंकार तथा राग-द्वेष मनुष्य की श्रद्धा समाप्त करने में प्रमुख सहायक है। दूसरे मतों के बहकावे में आकर, चमत्कारों को देखकर—सुनकर अपने सत्य धर्म को छोड़कर जीव अज्ञानता में ज्ञानीपन मानता है।

जिनका भव-भ्रमण कम रह गया है। अंतरंग तेज खुल गये हैं और आत्मिक सुख-प्राप्ति का समय मर्यादित हो गया है, उन्हीं योग्य प्राणियों के हृदय पर सत्य धर्म के प्रति श्रद्धा उमड़ती है। इतना कुछ प्राप्त हो जाने पर उस धर्म पर चलना परम दुर्लभ है। कई व्यक्ति सत्य को जानते हैं उस पर श्रद्धा भी करते हैं। उस मार्ग पर चलना उनके वश में नहीं होता। वे संयम मार्ग पर बढ़ने का प्रयत्न नहीं करते।

प्रभु महावीर ने अपने प्रवचन में साधु धर्म व श्रावक धर्म का वर्णन किया। हम भी इसे संक्षेप में दे रहे हैं—



## साधु धर्म

प्रभु महावीर ने कहा—“जब तक तुम संयममार्ग की ओर अग्रसर न होंगे तब तक कर्मक्षय कर मुक्ति के निकट नहीं पहुँचोगे तथा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कष्टों से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकते।

संयम-पथ पर चलने से पहले सर्वप्रथम वीतराग अरिहंत सिद्ध पर श्रद्धा, निर्ग्रथ गुरु की उपासना व उनके द्वारा बताये धर्म पर चलना जरूरी है।

फिर ही पाँच महाव्रतों की साधना संभव है। इन पाँच महाव्रतों का मन, वचन, काया के तीन योग और तीन करण से पालन करना ही साधु धर्म है। ये पाँच महाव्रत इस प्रकार हैं—

(१) प्राणातिपात विरमण—सूक्ष्म-स्थूल सभी प्रकार की हिंसा न स्वयं करना, न कराना, न कराने का अनुमोदन करना।

(२) मृषावाद विरमण—मन, वचन, काय से असत्य भाषण करने, कराने व अनुमोदन का त्याग।

(३) अदत्तादान विरमण—मन, वचन, काया से पराई वस्तु ग्रहण करने, कराने व अनुमोदन का त्याग।

(४) मैथुन विरमण—मन, वचन, काया से सर्व प्रकार के मैथुन सेवन करने, कराने व अनुमोदन का त्याग।

(५) परिग्रह विरमण—मन, वचन, काया से धन-धान्यादि और राग-द्वेषादि आभ्यन्तरिक परिग्रह ग्रहण करने, कराने और अनुमोदन का त्याग।

इन महाव्रतों का पालन करने वाला श्रमण सात-आठ भवों में मोक्षरूपी लक्ष्मी का स्वामी बनता है। भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है। साधु जीवन में पाँच महाव्रतों के अतिरिक्त तीन गुणियों, तथा पाँच समितियों का पालन जरूरी है।

## गृहस्थ धर्म

सभी लोग संयममार्ग छोड़कर साधु बन जायें, यह असंभव है। जो लोग साधु नहीं बन सकते, जो आत्मा से सर्वविरति अंगीकार नहीं कर सकते, वह देशविरति धर्म द्वारा अपनी आत्मा की विशुद्धि कर सकते हैं। विरत संयमी ‘श्राद्ध’ अथवा ‘श्रमणोपासक’ कहलाता है। इसे आंशिक रूप से देशविरति धर्म का पालन करना होता है। इस मार्ग पर घर में रहकर चला जा सकता है। सामाजिक व्यवहार चलाया जा सकता है। यह आदर्श आचार-संहिता का आधार है। इसका वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं—

(१) स्थूल प्राणातिपात विरमण—त्रस (चलते-फिरते) निरपराधी जीवों की हिंसा नहीं करना।

(२) स्थूल मृषावाद विरमण—मोटे झूठ का त्याग।

(३) स्थूल अदत्तादान विरमण—जिस वस्तु के ग्रहण करने से व्यक्ति चोर कहलाये, ऐसी मोटी चोरी का त्याग।

(४) स्व-स्त्री संतोष, पर-स्त्री विरमण—पर-स्त्री गमन का त्याग ग्रहण कर स्व-स्त्री में ब्रह्मचर्य की मर्यादा रखना।

(५) परिग्रह परिमाण—चल व अचल सम्पत्ति सभी प्रकार की सीमा निश्चित करना।

(६) दिक् परिमाण—सभी दिशाओं में आने-जाने की सीमा का निर्धारण करना।

(७) भोगोपभोग परिमाण—खान-पान, मौज, शौक व औद्योगिक प्रवृत्तियों की सीमा निर्धारित करना।

(८) अनर्थदण्ड विरमण—निरर्थक प्रवृत्तियों का त्याग।

(९) सामयिक—प्रतिदिन कम से कम मुहूर्त पर्यन्त सांसारिक प्रवृत्तियों को छोड़कर समभाव निवृत्ति मार्ग में स्थिर होना।

(१०) देशावकाशिक—स्वीकृत मर्यादा को कम करना।

(११) पौषधोपवास—अष्टमी, चतुर्दशी आदि दिनों में सांसारिक प्रवृत्तियों को छोड़कर आठ प्रहर धार्मिक जीवन बिताना।

(१२) अतिथि संविभाग—अतिथि को आहार देना। उसका हर प्रकार से ध्यान रखना। अतिथि में महाव्रती व अणुव्रती प्रमुख हैं।

भगवान प्रभु महावीर ने इन द्वादश व्रतों का निरूपण किया। फिर जीव-अजीव आदि नवतरुच, षट्द्रव्य व लेश्या का निरूपण किया। उनका उपदेश देश, काल, जाति, रंग, नस्ल की सीमा से परे समता का उपदेश था।

जो मनुष्य साधु बनने में असमर्थ है वह अपनी शारीरिक व्यवस्थानुसार इन नियमों पर चलते हुए आत्म-शुद्धि कर सकता है और मोक्ष के करीब पहुँच सकता है।

भगवान महावीर ने लोगों की आम भाषा में उपदेश दिया था। भगवान महावीर की देशना का बहुत प्रभाव पड़ा। बहुत से लोगों ने गृहस्थ व साधु धर्म अंगीकार किया, जिनका वर्णन हम तीर्थंकर जीवन में करेंगे।

### खण्ड आकलन

इस खण्ड का आधार हमने गणी कल्याणविजय जी कृत “श्रमण भगवान महावीर” को बनाया है। कथाएँ आगमों में उपलब्ध हैं। उन्होंने भगवान महावीर के ३० साल के विवरण को चातुर्मास के हिसाब से भौगोलिक स्थिति के अनुसार तय किया है।

उनके इस आकलन को भारतीय व विदेशी सभी लेखकों ने स्वीकार किया है। किसी आगम या ग्रंथ में इन ३० वर्षों का वर्णन व्यवस्थित रूप से नहीं मिलता।

मुनि कल्याणविजय जी का परिश्रम बहुत ही सार्थक है। उनके इस अनुसंधान को काफी हद तक दिगम्बरों ने भी स्वीकार किया है।



## खण्ड ५

(३) तीर्थकर महावीर द्वारा धर्म प्रचार



# तीर्थकर महावीर द्वारा धर्म-प्रचार

## तीर्थकर जीवन

प्रभु महावीर की साधना साढ़े बारह वर्ष चली। उसके बाद केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त हो गया। वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हो गये। उन्होंने ४२ वर्ष की आयु में चतुर्विध संघ की स्थापना की।

पिछले अध्ययनों में हम वर्णन कर चुके हैं कि श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार प्रभु महावीर का पहला उपदेश पावापुरी नगरी के महासेन उद्यान में हुआ। दिगम्बर जैन परम्परा प्रथम समवसरण का स्थान राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर मानती है।

प्रभु महावीर ने अपने समवसरण में चन्दनबाला को दीक्षित कर क्रान्तिकारी कदम उठाया। इस समय के जितने भी धर्मनायक हुए हैं उनमें से किसी ने स्त्री जाति को सामाजिक व धार्मिक बराबरी का स्थान नहीं दिया।

स्वयं महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्य आनन्द के कहने से स्त्रियों को दीक्षित किया था। महात्मा बुद्ध मन से स्त्री जाति को साध्वी बनाने के विरोधी थे। शिष्य आनन्द ने अपने गुरु महात्मा बुद्ध के साथ लम्बे समय तक तर्क-वितर्क के बाद स्त्रियों को बुद्ध-संघ में स्थान दिलाया था।

इसके विपरीत प्रभु महावीर को ऐसी कोई समस्या नहीं आई। इसका कारण यह था कि जैनधर्म परम्परा में शुरू से ही प्रथम तीर्थकर साध्वी व श्राविका को संघ में प्रमुख स्थान देते रहे। इसी परम्परा के प्रभु महावीर अन्तिम तीर्थकर थे। इस परम्परा के अनुसार प्रभु महावीर ने जगत् के जीवों के कल्याणार्थ मोक्ष का उपदेश दिया। प्रभु महावीर अपने शिष्य शिष्याओं के साथ विहार करने लगे। पावापुरी से प्रभु महावीर सीधे राजगृही पधारे।

## राजा श्रेणिक और राजगृही

मगध की राजधानी राजगृही थी जो पाँच पहाड़ों के मध्य में स्थित है। वहाँ के महाराजा श्रेणिक प्रभु महावीर के परम भक्तों में एक था। वह कुशाग्रपुर नगर के राजा प्रसेनजित का राजकुमार था। राजा प्रसेनजित के ५०० राजकुमार थे। वह प्रभु पार्श्वनाथ की परम्परा का श्रमणोपासक था। उसके रणवास में बहुत-सी रानियों का परिवार था, पर जीवन के अन्तिम क्षणों में उसने एक भील यमदण्ड की पुत्री तिलकसुन्दरी के मोह-जाल में फँसकर शादी की। तिलकसुन्दरी के पिता ने शादी से पहले यह शर्त रखी कि मेरी पुत्री से उत्पन्न पुत्र ही मगध का भावी शासक होगा।

इसी शर्त को पूरा करने के लिए उसे श्रेणिक-जैसे योग्य पुत्र को वन भेजना पड़ा। जहाँ वेणु तट के किनारे कुछ समय वह बौद्धों के आश्रम में रहा। निकट संपर्क के कारण वह बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया। फिर उसने सुभद्र वणिक की पुत्री नन्दा से विवाह किया। उसके यहाँ अभयकुमार-जैसा कुशाग्र बुद्धि वाला राजकुमार पैदा हुआ जो मगध का प्रधान मंत्री बना। प्रसेनजित ने अपना वचन निभाने के लिये उस भील राजकुमार को मगध का राजा बना दिया। पर इसे राजा बनाने में प्रसेनजित को प्रसन्नता नहीं हुई।

राजा बनते ही तिलकसुन्दरी के पुत्र ने प्रजा पर अत्याचार की परम्परा शुरू कर दी। आखिर राजा प्रसेनजित बीमार पड़ गये। श्रेणिक को ढूँढ़कर मगध का सम्राट् बना दिया गया। उस समय अभय व उसकी माता वणिक पुत्री नन्दा वेनातट में पिता के यहाँ रहे।

राजा श्रेणिक की शादी गणराज्य प्रमुख राजा चेटक की पुत्री चेलना से हुई थी। राजा चेटक का नियम था कि जैनधर्म के अतिरिक्त किसी को वह बेटी नहीं देता था। पर यह एक प्रेम-विवाह था। राजा श्रेणिक का बल, वैभव,

सौन्दर्य देखकर चेटक की पुत्री सुज्येष्ठा श्रेणिक को चाहने लगी। इस चाहत को पूरा करने के लिए अभयकुमार ने एक लम्बी योजना बनाई।

पर राजा श्रेणिक समय पर न पहुँच सका। सुज्येष्ठा के प्रेम-सम्बन्धों के बारे में उसकी बहिन चेलना भी जानती थी। वह भी राजा श्रेणिक की रानी बनना चाहती थी। उसे भी अभय की गुप्त योजना का पता लग चुका था। राजगृह से वैशाली तक एक लम्बी सुरंग का निर्माण किया जा चुका था। सुज्येष्ठा समय पर न पहुँची, पर चेलना पहुँच चुकी थी। अंधेरे में सैनिक रथ में चेलना को बिठा लाये। चेलना अभूतपूर्व सुन्दरी थी। वह मगध की पटरानी बनी। उसी का पुत्र कौणिक अजातशत्रु था। उसके दो पुत्र हल्ल-विहल्ल भी हुए।

### अनाथी मुनि की घटना

जैसे पहले कहा जा चुका है कि श्रेणिक कुछ समय के लिए बौद्ध धर्मावलम्बी बन चुका था। रानी चेलना जिनधर्म की सच्ची उपासिका थी। वह राजा को जैनधर्म में लाने के लिए प्रयत्नरत थी कि तभी एक घटना घटी, जिस घटना के प्रभाव से राजा जैन हो गया।

राजगृह नगर के बाहर राजा मण्डिकुक्षि चैत्य की ओर भ्रमण करने निकला, जहाँ उसने एक ध्यानस्थ मुनि को देखा। अद्भुत रूप-सौन्दर्य उसके चेहरे से झलक रहा था। आयु से वह छोटा लग रहा था। राजा के मन में उसके प्रति आकर्षण पैदा हुआ। वह सोचने लगा कि 'भरे यौवन तरुणाई में वह साधु क्यों बन गया? छोटी-सी आयु में साधु बना है। जरूर किसी वस्तु का घर में अभाव होगा। अभाव के कारण यह साधु बन गया है।' राजा ने सोचा- 'मुझे जरूर इस मुनि की सहायता करनी चाहिए।'

राजा मुनि की तरफ देख रहा था। शीघ्र ही मुनि ने ध्यान खोला तो पाया सामने मगध सम्राट् श्रेणिक करबद्ध खड़ा है।

राजा श्रेणिक ने पूछा- 'मुनिराज ! इस भरी तरुणाई में आप साधु क्यों बन गये? अभी तो आपके खाने-पहनने के दिन थे। कृपया कारण बतायें। मुझसे जो भी बन पड़ेगा, मैं सहायता करूँगा।'

मुनि आत्म-ज्ञानी थे। उन्होंने देखा मगधराज को अपने धन पर अहंकार हो गया है। इसी अज्ञानवश उसने मुझसे यह बात कही है।

मुनि ने उत्तर दिया- 'राजन् ! मैं अनाथ था इसलिए मुनि बना हूँ।'

राजा श्रेणिक ने कहा- 'कोई बात नहीं, तुम्हें किसी भी अभाव में रहने की जरूरत नहीं। मगध सम्राट् श्रेणिक तुम्हारा नाथ बनेगा, तुम्हें पूरा सहारा देगा।'

मुनि ने निर्भय होकर कहा- 'राजन् ! तुम तो स्वयं अनाथ हो, तुम किसी के नाथ कैसे बन सकते हो?'

राजा ने मुनि का जब यह उत्तर सुना, तो दंग रह गया, फिर भी उसने स्पष्टीकरण करते हुए कहा- 'तुम शायद मुझे नहीं जानते, मैं मगध का एकछत्र सम्राट् हूँ। मेरे पास चतुरंगी सेना, धन-धान्य है। मेरा परिवार विशाल है। मैं अथाह सम्पदा का स्वामी हूँ। तुम मेरे साथ चलो और संसार के सुखों का आनन्द लो।'

मुनि ने कहा- 'राजन् ! यह सब कुछ तो मेरे पास भी था। इसमें सुख कहाँ था? यही तो अनाथपन है जिस धन-धान्य को हम सुख का कारण समझते हैं, दुःख की घड़ी में इनमें से कुछ भी काम नहीं आता। मेरे भी सगे-सम्बन्धी थे। हमारा इनको नाथ मानना आक के दूध से खीर पकाना है।'

मुनि ने अपनी पूर्व कहानी शुरू की-

राजन् ! मैं कोशाम्बी नगरी के श्रेष्ठी प्रभूत धनसंचय का सुपुत्र था। घर में धन के अम्बार लगे थे। मेरी माता मुझ पर खूब स्नेह करती थी। मेरी पत्नी शीलवती व रूपवती थी। एक दिन नेत्र-पीड़ा हुई। मैं कराह उठा। उस समय मेरी

पत्नी ने मेरा रात-दिन ध्यान रखा। वह मुझे पीड़ा-मुक्त न कर सकी। माँ दिन-रात मेरी पीड़ा के कारण रोती रही। धन मुझे नीरोग न कर पाया। पिता की हित-चिन्ता, माता, पत्नी, बहिन, भाइयों का रोना-धोना बेकार गया। कोई मंत्र, यंत्र व औषधि से मैं ठीक न हुआ। एक दिन मैं रात्रि में अकेला पीड़ा से कराह रहा था। तो मैंने सोचा कि 'अगर पीड़ा से मुक्त हो जाऊँ, तो मैं सुबह होते ही निर्ग्रन्थ मुनि बन जाऊँ।'

मैं सदेरे उठा, तो मेरी पीड़ा गायब थी। मैंने गुरु के चरणों में दीक्षा ग्रहण की। अब मैं अपनी आत्मा का नाथ बन गया हूँ।

बस, यही दिन था जब श्रेणिक जैनधर्म के प्रति आकर्षित हुआ। अब वह रानी चेलना अभयकुमार के साथ प्रभु महावीर के दर्शन को जाने लगा था।

श्रेणिक जब युवा था। पिता ने सभी राजकुमारों की तीन परीक्षाएँ ली थीं। एक परीक्षा में महल को आग लगा दी गई। सभी राजकुमार आग के भय से भाग गये। राजा श्रेणिक ने सभी राज-चिन्ह जिनमें भंभा प्रमुख थी, बचा लिये इसलिए इसका नाम श्रेणिक भंभासार पड़ा। अनेकों मुनि के संपर्क के बाद राजा श्रेणिक प्रभु महावीर का परम भक्त बना।

भगवान महावीर से तत्त्वचर्चा एक क्रान्तिकारी चर्चा थी। उनके उपदेश से राज्य-परिवार के मेघकुमार, नन्दीषेण आदि ने दीक्षा ग्रहण की। राजकुमार अभय और सुलसा आदि अनेक पुरुषों ने गृहस्थ धर्म स्वीकार किया।

इस वर्ष का चातुर्मास प्रभु महावीर ने राजगृही में किया। यहाँ अनेक स्त्री-पुरुषों को धर्म-पथ पर लाकर उनका उद्धार किया।

## राजगृही में धर्म-क्रान्ति

राजगृही वह पवित्र नगरी है जिसकी भूमि को प्रभु महावीर के चरण-स्पर्श का सबसे ज्यादा लाभ मिला है। प्रभु महावीर के समय यहाँ अनेकों ऐतिहासिक घटनाएँ हुई हैं। यहाँ का राजा श्रेणिक बिम्बसार था, जिसका जैनधर्म के अतिरिक्त बौद्ध धर्म में अपना स्थान है। इस ऐतिहासिक राजा के प्रभु महावीर के साथ सांसारिक रिश्ते भी थे।

राजगृही नगरी में 'गुणशील' चैत्य था जो राजगृही नगरी के उत्तर-पूर्व में स्थित था। इसकी प्राकृतिक छटा का वर्णन स्वयं भगवान महावीर ने हजारों बार किया है। प्रभु महावीर के समवसरण अक्सर यहीं लगते थे। राजा अपनी चतुरंगी सेना के साथ प्रभु महावीर के दर्शन करने आता, वन्दना करता, प्रश्नों का समाधान पाता, प्रवचन सुनता। राजा श्रेणिक प्रभु महावीर का परम भक्त था। यह नगरी प्राचीनकाल से ही जैनधर्म का केन्द्र थी। प्रभु पार्श्वनाथ के श्रावक व श्रमण भी यहाँ अलग चैत्य व पर्वतों पर विचरण करते थे।

इस राजगृही में प्रभु महावीर पावा से विहार कर पहुँचे थे, कई विद्वान् ऐसा मानते हैं। प्रथम उपदेश को श्रवण करते ही राजा श्रेणिक ने सम्यक्त्व को ग्रहण किया। उसे क्षायिक सम्यक्त्व था। इस सम्यक्त्व को धारण करने वाला फिर कभी मिथ्यात्व में नहीं उलझता। उत्तराध्ययनसूत्र में इसका निमित्त अनाथी मुनि द्वारा राजा श्रेणिक को दिया गया उपदेश है जिसके कारण वह प्रभु महावीर की शरण में आया था। अनेक पुत्र, पुत्रियाँ तथा प्रजा के लोग प्रभु महावीर के भक्त थे।

हम यहाँ इस वर्ष में प्रमुख दीक्षा ग्रहण करने वाली आत्माओं का वर्णन करेंगे।

## मेघ मुनि

मेघकुमार मगध सम्राट् राजा श्रेणिक व रानी धारिणी का पुत्र था। राज्य-परिवार की परम्परा के अनुसार उसे बचपन में ही पुरुष की ७२ कलाएँ सिखाई गईं। जब शादी योग्य हुआ, तो आठ राज-कन्याओं के साथ उसकी शादी हो गई। उसने प्रभु महावीर का त्याग, वैराग्य परिपूर्ण प्रवचन सुना। वह दीक्षा के लिए तैयार हुआ।

उसने अपने माता-पिता से प्रार्थना की—“आपने मेरा दीर्घकाल तक लालन-पालन किया है। मेरे कारण आपने बहुत ही काम किया है, किन्तु मैं संसार के जन्म-जरा के दुःख से ऊब चुका हूँ। मेरी भावना प्रभु महावीर के चरणों में संयम धर्म स्वीकार करने की है।”

माता-पिता ने मेघकुमार को बहुत समझाया। संसार के सुखों का लालच दिया। साधुचर्या के कष्ट बताये। पर मेघ न माना। उसने बड़ी लम्बी चर्चा अपने माता-पिता से की।

माता-पिता ने सोचा—‘अब हमारे पुत्र पर वैराग्य का रंग चढ़ चुका है। इसे रोकना बेकार है।’

फिर माता-पिता की भावना को सम्मानित करते हुए उसने एक दिन का राज्य-सिंहासन स्वीकार किया। सिंहासन पर बैठते ही उसने माता-पिता से रजोहरण, पात्र आदि की माँग की।

माता-पिता ने देखा कि वैराग्य का रंग पक्का है। हम इसे ज्यादा समय नहीं रोक सकते। एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ राजा श्रेणिक ने व्यय कर साधु के उपकरण मँगवाये। उसका दीक्षा महोत्सव राज्याभिषेक की तरह मनाया गया।

### रात्रि को अवहेलना

मेघकुमार अब प्रभु महावीर का शिष्य बन चुका था। प्रथम दिन था। दिन तो साधुचर्या की उपासना करते-करते बीत चुका था। रात्रि आई। साधु जीवन समता और समानता का नाम है। वहाँ राजकुमार और दारिद्र्यकुमार में भेद-रेखा नहीं खींची जा सकती। इसी कारण रात्रि को उसे सोने के समय, दरवाजे के पास निचले स्थान का आसन मिला। उपाश्रय में अंधेरा था। रात्रि को अन्य मुनि अपनी शारीरिक जरूरतों के कारण बाहर आते तो अंधेरे के कारण हर एक के पाँव की टक्कर उसके आसन के साथ लग जाती इसी कारण वह सो नहीं पा रहा था।

उसने सोचा—‘मैं साधु बनकर फँस गया हूँ। जब मैं राजकुमार था तो यही साधु मेरा सम्मान करते थे। अब मैं गृह-त्यागी हूँ। अब इनका सम्मान समाप्त हो गया है। यह मुझे ठोकरें मार रहे हैं। चलो रात्रि समाप्त होने दो, सुबह होते ही मैं प्रभु महावीर को सभी धर्मों के उपकरण लौटाकर घर आ जाऊँगा।’

### प्रभु महावीर द्वारा पूर्वभवों का वर्णन

इस प्रकार यह विचारों की उथल-पुथल थी। सुबह हुई। सभी साधु-साध्वी प्रभु महावीर के दर्शन को पधारे। प्रभु महावीर ने मेघ मुनि को देखते ही कहा—‘मेघ ! क्या तुम साधना-पथ से पीछे हटने का विचार कर रहे हो ? युद्ध के मैदान में पहुँचकर वीर निरन्तर आगे कदम बढ़ाता है। तुम वीर हो, तथापि कायर की तरह पीछे हटना चाहते हो। थोड़े से कष्ट में धैर्य खो बैठे।’

याद करो, पशु के भव में तूने जो स्वयं पर विजय पाई थी और फिर मानव-जन्म मिला। अब थोड़े संकट से हार गये। लो सुनो, मैं तुम्हें तुम्हारे पिछले दो भवों की कहानी सुनाता हूँ जिससे तुम्हें पता चले कि दो भवों में तूने पशु के भव में कितनी धर्म-आराधना की थी, जिसके प्रभाव से तुम्हें इतना अच्छा कुल मिला।’

मेघ मुनि प्रभु महावीर के सम्बोधन से सावधान हुए और अपने पूर्वभव की बात सुनने लगे—

हे मेघ ! पूर्वभवों की बात है। विध्यांचल के सघन जंगलों में एक जंगल था, उस जंगल में सुमेरुप्रभ नाम का सफेद हाथी रहता था। वह अपने झुण्ड का राजा था। अपने विशाल परिवार का स्वामी था। एक बार उस जंगल में आग लगी। उस जंगल में दावानल के कारण ज्वालाएँ आकाश को चूमने लगीं। पशु-पक्षी उस स्थान को छोड़ने लगे। सभी जानवर आग में जलने लगे। सुमेरुप्रभ अनेक हाथियों के साथ घायल हो गया।

कुछ दिन के बाद आग शान्त हो गई। इस विनाश-लीला को देखकर वह चिन्तित हो गया।

दूसरे जन्म में भी तुम इसी नाम के हाथी बने। तुम्हें पूर्वभव की स्मृतियाँ ध्यान में थीं। इस जन्म में भी ‘आग द्वारा हानि न हो’ इस बात को सोचते हुए सुमेरुप्रभ ने नदी के किनारे विशाल मण्डप बनाया। लम्बी दूरी तक उसने पेड़-



पौधे, झाड़-झंखाड़, उखाड़-उखाड़कर जंगल को बिल्कुल साफ कर दिया। कहीं भी घास का तिनका न छोड़ा। इस प्रकार विराट् मण्डल का निर्माण कर सुमेरुप्रभ आनन्द से रहने लगा। अब वह भविष्य के प्रति निश्चित था।

एक समय की बात है कि जंगल में पुनः दावानल सुलग उठा। जंगल के सभी जीव-जन्तु अपना जन्मजात वैर भुलाकर उस मण्डल में एकत्रित होने लगे। हाथी, सिंह, मृग, खरगोश, लोमड़ी सभी को अपनी जान बचाने की चिन्ता थी। सुमेरुप्रभ भी वहाँ आ पहुँचा। पर उसका अपना बनाया मण्डल अब अन्य जीवों से भर चुका था। वह एक किनारे खड़ा हो गया। उसने किसी भी प्राणी को कोई कष्ट नहीं पहुँचाया।

दावानल जलता रहा; हरा-भरा वन भस्म होता रहा। एक प्रलयकारी दृश्य सामने था। पर सुमेरुप्रभ का बनाया मण्डल पूर्ण सुरक्षित था। उसे एक ज्वाला भी स्पर्श न कर सकी थी।

उस समय अचानक सुमेरुप्रभ हाथी के खुजली होने लगी। उसने अपने आगे का पाँव खुजलाने के लिए ऊपर उठाया। ज्यों ही खुजलाकर पैर को पुनः नीचे रखने लगा तो उसने देखा एक नन्हा-सा खरगोश मृत्यु के भय से धर-धर काँप रहा है। काँपते हुए खरगोश को देखकर सुमेरुप्रभ हाथी के मन में करुणा आ गई। उसने इसी करुणावश अपना पैर ऊपर उठाये रखा, पैर नीचे नहीं रखा। खरगोश का बच्चा इस पाँव के नीचे वाले स्थान में शरण लिए हुए था। हाथी का पाँव अधर में लटक रहा था।

दो दिन तक जंगल जलता रहा। तीसरे दिन आग शान्त हुई। सभी जानवर अपने-अपने स्थानों की ओर लौटने लगे। खरगोश का बच्चा भी लौट रहा था। सुमेरुप्रभ ने नीचे देखा तो स्थान को खाली समझकर जाने की तैयारी करने लगा। उसने पाँव को सीधा जमीन पर रखना चाहा, पर पाँव जमीन पर न टिका। पाँव अकड़ चुका था। अब हाथी ने जोर देकर रखना चाहा, तो भारी शरीर के कारण सँभल न सका और भूमि पर गिर गया।

तीन दिन की भूख-प्यास के कारण वह पुनः न उठ सका। पर इस हाल में भी उसके मन में अपूर्व शान्ति थी, क्योंकि उसने एक छोटे-से जीव पर दया की थी।

प्रभु महावीर ने मेघ के पूर्वभव की सारी कथा सुना दी। फिर उन्होंने निष्कर्ष करते हुए फरमाया-“पूर्वभव में खरगोश पर करुणा करने वाले हाथी तुम थे। पशु के भय में करुणा के कारण तुम्हें राज्य-परिवार का सुख-वैभव मिला। निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनने को मिला। संयममार्ग की मामूली-सी बाधा से घबरा गये हो।”

प्रभु महावीर के उपदेश से मेघ मुनि पुनः जागृत हो गये और अब संयम-पथ पर पुनः बढ़ने लगे। लम्बे समय तक तप व साधना की। जिसके परिणामस्वरूप विजय नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए।<sup>9</sup>

## महायोगी नन्दीषेण

यह भी राजा श्रेणिक के पुत्र थे। भगवान महावीर के उपदेश से इनके मन में वैराग्य भावना जागृत हो गयी। पिता राजा श्रेणिक ने इन्हें मुनि बनने की आज्ञा प्रदान कर दी।

परन्तु जब यह मुनि बन रहे थे तो आकाशवाणी हुई-“नन्दीषेण ! अभी तुम्हारे मुनि बनने का समय नहीं आया। अभी तुम्हारा भोगावली कर्म शेष है।”

नन्दीषेण का इरादा दृढ़ था। उसे दूसरी भी देववाणी ने रोका। पर नन्दीषेण भावना के प्रवाह में बह रहे थे। देववाणी सुनकर उन्होंने कोई प्रवाह नहीं की। अपने पूर्व फैसले को ध्यान में रखकर वह मुनि बन गये।

अब राजकुमार नन्दीषेण मुनि बनकर साधना करने लगे। वह देवता की वाणी को गलत सिद्ध करने के लिए तप करने लगे जिसके प्रभाव से वह अनेक ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी हो गये।

पर होनी प्रबल है। यह कब, किस रूप में रंग दिखाये इसे व्यक्ति नहीं जान पाता। एक दिन मुनि नन्दीषेण गोचरी को गये हुए थे। नगर में भोजन के लिए घूम रहे थे। शुद्ध भोजन की तलाश में उन्होंने एक बड़ा भवन देखा, फिर

सोचा—‘किसी सेठ—साहूकार का घर होगा। भिक्षा शुद्ध मिल जायेगी।’ पर यह घर तो वेश्या का था। वेश्या के भवन को वह सेठ का महल समझ गये थे। मुनि ने अपनी भाषा में “धर्मलाभ” कहा।

अन्दर कोई सेठ नहीं था। यहाँ धर्म—कर्म का कोई नामोनिशान नहीं था। अन्दर से सजी हुई गणिका बाहर आई। उसने कहा—“यहाँ धर्मलाभ का काम नहीं है। यहाँ तो अर्थलाभ से कार्य पूर्ण होते हैं। जिसके पास धन—सम्पत्ति है, उसे यहाँ सब कुछ मिल सकता है, और जो दरिद्र और दीन है उसके लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है।”

मुनि का शरीर तपस्या के कारण सूख चुका था। उनकी कृश काया शरीर को देखकर वेश्या हँसने लगी। वेश्या को हँसते देख नन्दीषेण मुनि से अपना अपमान सहा न गया। उन्होंने सोचा—‘इसने अभी मेरी शक्ति को पहचाना नहीं। मेरे तप के दिव्य प्रभाव से यह अनभिज्ञ है। समय आ गया है, मुझे इसको अपना प्रभाव दिखाना चाहिए।’

नन्दीषेण मुनि ने भूमि से एक तिनका उठाया। उसे तोड़ा तो तप प्रभाव से उसी वेश्या के सामने स्वर्ण—मुद्राओं की वर्षा होने लगी। मुद्राओं को इकट्ठा करते हुए नन्दीषेण ने वेश्या को वह मुद्राएँ अर्पित करते हुए कहा—“तो अर्थलाभ” कहकर उसी क्षण वेश्यालय से निकल पड़े।

अब वेश्या ने अपना दूसरा रूप प्रस्तुत करना शुरू किया, जिसे ज्ञानी त्रिया चरित्र कहते हैं। वेश्या ने सोचा—‘यह तो सचमुच चमत्कारी सन्त है। अगर यह मेरे घर में रह जाये, तो मुझे किसी भी द्रव्य का अभाव नहीं रहेगा।’

वेश्या शीघ्र सँभली और मुनि के पीछे—पीछे भागने लगी। वेश्या ने दीनता से कहा—“स्वामी ! मुझ गरीब अबला को किसके सहारे छोड़कर जा रहे हो ? आपके बिना संसार में मेरा कोई नहीं। आप महान् दयालु हो। आपके बिना मेरा जीना बेकार है। आप मेरे यहाँ चिराजें। अब मैं आपके बिना नहीं जी सकती।”

वेश्या के हाव—भाव देख मुनि संयम से गिर गये। अब वह मुनि नहीं रहे थे। नन्दीषेण ने अपनी साधना को विस्मृत कर वेश्या द्वारा रखे गये सहवास प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उन्होंने वेश्या के यहाँ रहने का फैसला इस शर्त पर किया—“मैं प्रतिदिन दस व्यक्तियों को प्रतिबोध देकर प्रभु महावीर के पास प्रव्रज्या हेतु भेजूँगा। इसके बाद मैं भोजन किया करूँगा। जिस दिन नौ आदमी रहे, दसवें के रूप में मैं स्वयं साधु बन जाऊँगा।”<sup>२</sup>

नन्दीषेण मुनि अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे। यह क्रम वेश्या के भवन में ही चलता था। लम्बे समय तक उन्होंने रोजाना दस मनुष्यों को प्रतिबोधित कर साधु बनाया। एक दिन नौ पुरुष ही प्रतिबोधित हुए थे। नन्दीषेण ने भोजन नहीं किया। दोपहर हुई। फिर शाम हो गई। दसवाँ पुरुष उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ।

वेश्या ने कहा—“स्वामी ! भोजन ठण्डा हो रहा है, आप भोजन कीजिए।”

नन्दीषेण ने कहा—“मैं दसवें पुरुष को प्रतिबोधित किये बिना भोजन कैसे कर सकता हूँ ? इस प्रतिज्ञा को तुम जानती हो।”

तभी वेश्या के मुख से अनायास निकल पड़ा कि अगर दसवाँ नहीं आता तो तुम स्वयं मुनि क्यों नहीं बन जाते ?” नन्दीषेण के मन में लग गई। उन्होंने उसी क्षण उस वेश्यालय को छोड़ दिया और प्रभु महावीर की शरण में पुनः पहुंच गये। प्रभु महावीर से पुनः दीक्षा की याचना की। प्रभु महावीर ने नन्दीषेण को पुनः प्रव्रज्या प्रदान की। वह साधना में लग गये।

नन्दीषेण गिरकर सँभले थे। उन्होंने लम्बे समय तक तपस्या की। अपने पूर्व कृत दोषों की आलोचना की। उग्र जप, तप किया, जिसके प्रभाव से वह अगले जन्म में देव बने।

## अभयकुमार

ये राजा श्रेणिक के पुत्र भी थे और मंत्री भी थे। राजा श्रेणिक को अपने भाइयों के कारण कुछ समय जब अज्ञातवास में रहना पड़ा तो उसका सम्बन्ध एक वणिक पुत्री नन्दा से हुआ। उसी की सन्तान अभयकुमार थे। इनकी बुद्धि अलौकिक

थी। बड़ी-बड़ी समस्या सुलझाने में दक्ष थे। इसकी बुद्धि का प्रमाण निरयावलिकासूत्र में मिलता है जब उन्होंने राजा कोणिक की रानी चलना की दोहद समस्या को हल किया था। इसी तरह इन्होंने रानी धारिणी का दोहद भी पूर्ण करवाया। इनकी बुद्धि के कारनामे अकबर-बीरबल के चुटकलों की तरह हैं। प्रभु महावीर के यह परम श्रावक थे। बाद में यह भी साधु बन गये।

अभयकुमार ने एक बार मानव जाति को समझाया था कि सबसे महंगा भोजन माँस है। एक बार राज्यसभा में चर्चा हुई कि “सस्ता भोजन कौन-सा है?” ज्यादा लोगों ने माँस कहा।

अभयकुमार ने एक नाटक रचा। फिर वह उन सब लोगों के पास एक तोला मानव-माँस के लिए गया। उसने कहा-“राजा बीमार है, उन्हें एक तोला मानव हृदय का माँस चाहिए। बदले में कितनी भी कीमत ले लीजिए।”

सभी माँसाहारियों ने उल्टे अभयकुमार को धन दिया, जो अभयकुमार ने राज्यसभा में राज्य के सम्मुख प्रस्तुत किया। फिर उसने कहा-“इतने पैसे में भी कोई एक तोला मानव-माँस देने को तैयार नहीं है।”

इसी तरह एक बार एक लकड़हारा गरीबी के कारण प्रभु महावीर के शिष्य सुधर्मा के पास साधु बन गया। सब उसका अपमान करते। सब कहते-“काम न करने के कारण यह साधु बना है।”

अभयकुमार ने एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ साथ लीं। चौराहे पर घोषणा करवायी-“जो व्यक्ति अग्नि जलाने का त्याग करेगा और ब्रह्मचर्य का पालन करेगा वह इन मुद्राओं को ले ले।”

सारा दिन बीत गया। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं आया जो इन दोनों का त्याग कर सके। अभयकुमार ने कहा-“मुनिधर्म का पालन बहुत मुश्किल है। वह तो सारी उम्र पाँच महाव्रतों, पाँच समितियों, तीन गुणियों का पालन करते हैं। यह लकड़हारा कितना पूजनीय है जो कठोर मुनिधर्म का पालन कर रहा है।”

## चौदहवाँ वर्ष

प्रभु महावीर संसार के कल्याण के लिए घर से निकले थे। संसार में फैले अंधकार को देख उनका मन इतना दुःखी हुआ कि वह जंगल में साढ़े बारह वर्ष के लिए ध्यानस्थ हुए। अनेक कष्टों, उपसर्गों के बाद उन्हें जो केवलज्ञानरूपी शाश्वत अमृत मिला था, वह उन्हें बाँटने में दिन-रात एक कर रहे थे। उनका प्रथम वर्ष सफलताओं से भरा हुआ था। यह वर्ष क्रान्तिकारी वर्ष था। समाज को एक बदलाव अहिंसक ढंग से मिल रहा था।

प्रभु महावीर ने राजगृह में धर्म-प्रचार करने के बाद ग्राम-ग्राम, नगर-नगर विचरना शुरू किया। वह विदेह देश के गाँवों, नगरों को अपनी चरण-रज से पवित्र करते हुये अपनी जन्म-भूमि के एक भाग ब्राह्मण क्षत्रिय कुण्डग्राम में पधारे। वहाँ का बहुशाल चैत्य प्रभु महावीर की देशना का स्थल था। लोगों को अपने प्रिय वर्द्धमान के आगमन की सूचना मिली।

## ऋषभदत्त ब्राह्मण व देवानन्दा की दीक्षा

उस गाँव में ऋषभदत्त ब्राह्मण व देवानंदा ब्राह्मणी रहते थे। ऋषभदत्त का गोत्र कोडाल था। देवानंदा जालंधरीय गोत्रीय थीं।<sup>३</sup> वह चार वेदों का ज्ञाता होने के साथ-साथ श्रमणोपासक भी था। वह परम्परा से क्रियाकांडी ब्राह्मण था पर वह श्रमणों के प्रभाव से ब्राह्मणवाद से दूर हो गया था।

प्रभु महावीर के दर्शन करने वह पहुँचा। भगवान महावीर की वन्दना कर वह निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनने हेतु बैठ गया। उपदेश समाप्त होते ही ऋषभदत्त ने प्रव्रज्या लेने की इच्छा व्यक्त की। प्रभु महावीर ने उसे कहा-“जैसी आपकी आत्मा को सुख हो वैसा करो। पर शुभ कार्य में प्रमाद मत करो।”

उधर उसकी पत्नी देवानंदा भगवान महावीर को देखकर रोमांचित होने लगी। उसके स्तनों से दूध की धारायें छूटने लगीं। आँखों से आनंद के अश्रु बहने लगे।

देवानंदा की यह हालत देखकर गणधर गौतम इन्द्रभूति ने प्रभु महावीर से पूछा—“भगवन् ! देवानंदा आपको देखकर रोमांचित क्यों हो गई है? उसके स्तनों से दूध की धारा क्यों बह रही है?”

प्रभु महावीर ने कहा—“गौतम ! देवानंदा ब्राह्मणी मेरी माता हैं। मैं इस देवानंदा ब्राह्मणी का पुत्र हूँ।”<sup>४</sup> भगवान महावीर ने गणधर गौतम को अपने गर्भ-परिवर्तन की घटना बताई। आचार्य देवेन्द्र मुनि जी अपनी पुस्तक ‘महावीर : एक अनुशीलन’ के पृष्ठ ४३० पर लिखते हैं—“इतने समय तक भगवान (महावीर) के गर्भ-परिवर्तन की बात किसी को ज्ञात नहीं थी। देवानंदा और ऋषभदत्त ब्राह्मण के साथ सारी धर्मसभा इस घटना को सुनकर आश्चर्यचकित हो गई।”

इस बात का ऋषभदत्त ब्राह्मण व देवानंदा ब्राह्मणी पर गहरा प्रभाव पड़ा। दोनों ने गृह त्यागकर प्रभु महावीर के चरणों में प्रव्रज्या ग्रहण की। दीक्षा से पहले उन्होंने शरीर पर पहने वस्त्राभूषण त्याग दिये फिर पंच मुष्टिक लोच किया और वन्दन करते हुए दोनों प्रभु के समक्ष आये।

ऋषभदत्त ने प्रार्थना की—“प्रभु ! यह संसार जल रहा है—जरा, मरण, रोग, शोक आदि विपदाओं की आग से यह संसार चारों ओर से प्रज्वलित हो रहा है। प्रभु, मुझे इस आग से बचाइये।”

ऋषभदत्त ब्राह्मण को प्रभु महावीर ने अपने श्रमणसंघ में शामिल कर लिया। दीक्षा के पश्चात् मुनि ऋषभदत्त ने ग्यारह अंगों का अच्छी तरह अध्ययन किया। छट्ठम, अट्ठम, दशम आदि अनेक प्रकार के तप किये। लम्बा समय साधु-जीवन में गुजारा। अंतिम समय एक मास की संल्लेखना कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

उसकी पत्नी देवानंदा ने भी चन्दनबाला के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की थी। उसने भी ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। उसने भी लम्बी-लम्बी तपस्याएँ कर्मक्षय हेतु कीं। फिर चन्दनबाला की आज्ञा से संल्लेखना स्वीकार की। इस प्रकार नाना तपस्याओं द्वारा कर्मक्षय करती हुई मोक्ष की अधिकारी बनी।<sup>५</sup>

### जमाली—प्रियदर्शना की प्रव्रज्या

जमाली एक क्षत्रिय राजकुमार था जो सांसारिक रिश्ते से प्रभु महावीर की बहिन सुदर्शना का पुत्र था। प्रभु महावीर का भानेज था। प्रियदर्शना प्रभु की सुपुत्री थी। प्रभु महावीर की इस सुपुत्री की शादी जमाली राजकुमार से हुई थी।

कुछ ग्रंथों में प्रभु महावीर के ब्राह्मणकुण्डग्राम के स्थान पर क्षत्रियकुण्डग्राम पधारे का वर्णन है पर दोनों परम्पराओं में उनके पधारने का स्थल बहुशाल चैत्य है जो दोनों गाँवों-नगरों के बीच पड़ता था।

प्रभु महावीर का उपदेश सुनने जमाली राजकुमार बहुशाल चैत्य में आया। प्रभु महावीर को वन्दन किया। जमाली प्रतिबुद्ध हुआ। उसने प्रभु महावीर से कहा—“प्रभु ! आपने जो कहा है वही वस्तुतः सत्य है। मुझे निग्रंथ प्रवचन पर श्रद्धा हो गई है। मैं साधु बनना चाहता हूँ। आप मुझे शरण दीजिये।”

प्रभु महावीर ने कहा—“देवानुप्रिय ! जैसे आपकी आत्मा को सुख हो, वैसा करो। पर शुभ कार्य में प्रमाद मत करो।”

जमाली राजमहल आया। माता-पिता से आज्ञा माँगने लगा। माता-पिता ने उसे बहुत समझाया। जमाली ने एक भी न सुनी। उसने ५०० राजकुमारों के साथ दीक्षा ग्रहण की।<sup>६</sup> साथ में प्रभु महावीर की सुपुत्री व जमाली की पत्नी भी १,००० स्त्रियों के साथ साध्वी बनी।<sup>७</sup>

बाद में जमाली निन्दव (प्रवचन के विरोध में चलने वाला) बना। वह प्रभु महावीर का विरोधी हो गया। इसका वर्णन यथा स्थल पर हम करेंगे। कई आचार्यों की मान्यता है कि इस सभा में प्रभु महावीर के बड़े सांसारिक भ्राता राजा नंदीवर्द्धन भी आये थे।<sup>८</sup> उन्होंने भी प्रभु महावीर का उपदेश सुना था। प्रभु महावीर को वन्दन कर वह घर लौटे थे।

प्रभु महावीर ने यह वर्षावास वैशाली में किया। जैसे पहले वर्णन किया जा चुका है यहाँ का गण-प्रमुख चेटक श्रमणोपासक था। वैशाली की जनता के लिए प्रभु महावीर का नाम नया नहीं था। वैशाली की जनता ने प्रभु महावीर के वर्षावास से अभूतपूर्व लाभ उठाया।

## पन्द्रहवाँ वर्ष

वर्षावास संपूर्ण कर प्रभु महावीर ने वैशाली से वत्स भूमि की ओर प्रस्थान (विहार) किया। गाँवों, नगरों को पवित्र कर उन्होंने समाज में फैली बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंका।

प्रभु महावीर कोशाम्बी पधारे, जिसे आज कोसम कहते हैं।

कोशाम्बी का राजा उदयन एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। भारत की तीनों परम्पराओं में उसका वर्णन मिलता है। प्रभु महावीर कोशाम्बी के चन्द्रावतरण चैत्य में पधारे। उस समय वहाँ का राजा उदयन ही था। वह राजा चेटक की पुत्री मृगावती का पुत्र था। उसके पास हाथियों की विशाल सेना थी। वह वीणा बजाकर हाथियों को पकड़ा करता था। विपाकसूत्र में उदयन को हिमालय की तरह महान् और प्रतापी बताया गया है।

जब उदयन को भगवान महावीर के कोशाम्बी पधारने का समाचार मिला, तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। वह भी राजा कूणिक की तरह सजधजकर भगवान के समवसरण में आया। उसके साथ उसकी माता मृगावती और उसकी बुआ श्रमणोपासिका जयन्ती भी थी। जयन्ती श्रमणोपासिका अपने पुत्र के साथ बैठी थी। जयन्ती जीव-अजीव की ज्ञाता तो थी ही पर साथ में वह परम जिज्ञासु भी थी। वह हर प्रवचन में से जीवन के लिए तत्त्व खोजने वाली थी।

जयन्ती का अपना जीवन साधु-सेवा के लिए समर्पित था। हर नये आने वाले साधु की जयन्ती खूब सेवा करती थी। जब कोशाम्बी में कोई नया साधु पधारता तो वह सर्वप्रथम जयन्ती की बस्ती में आता था। वह उन श्रमणों के साथ तत्त्वचर्चा करती थी।

जयन्ती अर्हत् धर्म की अनन्य उपासिका और जानकार थी। प्रभु महावीर—जैसे तीर्थंकर से जो उसने प्रश्न पूछे वह जैन नारियों के लिए गौरव का स्थान रखते हैं। इन प्रश्नों से ज्ञात होता है कि उनका तत्त्व ज्ञान बहुत गहरा था।

सब लोग धर्मसभा की ओर बढ़े जा रहे थे। समवसरण में पहुँचकर सभी लोगों ने सवारियों का त्याग किया। पाँच अभिगम छोड़े। फिर सीधे प्रभु महावीर को वन्दन करने राज्य-परिवार आया। प्रभु महावीर की धर्म-देशना चल रही थी। सभी ने प्रभु महावीर के वचनामृत को श्रवण किया।

तीर्थंकर के समवसरण की धरती को स्वर्ग से बढ़कर माना जा सकता है क्योंकि समवसरण समानता का प्रतीक है। वहाँ ऊँच-नीच वैर-विरोध का कोई स्थान नहीं होता।

सभा विसर्जित हो जाने पर भी जयन्ती अपने परिवार के साथ वहीं ठहरी रहीं। अवसर पाकर धार्मिक चर्चा शुरू करते हुए जयन्ती ने पूछा—“भगवन् ! जीव भारीपन को कैसे प्राप्त होते हैं ?”

प्रभु महावीर—“जयन्ती ! जीव-हिंसा, असत्य वचन, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह आदि अठारह पाप-स्थानकों के सेवन से जीव भारीपन को प्राप्त होते हैं और चारों गतियों में भटकते हैं।”

जयन्ती—“भगवन् ! भवसिद्धिकता (मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता) जीवों को स्वभाव से ही प्राप्त होती है या अवस्था विशेष से ?”

प्रभु महावीर—“भवसिद्धिकता स्वभाव से ही होती है, अवस्था-विशेष से नहीं। जो जीव भवसिद्धिक हैं वे अपने स्वभाव से ही वैसे हैं तथा रहेंगे और जो भवसिद्धिक नहीं हैं, वे किसी भी अवस्था में, किसी भी उपाय से भवसिद्धिक नहीं हो सकते।”

जयन्ती—“भगवन् ! क्या सब भवसिद्धिक मोक्षगामी हैं ?”

प्रभु महावीर—“हाँ, जो भवसिद्धिक हैं, वे सब मोक्षगामी हैं।”

जयन्ती—“भगवन् ! यदि सब भवसिद्धिक जीवों की मुक्ति हो जायेगी तब तो यह संसार कालान्तर में भवसिद्धिक जीवों से रहित ही हो जायेगा।”

प्रभु महावीर—“नहीं, जयन्ती ! ऐसा नहीं हो सकता। जैसे सर्वाकाश प्रदेशों की श्रेणी में से कल्पना से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश कम करने पर भी आकाश-प्रदेशों का कभी अन्त नहीं होता, इसी प्रकार भवसिद्धिक अनादिकाल से सिद्ध हो रहे हैं और अनन्तकाल तक होते रहेंगे। फिर भी वे अनन्तानन्त होने से समाप्त नहीं होंगे और संसार कभी भी भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा।”

जयन्ती—“भगवन् ! ऊँघना अच्छा है या जागना ?”

प्रभु महावीर—“कुछ जीवों का ऊँघना अच्छा है और कुछ का जागना।”

जयन्ती “भगवन् ! यह कैसे ? दोनों बातें अच्छी कैसे हो सकती हैं ?”

प्रभु महावीर—“अधर्म के मार्ग पर चलने वाले, अधर्म का आचरण करने वाले और अधर्म से अपनी जीविका चलाने वाले जीवों का ऊँघना ही अच्छा है, क्योंकि ऐसे जीव जब ऊँघते हैं तब बहुत से जीवों की हिंसा करने से बचते हैं तथा बहुतेरे प्राणियों को त्रास पहुँचाने में असमर्थ होते हैं। वे सोते हुए अपने को तथा अन्य जीवों को दुःख नहीं पहुँचा सकते, अतः ऐसे जीवों का सोना ही अच्छा है और जो जीव धार्मिक, धर्मानुगामी, धर्मशील, धर्मचारी और धर्मपूर्वक जीविका चलाने वाले हैं उन सब जीवों का जागना अच्छा है। कारण, जागते हुए वे किसी को दुःख न देते हुए अपने को तथा अन्य जीवों को धर्म में लगाकर सुखी और निर्भय बनाते हैं, अतः ऐसे जीवों का जागना अच्छा है।”

जयन्ती—“भगवन् ! जीवों की सबलता अच्छी या दुर्बलता ?”

प्रभु महावीर—“कुछ जीवों की सबलता अच्छी है और कुछ की दुर्बलता।”

जयन्ती -“भगवन् ! यह कैसे ?”

प्रभु महावीर—“जयन्ती ! जो जीव अधर्मी, अधर्मशील और अधर्मजीवी हैं उनकी दुर्बलता अच्छी है, क्योंकि ऐसे जीव दुर्बल होने से दूसरों को त्रास देने में और अपनी आत्मा को पापों से मलिन बनाने में विशेष समर्थ नहीं होते। जो जीव धर्मिष्ठ, धर्मशील, धर्मानुगामी और धर्ममय जीवन बिताने वाले हैं उनकी सबलता अच्छी है। कारण, ऐसे जीव सबल होने पर भी किसी को दुःख न देते हुए अपना तथा औरों का उद्धार करने में अपने बल का उपयोग करते हैं।”

जयन्ती—“भगवन् ! सावधानता अच्छी या आलस्य ?”

प्रभु महावीर—“बहुत से जीवों की सावधानता अच्छी है और बहुतों का आलसीपन।”

जयन्ती—“भगवन् ! दोनों बातें अच्छी कैसे ?”

प्रभु महावीर—“जो जीव अधर्मी, अधर्मशील और अधर्म से जीने वाले हैं उनका आलसीपन ही अच्छा है, क्योंकि ऐसा होने से वे अधर्म का अधिक प्रचार न करेंगे। इसके विपरीत जो जीव धर्मी, धर्मानुगामी और धर्म से ही जीवन बिताने वाले हैं उनकी सावधानता अच्छी है, क्योंकि ऐसे धर्म-परायण जीव सावधान होने से आचार्य, उपाध्याय, वृद्ध, तपस्वी, बीमार तथा बाल आदि का वैयावृत्य (सेवा-शुश्रूषा) करते हैं। कुल, गण, संघ तथा साधर्मिकों की सेवा में अपने को लगाते हैं और ऐसा करते हुए वे अपना तथा औरों का भला करते हैं।”

जयन्ती—“श्रवणेन्द्रिय के वश में पड़े हुए जीव क्या बाँधते हैं ?”(किस प्रकार के कर्म बाँधते हैं ?)

प्रभु महावीर—“जयन्ती ! श्रवणेन्द्रिय के वशीभूत जीव आयुष्य को छोड़ शेष सातों ही कर्म-प्रकृतियाँ बाँधते हैं। पूर्वबद्ध शिथिल-बन्धन को दृढ़-बन्धन और लघु-स्थितिकों को दीर्घ-स्थितिक कर देते हैं, इस प्रकार कर्मों की स्थिति को बढ़ाकर वे चतुर्गति रूप संसार में भटका करते हैं।”

जयन्ती ने इसी प्रकार चक्षु, घ्राण, जिह्वा और स्पर्शेन्द्रिय के वशीभूत जीवों के संबंध में प्रश्न भी पूछे और भगवान ने उन सबके सम्बन्ध में यही उत्तर दिया।

प्रश्नोत्तरों से जयन्ती को पूर्ण संतोष हुआ। उसने हाथ जोड़कर कहा—“भगवन् ! कृपया मुझे प्रव्रज्या देकर अपने भिक्षुणी-संघ में दाखिल कीजिये।”

श्रमण भगवान ने जयन्ती की प्रार्थना को स्वीकृत किया और उसे सर्वविरति सामायिक की प्रतिज्ञा एवं पंच महाव्रत प्रदान कर भिक्षुणी-संघ में दाखिल कर लिया।<sup>१९</sup>

वत्सभूमि से भगवान ने उत्तरकोसल की तरफ विहार किया और अनेक गाँव-नगरों में निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश देते हुए श्रावस्ती पहुँचे। श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य में आपका जो उपदेश हुआ, उसके फलस्वरूप अनेक गृहस्थ जैनसंघ में दाखिल हुए। अनंगार सुमनोभद्र और सुप्रतिष्ठ आदि की दीक्षाएँ भी इसी अवसर पर हुई थीं।

कोसल प्रदेश से विहार करते हुए श्रमण भगवान फिर विदेह भूमि में पधारे। यहाँ वाणिज्यग्राम-निवासी गाथापति आनन्द और उनकी स्त्री शिवानन्दा ने आपके समीप द्वादशव्रतात्मक गृहस्थ धर्म स्वीकार किया।

### सुमनोभद्र व सुप्रतिष्ठ की प्रव्रज्या

कोशाम्बी में धर्म-प्रचार करने के बाद प्रभु महावीर श्रावस्ती नगरी पधारे। उस समय सुमनोभद्र और सुप्रतिष्ठ ने दीक्षा ग्रहण की। लम्बे समय तक संयम पालन किया। अंतिम समय में सुमनोभद्र ने राजगृह के विपुलाचल पर समाधिमरण द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। सुप्रतिष्ठ मुनि ने भी सत्ताईस वर्ष तक प्रभु महावीर के चरणों में संयम की आराधना कर विपुलाचल पर्वत से सिद्धि प्राप्त की।<sup>१०</sup>

### गृहपति आनन्द द्वारा श्रावक धर्म की आराधना

अंगशास्त्र में उपासकदशांगसूत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस आगम में प्रभु महावीर के दस प्रमुख श्रावकों का वर्णन है। आनन्द गाथापति का वर्णन प्रथम अध्ययन में आया है जिसका वर्णन हम इसी आगम के आधार पर कर रहे हैं।<sup>११</sup>

उस समय प्रभु महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वाणिज्यग्राम में पधारे। वहाँ का राजा जितशत्रु था। वह अपनी प्रजा के साथ प्रभु महावीर के दर्शनार्थ आया। वहाँ समवसरण लगा हुआ था। प्रभु महावीर का मंगलमय प्रवचन चल रहा था।

उसी नगर में आनन्द नाम का श्रेष्ठी रहता था। उसके पास करोड़ों की सम्पत्ति, विशाल खेत, समुद्री जहाज व गायों के झुंड थे। उसने नगर में अद्भुत चहल-पहल देखी। उसे पता चला कि जगद्गुरु श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं, लोग उनका प्रवचन सुनने, उनकी वन्दना करने जा रहे हैं।

वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने स्नान किया, शुद्ध वस्त्र पहने, आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। फिर वाणिज्यग्राम के मध्य से गुजरता द्युतिपलाश चैत्य में पहुँचा। यहीं पर प्रभु महावीर अपना धर्म उपदेश दे रहे थे।

आनन्द ने तीन आदक्षिणा-प्रदक्षिणापूर्वक प्रभु महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। फिर योग्य स्थान ग्रहण कर प्रभु महावीर का उपदेश सुनने लगा।

उपदेश उसे रुचिकर लगा। उसे प्रभु महावीर के निर्ग्रन्थ प्रवचन पर अथाह श्रद्धा हो गई।

प्रवचन सम्पन्न होने के पश्चात् उसने प्रभु महावीर से निवेदन किया—

“प्रभु ! मैं साधु-जीवन ग्रहण करने में असमर्थ हूँ इसलिए मैं आपसे गृहस्थ के द्वादश व्रत ग्रहण करना चाहता हूँ।”

प्रभु महावीर ने कहा—“देवानुप्रिय ! जैसे आपकी आत्मा को सुख हो, वैसा करो पर शुभ कार्य में प्रमाद मत करो।”

इस प्रकार आनन्द गाथापति “श्रमणोपासक” बन गया। उसकी धर्मपत्नी शिवानन्दा ने भी अपने पति का अनुकरण किया। इन व्रतों, नियमों व आनन्द श्रावक को अवधिज्ञान का वर्णन इसी शास्त्र में आया है। हम यथा स्थान पर आनन्द के अवधिज्ञान का वर्णन करेंगे।

इन्द्रभूति गौतम ने भगवान से प्रश्न किया—“प्रभु ! क्या आनंद श्रावक श्रमण बनने में समर्थ है?”

प्रभु महावीर ने कहा—“गौतम ! ऐसा नहीं है। श्रमणोपासक आनन्द साधु नहीं बनेगा। वह लम्बे समय तक इन ब्रतों की आराधना करेगा। अंतिम समय अनशनपूर्वक शरीर-त्याग, सौधर्मकल्प नामक स्वर्ग में अरुणाभ विमान में उत्पन्न होगा। इस देवलोक में उसकी आयु चार पल्योपम की है।”

इस प्रकार प्रभु महावीर ने वाणिज्यग्राम के आस-पास के ग्रामों में धर्म-प्रचार किया। फिर वर्षावास का समय बिताने वाणिज्यग्राम में आ गये। प्रभु महावीर का पन्द्रहवाँ चातुर्मास इसी वाणिज्यग्राम में सम्पन्न हुआ जहाँ अनेक भव्य जीवों ने अपनी आत्मा का कल्याण किया। वाणिज्यग्राम का वर्षावास पूरा करने के बाद आप पुनः मगध देश में पधारे।

### सोलहवाँ वर्ष

प्रभु महावीर वाणिज्यग्राम से मगध देश की राजधानी राजगृही पधारे। वहाँ आपका समवसरण गुणशील चैत्य में लगा। राजा श्रेणिक अपने राजकुमारों, राजकुमारियों, सैनिकों, महारानियों से घिरा हुआ बड़ी शान के साथ प्रभु महावीर को वन्दन करने लगा। उसने प्रभु महावीर का प्रवचन सुना।

उस समय प्रभु महावीर के प्रमुख गणधर इन्द्रभूति गौतम ने प्रभु महावीर से काल के संबंध में प्रश्न पूछे जिनका विवरण भगवतीसूत्र के शतक ६, उद्देशक ७ में उपलब्ध है।

### धन्ना-शालिभद्र की प्रव्रज्या

इसी वर्षावास में धन्ना शालिभद्र ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी। शालिभद्र राजगृह के ऐसे परिवार में संबंध रखता था, जिसकी धन सम्पत्ति के सामने मगध सम्राट् श्रेणिक की सम्पत्ति तुच्छ थी। वह धनाढ्य गोभद्र का पुत्र था। उसकी माता का नाम भद्रा तथा बहिन का नाम सुभद्रा था। सुभद्रा की शादी धन्ना से सम्पन्न हुई थी।

जब शालिभद्र बहुत छोटा था, तो उसके पिता ने प्रभु महावीर से श्रमण दीक्षा ग्रहण की थी। वह मरकर देवलोक में उत्पन्न हुआ था।<sup>१२</sup> शालिभद्र मातृ-स्नेह में पला था। उसकी माता भद्रा सारा व्यापार स्वयं देखती थी।

गोभद्र जो देव बना था, वह अपने पुत्र और पुत्र-वधुओं के सुख-भोग के लिए रोजाना ३३ पेटियाँ वस्त्र-आभूषण प्रदान करता था। उनका महल सात मंजिला था। उस महल में मुनीमों, नौकरों के आवास भी थे। अनेक दास-दासियाँ रहते थे। इसी महल की सातवीं मंजिल पर रात-दिन सुख-भोग में तल्लीन शालिभद्र रहता था।

जीवन में कुछ घटनायें ऐसी घटती हैं कि जीवन को पलटकर रख देती हैं। माता भद्रा जहाँ आदर्श माता थीं वहाँ वह देश-भक्ति की जीती-जागती प्रतीक थीं। उसे यह पसंद नहीं था कि कोई उसके देश के राजा व देश के प्रति अपमानजनक भाषा बोले। आज हम स्त्री जाति की जागृति की बात करते हैं। आज से २,५०० साल पहले प्रभु महावीर का प्रभाव था कि स्त्रियाँ धर्म के साथ-साथ व्यापार के क्षेत्र में भी किसी सीमा तक आ चुकी थीं। यह नारी जागृति का सुन्दर उदाहरण है। उस एक ही घटना ने शालिभद्र व धन्ना के समस्त परिवार को भोग से त्याग का मार्ग दिखा दिया।

एक बार नेपाल देश से रत्नकम्बल बेचने वाले आये। उन व्यापारियों के पास १६ रत्नकम्बल थे। हर कम्बल की कीमत सवा लाख स्वर्ण-मुद्राएँ थीं। सारे राजगृह में उनका एक कम्बल भी न बिका। व्यापारी थक चुके थे। फिर वह मगध सम्राट् श्रेणिक के दरबार में गये। राजा कीमत सुनकर चुप हो गया। उसकी प्रिय रानी चेलना कम्बल की माँग कर रही थी, पर अधिक कीमत के कारण राजा श्रेणिक खरीद न पाये।

आखिरी आशा भी समाप्त हो गई। व्यापारियों ने वापस जाने का निर्णय लिया। सुबह का समय था। व्यापारी आपस में बातें कर रहे थे—“यह कैसा शहर है ? कैसा देश है ? यहाँ के सब लोग गरीब हैं। यहाँ की प्रजा के साथ-साथ राजा भी गरीब है जो एक कम्बल खरीदने में असमर्थ है।”



यह बात शालिभद्र की पानी भरने आई दासियों ने सुन ली। उन्होंने व्यापारियों से पूछा—“भैया ! क्या बात है ? आप हमारे देश की निंदा कर रहे हो ? राजा-प्रजा को बुरा-भला कह रहे हो ?”

व्यापारियों ने सारी आपबीती दासियों से कह डाली।

दासियों ने कहा—“भैया ! आप हमारी मालकिन के पास चलो। शायद कोई समाधान निकल आये।”

दासियों की बात सुनकर व्यापारी कुछ असमंजस में पड़ गये—“जिस समस्या का समाधान इनके राजा के पास नहीं, बेचारी मालकिन क्या करेगी ?”

फिर भी दासियों के ज्यादा कहने पर वह शालिभद्र के महल में पहुँचे। व्यापारियों ने महल की भव्यता को देखा। दासियों ने महल का परिचय देते हुए कहा—“हम लोग तो प्रथम मंजिल पर ही रहती हैं। दूसरी मंजिल में हमारे मुनीम व उनके परिवार रहते हैं।”

व्यापारी अब तीसरी मंजिल में पहुँचे। यह शालिभद्र की माता का निवास था। दासियों ने कहा—“यह हमारी स्वामिनी हैं जिनका परिचय हमने आपको दिया था।”

सेठानी भद्रा ने व्यापारियों का अभिवादन किया। यथोचित अतिथि-सत्कार करने के पश्चात् पूछा—“भैया ! आपने मेरे यहाँ पधारकर अनुकंपा की है। मैं तो किसी योग्य नहीं कि आपका सम्मान कर सकूँ। पर, मेरे योग्य जो सेवा हो बतायें, मैं यथा शक्ति पूर्ण करने की चेष्टा करूँगी।”

व्यापारियों के मुखिया ने बताया—“बहिन ! हम नेपाल देश से रत्नकम्बल बेचने आये हैं, हर कम्बल की कीमत सवा लाख स्वर्ण-मुद्राएँ हैं। यहाँ हमारा एक भी कम्बल नहीं बिका। इसी बात को लेकर हम दुःखी हैं, इसलिए शालिभद्र से मिलना चाहते हैं।”

व्यापारियों की बात सुनकर भद्रा बोली—“आप रत्नकम्बल मुझे ही दिखा दें। शालिभद्र तो अभी छोटा बच्चा है। वह व्यापार के योग्य नहीं हुआ। फिर यह बतायें कि आपके पास कितने रत्नकम्बल हैं ?”

व्यापारियों ने कहा—“सोलह हैं।”

भद्रा ने कहा—“तुमने मुझे अजीब मुसीबत में डाल दिया है। मेरी बत्तीस पुत्र-वधुएँ हैं। अब सोलह कम्बल हैं। मैं बाकी सोलह को क्या दूँगी ? अभी सोलह तो रख दो।”

व्यापारी ने देखा और सुना। उन्हें लगा कि वह किसी स्वर्गलोक में घूम रहे हैं। “क्या दें ? कैसे देना है ? कैसे यहाँ के लोग हैं ? हमारा अनुमान गलत निकला। हमें भारत के प्रति अपनी धारणा बदलनी है।”

व्यापारियों ने सोलह रत्नकम्बल एक स्थान पर रख दिये।

भद्रा ने मुनीम को बुलाकर कहा—“इन कम्बलों की जो कीमत बनती है, भण्डारी जी से कहकर इन्हें दे दीजिए।”

व्यापारियों का सारा माल बिक गया। अब वह नगर की चहल-पहल देखने में मस्त थे। सुबह उनका राजगृह से प्रस्थान था। उधर रानी चेलना ने रत्नकम्बल के लिए इतनी जिद पकड़ी कि राजा श्रेणिक ने व्यापारियों को फिर ढूँढ़ा। व्यापारी आये। राजा श्रेणिक को वन्दन किया। उन्हें योग्य तोहफे प्रस्तुत किये। राजा श्रेणिक ने व्यापारियों से कहा—“हमें एक रत्नकम्बल की आवश्यकता है, वह दीजिये—

व्यापारी ने प्रार्थना की—“राजन् ! रत्नकम्बल तो आपकी कृपा से एक ही सेठानी भद्रा ने खरीद लिए हैं। अब कोई कम्बल बाकी नहीं। हम जब पुनः आवेंगे तब लाकर देंगे।”

राजा श्रेणिक को व्यापारियों की बात पर पहले विश्वास न हुआ, फिर उसने भद्रा सेठानी का पता किया और एक कम्बल उसी से खरीदने का मन बनाया।

राजा श्रेणिक मंत्री व पुत्र अभयकुमार के साथ भद्रा के महल में पहुँचा। भद्रा ने राजा का स्वागत किया। आने का कारण पूछा। राजा ने कहा—“आपके पास जो सोलह कम्बल हैं उनमें से एक कम्बल रानी चेलना को चाहिये। सो कीमत लेकर एक कम्बल दे दो।”

भद्रा ने प्रार्थना की—“महाराज ! आप कैसी बात करते हैं ? हम अपनी महारानी पर हजार कम्बल भी कुर्बान कर सकते हैं। पर अब समस्या यह आ गई है—मैंने उन कम्बलों के दो-दो टुकड़े कर अपनी बहुओं को दे दिये हैं, ताकि वह पाँव पोंछ सकें।”

राजा हैरान था कि मैं तो एक कम्बल लेने में स्वयं को समर्थ नहीं पा रहा। यह है कि सोलह कम्बलों के इन्होंने टुकड़े कर दिये हैं।”

फिर राजा ने सोचा—‘महारानी का हठ तो पूर्ण करना ही है।’ उन्होंने कहा—“आप हमें दो टुकड़े भेंट कर दें। हम उन्हें जोड़कर महारानी की इच्छा पूरी कर देंगे।”

भद्रा ने दासियों से कहा—पता करो कि कोई रत्नकम्बल मिल सकता है।”

दासी के इंकार करने पर भद्रा सेठानी ने प्रार्थना की—“महाराज ! बहुतों ने तो इन कम्बलों को पाँव से पौछकर फेंक दिया है।” अब रानी की इच्छा पूर्ण होनी असंभव है।”

भद्रा ने राजा श्रेणिक को बताया—“राजन् ! यह धन वैभव आपका ही है। पर बात यह है कि मेरी बहुएँ देवदूष्य वस्त्र पहनती हैं, क्योंकि मेरे पति देवगति में हैं। वे प्रतिदिन ३३ पेटियों में आभूषण, वस्त्र भेजते हैं। रत्नकम्बल का स्पर्श मेरी वधुओं को कठोर लगा; इसलिए उन्होंने उन्हें फेंक दिया। इस कारण मैं आपको रत्नकम्बल देने में असमर्थ हूँ।”

राजा श्रेणिक ने सुना तो गहरे असमंजस में पड़ गया। भद्रा ने राजा को अपने घर पधारने की प्रार्थना की जिसे श्रेणिक ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

राजा श्रेणिक भद्रा सेठानी के महल में पहुँचा। वह महल को देखकर दंग रह गया। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि कोई इतना धनवान हमारी नगरी की शोभा को बढ़ा रहा है।

भद्रा ने राजा को प्रणाम किया। फिर आदरपूर्वक अतिथि-कक्ष में ले आई। अतिथि-कक्ष क्या था ? वह तो इन्द्रसभा की तरह था। राजा श्रेणिक शालिभद्र से मिलना चाहता था। इसी बात को ध्यान में रखकर माता भद्रा ने कहा—“बेटा ! नीचे आओ। श्रेणिक आये हैं।”

शालिभद्र आराम में मस्त था। उसने उपेक्षाभाव से कहा—“माता जी ! सारा व्यापार आप देखती हो। अब इस श्रेणिक में क्या खूबी है ? इसे किसी अच्छे गोदाम में रखवा दो।”

शालिभद्र संसार से इतना अनभिज्ञ व भोगों में डूबा हुआ था कि वह अपने देश के राजा तक का नाम नहीं जानता था। माता ने पुनः आवाज लगाई—“बेटा ! नीचे आओ। हमारे स्वामी राजा श्रेणिक पधारें हैं। वह हमारे नाथ हैं। इन्हें प्रणाम करो।”

अब शालिभद्र की समझ में सारी बात आ गई। उसने आज तक सभी पर आज्ञा चलाई थी। उसे यकीन नहीं आ रहा था कि हमारा भी कोई स्वामी है।

शालिभद्र नीचे अतिथि-कक्ष में आया। उसने राजा श्रेणिक को प्रणाम किया। तब सभी ने भोजन किया। राजा श्रेणिक भद्रा सेठानी के अतिथि-सत्कार से बहुत प्रभावित हुआ।

श्रेणिक राजा ने उसके सुन्दर, सुडौल शरीर, गौर वर्ण और असीम लावण्य रूप को देखा। वह अवाक् रह गया। ऐसा रूप, लावण्य व कोमल शरीर उस राजा ने कम ही देखा था। ज्यों ही शालिभद्र प्रणाम करने हेतु निकट आया

त्वों ही श्रेणिक ने उसे गोद में भर लिया। पर शालिभद्र गुलाब के फूल की तरह सुकोमल था। राजा के शरीर की गर्मी से उसके शरीर में पसीने छूटने लगे। राजा ने उसे व्याकुल देखकर अपने करीबी आसन पर बिठाया तब कहीं शालिभद्र को चैन आया।

इस तरह भद्रा सेठानी के अतिथि-सत्कार को स्वीकार करता राजा आनन्दित हुआ घर आया और शालिभद्र पुनः अपने महल की सातवीं मंजिल में पहुँचा। 'नाथ' शब्द के चिंतन से उसके मन में उथल-पुथल मची हुई थी कि मेरा भी कोई स्वामी है।

उस समय उस नगरी में धर्मघोष नाम के मुनि पधारे हुए थे। हजारों नागरिक सज-धजकर उनके दर्शन करने जा रहे थे। शालिभद्र ने सातवीं मंजिल पर बैठे-बैठे यह नजारा देखा। उसे कोई भव्य समारोह लगा। उसने अपने नौकरों से पता करवाया कि क्या मामला है?'

नौकरों ने वन में मुनि-आगमन की शुभ सूचना दी। अन्य लोगों की तरह वह भी मुनि धर्मघोष का प्रवचन सुनने चला गया।<sup>१३</sup> इस प्रवचन से उसके सारे संशय मिट गये। नाथ-अनाथ का मर्म समझ में आ गया। उसके मन में वैराग्य का अंकुर पैदा हो गया था।

घर आकर उसने अपने मन के भाव अपनी माता से कहे। भद्रा सेठानी, जो हर प्रकार से सुखी थी, समाचार को सुनकर उस पर जैसे कोई बिजली गिर पड़ी हो, ऐसी स्थिति हो गई। आखिर उसका पुत्र शालिभद्र ही उसके जीने का उद्देश्य था। फिर भी माता भद्रा ने स्वयं को सँभाला।

भद्रा सेठानी व्यापारी थी। दीन-दुनियाँ उसने देखी थी। उसने अपने अनुभव के आधार पर शालिभद्र को परामर्श दिया—“अगर तुम साधु बनना चाहते हो, तो पहले इसका अभ्यास शुरू कर दो।”

जब पत्नियों ने यह समाचार सुना, तो वे भी दुःखी हुईं। आखिर वह उन ३२ पत्नियों का एक मात्र पति था। उसके बिना अपना जीवन उन्हें नीरस लगने लगा। 'शालिभद्र' अपनी धुन का पक्का था। इसी धुन पर सवार होकर शालिभद्र ने रोजाना एक-एक पत्नी का त्याग करना शुरू कर दिया। सारा परिवार इस त्याग से प्रभावित हुआ। यह बात रिश्तेदारों तक पहुँच गई। रिश्तेदारों से यह बात घर-घर में पहुँच गई। इसी नगर में धन्ना सेठ, जो शालिभद्र का जीजा था, वह भी सम्पन्नता से रहता था। जब शालिभद्र की बहिन सुभद्रा को अपने भाई शालिभद्र के साधु बनने की बात का पता चला तो उसे बहुत दुःख हुआ। शालिभद्र के रोजाना एक पत्नी त्याग का समाचार भी उसे मिल चुका था।

इन सभी समाचारों के कारण सुभद्रा मानसिक रूप से दुःखी रहने लगी। धन्ना को उसकी पत्नियों स्नान करा रही थी। सुभद्रा को उस समय धन्ना ने पूछा—“क्या बात है? आजकल आप इतनी दुःखी रहती हैं?”

“मेरा भाई साधु बनने जा रहा है। अभ्यास के तौर पर वह रोजाना एक पत्नी, एक शय्या का त्याग कर रहा है।”<sup>१४</sup>—सुभद्रा ने उत्तर दिया।

धन्ना सेठ ने कहा—“तुम्हारा भाई बहुत ही कायर है। यदि दीक्षा ही लेनी है तो फिर एक-एक पत्नी का त्याग क्यों करता है? सभी को एक ही समय क्यों नहीं त्यागता?”

धन्ना की बात सुभद्रा को तीर की भाँति चुभ गई। उसने उसी क्षण अपने पति को ताना मारा—“पतिदेव ! कहना बहुत सरल है, पर करना उतना ही कठिन है। आप क्या इसी तरह मुझे छोड़ सकते हैं? अगर आप ऐसा करके दिखायें, तब आपको पता चले।”

पत्नी का शब्द-बाण धन्ना के कलेजे में लग गया। वह उस समय स्नान की तैयारी में पत्नी से मालिश करवा रहा था। वह स्नान पीठ से सहसा उठ खड़ा हुआ।

“लो, यह मैं चला; तुम सभी मेरे सामने से हट जाओ। मैंने तुम्हारा त्याग कर दिया है।”

धन्ना के भी सात पत्नियाँ थीं। सभी पत्नियाँ देखती रह गईं। अन्य पारिवारिक जनों ने भी बहुत प्रयत्न किया, सभी समझाने में असफल रहे। धन्ना सीधा अपने ससुराल शालिभद्र के यहाँ पहुँचा। उसने पुकारते हुए कहा—“यह कैसी कायरता है; अगर साधु बनना है तो सभी कुछ एक ठोकर से त्यागो। देखो, मैंने भी ऐसा किया है। अब बहुत देर हो चुकी है। जीवन की क्षण-भंगुरता को पहचानो। चलो, हम दोनों प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षा ग्रहण करें।”

शालिभद्र ने अपने बहनों का सुझाव मानते हुए समस्त पत्नियों का त्याग कर दिया। माता भद्रा ने न चाहते हुए अपने प्रिय पुत्र शालिभद्र को साधु बनने की आज्ञा प्रदान की। दोनों प्रभु महावीर के समवसरण में पहुँचे। प्रभु महावीर को वन्दना की और साधु बन गये।

धन्ना और शालिभद्र का भिक्षु जीवन उत्कृष्ट था। जैन इतिहास में अभयकुमार जैसी किसी की बुद्धि नहीं मानी जाती। शालिभद्र-जैसा धनवान नहीं माना जाता। धन्ना-जैसा तपस्वी नहीं माना गया। दोनों मिलकर तपस्या, स्वाध्याय द्वारा अपनी आत्मा को निर्मल करते, उनके लगातार मासिक, द्विमासिक व त्रैमासिक तप चलते रहते।

एक बार प्रभु महावीर अपने श्रीसंघ सहित राजगृह पधारे। शालिभद्र भी उनके साथ था। उनके एक महीने का पारणा था। उन्होंने भगवान महावीर को नमस्कार किया और विधि अनुसार भिक्षा ग्रहण करने की आज्ञा माँगी।

प्रभु महावीर ने कहा—“देवानुप्रिय ! आज तुम्हारा पारणा तुम्हारी माता के हाथ से होगा।”

मुनि शालिभद्र पारणा हेतु अपने ही घर पहुँचे। माता व अन्य लोगों ने कोई ध्यान न दिया। इसका प्रमुख कारण यह था कि शालिभद्र शरीर तप के कारण इतना सूख गया था कि कोई भी उन्हें पहचानने में असमर्थ था।

शालिभद्र बिना भिक्षा ग्रहण किये वापस आ रहे थे कि उसी समय रास्ते में उन्हें एक ग्वालिन मिली। मुनि को देखकर उसके हृदय में वात्सल्य भाव उमड़ आया। वह रोमांचित हो गई। उसके स्तनों से दूध की धारा निकलने लगी। उसी ग्वालिन ने मुनि शालिभद्र से दही लेने का प्रेमपूर्वक आग्रह किया। मुनि भिक्षा लेकर स्व-स्थान पर आये। पारणा किया।

फिर प्रभु महावीर से पूछा—“आप कहते थे कि मेरा पारणा मेरी माता के यहाँ से होगा। पर उन्होंने मुझे कोई भिक्षा नहीं दी। यह भिक्षा मुझे एक अहीरन ने दी है।”

सर्वज्ञ महावीर ने कहा—“भद्र ! यही तेरी पूर्वभव की माता थी। तू पूर्वजन्म में इसका पुत्र था। उस जन्म में यह एक गरीब महिला थी। इसका पति नहीं था। एक बेटा था। लोगों के घरों में काम-काज कर गुजारा करती थी। घर में पीछे इसका बेटा पशु चराता। एक बार कोई त्यौहार था। सारे गाँव में खीर बनी थी। एक इस अहीरन का घर था जिसमें खीर का अभाव था।

इसी अवस्था में तुम्हारा मन खीर खाने को ललचा रहा था। उस माता ने पड़ोसियों से दूध व चावल माँगकर तुम्हें खीर बनाकर दी। खीर को थाली में पलटकर वह काम पर चली गई। थाली तुम्हारे सामने थी। खीर गर्म थी। तुम खीर को ठण्डा करने के प्रयास में खीर को किनारों की ओर कर रहे थे।

इस अवसर पर एक मासखमण के तपस्वी मुनिराज आ पहुँचे। तुमने स्वयं भूखे रहकर उस खीर को मुनिराज को अर्पण कर दिया।

इसी सुपात्रदान के कारण तुम्हें ऐसी ऋद्धि व सुख-सम्पदा के सब साधन मिले। अब दान देने वाला बालक आज का शालिभद्र मुनि है। अहीरन तुम्हारी पूर्वभव की माता है। तुम्हें देखते ही उसके मन में जो मातृभाव जागृत हुआ, यह तुम्हारे पूर्वभव के संबंधों के कारण हुआ है। शालिभद्र प्रभु महावीर के समाधान से संतुष्ट हुए।

### शालिभद्र का समाधिमरण

प्रभु महावीर की आज्ञा लेकर शालिभद्र ने वैभारगिरि पर्वत पर जाकर अनशन किया। भद्रा माता दर्शन हेतु आई। प्रभु महावीर ने दीक्षा से लेकर अब तक बीती सारी घटनाएँ माता भद्रा से कह डालीं। माता को अपार वेदना हुई। वह

वैभारगिरि पर्वत पर पहुँची। पुत्र के तप के प्रभाव के कारण कृश बनी काया को देखकर और समाधिमरण अवस्था में देखकर वह व्याकुल हो उठी। उस भद्रा ने सब प्रकार के दुःख देखे थे। यह दुःख बहुत दिल हिलाने वाला था। वह दहाड़ मारकर रोने लगी। तभी वहाँ राजा श्रेणिक आ गये। उसने मुनि को प्रणाम किया। माता को सांत्वना दी। शालिभद्र आयु पूर्ण कर सर्वार्थसिद्ध देवलोक में देव बने। इसी प्रकार धन्ना ने भी इसी लोक में देव आयुष्य बाँधा।<sup>१५</sup>

दोनों का सांसारिक जीवन जितना भोगों में डूबा था, उतना त्यागमय जीवन त्याग की उत्कृष्टता लिये हुए था।

प्रभु महावीर ने यह वर्षावास राजगृही में बिताया। हजारों प्राणियों का कल्याण किया।

### सत्तरहवाँ वर्ष (प्रभु महावीर का पंजाब—सिन्धु के क्षेत्र को पावन करना)

राजगृह का चातुर्मास सम्पन्न कर प्रभु महावीर अपने शिष्य—शिष्याओं के विशाल परिवार सहित चम्पा पधारे। चम्पानगरी में पूर्णभद्र नामक चैत्य था। यह चैत्य नगर से बाहर जंगल में था। प्रभु महावीर का समवसरण वहीं लगा।<sup>१६</sup>

वहाँ का राजा दत्त था। उसकी रानी रक्तवती थी। राजा व रानी विशाल शोभा यात्रा के साथ प्रभु महावीर के दर्शन को आये। प्रभु महावीर का प्रवचन सुना। प्रवचन सुनकर राजा बहुत प्रभावित हुआ। उसने प्रभु महावीर से प्रार्थना की—“प्रभु ! मैं साधु बनने में असमर्थ हूँ, अभी आप मुझे श्रावक के व्रत प्रदान करें।”

प्रभु महावीर ने कहा—“देवानुप्रिय ! जैसी आपकी आत्मा को सुख हो, वैसा करो परन्तु शुभ कार्य में विलम्ब मत करो।”

उसके कुछ समय के पश्चात् प्रभु महावीर पुनः चम्पा पधारे। राजकुमार महाचन्द्र ने माता—पिता की आज्ञा से संयम स्वीकार किया। ग्यारह अंगों का स्वाध्याय किया। अन्त में एक मास का अनशन कर वह मृत्यु को प्राप्त हुये। वह सौधर्मकल्प में देवरूप में उत्पन्न हुए।<sup>१७</sup>

### पंजाब के राजा उदायन की दीक्षा

उस समय सिन्धु—सौवीर के अंतर्गत पंजाब की सीमा आ जाती थी। उसके आगे अर्ध—केकय देश था जिसमें कश्मीर, गंधार का क्षेत्र पड़ता था। कुरु देश की सीमा अम्बाला जिला तक थी और यह मेरठ जिले में समाप्त होती थी। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। इसी तरह का वर्णन सिन्धु—सौवीर देश का है। पहले यह एक देश था जिसकी राजधानी वीतभय पत्तन थी। पर प्रभु महावीर के बाद सिन्धु देश अलग हो गया सौवीर अलग। सिन्धु नदी दोनों की प्राकृत विभाजित रेखा थी। प्राचीन वीतभय पत्तन आज का भैरा है जो आजकल पाकिस्तान में पड़ता है।

प्रभु महावीर के समय वहाँ का राजा उदायन था। उसके विस्तृत राज्य के बारे में शास्त्रकार कहते हैं—

सोलह बृहद् देश, तीन सौ तिरेसठ नगर और आगर उसके अधीन थे। उदायन वहाँ का राजा था। चण्डप्रद्योतन आदि दस मुकुटधारी महापराक्रमी राजा उसके अधीन थे।<sup>१८</sup> वैशाली गणराज्य प्रमुख चेटक की सुपुत्री प्रभावती उसकी महारानी थी। अभीचिकुमार उसका पुत्र था और केशीकुमार उसका भानजा था।<sup>१९</sup>

प्रभावती स्वयं निर्ग्रथों की सेविका थी। उसने श्राविका के व्रत ग्रहण किये हुये थे।<sup>२०</sup> अपने जप—तप के प्रभाव से मरकर वह देवलोक में उत्पन्न हुई थी। उसने अपने पति को प्रतिबोध देकर श्रमणोपासक बनाया था। वह जीव—अजीव का ज्ञाता हो गया था। इससे पहले राजा तापसों का भक्त था।<sup>२१</sup>

एक समय राजा अपनी पौषधशाला में बैठा धर्म आराधना कर रहा था। रात्रि के समय धर्म—जागरण करते समय उसके मन में विचार उठे—“वह ग्राम—नगर धन्य हैं जहाँ प्रभु महावीर पधारते हैं। यदि किसी समय प्रभु महावीर मेरी नगरी को पवित्र करें, तो मैं उनके चरणों में प्रव्रज्या ग्रहण कर लूँगा।”

प्रभु महावीर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकर थे। उनसे संसार के किसी जीव की बात छिपी नहीं थी। प्रभु महावीर का जन्म ही मानव जाति के उद्धार के लिये हुआ था। उस समय प्रभु महावीर चम्पानगरी में विराजमान थे। उन्होंने उदायन

के मनोगत भावों को जाना। कहते हैं भक्त के वश में भगवान होता है। यह उक्ति सत्य सिद्ध हुई। प्रभु महावीर अपने भक्त का उद्धार करने उसके घर चल पड़े।

चम्पा से लेकर वीतभय पत्तन का रास्ता ७०० कोस का उग्र विहार था। भीषण गर्मी थी। योजनों तक गाँवों का नामोनिशान नहीं था। भोजन-पानी, साधु-साध्वियों को मिलना असंभव था। शायद प्रभु महावीर का यह सबसे लम्बा भ्रमण था। प्रभु महावीर विहार कर रहे थे। शिष्यों को भूख-प्यास सता रही थी। उस समय तिलों से भरी गाड़ियाँ जा रही थीं। गाड़ी वालों ने कहा-“आप इन तिलों को खाकर भूख मिटाइये।”

प्रभु महावीर ने अपने शिष्यों को ऐसा भोजन स्वीकार करने से मना कर दिया। इसका प्रमुख कारण था यद्यपि तिल साधु के लेने योग्य थे, पर यह भिक्षा साधु के ४२ दोषों की मर्यादा पूरी नहीं करती थी। फिर तिल अचित्त थे इस बात को वह स्वयं जानते थे। अन्य छद्मस्थ मुनि श्रमण इनको कैसे अचित्त समझते ?

यदि आज मैं इन तिलों को लेने की आज्ञा देता हूँ तो भविष्य में इस घटना को सामने रखकर सभी साधु सचित्त तिल भी लेने लगेंगे।

फिर आगे बढ़े; एक जल का बृहद् सरोवर था। उसमें जो पानी भरा था मिट्टी के सहयोग से स्वयं अचित्त हो गया था। साधु इसे भी काम में ले सकते थे। पर प्रभु महावीर ने इसे भी लेने की आज्ञा प्रदान नहीं की। क्योंकि सभी सरोवरों का पानी अचित्त नहीं होता। आज इस सरोवर के पानी का उपयोग साधुओं को करने दिया जाए, तो भविष्य में भी अन्य सचित्त जल सरोवरों के पानी का उपयोग भी प्रारम्भ हो जायेगा। प्रभु महावीर के इन्कार करने का मुख्य यही कारण था।<sup>२२</sup>

यह निश्चय धर्म से भी बढ़कर व्यवहार धर्म पर चलने की ओर आदेश था। इस पर अनेक परीषह-उपसर्ग आ रहे थे। प्रभु महावीर अनेक कष्टों को सहते हुए आगे बढ़ रहे थे। रास्ते में योग्य भिक्षा के अभाव के कारण अनेकों मुनिराज स्वर्ग सिधार गये।<sup>२३</sup>

शिवपत्नी की रेतीली भूमि में कोसों तक बस्ती का नामोनिशान न था। भगवान महावीर उसी बीहड़ मार्ग से पूर्व की ओर जा रहे थे। कोमल शरीर वाले शिष्यों को यही गर्मी मृत्यु का कारण बन रही थी।

### गौतम द्वारा किसान को प्रतिबोध

वीतभय नगरी के रास्ते में चलते-चलते गणधर गौतम इन्द्रभूति ने एक किसान को हल जोतते देखा। किसान बूढ़ा हो चुका था। उसके बैल उससे भी ज्यादा बूढ़े थे। वह हल का भार भी सहन नहीं कर पा रहे थे। वह काम करने में असमर्थ थे। किसान इसी कारण से बैलों को पीट-पीटकर चमड़ी उधेड़ रहा था।

प्रभु महावीर ने अपने प्रथम शिष्य इन्द्रभूति को आदेश दिया-“जाओ, उन बैलों को पीटते किसान को धर्म-उपदेश दो।” गणधर गौतम ने प्रभु महावीर की आज्ञा को शिरोधार्य किया। वह किसान के पास आये और अपने मधुर स्वर में कहा-“भद्र ! तू इन बैलों को क्यों पीट रहा है ? क्या इन्हें कष्ट नहीं होता ?”

किसान ने गणधर गौतम को प्रणाम करने के पश्चात् कहा-“बाबा ! आपसे ज्यादा मुझे इन्हें पीटते कष्ट हो रहा है। यह बैल तो मेरी जान हैं, मुझे बेहद प्रिय हैं। पर मेरे पास दूसरी जोड़ी नहीं। यह बूढ़े होने के कारण नहीं चल पा रहे हैं। अगर ये न हों तो मैं और मेरा समस्त परिवार भूखा मर जाये।”

गौतम स्वामी को किसान की दशा पर करुणा आ गई। उन्होंने किसान को निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनाया। निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रभाव से वह किसान गणधर गौतम का शिष्य बन गया। उसने अहिंसा के मार्ग पर चलने का व्रत लिया।

अब दोनों गुरु शिष्य बन गये। गणधर गौतम ने कहा-“चलो भद्र ! हम अपने प्रभु के दर्शन करने चलें।”

दोनों प्रभु महावीर के समवसरण की ओर बढ़ने लगे। दूर से उस किसान ने प्रभु महावीर को देखा। प्रभु महावीर को देखते ही किसान पर भयंकर क्रोध का आवेश छा गया। वह चुपके से प्रभु महावीर के सामने था। गौतम स्वामी ने कहा—“यह मेरे धर्माचार्य तीर्थंकर प्रभु महावीर हैं। मैं इनका शिष्य हूँ। बड़े-बड़े सम्राट्, धनकुबेर, देव-देवियाँ इन्हें वन्दन करते हैं। संसार के कल्याण के लिए गाँव-गाँव, नगर-नगर घूमते हैं।”

भगवान महावीर को देखते ही उसके पसीने छूट गये। उसने कहा—“मैं इनके पास नहीं जाऊँगा।”

गौतम—“यही तो हमारे गुरु व धर्माचार्य हैं।”

किसान—“यदि ये ही तुम्हारे गुरु हैं, तो तुम्हीं रहो, मुझे नहीं ऐसा गुरु चाहिए। अब मेरा-तेरा कोई वास्ता नहीं।”

यह कहकर भयभीत किसान भाग गया। गणधर गौतम ने इस घटना का समाधान चाहा तो प्रभु महावीर ने बताया, उस अबोध किसान को तुझे देखकर असीम प्रेम जागृत हुआ और मुझे देखकर भागा। इसके पीछे पूर्वजन्म की घटना है। चाहे कोई तीर्थंकर हो, चाहे चक्रवर्ती, कर्म का फल तो भोगना ही पड़ता है। यह किसान पूर्वभव से तुम्हारा मित्र चला आ रहा है। जब मैं त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में था तब तुम मेरे सारथी थे। यह किसान उस समय गुफा में रहने वाला सिंह था। जिसने उस गाँव में रहने वालों का जीना हराम कर रखा था। त्रिपृष्ठ राजकुमार के रूप में मैंने इस सिंह को समाप्त करने की जिम्मेवारी सँभाली। तुम सारथी के रूप में मेरा रथ हाँक रहे थे। मैं सिंह की गुफा में जा पहुँचा। मैंने उसे ललकारा। फिर हम दोनों गुत्थमगुत्था हो गये। मैंने सिंह को मार डाला। जब इस सिंह की अन्तिम साँसें चल रही थीं, तब तुमने उसे प्रिय वचनों से सम्बोधित करते हुए कहा था—“वनराज ! मन में ग्लानि और खेद मत करो। तुम्हें मारने वाला कोई साधारण मनुष्य नहीं है। यह राजकुमार त्रिपृष्ठ भी नरसिंह हैं। अतः सिंह की वीर मृत्यु एक नरसिंह के हाथों से हुई है। तुम शोक मत करो।”<sup>२४</sup> तुम्हारे इन्हीं प्रिय वचनों से इसे अन्त समय में शान्ति मिली। आहत सिंह ने अहंमूलक प्रसन्नता में प्राण त्याग किया।

बस, यही कारण है कि यह किसान तुम्हारे द्वारा प्रतिबोधित हुआ। मेरे हाथों से मारे जाने के कारण मेरी शक्ति देखकर भागा। यह पूर्वजन्म का कर्मफल था। मैंने इसी कारण तुम्हें भेजा ताकि इस जीव का कल्याण हो।<sup>२५</sup> तुम्हारे सत्संग से इसके मन में सम्यक्त्व का स्पर्श हो गया है। अब इसके मन में सम्यक् दर्शन की ज्योति जग गई है। अतः यह मिथ्यात्व में नहीं फँसेगा। याद रखो अन्तर्मुहूर्त का सम्यक् दर्शन प्राप्त करने वाला एक दिन मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। मैंने इसी योजना को कार्यरूप देने तुम्हें भेजा था। इस कारण तुम सफल हुए।

प्रभु महावीर वीतभय पत्तन पहुँचे। राजा व प्रजा ने उनका इतना सन्मान-सत्कार किया कि उनका चातुर्मास वीतभय नगरी में हुआ।

राजा ने धर्म-उपदेश सुनने के पश्चात् कहा—“प्रभु ! मैं अपने पुत्र को जब तक राज्य न दे दूँ, आप वहाँ से न जायें।”

प्रभु महावीर ने कहा—“देवानुप्रिय ! जो करना है, कर लो। शुभ काम में प्रमाद अच्छा नहीं।”

राजा घर आया। उसने चिन्तन किया—‘अगर मैं पुत्र को राज्य दे दूँगा, तो यह राज्य में आसक्त हो जायेगा। लम्बे समय तक संसार के भव-भ्रमण में भटकेगा। इस भव-भ्रमण का कारण मैं बन जाऊँगा। क्यों न मैं समस्त राज्य अपने भानजे केशी को दे दूँ। कुमार पूर्ण सुरक्षित भी रहेगा।’

राजा ने अपनी योजना अनुसार राज्य भानजे को देकर बड़े राजसी ठाट से दीक्षा ग्रहण की। उसने पंजाब का नाम ऊँचा किया। इस राजा के कारण प्रभु महावीर ने पंजाब के कई क्षेत्रों का स्पर्श किया। यहाँ की जनता को धर्म-उपदेश सुनने का अवसर मिला।

राजर्षि उदायन ने दीक्षा के पश्चात् लम्बा तप किया। उपवास से लेकर मास अवधि तक की तपस्या से शरीर कृश-क्षीण हो गया। फिर रुग्ण हो गया। वैद्यों ने दही सेवन बताया। गोकुल में यह सब सहज रूप में उपलब्ध हो जाता है। मुनि ने उसी दृष्टि से उस ओर विहार किया।

एक बार राजर्षि उदयन मुनि बनकर वीतभय पत्तन पधारे। मन्त्रियों ने भानजे केशी को इतना भड़काया कि वह इस धार्मिक आगमन को षड्यन्त्र मानने लगा। राजर्षि उदायन को न तो ठहरने को स्थान दिया और न भोजन। केशी ने उनके भोजन में जहर मिला दिया जिसे प्रभावती ने अपने देव-बल से दूर किया।

एक बार देवों की अनुपस्थिति में उन्हें विष-मिश्रित आहार मिला। यह आहार शरीर में फैल गया। मुनि ने समाधिमरण द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया। देवी प्रभावती ने उस वीतभय नगर को धूल का ढेर बना दिया। वहाँ एक कुम्हार ही बच पाया, जिसने राजर्षि उदायन की सेवा की थी। देवी उसे सिनपल्ली में ले गई जहाँ उस स्थान का नाम कुम्भकार पक्खेव पड़ा।<sup>२६</sup>

## अठारहवाँ वर्ष

प्रभु महावीर ने वीतभय पत्तन में राजा उदायन का उद्धार किया। आपने आसपास के नगरों, गाँवों में प्रचार किया। यह गाँव अधिकांश रूप से पाकिस्तानी पंजाब में पड़ते हैं। वीतभय नगर से प्रभु महावीर सीधे वाणिज्यग्राम पधारे थे। वाणिज्यग्राम किस देश में पड़ता था, इसका उल्लेख नहीं है। यहीं प्रभु महावीर ने अपना वर्षावास बिताया। इस वर्षावास में किसी प्रमुख उल्लेखनीय घटना का वर्णन नहीं मिलता।

## समीक्षा

पर जब प्रभु महावीर वीतभय पत्तन से वाणिज्यग्राम (विदेह देश) पधारे होंगे, तो कितना लम्बा विहार क्षेत्र होगा? निश्चय ही वह सिन्धु-सौविर के अन्तर्गत लम्बी दूरी तक न गये हों, पर वापसी की दूरी भी कम न रही होगी। फिर प्रभु महावीर तो ग्राम-ग्राम में धर्मदेशना देते थे। सम्भवतः हमें आज जो राजस्थान का मानचित्र प्राप्त होता है वह तो (देशी) रियासतों का संग्रह है। राजस्थान के कई भाग मध्य प्रदेश, सिन्धु, वर्तमान पंजाब, उत्तर प्रदेश से लगते थे। आज भी श्रीगंगानगर जिला पंजाब से लगता है। उस समय मुलतान, लाहौर, करनूर, गंधार आदि प्राचीन नगर थे। वहाँ भी प्रभु महावीर के भक्त थे। इसी चातुर्मास में भगवान महावीर ने अपने कुछ साधु-साध्वियों को इस क्षेत्र में छोड़ा होगा।

तभी पंजाब, हरियाणा, देहली के लोग जैनधर्मावलम्बी बनते गये। विदेशी आक्रमणकारियों ने यहाँ जैनधर्म को काफी हानि पहुँचाई है। फिर भी जैनधर्म यहाँ रहा है।

वाणिज्यग्राम का चातुर्मास सम्पन्न कर प्रभु महावीर वाराणसी में पधारे। वाराणसी वैदिक, जैन व बौद्ध परम्परा का त्रिवेणी संगम था। यहीं प्रभु सुपाश्वरनाथ उत्पन्न हुए थे। करीब ही सिंहपुर (सारनाथ) में श्रेयांसनाथ व चन्द्रपुरी में प्रभु चन्द्रप्रभ का जन्म हुआ था। वाराणसी से निर्ग्रन्थ परम्परा का रिश्ता बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इसी कारण अनेक श्रावक व साधु इस नगर में निर्ग्रन्थ श्रमण धर्म का प्रचार करते थे।

इसी नगरी में उस समय का राजा जितशत्रु भी प्रभु महावीर का भक्त था। जब उसे समाचार मिला कि प्रभु महावीर वाराणसी के कोष्टक चैत्य में विराजमान हैं, तो वह घतुरंगी सेना के साथ प्रभु महावीर का धर्म-उपदेश सुनने आया। उसने प्रभु महावीर की वन्दना की। फिर उपदेश सुनकर बहुत प्रभावित हुआ। नगर में प्रभु महावीर के आगमन व धर्मोपदेश की चर्चा होने लगी। अनेक लोग श्रावक व श्रमण धर्म में दीक्षित हुए। इनमें प्रमुख व्यक्तियों की कथा इस प्रकार है—

## चुलनीपिता की कथा

श्री उपासकदशांगसूत्र में जिन प्रमुख श्रावकों का वर्णन आया है उसमें चुलनीपिता भी एक थे। वह चौबीस करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के स्वामी थे। उनकी पत्नी श्यामा थी। उनके आठ गोकुल थे। हर गोकुल में १०,००० गायें थीं। दोनों पति-पत्नी ने प्रभु महावीर का उपदेश सुना, फिर श्रावक के बारह व्रतों को ग्रहण किया। वृद्धावस्था में पुत्र को घर का भार सँभालकर वह अपनी पौषधशाला में धर्म-आराधना करने लगे।



एक रात्रि वह धर्म-चिन्तन कर रहे थे कि मध्य रात्रि में एक देव प्रकट हुआ। उसके हाथ में चमचमाती तलवार थी। उसने कहा—“यदि तुम शील आदि ग्रहण किये व्रतों को भंग नहीं करोगे, तो मैं तुम्हारे सामने तुम्हारे तीनों पुत्रों के शरीरों को पहले इस तलवार से टुकड़े-टुकड़े करूँगा। फिर उन्हें गर्म कड़ाही में तल डालूँगा। उनके रक्त और माँस से तुम्हारे शरीर का सिंचन करूँगा।”

देवता की धमकियाँ भी श्रावक को धर्म-साधना से गिरा न सकीं। वह धर्म-साधना में लीन था। उधर देवता ने अपनी माया शुरू की। उसने अपनी शक्ति द्वारा तीनों पुत्रों को उसके सामने मारा, फिर हर पुत्र के शरीर के खण्ड-खण्ड कर पूर्व कथित रक्त से शरीर को सींचा।

चौथी बार देव गरजा। भयंकर अट्टहास करते हुए उसने कहा—“अब भी तू शील आदि व्रत नहीं छोड़ेगा तो मैं तुम्हारी माता भद्रा को तुम्हारे सामने मारूँगा और उबलते तेल में उसका रक्त-माँस पकाकर तुम्हारे शरीर को सिंचित करूँगा।”

इस बार चुलनीपिता घबरा गया। उसमें माता का मोह भाव जागृत हुआ। वह सोचने लगा—‘यह पुरुष अनार्य है, दुष्ट है। पहले इसने मेरे तीनों पुत्रों को मेरी आँखों के सामने मार दिया। उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। मेरा कर्तव्य है कि मैं इस पुरुष से अपनी माता की रक्षा करूँ।’

वह आसन से उठा और देवता को पकड़ने के लिए दौड़ा। देवता अन्तर्धान हो गया। अंधेरे में चुलनीपिता के हाथ में देव के स्थान पर खम्भा आया। वह उसे पकड़कर चिल्लाने लगा।

पुत्र की पुकार सुनकर माता भद्रा स्वयं आई। उसने कहा—“तुम्हारे तीनों पुत्र और मैं पूरी तरह सुरक्षित हूँ। लगता है तुम्हारी साधना में किसी देव ने उपसर्ग पैदा किया है। कषाय के कारण तुम उसे मारना चाहते हो। इस प्रवृत्ति से स्थूलप्राणातिपात विरमणव्रत और पौषधव्रत भंग हुआ है क्योंकि पौषधव्रत में तो अपराधी और निरपराधी दोनों प्रकार की हिंसा का त्याग है। इसलिए तुम दण्ड प्रायश्चित्त स्वीकार करो।”

चुलनीपिता परम मातृ भक्त था। इसीलिए उसने अपने तीनों पुत्रों के मारे जाने की परवाह नहीं की। पर जब माता की बारी आई, तो वह देव को पकड़ने दौड़ा। उसने माता की आज्ञा को मानते हुए आलोचना द्वारा पापों का प्रायश्चित्त किया। ग्यारह प्रतिमाओं का पालन कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ।<sup>१७</sup>

### सुरादेव श्रावक द्वारा व्रत ग्रहण

भगवान महावीर का समवसरण अभी वाराणसी के कोष्टक उद्यान में था। लोग अपनी आत्मा के कल्याणार्थ साधु व श्रावक के व्रत अंगीकार कर रहे थे। उनकी सभा में एक भक्त सुरादेव भी था जो अपनी धर्मपत्नी धन्या के साथ प्रभु के वचनानुसृत सुन रहा था। प्रभु महावीर के प्रति उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। वह १८ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का स्वामी था। उसके ६ गोकुल थे। प्रभु महावीर के उपदेशों से प्रभावित होकर उसने प्रभु महावीर से श्रावक के १२ व्रत स्वीकार किये।

चुलनीपिता श्रावक की तरह सुरादेव भी धर्म-आराधना में लग गया। एक रात्रि जब वह धर्म-आराधना पौषधशाला में कर रहा था, तो एक मिथ्यात्वी देव आया। आते ही उसने धमकी दी—‘हे मृत्यु को चाहने वाले ! इन शील आदि व्रतों को भंग कर दो। अगर तू ऐसा नहीं करेगा, तो मैं तुम्हारे तीनों पुत्रों को मारकर खण्ड-खण्ड करूँगा। फिर उन्हें कड़ाही में उबालकर उनके रक्त-माँस से तुम्हारे शरीर को सिंचित करूँगा।’ फिर देवता ने तीनों पुत्रों को मार दिया पर सुरादेव श्रावक देवता की धमकी के आगे नहीं झुका। वह धर्म में स्थिर रहा। देवता ने उसे चौथी बार धमकी देते हुए कहा—‘मैं तुम्हारे शरीर में श्वास, कुष्ठ आदि रोग पैदा करूँगा जिनके प्रभाव से तू जल्द मृत्यु को प्राप्त होगा।’

अब सुरादेव घबरा गया, क्योंकि उसने अपने पुत्रों की हत्या आँखों के सामने होती देखी थी। वह अंधेरे में उस दुष्ट देव को पकड़ने दौड़ा। देव अन्तर्धान हो गया। हाथ में खम्भे को पकड़कर चिल्लाने लगा।

ऐसे समय में उसकी धर्मपत्नी धन्या ने उसे धर्म में पुनः स्थापित किया। उसे अपनी पत्नी द्वारा बताया गया कि “आपके पुत्र सुरक्षित हैं। तुमने धर्म-साधना भंग की है। इसका प्रायश्चित्त ग्रहण करो।”

पत्नी का सुझाव उसने तत्काल मान लिया। वह लम्बे समय तक श्रावक धर्म की आराधना करता हुआ आत्मा को निर्मल बनाता गया। जीवन के अन्तिम क्षणों में उसने आलोचना, प्रायश्चित्त स्वीकार किया। आयुष्य कर्म के पूरा होने पर वह सौधर्म देवलोक में देव बना।<sup>२८</sup>

### पुद्गल परिव्राजक द्वारा श्रमण दीक्षा

वाराणसी से प्रभु महावीर आलभिया नगरी के शंखवन उद्यान में पधारे। यहाँ के राजा का नाम भी जितशत्रु था। उसने भी प्रभु महावीर का उपदेश श्रद्धा से सुना।

इसी वन के नजदीक पुद्गल परिव्राजक रहता था जो चारों वेदों व ब्राह्मण ग्रन्थों का गम्भीर ज्ञाता था। निरन्तर वह तप के साथ सूर्य के सम्मुख ऊर्ध्वबाहु खड़ा होकर आतापना लेता था। इसी तप के प्रभाव से उसे विभंगज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे वह ब्रह्मलोक तक के देवों की गति स्थिति को प्रत्यक्ष निहारने लगा।<sup>२९</sup>

उसे लगा कि उसे आत्म-ज्ञान हो गया है। मैं देख रहा हूँ कि देवों की कम से कम आयु १०,००० वर्ष होती है। ज्यादा से ज्यादा १० सागरोपम। इसके आगे न देव हैं न देवलोक। पुद्गल परिव्राजक ने अपने धार्मिक उपकरण ग्रहण किये। वह आलभिया के चौक बाजारों में अपनी मान्यता का प्रचार करने लगा। कई लोग उसके ज्ञान के प्रशंसक थे। कई शंकाएँ उठाते थे।

गणधर गौतम आलभिया नगरी में भिक्षार्थ घूम रहे थे। पुद्गल के ज्ञान व सिद्धान्त की चर्चा उनके कानों में पहुँची। भिक्षा से आते ही उन्होंने अपने गुरु प्रभु महावीर से पुद्गल की सारी बात कह डाली।

प्रभु महावीर ने समाधान करते हुए कहा—“देवानुप्रिय ! पुद्गल का कथन उचित नहीं है, देवों की आयु कम से कम १० हजार वर्ष, ज्यादा से ज्यादा ३३ सागरोपम है।”

प्रभु महावीर के इस कथन को सारी धर्मसभा ने सुना। लोगों ने प्रभु महावीर के ज्ञान की प्रशंसा की।

भगवान महावीर की यह बात पुद्गल परिव्राजक के कानों में पहुँची। वह पहले से ही जानता था कि महावीर सर्वज्ञ, जिन, अरिहंत, केवलज्ञानी, अन्तिम तीर्थंकर हैं, महान् तपस्वी हैं, उसे अपने ज्ञान पर विश्वास न रहा। वह उसे ज्यों-ज्यों चिन्तन करता गया उसका विभंगज्ञान लुप्त होता गया। वह प्रभु महावीर के समवसरण में पहुँचा। विधियुक्त वन्दना की और उचित स्थान पर बैठ गया।

भगवान महावीर के प्रवचन को सुनकर उसे निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा उत्पन्न हो गई। वह श्रमण बन गया। फिर भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभु महावीर के निर्देशन व आज्ञा में तप द्वारा आत्मा को पवित्र बनाता हुआ अन्तिम समय मोक्ष में चला गया। जैन परम्परा में मोक्ष किसी लिंग, जाति, समुदाय तक सीमित नहीं है। हर साधक देश, कुल, लिंग के भेद से परे होकर उसे प्राप्त कर सकता है।<sup>३०</sup>

### चुल्लशतक द्वारा श्रावक धर्म-आराधना

उस समय आलभिया नगरी में चुल्लशतक और उसकी धर्मपत्नी श्यामा रहते थे। इनके पास १४ करोड़ों की स्वर्ण-मुद्रायें और ६०,००० गायों के ६ गोकुल थे। प्रभु महावीर से इन्होंने श्रावक के व्रत स्वीकार किये।

एक रात्रि चुल्लशतक श्रावक पौषधशाला में बैठा धर्म-आराधना कर रहा था। एक देव रात्रि के समय प्रकट हुआ। उसने तीन बार धमकी देते हुए कहा—“अगर तू इस भगवान महावीर के श्रावक धर्म को नहीं छोड़ेगा, तो मैं तुम्हारे पुत्रों को मारकर उबालूँगा और उनके रक्त-माँस से तुम्हारे शरीर को सिंचित करूँगा।”

जब श्रावक अपनी साधना में स्थिर रहा तो देव ने अपनी माया से यह काम भी कर डाला। चुल्लशतक स्थिर रहा। देव ने पुनः धमकी देते हुए कहा—“अगर तू अभी भी नहीं मानता, तो मैं तुम्हारा धन चौराहे में फेंक दूँगा जिस कारण तू दरिद्री हो जायेगा। भिखारी बनकर दर-दर की ठोकें खायेगा।”

इस बार चुल्लशतक घबरा गया। उसने वही चिन्तन किया जो पूर्व कथित श्रावकों ने किया था। उसने देव को पकड़ना चाहा, पर देव-माया सिमट चुकी थी। हाथ में खम्भा आया।

पत्नी श्यामा ने यहाँ उसे धर्म में स्थिर कर, उसकी भूल का प्रायश्चित्त करने को कहा। पत्नी के कहे पर उसने शास्त्र की विधि अनुसार दण्ड प्रायश्चित्त ग्रहण किया और पुनः धर्म में स्थित हो गया।

जीवन के अन्तिम क्षणों में वह आयुष्य पूर्ण कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ।<sup>३१</sup> चुल्लशतक के साथ अनेक लोगों ने श्रावक धर्म के व्रत स्वीकार किये।

आलभिया में धर्म-प्रचार करने के पश्चात् गाँव-गाँव घूमते पुनः राजगृही नगरी में पधारे। वहाँ प्रभु महावीर गुणशील चैत्य में पधारे। राजा श्रेणिक व रानी चेलना दर्शन करने आये। यहाँ अन्तकृद्शा, वर्ग ७, अ. २ में वर्णित मंकाती, विक्रम, अर्जुन और काश्यप ने दीक्षा अंगीकार की।

गाथापति मंकाती राज्यगृह का निवासी था। प्रभु महावीर के उपदेश से प्रभावित हो इसने पुत्र को घर-भार सौपा। १६ वर्ष तक साधु-जीवन का पालन किया। मंकाती मुनि ने ग्यारह अंगों के अध्ययन के साथ-साथ गुणरत्न संवत्सर तप किया। केवलज्ञान प्राप्त कर विपुलांचल पर्वत पर मोक्ष पधारे।

राजगृही निवासी विक्रम ने भी इसी प्रकार से साधु-जीवन ग्रहण किया। स्वाध्याय किया। गुणरत्न संवत्सर तप किया। अन्त समय विपुलांचल पर्वत से मोक्ष गमन किया।

## अर्जुनमाली की दीक्षा

अर्जुनमाली की दीक्षा का प्रकरण जैन इतिहास का महत्त्वपूर्ण प्रकरण है।

इन्हीं दिनों राजगृह में महत्त्वपूर्ण घटना घटी। अर्जुन नाम का एक माली यहाँ रहता था। वह रोजाना अपनी सुन्दर पत्नी के साथ बगीचे में जाता। फूल मालाएँ तैयार करता फिर उसके अधीन कर्मचारी उन मालाओं को बाजार में जाकर बेच आते।

उस बगीचे में मुद्गरपाणी यक्ष का मन्दिर था। अर्जुन बचपन से ही उसका भक्त था। वह हर सुबह स्नान कर पत्नी के साथ उस यक्ष की पूजा, अर्चना, वन्दना करता।

उसी राजगृही नगरी में ललित नाम का स्वच्छन्द, आवारा, क्रूर और व्यभिचारी रहता था। उसके मित्र उसी की तरह उसका अनुकरण करते थे। शहर में इन लोगों का आतंक था। यह लोग ललितगोष्ठी नाम से प्रसिद्ध थे, क्योंकि ललित इनका मुखिया था।

एक दिन अर्जुनमाली फूलों को तोड़ने बाग में पहुँचा। उस दिन दुर्भाग्यवश यह छह बदमाश उस मन्दिर में आकर छिप गये, जहाँ अर्जुनमाली रोजाना पूजा के लिए आता था। ज्यों ही अर्जुनमाली ने सिर झुकाया, उन छह व्यक्तियों ने अर्जुनमाली को बाँध दिया।

फिर उसके सामने सभी व्यक्तियों ने बारी-बारी से बंधुमति के साथ दुष्कर्म किया। अर्जुनमाली को अपनी पत्नी व देवता, दोनों पर गुस्सा आ गया। वह सोचने लगा—‘यह कैसा देव है जो अपने भक्त की रक्षा नहीं कर पा रहा। इसी के सामने, इसी के मन्दिर में मुझे बाँधा गया। फिर छह व्यक्तियों ने मेरी स्त्री से बारी-बारी कुकर्म किया है। यह तो पत्थर की मूर्ति है। मैं तो बेकार इसकी पूजा बचपन से करता आ रहा हूँ। इसने मुझे क्या लाभ दिया है?’

भक्त की पुकार कभी खाली नहीं जाती। यही अर्जुनमाली के साथ हुआ। वह यक्ष अर्जुनमाली के शरीर में प्रवेश कर गया। उसके बंधन टूट गये। उसने छह पुरुषों और बंधुमति को वहीं मार दिया।

अब अर्जुन के शरीर में अर्जुन नहीं रहा था। उसके शरीर पर मुद्गरपाणी का अधिकार था। अर्जुन देवता का भारी मुद्गर उठाये फिरता। हर रोज छह पुरुष और एक महिला की हत्या करना उसका रोजाना का क्रम बन गया।

अर्जुन के भयंकर उपद्रव से राजा और प्रजा में हाहाकार मच गई। सारे राजगृह में भयंकर आतंक छा गया। राजा ने उसे पकड़ने के अनेक प्रयास किये, पर सफलता हाथ न लगी। ५ महीने १३ दिन में उसने १,१४१ मनुष्यों का घात किया। पर इस बात का असली अर्जुन को तो पता ही नहीं था। यह काम तो देव-शक्ति अर्जुन के शरीर में रहकर कर रही थी।

आखिर राजा श्रेणिक ने नगर के द्वार बन्द करवा दिये। साथ में प्रजा को निर्देश दिया—“कोई भी व्यक्ति, किसी भी जरूरत के लिए जंगल में न जाए। क्योंकि वहाँ अर्जुनमाली घूमता है जो छह पुरुष व एक स्त्री को हर रोज मारता है।” राजा के आदेश को सारी प्रजा मानने लगी। उसी समय संसार के समस्त जीवों के आराध्य चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर राजगृह नगर पधारे। नगर में गुप्तचरों के माध्यम से प्रभु महावीर के आगमन की सूचना मिली। राजा ने इस बार प्रभु महावीर को भाव वन्दन किया क्योंकि वह भी अर्जुनमाली से आतंकित था।

उधर राजगृह में सुदर्शन नामक श्रमणोपासक रहता था। प्रभु महावीर के आगमन का समाचार उसने भी सुना। उसने अपने माता-पिता से प्रभु महावीर के दर्शन-वन्दन की आज्ञा माँगी। माता-पिता ने उसे अर्जुन के आतंक के बारे में बताया। पर वह तनिक विचलित नहीं हुआ। नगर के द्वार खुलवाकर वह बाहर निकला। सुदर्शन को अपनी जान से प्यारे प्रभु महावीर के दर्शन थे। सुदर्शन का जीवन ही प्रभु-भक्ति का साकार उदाहरण है। वैसे भी धार्मिक व्यक्ति के मन में मौत का भय नहीं होता। फिर वह अर्जुन के भय से कैसे डरता? वह धीरे-धीरे अभय भाव से आगे बढ़ रहा था। दूर से अर्जुन ने उसे आते देखा। वह सुदर्शन की ओर लपका। सुदर्शन ने अपनी ओर अर्जुन को आते देखकर सागारी संथारा कर ध्यान मुद्रा में खड़ा हो गया। अर्जुन ने मुद्गर घुमाकर सुदर्शन को ललकारा, किन्तु सुदर्शन ध्यानस्थ थे।

एक ओर हिंसक शक्ति थी, दूसरी ओर अहिंसा की शक्ति। कुछ क्षण दोनों में संघर्ष चला। हिंसा व आसुरी शक्ति का प्रतीक, यक्ष देव सुदर्शन की अहिंसा के कारण अर्जुन का शरीर छोड़ भाग गया। यक्ष के निकलते ही अर्जुन धड़ाम से भूमि पर गिरा। उस समय तो वह मूर्च्छित हो गया। ध्यान से निवृत्त हो सुदर्शन ने अर्जुन को संभाला। फिर सुदर्शन ने उसे प्रतिबोध दिया।

अर्जुन ने पूछा—“देवानुप्रिय ! आप कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं? मैं यहाँ कैसे पहुँचा?”

सुदर्शन ने उत्तर दिया—“प्रिय ! यक्ष का तुम्हारे शरीर में प्रवेश के कारण तू अपना स्वरूप भूल गया था। अब यक्ष निकल गया है, तू अब ठीक है। बाकी मैं अपने धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर के दर्शन करने जा रहा हूँ।”

अर्जुन भी महावीर के दर्शन करने के लिए तैयार हो गया। दोनों बड़ी श्रद्धा से प्रभु महावीर के समवसरण में पहुँचे।

अर्जुन के शुभ कर्म का उदय हो चुका था। उसने धर्म-उपदेश सुना। वह प्रभु महावीर के चरणों में भिक्षु बन गया। कल का चोर, हत्यारा, आतंकवादी प्रभु महावीर के धर्म-उपदेश से साधु बन चुका था।

साधु बनते ही वह बैले-बैले तप की आराधना करने लगा। पर वह ज्यों ही किसी गली, मोहल्ले में भिक्षा के लिए पहुँचता तो उसे ताड़ना, तर्जना और प्रहार सहना पड़ता। गली मोहल्ले में लोग इकट्ठे हो जाते, वह उस पर ताने कसते। छोटे बच्चे अर्जुन मुनि पर ईंटें बरसाते। जब भी वह पारणा के लिए भिक्षा को निकलते, लोग चिल्लाते—“कोई कहता इसने मेरी माँ की हत्या की है। मेरे मित्त और स्वजनों को बिना कारण मारा है।”

उन्हें भिक्षा मिलनी दुर्लभ थी। कभी-कभी अन्न मिलता तो पानी न मिलता। पानी मिल जाता तो भोजन असंभव हो जाता। सब परीषहों को वह शांत होकर समभाव से सहते। किसी के प्रति भी क्रोध, द्वेष की भावना मन में न लाते। वह उलाहाने, भर्त्सना, गालियों को सहते गये।

छह महीने तक यह क्रम चलता रहा। अर्जुनमाली ने इन परीषहों, उपसर्गों को हँसते-हँसते झेला। वह सोचते-‘ये लोग सत्य कहते हैं-मैं पापी, हत्यारा हूँ। इनके स्वजनों-मित्रों का घाती हूँ। मेरे पाप का कोई दण्ड प्राश्चित्त नहीं है। पहले मैंने इन्हें कष्ट दिये हैं, अब इन्हें कुछ भी कहने का अधिकार है।’

यह उपसर्ग-परीषह रंग लाए। मात्र छह महीने संयम-पालन करके अर्जुन मुनि को केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त हो गया। वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गये। अब उनकी आत्मा परमात्मा बन गई। जन्म, जरा, व्याधि से मुक्त हो गये।

## काश्यप की दीक्षा

राजगृह के काश्यप गाथापति ने प्रभु महावीर का धर्म-उपदेश सुन दीक्षा ग्रहण की। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। उत्कृष्ट तप द्वारा १६ वर्ष संयम पाला। अन्त समय में विपुलागिरि पर्वत से मोक्ष पधारे।<sup>३२</sup>

उस समय बहुत से महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने साधु जीवन अंगीकार किया। इनमें वारत्त नामक गाथापति भी था। साधु बनते ही उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। १२ वर्षों तक संयम की उत्कृष्ट आराधना कर वह भी मोक्ष पधारे।

## नन्द मणिकार द्वारा श्रावक व्रत ग्रहण करना

भगवान महावीर का यह वर्षावास राजगृह नगर में सम्पन्न हुआ।

इसमें नन्द मणिकार ने प्रभु महावीर के उपदेश को सुनकर श्रावक व्रत ग्रहण किये थे। इस श्रावक की कथा इस प्रकार है-

प्रभु महावीर के समवसरण में देव ने स्वर्ग से आकर वन्दन किया फिर उसने विभिन्न प्रकार के नाटक प्रभु महावीर के सामने किये। उस देव के साथ अनेकों देव-देवियाँ थीं। कुछ ही समय के पश्चात् देव ने अपनी माया समेट ली। प्रभु महावीर को पुनः वन्दन कर जाने की आज्ञा माँगी।

मगध सम्राट् श्रेणिक भी प्रभु के इस समवसरण में बैठा यह सब देख रहा था। उसने जब देव के समस्त नाटकों व ऋद्धि को देखा तो दंग रह गया। प्रभु महावीर के शिष्य गणधर इन्द्रभूति से प्रश्न किया-“भंते ! यह देव जो अभी-अभी आपके समक्ष अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन करके गया है, वह कौन था ?”

प्रभु महावीर-“गौतम ! यह सौधर्म देवलोक में दुर्दर देव था। अभी-अभी वहीं स्वर्ग में उत्पन्न हुआ है। उसके अधीन ४ हजार सामानिक देव-देवियों का परिवार स्वर्ग में रहता है। दुर्दरांक इसके विमान का चिन्ह है।” गणधर गौतम ने प्रभु महावीर के समक्ष जिज्ञासा रखी-“प्रभु ! ऐसा कौन-सा कर्म था जिसके कारण इसे यह ऋद्धि मिली। यह पूर्वभव में कौन था ?”

इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु महावीर ने गणधर गौतम की जिज्ञासा का समाधान करते हुए इसका विचित्र पूर्वभव बताया- “हे देवानुप्रिय ! इस देव के पूर्वभव की कथा मैं तुम्हे सुनाता हूँ-

इसी राजगृह नगरी में एक नन्दन मणिकार रहता था। वह हीरे, मोती, मणियों का कार्य करने के कारण प्रसिद्ध था। धन-धान्य से सम्पन्न था।

एक बार मैं (भगवान महावीर) अपना धर्म-प्रचार करते हुए राजगृह नगरी में आया। वहाँ मेरे समवसरण में इसने श्रावक के व्रत स्वीकार किये। यह जीव-अजीव का ज्ञाता श्रमणोपासक बन गया।

अब यह श्रावकों के व्रत का शुद्धता से पालन करता। यह भोजन में संयम रखता। अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों पर उपवास-पौषध व्रत का पालन करता। जीवन में प्रामाणिकता रखता।

पर धीरे-धीरे संत समागम न मिलने के कारण उसकी धर्म-श्रद्धा में शिथिलता आने लगी। यह सब प्रवचन सुनने व स्वाध्याय के न करने से हुआ। पर कर्म गति बड़ी विचित्र है, एक बार इसके मन में पुनः धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। इसने अपनी पौषधशाला में पौषध व्रत की धर्म-आराधना शुरू की। यह पौषध इसने तीन दिन के लिए ग्रहण किया।

दो रात्रियाँ ठीक गुजरीं। तीसरी रात्रि बाकी थी। दिन तो जैसे-तैसे करके बीत गया। रात्रि में भंयकर गर्मी पड़ने लगी। नंद मणिकार के शरीर से पसीना आने लगा। अब उसे भूख-प्यास भी सताने लगी। प्यास के मारे उसका गला सूख गया। गले का थूक तक सूख गया।

नंद मणिकार सोचने लगा कि—‘जीवन में पानी का कितना महत्त्व है। मेरी यह रात्रि पूर्ण हो जाये, तो सुबह उठते ही मैं राजा श्रेणिक की आज्ञा से वैभारगिरि पर्वत के पास बाबड़ी बनाऊँगा। एक सुन्दर विशाल बाग लगाऊँगा जिसमें सार्वजनिक प्याऊ होगा।’

सुबह हुई। नंद मणिकार घर आया। पारणा करने के पश्चात् वह सीधा तुम्हारे (राजा श्रेणिक) के पास गया। राजा ने उसे वैभारगिरि के पास बाबड़ी बनाने की स्वीकृति प्रदान कर दी और पुण्य-कार्य समझकर भूमि भी प्रदान की।

सेठ ने कारीगर लगाये। कुछ निश्चित समय में सुन्दर बाबड़ी व बाग तैयार हो गया। योजनानुसार उसमें प्याऊ लगा। बाबड़ी जो पुष्करिणी के नाम से प्रसिद्ध थी, इसका नामकरण भी उसने अपने नाम पर नन्द पुष्करिणी रखा।

इस बाबड़ी के पूर्व दिशा में चित्तशाला का निर्माण कराया। दक्षिण दिशा में चिकित्सालय बनाया। उत्तर दिशा में अलंकार सभा का निर्माण किया जहाँ हर थका-माँदा अपनी मालिश करवा सकता था।

नंद अब पूरी तरह लोकैषणा (प्रसिद्धि) के दलदल में फँस चुका था। जब भी लोग नंद पुष्करिणी की प्रशंसा करते, तो उसका सीना अहंकार से फूल जाता। परोपकार के साथ जब लोकैषणा का भाव जुड़ जाये, तो पुण्य कार्य की मूल भावना समाप्त हो जाती है। यह नन्द मणिकार के साथ हुआ।

अपने पुण्य कार्यों की प्रशंसा सुनते-सुनते उसका अहं बढ़ता गया। आखिर जीवन की शाम आ गई। वह बीमार पड़ा। पर अब उसका आयुष्य समाप्त हो चुका था। वह मर गया।

मरने से पूर्व उसने कोई धर्म-आराधना नहीं की। अपने रिश्तेदारों से पुष्करिणी का ध्यान रखने को जरूर कहा।

उसे अंत समय भी अपनी बाबड़ी का ध्यान रहा। वह मरकर उसी बाबड़ी में मेंढक बना।

मेंढक बनने के पश्चात् भी उसे अपना पूर्वभव याद रहा। वह अपनी ही बाबड़ी में दुर्लभ मानव शरीर त्यागकर मेंढक बना था। कभी-कभी वह किनारे पर आ जाता। लोगों से अपनी यशःकीर्ति की गाथा सुनता तो इस तिर्यच भव में भी वह प्रसन्न होता।

एक बार मैं पुनः राजगृही नगरी में पहुँचा। मेरा समवसरण लगा। धर्म-प्रवचन होने लगा। उधर राजा श्रेणिक चतुरंगी सेना सहित वन्दना करने आ रहे थे।

यह मेंढक भी उस समय किनारे पर बैठा था। उसने मेरे आगमन की सूचना सुनी तो उसने पहले मुझे भाव वन्दन किया। फिर वह तालाब से बाहर आया। इसका चिंतन बदल चुका था। यह सोच रहा था कि ‘इस आसक्ति के कारण मैं इस योनि में पैदा हुआ हूँ। मुझे समवसरण में जाकर उपदेश सुनना चाहिये।’

इसी चिंतन के कारण यह मुख्य राजमार्ग पर आया। आते ही इसका सामना राजा श्रेणिक की चतुरंगी सेना से पड़ा। मेंढक ने हौसला नहीं छोड़ा। धर्म के आवेग में ज्यों ही आगे बढ़ा, तो घोड़े के पाँव के नीचे आकर कुचल गया। उसने अंतिम समय धर्म-आराधना करते हुये अरिहंत सिद्ध का शरण लिया।

पूर्वभव की थोड़ी-सी धर्म-श्रद्धा के कारण अब यह महान् ऋद्धि वाला देव बना है।

सो किसी भी कार्य में आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। राग-द्वेष कर्म का बीज है। आसक्ति से बचने वाला जीव धर्म के मूल तत्त्व को पहचानता है। लोकैषणा के साथ किया गया दान-पुण्य का शुद्ध धर्म से कोई संबंध नहीं। आत्म-कल्याण तो लोकैषणा के भाव से ऊपर उठकर किये गये कार्य से होता है।

प्रभु महावीर के समाधान से गणधर गौतम इन्द्रभूति का समाधान हो गया। इससे भी सिद्ध होता है कि तियच भी पूर्वजन्म याद आने पर धर्म-आराधना कर सकते हैं।

प्रभु महावीर ने कहा-“थोड़ी-सी धर्म-आराधना जीव के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती है।”

## उन्नीसवाँ वर्ष

वर्षावास सम्पन्न कर प्रभु महावीर धर्म-प्रचार करने के लिये कुछ समय राजगृह में रहे। राजा श्रेणिक प्रभु महावीर का परम भक्त था। जीवन में शुरू के दिनों में वह कुछ समय बौद्ध भिक्षुओं के संपर्क में आया था पर फिर अनाथी मुनि की घटना व रानी चेलणा ने उसे जैन राजा बना दिया। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह दूसरे धर्मों को द्वेषभाव से देखता था। वह सभी धर्म का अहिंसक ढंग से सम्मान करता था।

जैनधर्म में किसी को लालच देकर जैन बनाने की परम्परा को कभी तीर्थकरों ने स्वीकार नहीं किया। जैनधर्म गुणों की पूजा करता है। वे गुण हैं--अहिंसा, संयम व तप। जहाँ पूर्वाग्रह नहीं, मिथ्यात्व नहीं, पाप नहीं, वही जैनधर्म की दृष्टि से सच्चा धर्म है। जैन आत्मा से परमात्मा बनने की यात्रा का नाम है।

## राजा श्रेणिक की जिज्ञासा

प्रभु महावीर राजगृही नगरी में विराजमान थे। गुणशील चैत्य में प्रभु महावीर की धर्मसभा में जिनवाणी की अखण्ड धारा चल रही थी। राजा श्रेणिक प्रभु महावीर का प्रवचन सुन रहा था।

तभी एक विचित्र घटना ने राजा श्रेणिक में कई जिज्ञासाएँ उत्पन्न कर दीं जिसे प्रभु महावीर ने बाद में शांत किया। उसी सभा में एक बूढ़ा कोढ़ी आया। फटे-पुराने वस्त्रों और बीमारी ने उसका बुरा हाल कर रखा था। आते ही उसने इधर-उधर की बातें कीं। राजा श्रेणिक, अभयकुमार और प्रभु महावीर को छींक आई।

फिर उस पुरुष ने राजा श्रेणिक को संबोधित करते हुए कहा-“तुम चिरकाल तक जीओ।”

लोग हैरान थे कि कैसा व्यक्ति है जो प्रभु महावीर की ओर पीठ कर राजा को नमस्कार कर रहा है।

फिर उसने प्रभु महावीर की ओर देखा। नमस्कार करते हुए बोला-“तुम शीघ्र ही क्यों नहीं मर जाते?”

इस वृद्ध कुष्टि की बात सुनकर सारी धर्मसभा में तहलका मच गया। राजा श्रेणिक क्रोधित होने लगे। पर यह तो प्रभु महावीर का समवसरण था जहाँ शेर और बकरी एक घाट पर जल ग्रहण करते थे। यहाँ कौन, किसे रोकने का अधिकार रखता था? सबको कुछ भी कहने का अधिकार था।

वृद्ध कुष्टि ने अभयकुमार को संबोधित करते हुए कहा-“तुम चाहे जीओ, चाहे मरो।”

लोगों का कुतूहल बढ़ता जा रहा था। वहाँ एक कसाई काल शौकरिक भी बैठा था। उसे देखते ही वृद्ध कुष्टि ने कहा-“तुम न तो मरो, न जीओ।”

इस वृद्ध कुष्टि की बात भी किसी की समझ में नहीं आ रही थी। सारी सभा उसके प्रभु महावीर के प्रति अभद्र व्यवहार से दुःखी थी।

पर शीघ्र ही वह व्यक्ति अदृश्य हो गया। राजा श्रेणिक ने पूछा-“प्रभु ! यह कुष्टि वृद्ध कौन था, जो आपके प्रति भरी सभा में अभद्र शब्दों का प्रयोग करके गया है?”

प्रभु महावीर ने समाधान करते हुए कहा-“राजन् ! इस सभा में आया वृद्ध कुष्टि कोई मनुष्य नहीं था, यह तो देव था। इसने जो कहा है इस कटु सत्य को तुम समझ नहीं पाये। इसने हमारे बारे में जो भविष्यवाणी की है यह सब अमर सत्य है। यह कर्म गति का फल है।”

## प्रभु द्वारा स्पष्टीकरण

हे राजन् ! उस वृद्ध ने तुमसे कहा—“जीते रहो।” इस बात में परम रहस्य छिपा है। इसका अर्थ है इस जन्म में तुम मगध के सम्राट् बने धन, सम्पदा, परिवार के स्वामी हो। तुम जितने दिन जीवित रहोगे उतने दिन इस संसार में कोई कष्ट नहीं है। पर आगामी भव में तुम्हारे लिए नरक तैयार है। वहाँ भयंकर कष्ट है, दारुण वेदना है। यह फूल है तो अगले जन्म में शूल है। इसलिए जब तक जीवित हो तभी तक तुम्हारे लिए अच्छा है। तुम्हारा मरण अच्छा नहीं।”

फिर इसने मुझे कहा—“तुम मरो।” राजन् ! यह जन्म मेरा आखिरी जन्म है, घनघातीय कर्मों का नाश मैंने कर दिया है। मैं केवलज्ञान द्वारा अर्हत् अवस्था में हूँ। अंतिम अवस्था अर्हत् अवस्था नहीं, जन्म-मरण से मुक्त अवस्था है जिसे सिद्ध गति कहते हैं। फिर आत्मा, परमात्मा बन जाती है। आवागमन, जन्म, जरा, व्याधि की समाप्ति हो जाती है। यही पूर्ण अवस्था है। इसीलिए मेरी देह को बन्धन मानते हुए मुझे मरने को कहा है।

राजन् ! उस देव ने अभयकुमार से कहा “तुम चाहे जीओ, चाहे मरो।” अभयकुमार का जीवन में भोग के साथ त्याग भी है। इसका जीवन भ्रमर के समान है, जो रस लेते हुए भी डूबता नहीं इसलिए इसका जीवन यहाँ भी सुखी है। भय और शोक से रहित है। अगला जीवन भी भव्य है। यह यहाँ से मरकर देव बनेगा। इसका आगामी भव भी भव्य है। लोक में भी इसे सुख है, परलोक में भी यह सुखी रहेगा। इसीलिए देव ने कहा—“चाहे जीओ, चाहे मरो।”

मेरी सभा में कालशोरिक के लिए उसने कहा—“न मरो न जीओ।” इसका अर्थ यह है कि इसका जीवन यहाँ भी दरिद्रता और अंधकार से व्याप्त है। वह हिंसा और क्रूरता की ज्वलंत प्रतिमा है। ऐसी परिस्थिति में आगामी भव में सुख किस प्रकार आ सकता है ? वह जब तक जीता रहेगा, तब तक हिंसा करता रहेगा और मरकर नरक में पैदा होगा। इसे यहाँ भी शांति नहीं और न परलोक इसका सुखी है। इसीलिए देव ने कहा—“इसका न मरना अच्छा, न जीना।”

राजा श्रेणिक प्रभु के समाधान सुनकर नतमस्तक हो गया। पर साथ में अपने भविष्य को सुनकर दुःखी हुआ। उसने कहा—“प्रभु ! आपका भक्त क्या नरक में जाता है ?”

प्रभु महावीर राजा श्रेणिक की भयत्रस्त आत्मा की भाषा को जान चुके थे।

प्रभु महावीर ने कहा—“राजन् ! कर्मफल का संबंध जीवात्मा से है। मैं तो स्वयं कर्मबंधन तोड़ने के प्रयत्न में हूँ। तू अज्ञानता के कारण कर्मलीला को नहीं समझ रहा। तुमने मृग हत्या के कारण पहले ही नरक आयुष्य बाँध लिया है। रही बात मेरी भक्ति की, इसकी उपासना का फल तो तुझे शीघ्र मधुर मिलेगा। जैसे मैं अंतिम तीर्थंकर के रूप में पैदा हुआ हूँ, तू भी भविष्य में होने वाली तीर्थंकर परम्परा का प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ बनेगा। पर याद रखो, हर जीव को किये कर्मों का फल भोगना होता है। आगामी भव में तुझे नरक जाना है।”

राजा श्रेणिक जहाँ अपने नरक-गमन की भविष्यवाणी से दुःखी था वहाँ तीर्थंकर गोत्र बाँधने के समाचार से अत्यधिक प्रसन्न हुआ। पर फिर भी उसे प्रभु महावीर पर बहुत भरोसा था। अथाह श्रद्धा थी। उसी श्रद्धावश राजा ने प्रभु महावीर से पूछा—“क्या नरक-गमन को टालने का कोई उपाय है ?”

प्रभु महावीर श्रेणिक की अज्ञानता को पहचान रहे थे। उन्होंने राजा श्रेणिक को समझाने के लिए कुछ उपाय बताते हुए कहा—“राजन् ! कपिला ब्राह्मणी सुपातदान दे तथा कालशोरिक कसाई जीव-हिंसा का त्याग कर दे तो तुम्हारा नरक टल सकता है।”

आचार्यप्रवर श्री देवेन्द्र मुनि जी ने इस संदर्भ में कहा है—“उत्तरवर्ती ग्रंथों में प्रभु महावीर द्वारा दो और उपाय बताने का वर्णन है। वह है—राजा श्रेणिक की दादी मुनियों के दर्शन करे या पूणिया श्रावक एक सामायिक का फल दे।”



## दादी द्वारा आँख फोड़ना

नरक-गमन टालने हेतु राजा श्रेणिक महलों में आया। वह अपनी दादी को सरल समझता था। उसने अपनी दादी से भगवान महावीर के दर्शन की प्रार्थना की, पर वह न मानी। उसने स्पष्ट इन्कार करते हुए कहा—“मैं निर्ग्रथों के दर्शन नहीं करूँगी।”

राजा श्रेणिक ने एक पालकी बनाई, उसमें दादी को बैठाया और समवसरण में ले गया। दादी ने समवसरण के आने से पहले अपनी दोनों आँखें फोड़ डालीं। नरक टालने का पहला प्रयत्न बेकार गया।

## कपिला द्वारा दान देने से इन्कार

कपिला ब्राह्मणी चाहे राजा श्रेणिक की दासी थी पर वह कट्टर ब्राह्मण विचारधारा की समर्थक थी। राजा ने कपिला से कहा—“अगर तुम किसी मुनि को अपने हाथ से दान दे दो, तो मेरा नरक टल जायेगा।”

कपिला ब्राह्मणी ने कहा—“मैं तो दान का पाल ब्राह्मण को मानती हूँ। इन भिखमंगों को दान कैसे दूँ? राजन्! मुझे महावीर की चाणी में कोई विश्वास नहीं।”

कपिला के इन्कार करने पर राजा ने और ढंग अपनाया। राजपुरुष किसी मुनि को भिक्षा के लिए ले आये। उधर राजा श्रेणिक ने कपिला के हाथ पर कड़ची बाँध दी। मुनिराज जब कपिला के सामने आये, तो कपिला चिल्लाकर कहने लगी—“यह दान मैं नहीं कर रही, राजा श्रेणिक की कड़ची कर रही है।” मुनिराज ने ज्यों ही यह बात सुनी, मुनिराज बिना भोजन लिये चले गये। राजा श्रेणिक का यह प्रयत्न भी बेकार गया। राजा असमंजस में पड़ चुका था।

## कालशौरिक को कैद करना

राजा श्रेणिक कालशौरिक कसाई के पास गया। उसने कालशौरिक को कहा—“देखो भाई! तुम एक दिन के लिये ५०० भैंसे मारने बंद कर दो। मैं तुम्हें उपयोगी इनाम दूँगा और तुम्हारा नुकसान भी पूरा कर दूँगा। तुम्हारे इस प्रयत्न से मेरा नरक-गमन टल जायेगा।”

कालशौरिक राजा श्रेणिक को देखकर दंग रह गया। उसने कहा—“महाराज! तुम्हारे नरक-स्वर्ग के चक्कर में हम अपना धंधा कैसे चौपट कर दें? फिर मैं तो इस बात को व्यर्थ समझता हूँ। मैं अपना धंधा चौपट नहीं करूँगा।”

कालशौरिक के इनकार करने पर उसे कैद में डाल दिया गया। उसे अंधकूप में रखा गया ताकि वह एक दिन किसी प्रकार के जीव का वध न कर सके। पर कालशौरिक वहाँ बैठा भाव-हिंसा करता रहा। वह चित्तमय भैंसा बनाता और उसे काट देता। इस प्रकार उसने कुएँ की दीवारों ५०० भैंसे मारकर भर डालीं।

राजा श्रेणिक निश्चिन्त हो गया कि उसका नरक टल गया है। सुबह हुई। राजा श्रेणिक प्रभु महावीर के दर्शन करने आया। फिर उसने कहा—“प्रभु! मैंने आपके बताये उपायों में से एक पूरा कर दिया है। मैंने कालशौरिक कसाई को जीव हत्या से मना कर दिया है।”

प्रभु महावीर ने राजा श्रेणिक के मनोगत भावों को समझाते हुए कहा—“राजन्! जबर्दस्ती से किसी से अहिंसा का पालन नहीं करवाया जा सकता। बात भाव व मन बदलने से बनती है। उसके मन में हिंसा के भाव अभी भी विद्यमान हैं। चाहे तूने उसे बंदी बना अंधकूप में डाल दिया है। पर उसने आज भी ५०० चित्तमय भैंसों की हत्या की है, जो भाव-हिंसा है।” राजा श्रेणिक ने वापस बंदीगृह आकर देखा तो प्रभु महावीर का कथन सत्य था।

## पूणिया श्रावक की सामायिक

राजा श्रेणिक के नरक-गमन के पहले प्रयत्न विफल हो गये। वह हताश हो गया। वह नरक के भय से इतना डरा हुआ था कि वह पुनः पूणिया श्रावक की कुटिया में पहुँचा। पूणिया श्रावक आर्थिक दृष्टि से तो गरीब था पर आध्यात्मिक

दृष्टि से उससे बड़ा अमीर कोई न था। पूणि्या व उसकी धर्मपत्नी दोनों सूत कातकर गुजारा करते थे। प्रामाणिक अन्न द्वारा जीवन की गाड़ी चलाते थे। वे काम के अलावा ज्यादा समय श्रावक का एक प्रमुख व्रत सामायिक में गुजारते।

आज मगध सम्राट् श्रेणिक उस पूणि्या श्रावक की झोपड़ी तक स्वयं पहुँचा था। वह यह नहीं समझ पा रहा था कि कर्म का फल नहीं बदलता। उसे प्रभु महावीर पर अथाह भरोसा था। उसके सम्यक्त्व की स्वयं महावीर ने इतनी प्रशंसा की थी। स्वयं एक देव-परीक्षा में श्रेणिक उत्तीर्ण हुआ था। सम्राट् श्रेणिक को अपनी झोपड़ी में आया देख पूणि्या श्रावक को कुछ आश्चर्य हुआ। किसी राजा का गरीब की झोपड़ी तक पहुँचना कम ही देखा गया है।

राजा श्रेणिक अपनी माया के अहंकार में डूबा हुआ, एक सामायिक की कीमत देने को तैयार हो गया था। अज्ञानतावश वह यह नहीं जान पाया था कि सामायिक खरीदने-बेचने की चीज नहीं है। साधना बेची नहीं जाती, न ही कोई दे सकता है। पर श्रेणिक अहंकार के हाथी पर चढ़ा हुआ था। हमेशा धनवान भक्ति से ज्यादा धन को महत्त्व देता है। वह धन से धर्म खरीदना चाहता है पर हमेशा असफल रहता है क्योंकि धर्म, धन का नाम नहीं भाव दशा का नाम है जो खरीदा नहीं जा सकता, स्वयं घटित होता है।

पूणि्या श्रावक ने राजा को प्रणाम किया। फिर यथा स्थान राजा को बैठाकर हाथ जोड़कर आने का कारण पूछा। राजा श्रेणिक ने कहा—“आज मैं तेरे दर पर आया हूँ। प्रभु महावीर ने मेरे नरक-गमन टालने का एक यत्न बताया है।”

पूणि्या ने कहा—“राजन् ! मेरे योग्य सेवा हो सो बतायें। मैं इस संदर्भ में क्या कर सकता हूँ ?”

राजा श्रेणिक ने मन की बात स्पष्ट करते हुए कहा—“मैं तुम्हारी एक सामायिक खरीदना चाहता हूँ। इसी सामायिक के फल से मेरा नरक-गमन टल जायेगा। मैं इसका मनचाहा मूल्य देने को तैयार हूँ।”

मगध का सम्राट् आज एक सामान्य दरिद्री कहे जाने वाले पूणि्या की झोपड़ी में आकर एक सामायिक खरीदने आया था। पूणि्या श्रावक ने राजा की बात सुनी, उसे राजा की बात में अज्ञानता व अहंकार की झलक स्पष्ट नजर आ रही थी।

पूणि्या श्रावक ने कहा—“राजन् ! सामायिक का सौदा मैंने पहले नहीं किया। मेरे लिये यह नई बात है जिसे आपने सामायिक खरीदने को कहा है वही इसकी कीमत भी जानते होंगे। आप उनसे कीमत पूछ लीजिये। मैं सहर्ष सामायिक बेचने को तैयार हूँ।”

राजा श्रेणिक अज्ञानता के दलदल में फँस चुका था। वह यह बात सुनकर प्रभु महावीर के पास आया। उसने प्रभु महावीर से प्रार्थना की—“भगवन् ! पूणि्या श्रावक सामायिक बेचने को तैयार है। वह एक सामायिक का मूल्य नहीं जानता। कृपया आप ही एक सामायिक का मूल्य बताइये। मैं समस्त राज्य देकर भी सामायिक ले लूँगा।”

प्रभु महावीर ने राजा श्रेणिक को समझाते हुये कहा—“देवानुप्रिय ! तुम भौतिक वैभव की तुलना सामायिक से करना चाहते हो ? यदि सुमेरु की तरह स्वर्ण, चाँदी, हीरे, पत्थर, माणक्य और मोतियों के अम्बार भी लगा दो, तो भी सामायिक का मूल्य तो क्या, सामायिक की दलाली भी नहीं हो सकती है। राजन् ! मैं पूछता हूँ कि एक व्यक्ति मृत्यु-शय्या पर पड़ा जीवन की अंतिम साँसें गिन रहा है, क्या संसार की सारी सम्पदा उसे मरने से बचा सकती है ?”

राजा श्रेणिक—“प्रभु ! यह बात तो असंभव है।”

प्रभु महावीर—“तुम्हारी भौतिक सम्पदा से बढ़कर जीवन का मूल्य है। एक क्षण का जीवन भी मणि-मुक्ताओं से नहीं खरीद सकते। क्योंकि माणिक्य-मुक्ता तो भौतिक सम्पदा के सिवा कुछ नहीं है। सामायिक तो आत्म-भाव है। यह अंदर की साधना है। समता की साधना है। सामायिक आत्मा में घटित होती है, खरीदी नहीं जा सकती। राग-द्वेष की विषमता से चित्त को दूर कर जन से जिन बनना, यही सामायिक का आध्यात्मिक मूल्य है। उसे प्राप्त करने के लिए मन को स्फटिक की भाँति निर्मल बनाना होता है। समत्व में स्थिर करना होता है।

प्रभु महावीर की वाणी को श्रद्धापूर्वक राजा श्रेणिक ने सुना और सामायिक के वास्तविक मूल्य को पहचाना। धन से सामायिक खरीदने का उसका अहंकार नष्ट हो गया।<sup>३३</sup>

सारांश यह है कि ये बातें न होने वाली थीं। इसीलिये सर्वज्ञ प्रभु महावीर ने श्रेणिक की अज्ञानता मिटाने के लिए यह बात कही थी। क्योंकि प्रभु महावीर जानते थे कि नरक का बंध नहीं टाला जा सकता। राजा श्रेणिक बिम्बसार को प्रतिबोध देने के लिए ऐसा किया गया।

राजा श्रेणिक के जीवन की कुछ घटनायें यहाँ वर्णन की जा रही हैं जिनका प्रभु महावीर से संबंध है।

### राजर्षि प्रसन्नचन्द्र

एक समय की बात है। राजा श्रेणिक प्रभु महावीर के दर्शन को जा रहा था। उसने प्रभु महावीर की वन्दना करने के पश्चात् पूछा—“प्रभु ! मैंने रास्ते में एक तपस्वी मुनि को देखा है। वह बहुत उग्र साधना कर रहे थे। सूर्य की ओर ऊँची-ऊँची भुजाएँ फैली हुई थीं। मेरु की तरह अडोल थे। ध्यान में तल्लीन थे। नासाग्र पर दृष्टि केन्द्रित थी। मुख पर अद्भुत समता व शान्ति झलक रही थी। वह इतना उग्र तपस्वी है। मुझे बताने का कष्ट करें कि वह किस उत्तम गति को प्राप्त होगा ?”

प्रभु महावीर ने कहा—“राजन् ! तूने जिस मुनि के दर्शन किये हैं अगर वह अभी कालधर्म को प्राप्त हो तो मरकर सातवीं नरक में जायेगा।”

राजा श्रेणिक को प्रभु महावीर की बात पर आश्चर्य हुआ। उसे लगा कि इतनी कठोर साधना वह कर रहा है और इस साधना का अंत सातवीं नरक।

प्रभु महावीर ने फरमाया—“मैंने जो पहले कहा, वह भी ठीक था पर अगर अब वह मरे तो छठी नरक में जायेगा।”

इस प्रकार प्रभु महावीर ने उस मुनि के भव की पाँचवीं, चौथी, तीसरी, दूसरी व प्रथम तक की भविष्यवाणी कर डाली। उधर राजा श्रेणिक की जिज्ञासा बढ़ती गई। उसने पुनः पूछा—“प्रभु ! अब वह किस गति को प्राप्त करेगा ?”

भगवान महावीर बोले—“राजन् ! तूने उस मुनि की बाह्य साधना देखी है मन के उतार-चढ़ाव नहीं देखे। पहले वह बाह्यमुखी था अब वह अंतर्मुखी होने के कारण स्वर्ग की ओर प्रयाण करने लगा है। यदि वह इसी क्षण मृत्यु को प्राप्त हो जाये, तो सौधर्मकल्प स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव बनेगा।”

पर उसकी आत्मा अब चरमोत्कर्ष अवस्था की ओर बढ़ रही है। वह बाह्य कल्प से आगे बढ़ गया है।

एक ओर मुनि का आरोहण क्रम चालू था तो दूसरी ओर राजा श्रेणिक के प्रश्न और प्रभु के उत्तर भी।

राजा श्रेणिक ने पुनः प्रश्न किया—“प्रभु महावीर ! अब इसकी आत्मा किस स्थिति में है ?”

“वह कल्प और त्रैविक देव भूमि पार कर सर्वार्थसिद्ध भूमि पर पहुँच गया है।”

उसी समय आकाश में देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देव-देवियाँ पुष्प-वर्षा करते हुये केवली को प्रणाम करने उतरे। राजर्षि प्रसन्नचन्द्र को केवलज्ञान, केवलदर्शन पैदा हो गया था।

प्रभु महावीर ने कहा—“अब उस प्रसन्नचन्द्र मुनि को सिद्ध अवस्था देने वाला केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है। देव उसी की वन्दना करने आ रहे हैं। अब यह मन के संकल्पों पर विजय प्राप्त कर चुका है। इसका केवल महोत्सव मनाया जा रहा है।”<sup>३४</sup>

राजा श्रेणिक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई जिसे सर्वज्ञ प्रभु महावीर समझ गये।

राजा श्रेणिक बोला—“प्रभु ! मैं आपकी बात का रहस्य नहीं समझ पा रहा हूँ। एक ही क्षण में जो जीव नरक में विचरण कर रहा था कैसे वह स्वर्ग और मोक्ष तक को प्राप्त कर गया, इसका क्या रहस्य है ? इसे समझाने की अनुकम्पा करें।”

राजन् ! जिस मुनि को तूने देखा है उसका नाम राजर्षि प्रसन्नचन्द्र है। वह ध्यानावस्था में स्थित था। तूने उस मुनि को प्रणाम किया और आगे निकल आये।

तुम्हारे पीछे तुम्हारे दो सैनिक वार्तालाप कर रहे थे जिसे इस मुनि ने सुन लिया। वह कह रहा था—“देखो ! यह प्रसन्नचन्द्र राजा अपने छोटे से पुत्र को राजगद्दी पर बैठाकर स्वयं साधु बन गया। अब शत्रु राजा ने उस प्रसन्नचन्द्र के पुत्र पर आक्रमण कर दिया है। युद्ध हो रहा है। प्रसन्नचन्द्र राजा का पुत्र कुछ समय बाद भाग जायेगा। यह राज्य समाप्त हो जायेगा।

इसी बात को सुनकर यह मन ही मन में भाव युद्ध करने लगा। जब तुम गुजरे थे यह स्वयं को युद्ध के मैदान में पा रहा था। इसने राजमुकुट बाँधकर अनेक हाथियों की, घोड़ों की, मनुष्यों की हत्या मन ही मन में कर डाली। यह भूल चुका था कि अब राजा नहीं, मुनि है।

विचारों का युद्ध चल रहा था। काल्पनिक शत्रु को मारने की योजना चल रही थी। प्रसन्नचन्द्र ने अपने सभी शस्त्र समाप्त कर दिये थे। जब शस्त्र समाप्त हो गये तो सिर के मुकुट से ही प्रहार करने का विचार करने लगा। पर ज्यों ही हाथ सिर पर गया, वहाँ मुकुट कहाँ था वहाँ तो मुण्डित सिर था।

मन में उसी क्षण विचार आया मैं मुकुटधारी राजा नहीं हूँ किन्तु नग्न सिर वाला मुण्डित साधु हूँ।

“मैं कहाँ भटक गया ? मेरा शत्रु कौन है ? कौन-सा युद्ध-क्षेत्र है ?”

मन की दिशा बदली। युद्ध-क्षेत्र धर्म-क्षेत्र में बदल गया। मन की धारा बदली। युद्ध तब भी चल रहा था पर शत्रु बदल गये थे। अब दूसरों से नहीं, अपने से युद्ध चल रहा था। वह अपने विकारों और वासनाओं का संहार कर रहा था। ज्यों-ज्यों तुम्हारे प्रश्न चल रहे थे, त्यों-त्यों वह आध्यात्मिक उल्कान्ति की ओर कदम बढ़ा रहा था। नरकों से निकलता-निकलता वह शुभ भाव के कारण स्वर्ग की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। पर वह स्वर्ग की सीढ़ियों को पार करता हुआ अब मोक्ष के द्वार पर आ पहुँचा। जन्म-जन्म का भूला-भटका प्राणी अब केवलज्ञानी बन गया है।

राजा श्रेणिक चिंतन करता रहा मन की विचित्र स्थिति पर। मन जब अधोमुखी हुआ, तो सातवीं नरक तक पहुँच गया और ऊर्ध्वमुखी बना तो सिद्धि और मुक्ति का द्वार खुल गया। श्रेणिक राजा ने श्रद्धा से गद्गद होकर प्रभु महावीर को वन्दन किया और अपने महलों की ओर लौट आया।

### श्रेणिक के सम्यक्त्व की परीक्षा

महाराजा श्रेणिक के प्रभु महावीर के प्रति समर्पण की चर्चा धरती पर ही नहीं, स्वर्ग में भी होने लगी। प्रभु महावीर ने उसे क्षायक सम्यक्त्व का स्वामी बताया। जब प्रभु महावीर ने राजा श्रेणिक को उसका भविष्य बताया था तो उसे टालने की चिंता में वह उपाय करने के लिये राजगृह महलों की ओर लौट रहा था, तभी एक देव ने मायाजाल बिछाया।

### मुनि द्वारा मछली पकड़ना

राजा श्रेणिक ने देखा एक मुनि हाथ में जाल लिए हुए है और नदी से मछलियाँ पकड़ रहा है। राजा श्रेणिक उस मायाधारी मुनि को देखकर रुके और कहा—“मुनिराज ! यह कार्य हिंसक कार्य है। तुम्हें ऐसा हिंसक कार्य नहीं करना चाहिये। इससे लोगों में धर्म की निंदा होती है।”

मुनि बोला—“राजन् ! मैं क्या करूँ। मैं तो बचपन से माँसाहारी हूँ। क्षत्रिय हूँ। शिकार, माँस-मदिरा का त्याग मैं नहीं कर सकता। वैसे प्रभु महावीर के और साधु भी लुक-छिपकर मेरी तरह माँस-मदिरा का सेवन करते हैं। उनके भक्त उन्हें यह सब लाकर देते हैं। मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ सो मैं स्वयं मछलियाँ पकड़कर अपनी माँस-लिप्ता पूरी करता हूँ।”

राजा श्रेणिक—“आप दूसरे मुनियों पर व्यर्थ दोष मत लगायें। अपनी कमजोरी को किसी और के सिर पर मढ़ना अच्छा नहीं।” फिर मुनि ने जो आगे बताया, वह इससे भी भयंकर था। उसने बताया कि “मैं मछली के साथ मदिरा पीता हूँ। मदिरा पीकर उसका मन बहक जाता है तो कभी-कभी वेश्या के यहाँ भी जाता हूँ। वेश्या को धन चाहिये, इसके लिये कभी-कभी चोरी भी करनी पड़ती है, फिर जुआ भी धन के बिना खेलना असंभव है। सो चोरी करता हूँ।”

राजा श्रेणिक ने इस मायाधारी मुनि की बातों को सुना, पर अपने सम्यक्त्व से विचलित नहीं हुआ।

### सगर्भा साध्वी

राजा श्रेणिक अभी कुछ ही दूर गया था कि एक सगर्भा साध्वी देखी। राजा श्रेणिक वहाँ रुका। साध्वी सगर्भा ही नहीं थी, उसने हार-शृंगार कर रखा था। राजा ने साध्वी से कहा—“आर्य ! आपने यह क्या कर डाला ? यदि आपका मन इतना दुर्बल था तो संयम ही क्यों लिया ? चलो, जो हुआ सो हुआ। अब आप मेरे घर पधारो। मैं आपको प्रसवकाल तक सँभालता हूँ। प्रसव होने के पश्चात् पुनः आलोचना कर संयममार्ग पर स्थिर हो जाना।”

राजा श्रेणिक के इस कल्याणकारी कथन का साध्वी पर विपरीत असर हुआ। उसने क्रोधित होते हुये कहा—“राजन् ! अपनी सहायता अपने पास रखो। भगवान महावीर के संघ में कौन दुराचारी नहीं ? लुक-छिपकर सब कामभोगों का सेवन करते हैं। मुझे किसी की चिंता नहीं।”

राजा श्रेणिक को साध्वी के इस कथन पर क्रोध आ गया। उसने साध्वी से कहा—“अपनी कमजोरी छिपाने के लिये दूसरों पर दोष मढ़ना कहाँ की समझदारी है ? प्रभु महावीर पवित्र हैं। उनका संघ पवित्र तीर्थ है। तुम्हारे सभी दोष मिथ्या हैं। हाँ, मैं इस मुसीबत से तुम्हें छुटकारा दिला सकता हूँ।”

पर यह तो देव-माया थी जो कुछ समय में सिमट गई। स्वर्ग के देव दुर्दरांक की परीक्षा थी जिस पर राजा श्रेणिक खरे उतरे। देव ने प्रत्यक्ष होकर राजा श्रेणिक की संघ-भक्ति की प्रशंसा की। उन्हें दिव्य हार और दो मिट्टी के गोले दिये जो राजा ने अभयकुमार की माता नंदा और रानी चेलणा को दे दिया।

इस दिव्य हार का नाम वंकचूल था। एक गोले में देवदूष्य वस्त्र व दूसरे में से दिव्य कुण्डल निकले जो रानियों की कलह का कारण बने। पर राजा श्रेणिक अपनी भक्ति में मगन थे। वह परीक्षा में खरे उतरे।

### महाराजा श्रेणिक के परिवार में धर्म-प्रभावना

महाराजा श्रेणिक मगध के सम्राट् ही नहीं थे, प्रभु महावीर के परम भक्त थे। चाहे वह वृद्ध हो चुके थे पर उनके मन में निर्ग्रन्थों के प्रति अथाह श्रद्धा थी। उसी श्रद्धा के वशीभूत उन्होंने एक बार राज-परिवार, सामन्तों और मंत्रियों में यह उद्घोषणा की—“जो कोई भी प्रभु महावीर के चरणों में प्रव्रज्या ग्रहण करेगा, मैं उसे रोकूँगा नहीं।<sup>३५</sup> वह महर्ष दीक्षा स्वीकार करे। यदि उसके पीछे कोई पारिवारिक चिंता है, उसकी चिंता की जिम्मेदारी का वहन मैं स्वयं करूँगा। जिसे साधु या साध्वी बनना है, अपनी आत्मा का कल्याण करना है वह प्रभु महावीर का शिष्य बन जाये।” इस उद्घोषणा का अच्छा प्रभाव राज-परिवार पर भी पड़ा। बहुत से नागरिकों ने प्रभु महावीर के चरणों में प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। राजा श्रेणिक के २३ पुत्रों ने प्रभु महावीर के चरणों में निर्ग्रन्थ धर्म में प्रव्रज्या स्वीकार की, जिनके मंगलमय नाम इस प्रकार हैं—(१) जालि, (२) मयालि, (३) उपालि, (४) पुरुषसेन, (५) वारिषेण, (६) दीर्घदन्त, (७) लष्टदंत, (८) वेहल्ल, (९) वेहास (१०) अभयकुमार,<sup>३६</sup> (११) दीर्घसेन, (१२) महसेन, (१३) लष्टदंत, (१४) गूढदन्त, (१५) शुद्धदंत, (१६) हल्ल, (१७) द्रुम, (१८) द्रुमसेन, (१९) महाद्रुमसेन, (२०) सिंह, (२१) सिंहसेन, (२२) महासिंहसेन, (२३) पूर्णभद्र।<sup>३७</sup>

महाराजा श्रेणिक की तेरह रानियों ने भी प्रव्रज्या स्वीकार की, जिनके शुभ नाम इस प्रकार हैं—(१) नन्दा, (२) नन्दमती, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्दिसेणिया, (५) मरुया, (६) सुमरिया, (७) महामरुता, (८) मरुदेवा, (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा, (११) सुजाता, (१२) सुमना, (१३) भूतदत्ता।

सभी राजकुमारों ने ग्यारह अंगों का स्वाध्याय किया। तप द्वारा आत्मा को शुद्ध किया। इसी तरह सभी रानियों ने उत्कृष्ट तप द्वारा मोक्ष प्राप्त किया।<sup>३८</sup>

संसार के इतिहास में एक ही परिवार से इतने राजकुमार, रानियों की दीक्षा का कम ही उदाहरण मिलता है। महलों में पले इन राजकुमार व रानियों का, संसार के भोगों को त्यागकर साधु-साध्वी का जीवन ग्रहण करना प्रभु महावीर के वैराग्यमय उपदेशों का प्रभाव कहा जा सकता है।

## महासती रानी चेलना

एक बार प्रभु महावीर ने कहा था कि राजा चेटक की सभी पुत्रियाँ शील गुण से सम्पन्न हैं। राजा चेटक की सभी पुत्रियाँ उस समय के प्रसिद्ध राजाओं से विवाहित थीं।

एक बार राजा श्रेणिक व रानी चेलना प्रभु महावीर के दर्शन को जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक तरुण मुनि को देखा जो कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ थे। ठण्ड का मौसम था। रानी चेलना के मन पर उस मुनि के तप का बहुत प्रभाव पड़ा था। श्रद्धावश उसने नतमस्तक हो मुनि को प्रणाम किया। प्रभु महावीर के उपदेश सुनकर वह राजा सहित घर लौटी। पर उस मुनि का ध्यान मन में बना रहा।

रात्रि की ठण्ड बढ़ चुकी थी। राजा-रानी महलों में सुखपूर्वक सोये हुए थे। पर रानी के मन पर मुनि की कठोर तपस्या का महाप्रभाव था। अचानक आधी रात के समय लिहाफ से रानी का हाथ बाहर निकला। अर्ध-जाग्रत और अर्ध-सुप्त अवस्था में रानी बड़बड़ायी-“ऐसी ठण्ड में उनका जाने क्या हाल होगा?”

इधर राजा श्रेणिक भी कुछ जाग रहे थे। उन्होंने रानी के मुँह से यह वाक्य सुना, तो संशय में पड़ गये। उन्होंने सोचा-“जरूर रानी किसी पर-पुरुष का चिन्तन कर रही है जो इस समय किसी मुसीबत में फँसा है।”

राजा श्रेणिक को रानी से ही नहीं, समस्त स्त्री-जाति से घृणा हो गई। सुबह हुई तो राजा ने अपने मंत्री अभय को बुलाकर आज्ञा दी-“मेरे अन्तःपुर में आग लगा दो। चेलना का कक्ष फूँक डालो। मैं अब अपने निवास को भस्म देखना चाहता हूँ।”

अभय मन से परेशान था पर वह राजाज्ञा के सामने क्या कर सकता था? राजा की आज्ञा का पालन करना पड़ रहा था। राजा श्रेणिक आज्ञा प्रदान कर स्वयं प्रभु महावीर के दर्शन करने शीघ्रता से गुणशील चैत्य पहुँचा। अन्तर्यामी प्रभु महावीर से क्या छिपा था? उन्होंने भरी सभा में राजा श्रेणिक को सम्बोधित करते हुए सारी घटना ज्यों की त्यों कह डाली। फिर राजा श्रेणिक को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा-“मैंने एक बार कहा था कि राजा चेटक की सभी पुत्रियाँ पतिव्रता हैं, वह सत्य है। पर तूने धुएँ को बादल समझकर नादानी की है। चेलना तो ठण्ड में तप कर रहे मुनि की तपस्या का चिन्तन कर रही थी कि इस ठण्ड में वह मुनि कैसे खड़ा होगा, जबकि मेरा हाथ लिहाफ से निकलते मुझे ठण्डी लग रही है, तूने इस चिन्तन को पर-पुरुष चिन्तन समझा, जो तुम्हारी विकृत मनोदशा थी और इसी कारण तुम अभय को महलों में आग लगाने की आज्ञा प्रदान कर मेरे प्रवचन में आये हो। राजा ! तुम संशयग्रस्त हो। सत्य को जाने बिना शीलवती पत्नी पर संशय करते हो।”

राजा श्रेणिक को अपनी भूल का अहसास हुआ। उसने प्रभु महावीर से कहा-“प्रभु ! आपका वचन सत्य है। मैं शीघ्रता से अभय को ऐसा अकार्य करने से रोकता हूँ।”

राजा महलों की ओर बढ़ा। भयंकर लपटें उसके महलों को जला रही थीं। पास आकर उसने अभय से पूछा-“क्या तूने मेरी आज्ञा का पालन कर दिया?”

अभय ने कहा-“हाँ पिताजी ! मैंने महलों को आग लगा दी?”

राजा श्रेणिक ने कहा—“मेरी मूर्खता के कारण यह सब कार्य हुआ।” राजा को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। कुछ समय पश्चात् होश आने पर अभयकुमार ने बताया—

“महाराज ! मैंने पुरानी गजशाला, जो महलों के करीब पड़ती थी उसे आग लगाई है। आपने मेरी सती माता पर शक किया। सतियों पर शंका एक पुत्र कैसे कर सकता है ?”

श्रेणिक ने अभय को छाती से लगाया और चेलना से क्षमा माँगी।

## आर्द्रक मुनि की अन्य मतों के आचार्यों से धर्मचर्चा

द्वितीय अंग सूत्रकृतांग में आर्द्रककुमार का वर्णन आया है। वह प्रभु महावीर का प्रमुख भक्त था। उसकी भक्ति का कारण बना मगध का प्रधान मंत्री व राजा श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार।

आर्द्रककुमार आर्द्रकपुर (ईरान) का राजकुमार था।<sup>३९</sup> एक बार उसके पिता ने राजा श्रेणिक को उपहार भेजे। आर्द्रककुमार ने श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार को उपहार भेजे।

पुनः राजगृह से भी उसके बदले उपहार भेजे गये। अभयकुमार की ओर से जैनधर्म के धार्मिक उपकरण राजकुमार के लिए भेजे गये। उसे प्राप्त कर आर्द्रककुमार प्रतिबुद्ध हुआ। अब जाति-स्मरण ज्ञान उसे प्राप्त हो चुका था। उसे याद आया कि पूर्वजन्म में वह यह सब उपकरण देख चुका है।

उसने तत्काल अपने देश को छोड़कर प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षा लेने का निर्णय किया। उसके साथ ५०० सिपाही उसकी रक्षा को थे, जो पिता ने भेजे थे। वह राजगृही आ रहा था, तब उसे भिन्न-भिन्न मतों के अनुयायी मिले जिन्होंने उससे लम्बी धर्मचर्चायें कीं।

इन धर्मचर्चाओं से उस समय के दार्शनिक परम्पराओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अगली पंक्तियों में हम इसी प्रकरण को दे रहे हैं। इससे आर्द्रककुमार के ज्ञान का भी पता चलता है। आर्द्रककुमार विदेशी था। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने उसे ईराक सम्राट् कुरण का पुत्र बताया है।<sup>४०</sup>

लगता है आर्द्रककुमार के माध्यम से जिनधर्म अरब भूखण्ड में प्रभु महावीर के समय फैल चुका था।

## आर्द्रक—गोशालक संवाद

उस समय भगवान के शिष्य आर्द्रक मुनि भगवान को वन्दन करने के लिए गुणशील में जा रहे थे। रास्ते में उन्हें गोशालक मिला। आर्द्रक को वहीं मार्ग में रोककर वह बोला “आर्द्रक ! जरा सुन, तुझे एक पुराना इतिहास सुनाता हूँ।”

आर्द्रक—“कहिये।”

गोशालक—“तुम्हारे धर्माचार्य श्रमण महावीर पहले एकान्तविहारी थे और अब ये साधुओं की मण्डलियों को इकट्ठा करके उनके आगे व्याखानों की झड़ियाँ लगाते हैं।”

आर्द्रक “हाँ, जानता हूँ। पर आप कहना क्या चाहते हैं ?”

गोशालक—“मेरा तात्पर्य यह है तुम्हारा धर्माचार्य अस्थिर-चित्त है। पहले वे एकान्त में रहते, एकान्त में विचरते और सभी तरह की खटपटों से दूर रहते थे। अब वे साधुओं की मण्डली में बैठकर मनोरंजक उपदेश देते हैं। क्या इस प्रकार लोकरंजन करके वे अपनी आजीविका नहीं चला रहे हैं ? इस प्रकार की प्रवृत्ति से इनके पूर्वापर जीवन में विरोध खड़ा होता है, इसका भी इन्हें ख्याल नहीं। यदि एकान्तविहार में श्रमणधर्म था तो अब वे श्रमणधर्म से विमुख हैं और यदि इनका वर्तमान जीवन ही यथार्थ माना जाय तो पहला जीवन निरर्थक था, यह सिद्ध होगा। भद्र ! तुम्हारे गुरु की पूर्वापर विरुद्ध जीवनचर्या किसी भी तरह निर्दोष नहीं कही जा सकती। जहाँ तक मैं समझता हूँ, महावीर का वह जीवन ही यथार्थ था जबकि मैं उनके साथ था और वे निस्संग भाव से एकान्तवास का आश्रय लिए हुए थे। अब वे एकान्तविहार

से ऊबकर सभा में बैठते हैं और उपदेश के बहाने लोगों को इकट्ठा करके अपनी आजीविका चलाते हैं। इन बातों से स्पष्ट है कि इनका मानस बिलकुल अव्यवस्थित है।'

आर्द्रक—“महानुभाव ! आपका यह कथन केवल ईर्ष्याजन्य है। वस्तुतः आपने भगवान के जीवन का रहस्य ही नहीं समझा। इसीलिए तो आपको उनके जीवन में विरोध दिखाई देता है। यह न समझने का ही परिणाम है। पहले एकान्तविहारी और अब साधु-मण्डल के बीच उपदेश करना, इसमें विरोध की बात ही क्या है ? जब तक वे छद्मस्थ थे तब तक एकान्तविहारी ही नहीं प्रायः मौनी भी थे, और यह वर्तन तपस्वी जीवन के अनुरूप भी था। अब वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं, उनके राग-द्वेष के बन्धन समूल नष्ट हो चुके हैं, अब उनके हृदय में आत्म-साधना के साथ-साथ जगत् के कल्याण की भावना भी है। प्राणी मात्र के कल्याण का आकांक्षी पुरुष हजारों के बीच में बैठकर उपदेश करता हुआ भी एकान्तसेवी है। वीतराग के लिए एकान्त और लोकाकुल प्रदेश में कुछ भी भेद नहीं ? निर्लेप आत्मा को सभा या समूह लिप्त नहीं कर सकते और धर्मोपदेश प्रवृत्ति तो महापुरुषों का आवश्यक कर्त्तव्य है। जो क्षमाशील तथा जितेन्द्रिय है, जिसका मन समाधि में है, वह दोषरहित भाषा में धर्मदेशना करे उसमें कुछ भी दोष नहीं। जो पाँच महाव्रतों का उपदेश करता है, जो पाँच अणुव्रतों की उपयोगिता समझाता है, जो पाँच आश्रव, पाँच संवर को हेय, उपादेय बतलाता है और जो अकर्त्तव्य कर्म से निवृत्त होने का उपदेश करता है वही बुद्धिमान है, वही कर्ममुक्त होने वाला सच्चा श्रमण है।”

गोशालक—“यदि ऐसा है तो सचित्त जल के पान, सचित्त बीज तथा आधाकर्मिक आहार के भोजन और स्त्रीसंग में दोष नहीं हो सकता। हमारे धर्म में तो यही कहा है कि एकान्तविहारी तपस्वी के पास पाप फटकता तक नहीं।”

आर्द्रक—“सचित्त जल के पान, बीज तथा आधाकर्मिक आहार के भोजन और स्त्रीसंग आदि को जो जानबूझकर करता है, वह साधु नहीं हो सकता। सचित्त जलपायी, बीजभोजी और स्त्रीसेवी भी यदि श्रमण कहलायेंगे तब गृहस्थ किससे कहा जायेगा ? गोशालक ! सचित्त जलपायी और सजीव बीजभोजी उदरार्थी भिक्षुओं की भिक्षावृत्ति अनुचित है। ज्ञातिसंग को न छोड़ने वाले वे रंक भिक्षु कभी मुक्त नहीं होंगे।”

गोशालक—“अरे आर्द्रक ! इस कथन से तो तू सभी अन्यतीर्थिकों की निन्दा कर रहा है और बीज-फलभोजी तपस्वी महात्माओं को कुयोगी और उदरार्थी भिक्षु कहता है ?”

आर्द्रक—“मैं किसी की निन्दा नहीं करता किन्तु अपने दर्शन (मत) का वर्णन करता हूँ। सब दर्शन वाले अपने मतों का प्रतिपादन करते हैं और प्रसंग आने पर एक-दूसरे की निन्दा भी करते हैं। मैं तो केवल अपने मत का प्रतिपादन और पाखण्ड का खण्डन करता हूँ। जो सत्य धर्म है उसका खण्डन कभी नहीं होता और जो पाखण्ड है उसका खण्डन करना बुरा नहीं। फिर भी मैं किसी को लक्ष्य करके नहीं कह रहा हूँ।”

गोशालक—“आर्द्रक ! तुम्हारे धर्माचार्य की भीरुता-विषयक एक दूसरी बात कहता हूँ, इसे भी सुन। पहले ये मुसाफिरखानों और उद्यानघरों में ठहरते थे पर अब वैसा नहीं करते। ये जानते हैं कि उन स्थानों में अनेक बुद्धिमान चतुर भिक्षु एकत्र होते हैं। कहीं ऐसा न हो कि कोई शिक्षित भिक्षु कुछ प्रश्न पूछ बैठे और उसका उत्तर न दिया जा सके। इस भय से इन्होंने उक्त स्थानों में आना आजकल छोड़ दिया है।”

आर्द्रक—“मेरे धर्माचार्य के प्रभाव से तुम बिलकुल अनभिज्ञ मालूम होते हो। महावीर सचमुच महावीर हैं। इनमें न बाल-चापल्य है और न काम-चापल्य। ये सम्पूर्ण और स्वतन्त्र पुरुष हैं। जहाँ राजाज्ञा की भी परवाह नहीं वहाँ भिक्षुओं से डरने की बात करना केवल हास्यजनक है। मंखलि श्रमण ! महावीर आज मुसाफिरखानों में रहने वाले साधारण भिक्षु नहीं, वे जगदुद्धारक धर्म तीर्थंकर हैं। एकान्तवास में रहकर इन्होंने पहले बहुत तपस्याएँ की हैं और घोर तपस्याओं द्वारा पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करके अब ये लोक-कल्याण की भावना से ऐसे स्थानों में विचरते हैं जहाँ परोपकार का होना सम्भव हो। इसमें किसी के भय अथवा आग्रह को कुछ स्थान नहीं। कहाँ जाना और कहाँ नहीं, किससे बोलना और किससे नहीं तथा किससे प्रश्नोत्तर करना और किससे नहीं ये सब बातें इनकी इच्छा पर ही निर्भर रहती हैं।



मुसाफिरखानों में ये नहीं जाते, इसका भी कारण है। वहाँ बहुधा अनार्य स्वभाव के मताग्रही लोग मिलते हैं, जिनमें तत्त्वजिज्ञासा का नितान्त अभाव और कदाग्रह तथा उद्वण्डता आदि की प्रचुरता होती है।’

गोशालक—‘तब तो श्रमण ज्ञातपुत्र, अपने स्वार्थ के लिए ही प्रवृत्ति करने वाले लाभार्थी वणिक् के समान हुए न?’

आर्द्रक—‘भगवान को सर्वांश में लाभार्थी वणिक् की उपमा नहीं दी जा सकती। लाभार्थी वणिक् प्राणियों की हिंसा करते हैं, परिग्रह पर ममता करते हैं, ज्ञातिसंग को न छोड़कर स्वार्थवश नये-नये प्रपंच रचते हैं। धन के लोभी और विषयभोगों में आसक्त वे आजीविकार्थ इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, ऐसे कामी और विषयगृह्य वणिकों की उपमा भगवान को नहीं दी जा सकती। आरम्भ और परिग्रह मग्न वणिकों की प्रवृत्ति को तुम लाभकारी प्रवृत्ति कहते हो, यह भूल है। वह प्रवृत्ति उनके लाभ के लिए नहीं, अपितु दुःख के लिए है। जिस प्रवृत्ति का संसार-भ्रमण ही फल है उसको लाभदायक कैसे कह सकते हैं?’

इसके बाद आर्द्रक मुनि को शाक्यपुत्रीय भिक्षु मिले। उनके साथ भी अनेक तर्क-वितर्क करके अपनी युक्तियों से उन्हें निरुत्तर किया। फिर ब्राह्मण सांख्य मतानुयायी संन्यासी, एकदण्डी हस्तितापसादों आदि के साथ आर्द्रक मुनि की चर्चा हुई। इसका विस्तृत वर्णन सूत्रकृतांगसूत्र में उपलब्ध है।<sup>४१</sup>

हस्तितापसों को निरुत्तर कर स्व-प्रतिबोधित ५०० चोरों तथा प्रतिबोध पाये हुए हस्तितापसादि वादी और इतर परिवार के साथ आर्द्रक मुनि आगे बढ़ रहे थे कि एक वन-हाथी, जो नया ही पकड़ा हुआ था, बन्धन तोड़कर उनकी तरफ झपटा। उसे देखकर लोगों ने बड़ा हो-हल्ला मचाया कि हाथी मुनि को मारे डालता है। पर, आश्चर्य के साथ उन्होंने देखा कि विनीत शिष्य की तरह हाथी मुनि के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम कर रहा है और क्षणभर के बाद वह वन की ओर भाग रहा है।

उक्त घटना सुनकर राजा श्रेणिक आर्द्रककुमार मुनि के पास आये और हाथी के बन्धन तोड़ने का कारण पूछा। उत्तर में मुनि ने कहा—‘राजन् ! मनुष्यकृत पाश तोड़कर मत्त हाथी का वन में जाना ऐसा दुष्कर नहीं जैसा कच्चे सूत का धागा तोड़ना।’

इसके बाद आर्द्रक मुनि भगवान महावीर के पास गये और भक्तिपूर्वक वन्दन किया। भगवान ने उनसे प्रतिबोधित राजपुत्रों और तापसादि को प्रव्रज्या देकर उन्हीं के सुपुर्द किया।

राजा श्रेणिक ने जब आर्द्रक के मुख से यह बात सुनी तो उन्होंने पूछा—‘आर्य हाथी पकड़ने के साथ कच्चे धागों का क्या संबन्ध है? तुम्हारी बात हमें समझ नहीं आई।’

आर्द्रक ने उत्तर दिया—‘राजन् ! मैं घर से चला। वसन्तपुर के बाहर मन्दिर में साधु-वेश में ध्यान-मुद्रा में खड़ा था। संध्या का झुरमुट अंधकार व्याप्त हो रहा था। धनश्री अपनी सखियों के साथ यहाँ खेलने को आई। धनश्री खेल खेल रही थी कि अंधकार में उसने खम्भे की जगह मुझे खम्भा समझकर पकड़ते हुए कहा—‘देखो यह मेरा पति है!’ इच्छा न होते हुए भी भावी की दुर्बलता ने मुझे विवाह के बंधन में धकेल दिया।

राजन् ! जब भोगावली कर्म उदय में आता है तो उसे भोगना ही पड़ता है। इस कर्म के वश मैं संसार के दलदल में फँस चुका था। मेरी पत्नी के पुत्र हुआ।

पुत्र पाँच वर्ष का हुआ तो मेरे मन में पुनः दीक्षा के विचार जगे। मैं पलँग पर आराम कर रहा था। मेरी पूर्व पत्नी चरखा कात रही थी। चंचल बेटे ने आकर पूछा—‘माँ ! क्या कर रही हो?’

माँ ने पुत्र से कहा—‘बेटे ! सूत कात रही हूँ। तुम्हारे पिता साधु बनने वाले हैं। अब हमें सूत कातकर ही गुजारा करना है।’

यह सुनते ही बालक ने कच्चे सूत से मेरी दोनों टाँगों पर १२ बंधन लगा दिये और बोला—“मैंने पिताजी को बाँध दिया है। यह कहीं नहीं जायेंगे।” मैंने देखा, बच्चे ने १२ बंधनों से मुझे बाँधा था। मैंने पुत्र की अवस्था देखी और मैंने पुत्र-स्नेह के कारण १२ वर्ष पुनः गृहस्थ में रहने का निर्णय किया। इसलिए मैंने कहा—“लोह शृंखलाओं को तोड़ना सरल है पर कच्चे सूत के धागे तोड़ना कठिन है।” उसके बाद आर्द्रक मुनि प्रभु महावीर के पास गये। विधि सहित वन्दन किया। साथ में ऐसे ५०० सिपाही जो चोर बन चुके थे उन्हें प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षित करवाया। उनके साथ प्रतिबुद्धित तापस भी दीक्षित हुए।

## वीसवाँ वर्ष

इस वर्ष का वर्षावास भी प्रभु महावीर ने राजगृही नगरी में किया। वर्षावास के समाप्त होते ही प्रभु महावीर राजगृही से कोशाम्बी पहुँचे। राजगृही और कोशाम्बी के बीच काशी राष्ट्र पड़ता था। इस देश की प्रसिद्ध नगरी थी आलभिया। प्रभु महावीर जन-कल्याणार्थ यहाँ पधारे। धर्मदेशना हुई। प्रभु महावीर के उपदेशों की चर्चा घर-घर होने लगी।

## ऋषिभद्र श्रमणोपासक

यह नगर श्रमण भगवान महावीर के श्रावकों से भरा पड़ा था। यहाँ के श्रावक तत्त्वज्ञान से भरपूर थे। यहाँ ऋषिभद्र नामक धनाढ्य श्रमणोपासक रहता था। उसकी मित्तमंडली के सदस्य भी श्रमणोपासक थे।

एक समय उसने मित्त-मंडली से कहा—“देवलोक में देवों की आयु कम से कम १० हजार वर्ष और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम है।” ऋषिभद्र श्रमणोपासक की यह बात उनकी मंडली के सदस्यों को पसंद नहीं आई। उचित समाधान न पाकर शंकित हृदय से वह घर को चले गये थे। प्रभु महावीर धर्मदेशना देते-देते इस नगर के शंखचन उद्यान में आये। धर्मसभा में व अन्य मित्त-मंडली के श्रमणोपासकों ने ऋषिभद्र द्वारा किये गए कथन की सत्यता के बारे में पूछा।

प्रभु महावीर ने कहा—“ऋषिभद्र का कथन यथार्थ है। देवों की आयु इतनी ही है।”

श्रमणोपासक वापस आये। ऋषिभद्र को नमस्कार किया फिर क्षमा याचना की।

ऋषिभद्र भी एक बार प्रभु महावीर के साथ लम्बी धर्मचर्चाएँ करता रहा। लम्बे समय तक श्रावक के व्रतों का आचरण करते हुए मासिक अनशनपूर्वक आयुष्य पूरा किया। मरकर वह सौधर्म देवलोक में देवता बना।<sup>४१अ</sup>

## मृगावती की प्रव्रज्या

आलभिया से विहार कर प्रभु महावीर कोशाम्बी पधारे। उस समय रानी मृगावती के पुत्र उदायन की आयु छोटी थी। महारानी मृगावती के रूप-लावण्य से प्रभावित होकर राजा चण्डप्रद्योत ने उसकी नगरी को बाहर से घेर लिया था। रानी ने नगर-द्वार बंद करवा दिये थे।

रानी मृगावती ने चण्डप्रद्योत को बातों में उलझाकर रखा। वह स्वयं अपने राज्य का संचालन करने लगी। भगवान महावीर का पधारना उसके लिए वरदान सिद्ध हुआ। उसे पता था कि चण्डप्रद्योत भी प्रभु महावीर का परम भक्त है, इसीलिये वह प्रभु महावीर को वन्दन करने जरूर आयेगा।

भगवान महावीर के पधारने की सूचना पाकर राजा चण्डप्रद्योत अपनी रानियों अंगारवती सहित तथा उदायन राजमाता मृगावती सहित प्रभु महावीर के समवसरण में आए। भगवान महावीर के वैराग्ययुक्त प्रवचन से अनेक लोगों के मन में वैराग्य जगा और उन्होंने अणुव्रत व महाव्रत अंगीकार किये।

राजमाता मृगावती ने कहा—“भगवन् ! मैं राजा चण्डप्रद्योत की आज्ञा से पुत्र को राज्य सँभालकर दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूँ।”

प्रभु महावीर ने कहा—“देवानुप्रिय ! जैसी तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो। पर शुभ काम में प्रमाद मत करो।”

राजा चण्डप्रद्योत की इच्छा मन में मृगावती को दीक्षा की आज्ञा देने की नहीं थी पर समवसरण के प्रभाव के कारण वह इंकार न कर सका। उसने मृगावती को आज्ञा प्रदान की। मृगावती ने अपने पुत्र उदायन को चण्डप्रद्योत के संरक्षण में छोड़ दिया। अब वह मृगावती चिंतामुक्त हो गई। चण्डप्रद्योत की आठ रानियों ने भी दीक्षा स्वीकार की और मोक्ष मार्ग की साधना प्रारम्भ की। इस प्रकार मृगावती ने साध्वी बनकर स्वयं का ही कल्याण नहीं किया बल्कि समस्त राष्ट्र का कल्याण किया। नगर पर आया संकट टल गया।

कुछ समय तक प्रभु महावीर आसपास के क्षेत्रों में धर्म-प्रचार करते रहे। वर्षावास का समय नजदीक था। प्रभु महावीर ने विदेह देश की ओर प्रस्थान किया।

भगवान महावीर का यह वर्षावास वैशाली नगरी में सम्पन्न हुआ। विदेह देश में प्रभु महावीर के इस वर्षावास का जनता को पूरा लाभ मिला।

प्रभु महावीर ने वर्षावास सम्पन्न करते ही मिथिला नगरी की ओर प्रस्थान किया।

### सुनक्षत्र मुनि की दीक्षा

मिथिला से प्रभु महावीर काकंदी नगरी पधारे। वहाँ के निवासी सुनक्षत्र ने प्रभु महावीर का उपदेश सुना। उसके मन में वैराग्य जगा। उसने प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षा अंगीकार की। ग्यारह आगमों का अध्ययन किया।<sup>४२</sup> मरकर अंतिम समय वह सर्वार्थसिद्ध विमान में देव बना।<sup>४३</sup>

जैनधर्म के इतिहास में मिथिला का अपना स्थान है। प्रभु महावीर मिथिला होते हुए काकंदी नगरी पधारे। काकंदी का सुन्दर वर्णन शास्त्र में प्राप्त होता है। वहाँ का राजा जितशत्रु था जो प्रजा में बहुत प्रिय था। वास्तव में वह गुण-सम्पन्न विद्वान् राजा था।

वहाँ सार्थवाही भद्रा रहती थी जो बड़ी व्यवहार-कुशल महिला थी। उसके पास धन-सम्पदा का अथाह अंबार था। भद्रा के एक पुत्र था धन्यकुमार जिसका पालन-पोषण उसने राजकुमारों की तरह किया था। वह भद्रा की साधना का प्रतीक था। भद्रा एक आदर्श माँ भी थी। वह अपने कर्तव्य को अच्छी तरह जानती थी। उसे अपने घर सुन्दर बहू लाने का शौक था। इसी कारण उसने एक साथ बत्तीस-बत्तीस पुत्र-वधुओं का मुँह देखा। ये कन्याएँ सम्पन्न व सुशील घरों की सुपुत्रियाँ थीं। धन्य व उसकी पत्नियाँ माँ भद्रा से अथाह प्यार करते थे। यही कारण था कि अब वह सब नागरिकों की भी 'माता' बन गई थी। इसका कारण भद्रा द्वारा सभी का सम्मान व जरूरतमंदों की सहायता करना था।

एक बार प्रभु महावीर इस नगरी के सहस्रवन उद्यान में पधारे। प्रभु का समवसरण लगा। राजा जितशत्रु व उसकी प्रजा प्रभु महावीर का उपदेश श्रवण करने गईं। धन्यकुमार भी वहाँ पहुँचा। उपदेश सुना तो वैराग्य हो गया। संसार के भोग-विलास फीके-फीके नजर आने लगे। विराट् वैभव, पत्नियों के भोग विलास व माँ की ममता, कोई भी उसे इस त्याग-मार्ग पर बढ़ने से न रोक सके।

धन्यकुमार साधु बन गया। साधु बनते ही उसने बेला-बेला व्रत की तपस्या शुरू की। पारणा भी वह नीरस आहार से करता। जिस भोजन को कोई फकीर लेना पसंद नहीं करता था, ऐसा भोजन करके वह व्रत खोलता। इसी कारण उन्हें उचित भोजन न मिला पाता। कभी भोजन मिलता तो पानी न मिल पाता, पानी मिलता तो भोजन नहीं मिल पाता, पर धन्य अनगार अपनी साधना के प्रति सतत जाग्रत रहता। उनकी शरीर के प्रति आसक्ति समाप्त हो गई थी। जैसे साँप बिना रगड़ के बिल में जाता है वैसे ही धन्य अनगार स्वादरहित भोजन खाते थे। उन्होंने इस तरह से स्वाद-विजय प्राप्त कर ली थी। उनकी साधना में फूल और शूल की भेद-रेखा समाप्त हो चुकी थी।

उग्र तप-साधना से धन्य अनगार का शरीर सूखकर काला पड़ गया। नसें बाहर दिखाई देने लगीं। रक्त, मज्जा, माँस का शरीर पर नाम मात्र ही था। उनकी शारीरिक हालत बहुत कमजोर हो चुकी थी। जब भी वह उठते, बैठते,

चलते, फिरते तो हड्डियाँ कड़कड़ाहट की आवाज करतीं। वह भले ही शरीर से दिखाई नहीं देते थे पर उनकी आत्मा कर्मनिर्जरा के कारण उच्च स्थिति में थी। उनका मनोबल उच्च था। चाहे शरीर का बल क्षीण हो गया था, बोलने में कठिनता थी। उनका जीवन साधकों के लिए प्रकाश-स्तम्भ था।

## महान तपस्वी

एक बार राजा श्रेणिक ने प्रभु महावीर से प्रश्न किया-“प्रभु ! आपके १४ हजार शिष्यों में सबसे उच्च तपस्वी कौन है ? कौन दुष्कर क्रिया और महानिर्जरा करने वाला है ?”

प्रभु महावीर ने उत्तर दिया-“श्रेणिक ! साधकों में सबसे श्रेष्ठ तपस्वी धन्य अनगार है जो महादुष्कर क्रिया करने वाला और महानिर्जरा करने वाला है।”

इस तरह प्रभु महावीर ने प्रशंसा की। राजा श्रेणिक भी धन्य अणगार के दर्शन करने हेतु आया। उसने प्रभु महावीर की प्रशंसा भी अणगार धन्य से कही। वह इस प्रशंसा से अधिक प्रसन्न नहीं हुए, क्योंकि साधक का परम लक्षण दुःख-सुख में सम रहना है। प्रशंसा और निंदा, मान-अपमान से परे वह स्थितप्रज्ञ अवस्था में लीन थे। आत्म-चिंतन में लगे थे। उनका तप कर्मनिर्जरा के लिए था न कि संसार में प्रसिद्धि के लिए।

मगध सम्राट् उनके दर्शन से प्रसन्न हुआ। एक महीने का संयम पालन कर मारणान्तिक संलेखना कर धन्य अनगार सर्वार्थसिद्ध विमान में देव रूप में पैदा हुए।<sup>४४</sup>

## श्रमणोपासक कुण्डकोलिक

कांकदी से विहार करके प्रभु महावीर काम्पिल्यपुर पधारे। वहाँ समवसरण लगा। राजा जितशत्रु व उसकी प्रजा धर्मोपदेश सुनने आई और वन्दन करने के पश्चात् चली गई। इसी नगर का करोड़पति कुण्डकोलिक भी धर्म उपदेश सुन रहा था। प्रभु महावीर के वैराग्यमय उपदेश का उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप उसने श्रावक के व्रत प्रभु महावीर से अंगीकार किये।

इस श्रेष्ठी की सम्पदा का वर्णन उपासकदशांगसूत्र में मिलता है। उसके पास १४ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ थीं। दस-दस हजार गायों के छह व्रज थे। इन गायों के चारे के लिए उपयुक्त भूमि भी थी।

## देव आगमन व चर्चा

वह साधना करने लगा। सामायिक व पौषध द्वारा अपनी आत्मा को निर्मल बनाने लगा। एक बार मध्याह्न के समय वह अपनी अशोक वाटिका में आया। वहाँ पृथ्वी शिला पट्टक पर अपनी नाम की मुद्रिका और उत्तरीय वस्त्र रखकर धर्म-आराधना करने लगा। उसी समय एक देव वहाँ प्रकट हुआ और उसने प्रकट रूप में कुण्डकोलिक से कहा-“मंखलीपुत्र गोशालक की धर्म प्रज्ञप्ति अत्यंत सुन्दर है। उसमें उत्थान, बल, वीर्य और पुरुषाकार का अभाव है। सभी बातें नियति पर अवलम्बित हैं अतः उसे तुम ग्रहण करो तो अच्छा है।”

कुण्डकोलिक-“देवराज ! आपका कथन युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि आपकी ये दिव्य ऋद्धि, द्युति आदि की जो प्राप्ति हुई है वह पुरुषार्थ या पराक्रम से मिला है या पुरुषार्थ के अभाव में ?”

देव-“ये सभी मुझे पुरुषार्थ के बिना ही प्राप्त हुआ है।”

कुण्डकोलिक-“आपने सारी बातें पुरुषार्थ के अभाव से मानी हैं तो जिनमें उत्थान, पराक्रम का अभाव है, वह देव क्यों नहीं बने ? तुम्हारा गोशालक की धर्म-प्रज्ञप्ति के संबंध में तर्क वजनदार नहीं है। मैं तुम्हारे कथन से सहमत नहीं हूँ।”

कुण्डकोलिक के उत्तर सुनकर देव निरुत्तर हो गया। देव जहाँ से आया था वहाँ चला गया।

सुबह हुई। कुण्डकोलिक प्रभु महावीर के दर्शन करने के लिए आया। समवसरण लगा हुआ था। सर्वज्ञ महावीर ने धर्म उपदेश के बाद कुण्डकोलिक से पूछा—“देवानुप्रिय ! क्या धर्म—आराधना करते समय कोई देव ने आकर तुमसे मंखलिपुत्र गोशालक की धर्म—प्रज्ञा की प्रशंसा की थी ?”

कुण्डकोलिक—“हाँ प्रभु ! आपका कथन सत्य है।”

फिर सर्वज्ञदर्शी प्रभु महावीर ने सारे घटनाक्रम पर प्रकाश डाला। कुण्डकोलिक व देव के मध्य हुई बातचीत का वर्णन किया।

प्रभु महावीर ने अपने साधु—साध्वियों को संबोधित करते हुए कहा—“हे आर्यो ! जो गृहस्थाश्रम में रहकर भी अर्थ हेतु प्रश्न, व्याकरण और उत्तर के संबंध में अन्य तीर्थंकरों को निरुत्तर करता है। तो हे आर्यो ! द्वादश गणिपिटक का अध्ययनकर्ता श्रमण निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर करने में शक्य है।”

इस प्रकार प्रभु महावीर ने कुण्डकोलिक के ज्ञान व साधना की प्रशंसा अपनी धर्मसभा में की। इस बात से यह बात सिद्ध होती है कि भगवान महावीर के श्रावक घर में रहते हुए भी तत्त्वज्ञान में किसी को भी पराजित करने में सक्षम थे।

दूसरा तथ्य यह है कि प्रभु महावीर ज्ञान की प्रशंसा करने में नहीं चूकते थे। ज्ञानी के ज्ञान की प्रशंसा वह अपने साधु—साध्वी परिवार में उन्हें (साधु—साध्वी) को शिक्षित करने के लिए करते। वह श्रावक व श्राविका को भी धर्म संघ का बराबरी का स्थान बिना जाति—पाँति, देश, काल, रंग, नस्ल, भाषा, आयु व लिंग के आधार पर देते थे। प्रभु महावीर ज्ञानी के ज्ञान के प्रबल प्रशंसक थे। दूसरों को उनसे प्रेरणा लेने की बात कहते थे।

कुण्डकोलिक ने लम्बे समय तक धर्म—आराधना की। फिर द्वादश श्रावक प्रतिमाओं की आराधना कर देवलोक में उत्पन्न हुआ।

### सद्दालपुत्र का व्रत ग्रहण

काँपिलपुर से विहार कर भगवान महावीर पोलासपुर पधारे। पोलासपुर में आजीवक (गोशालक) मत का श्रावक सद्दालपुत्र रहता था। वह गोशालक का परम भक्त था। उसके द्वारा बताये मार्ग पर चलता था। वह जाति का कुम्भकार था। पर सम्पन्न कुम्भकार था। उसकी नगर में ५०० दुकानें थीं जिसमें विभिन्न प्रकार के बर्तन व खिलौने तैयार होते थे। उसके यहाँ अनेक कर्मचारी उन बर्तनों को तैयार करते थे फिर तैयार बर्तनों को दूसरे कर्मचारी बाजार—चौराहों पर बेचते थे। उसके पास तीन करोड़ स्वर्ण—मुद्राएँ थीं और दस हजार गायों का एक व्रज था। उसकी पत्नी सुन्दर, सुशील व धार्मिक प्रवृत्ति की थी। उसका नाम अग्निमित्रा था। वह भी आजीवकोपासिका थी।

### देव प्रकट होना

एक बार सद्दालपुत्र मध्याह्न में अपनी अशोक वाटिका में बैठा गोशालक द्वारा बताये मार्ग के अनुसार धर्म—आराधना कर रहा था कि तभी एक देव प्रकट हुआ। देव ने कहा—“सद्दालपुत्र ! कल प्रातः सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, महाब्राह्मण पधारेगे। उनके पास जाकर प्रतिहारक, शय्या, पीठ फलकादि के लिए उन्हें निमन्त्रित करना।”

यह बात सुनते ही वह सावधान हो गया, उसने सोचा कि मेरे धर्माचार्य गोशालक ही कल पधारेगे। क्योंकि वर्तमान में वही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, जिनकी देव ने प्रशंसा की है।

अगले दिन सुबह शीघ्रता से उठा। सभी शारीरिक जरूरतों से निवृत्त हो वह अपने धर्माचार्य के पास जाने की तैयारी करने लगा। अभी वह ठीक तरह से तैयार भी नहीं हुआ था कि इतने में जन—प्रवाद सुनाई देने लगा—पोलासपुर के बाहर ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं।

महावीर का आगमन सुनते ही सद्दालपुत्र हतोत्साह हो गया। उसकी दर्शनोत्कंठा शान्त हो गई। क्षणभर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ होने के उपरान्त उसे गत रात्रि का देवादेश याद आया। उसका हृदय जागरित हुआ। वह भगवान के पास पहुँचा और विनयपूर्वक बोला—“भगवन् ! शय्या, फलकादि प्रस्तुत हैं, स्वीकार करने का अनुग्रह कीजिये।” श्रमण भगवान सद्दालपुत्र का निमंत्रण स्वीकार कर उसकी भाण्डशाला में जा उपस्थित हुए।

भगवान को अपनी भाण्डशाला में ठहराकर तथा पीठ फलकादि प्रातिहारिक अर्पण कर सद्दालपुत्र अपने काम में लगा। भाण्डशाला में बर्तनों को इधर-उधर करता, गीलों को धूप में और सूखों को छाया में रखता हुआ वह अपने काम में लीन था, उस समय भगवान ने सद्दालपुत्र से पूछा—“सद्दालपुत्र ! यह बर्तन कैसे बना ?”

सद्दालपुत्र—“भगवन् ! यह बर्तन पहले केवल मिट्टी ही होता है। उसे जल में भिगो लीद-भूसा आदि मिलाकर पिण्ड बनाते हैं और पिण्ड को चाक पर चढ़ाकर हाँडी, मटकी आदि अनेक प्रकार के बर्तन बनाए जाते हैं।”

महावीर—“ये बर्तन पुरुषार्थ और पराक्रम से बने हैं अथवा उनके बिना ही ?”

सद्दालपुत्र—“ये बर्तन नियति-बल से बनते हैं, पुरुष-पराक्रम से नहीं। सब पदार्थ नियतिवश हैं। जिसका जैसे होना नियत है वह वैसे ही होता है। उसमें पुरुष प्रयत्न कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता।”

महावीर—“सद्दालपुत्र ! तुम्हारे इन कच्चे तथा पक्के बर्तनों को यदि कोई पुरुष चुरा ले, बिखेर दे, फोड़ डाले या फेंक दे अथवा तेरी स्त्री अग्निमित्रा के पास जाए तो तुम उसे क्या दण्ड दोगे ?”

सद्दालपुत्र—“भगवन् ! उस पुरुष को मैं गालियाँ दूँ, पीटूँ, बाँधूँ, तर्जन-ताड़न करूँ और उसके प्राण तक ले लूँ।”

महावीर—“सद्दालपुत्र ! तुम्हारे मत से न कोई पुरुष तुम्हारे बर्तन तोड़-फोड़ या चुरा सकता है, न ही तुम्हारी स्त्री के पास जा सकता है और न ही तुम उसे तर्जन-ताड़नादि दण्ड ही दे सकते हो, क्योंकि सब भाव नियत ही होते हैं। किसी का किया कुछ नहीं होता। यदि तुम्हारे बर्तन किसी से तोड़े-फोड़े जा सकते हैं, अग्निमित्रा के पास कोई जा सकता है और इन कामों के लिए तुम किसी को दण्ड दे सकते हो तो फिर ‘पुरुषार्थ नहीं, पराक्रम नहीं, सर्वभाव नियत है’ यह तुम्हारा कथन असत्य सिद्ध होगा।”

सद्दालपुत्र समझ गया। नियतिवाद का सिद्धान्त कैसा अव्यावहारिक है, इसका उसे पता लग गया। वह श्रमण भगवान महावीर के चरणों में नतमस्तक होकर बोला—“भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन का उपदेश सुनना चाहता हूँ।”

भगवान ने सद्दालपुत्र की इच्छा का अनुमोदन करते हुए निर्ग्रन्थ-प्रवचन का उपदेश दिया जिसे सुनकर सद्दालपुत्र को जिन-धर्म पर श्रद्धा और रुचि जाग्रत हुई। उसी समय उसने द्वादश व्रत सहित गृहस्थ धर्म स्वीकार किया।

घर जाकर सद्दालपुत्र ने अपने नये धर्म और नये धर्माचार्य के स्वीकार की बात अग्निमित्रा से कही और उसे भी एक बार भगवान महावीर के मुख से निर्ग्रन्थ-प्रवचन सुनने और उस पर श्रद्धा लाने की सलाह दी। अग्निमित्रा अपना रथ सजाकर भगवान के पास गई और उनका दिव्य उपदेश सुनकर उसके हृदय में यथार्थ श्रद्धा उत्पन्न हुई और उसी समय सम्यक्त्व मूल द्वादश व्रतात्मक गृहस्थ धर्म स्वीकार कर अपने स्थान गई।

सद्दालपुत्र के धर्म-परिवर्तन का समाचार आजीवक संघ के नेता मंखलिपुत्र गोशालक के कानों तक पहुँचा। आजीवक मतानुयायी गृहस्थों में सद्दालपुत्र का विशेष स्थान था। उसके धर्म-परिवर्तन करने की मंखलिपुत्र के हृदय में कभी कल्पना भी नहीं हुई थी। जब उसने सद्दालपुत्र के आजीविक-धर्म छोड़ने की बात सुनी तो मानो उस पर वज्रपात हो गया। क्रोध से उसका शरीर काँपने लगा, आँठ फड़कने लगे और चेहरा लाल हो उठा। क्षणभर अवाक् हो ओठों को चबाता हुआ अपने भिक्षु-संघ से बोला—“भिक्षुओ ! सुनते हो, पोलासपुर का धर्म-स्तंभ गिर गया। श्रमण महावीर के उपदेश से सद्दालपुत्र आजीविक संप्रदाय को छोड़कर निर्ग्रन्थ-प्रवचन का भक्त हो गया है। कैसा आश्चर्य है ! कितने खेद की बात है ! भिक्षुओ चलिये, पोलासपुर की ओर शीघ्र चलिये। सद्दाल को फिर से आजीविक धर्म में लाकर स्थिर

करना अपना सर्वप्रथम कर्तव्य है। अपने भिक्षु-संघ के साथ मंखलि गोशालक ने पोलासपुर की ओर प्रयाण किया। उसे पूर्ण विश्वास था कि पोलासपुर जाते ही सद्दालपुत्र फिर आजीवक संघ का सदस्य बन जायेगा। इसी आशा में उसने बड़ी जल्दी पोलासपुर का मार्ग तय किया।

पोलासपुर में आजीवक संघ की एक सभा थी, गोशालक ने उसी सभा में डेरा डाला। कुछ भिक्षुओं के साथ गोशालक सद्दालपुत्र के स्थान पर गया। वह सद्दालपुत्र जो गोशालक का नाममात्र सुनकर पुलकित हो उठता था, आज उसे अपने मकान पर आये हुए देखकर भी उसने कोई संभ्रम नहीं दिखाया। गोशालक को देखकर न वह उठा ही और न उसका गुरुभाव से सत्कार ही किया। मंखलि श्रमण को अपनी शक्ति की धाह मिल गयी। सद्दालपुत्र को पुनः आजीवक मतानुयायी बनाने की उसकी आशा विलीन-सी हो गई। उसने सोचा-‘उपदेश द्वारा या प्रतिकूलता दिखाने से सद्दालपुत्र का अनुकूल होना कठिन है।’ शान्ति और कोमलता धारण करते हुए गोशालक बोला-‘देवानुप्रिय ! महाब्राह्मण यहाँ आ गये ?’

सद्दालपुत्र-‘महाब्राह्मण कौन ?’

गोशालक-‘श्रमण भगवान महावीर।’

सद्दालपुत्र-‘भगवान महावीर महाब्राह्मण कैसे ? श्रमण भगवान को किस कारण महाब्राह्मण कहते हो ?’

गोशालक-‘भगवान महावीर ज्ञान-दर्शन के धारक हैं, जगत्पूजित हैं और सच्चे कर्मयोगी हैं। इसलिये वे ‘महाब्राह्मण’ हैं। क्या महागोप यहाँ आ गये ?’

सद्दालपुत्र-‘महागोप कौन ?’

गोशालक-‘श्रमण भगवान महावीर।’

सद्दालपुत्र-‘देवानुप्रिय ! भगवान महावीर को महागोप कैसे कहते हो ?’

गोशालक-‘इस संसाररूपी घोर अटवी में भटकते, टकराते और नष्ट होते संसारी-प्राणियों का धर्मदण्ड से गोपन करते हैं और मोक्षरूप बाड़े में सकुशल पहुँचाते हैं। इसी कारण भगवान ‘महागोप’ हैं। क्या ‘महाधर्मकथी’ यहाँ आ गये, सद्दालपुत्र ?’

सद्दालपुत्र-‘महाधर्मकथी कौन ?’

गोशालक-‘श्रमण भगवान महावीर।’

सद्दालपुत्र-‘देवानुप्रिय ! भगवान महावीर को महाधर्मकथी किस कारण कहते हो ?’

गोशालक-‘सद्दालपुत्र ! इस असीम संसार में भटकते, टकराते, वास्तविक मार्ग को छोड़कर उन्मार्ग पर चलते हुए अज्ञानी जीवों को धर्मत्व का उपदेश देकर धर्ममार्ग पर चलाते हैं, इस वास्ते श्रमण भगवान महावीर ‘महाधर्मकथी’ हैं। क्या ‘महानिर्यामक’ यहाँ आ गये, सद्दालपुत्र ?’

सद्दालपुत्र-‘महानिर्यामक कौन ?’

गोशालक-‘श्रमण भगवान महावीर।’

सद्दालपुत्र-‘देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान महावीर को महानिर्यामक किसलिये कहते हो ?’

गोशालक-‘इस संसाररूपी अथाह समुद्र में डूबते हुए जीवों को धर्मस्वरूप नाव में बिठलाकर अपने हाथ से उन्हें पार लगाते हैं, अतः श्रमण भगवान महावीर ‘महानिर्यामक’ हैं।’

सद्दालपुत्र-‘देवानुप्रिय ! तुम ऐसे चतुर, ऐसे नयवादी, ऐसे उपदेशक और ऐसे विज्ञान के ज्ञाता हो तो क्या मेरे धर्माचार्य, धर्मापदेशक श्रमण भगवान महावीर के साथ विवाद कर सकते हो ?’

गोशालक-‘नहीं, मैं ऐसा करने में समर्थ नहीं हूँ।’

सदालपुत्र—“क्यों ? मेरे धर्माचार्य के साथ विवाद करने में तुम समर्थ क्यों नहीं ?”

गोशालक—“सदालपुत्र ! जैसे कोई युवा मल्ल पुरुष भेड़ें, सुअर आदि पशु या कूकर, तीतर, बतख आदि पक्षी को पाँव, पूँख, पंख जहाँ कहीं से पकड़ता है मजबूती से पकड़ता है, वैसे ही श्रमण भगवान महावीर भी हेतु, युक्ति, प्रश्न और उत्तर में जहाँ-जहाँ मुझे पकड़ते हैं, वहाँ-वहाँ निरुत्तर करके ही छोड़ते हैं। इसलिए मैं तुम्हारे धर्माचार्य के साथ विवाद करने में असमर्थ हूँ।”

सदालपुत्र—“देवानुप्रिय ! आपने मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर की वास्तविक प्रशंसा की है। इसलिए मैं आपको पीठ फलक आदि का निमन्त्रण देता हूँ। आप मेरी भाण्डशाला में जाकर ठहर सकते हो। गोशालक भाण्डशाला में ठहर गया। वहाँ सदालपुत्र ने उसे बहुत समझाया, पर वह नहीं माना। गोशालक के मन की गहरी चोट लगी, जो कभी शांत नहीं हुई।”

पोलासपुर में ही अतिमुक्त मुनि ने दीक्षा ग्रहण की जिसकी कथा इस प्रकार है—

### अतिमुक्तकुमार

भगवान महावीर के शिष्य-परिवार में सबसे छोटे मुनि अतिमुक्तकुमार थे। इसका वर्णन अन्तकृदशांग व भगवतीसूत्र में स्वयं भगवान महावीर ने किया है। यह पोलासपुर के राजा विजय व रानी श्रीदेवी के पुत्र थे। उपासकदशांग में पोलासपुर का राजा जितशत्रु बताया गया है। जितशत्रु उस समय का कोई विशेषण रहा होगा। वहाँ श्रीवन उद्यान था। एक बार भगवान महावीर अपनी धर्मदेशना देते हुए पोलासपुर पधारे।

उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति भिक्षा के लिए शहर में घूम रहे थे। कुछ ही दूर कुछ बच्चे उद्यान में सोने की गेंद से खेल रहे थे। उस खेल स्थान का नाम इन्द्रस्थान था। ज्यों ही गणधर गौतम इस स्थान से गुजरे। अतिमुक्त ने उनको देखा। शान्त, दान्त और मन्द मुस्कान से भरा मुख, विशाल भाल, उन्नत मस्तक, चमकते नेत्र, अभय की मंजुलमूर्ति विशिष्ट श्वेत वेश-भूषा ने अतिमुक्त को आकर्षित किया। वह कुछ देर टकटकी लगाकर उनकी ओर देखता रहा। फिर उनके करीब आकर पूछने लगा—“भदन्त ! आप कौन हैं और किस कारण घर-घर में घूम रहे हैं ?”

गणधर गौतम ने उस अद्भुत बालक को देखा। उसका चेहरा सहजता, सरलता का सुन्दर प्रतीक था। गौतम स्वामी ने साधु भाषा में उस बालक की जिज्ञासा शांत करते हुए कहा—“देवानुप्रिय ! हम श्रमण निर्ग्रन्थ मुनि हैं। भिक्षा के लिए हम उच्च, नीच, मध्यम कुलों में घूमते हैं।”

अतिमुक्तक ने पूछा—“क्या आप मेरे घर भिक्षा के लिए पधारेंगे ?”

गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—“हाँ, क्यों नहीं।”

अतिमुक्तक ने पुनः कहा—“फिर आप मेरे साथ अभी चलिये। मैं आपको अपने घर से भिक्षा दिलवाता हूँ।”

यह कहकर अतिमुक्तक ने चार ज्ञान के धारक, लब्धिधारी गौतम की अंगुली पकड़ ली। वह गणधर गौतम को अपने महलों में अंगुली पकड़कर ले गया। महल आ गया। माता श्रीदेवी गणधर गौतम के आगमन से प्रसन्न हुई। उसने विधि सहित वन्दन किया, फिर भोजन दिया। अतिमुक्तक गणधर गौतम की अंगुली पकड़कर बाहर आया। वह उनसे पूछने लगा—“महाराज ! आप कहाँ रहते हैं ?”

गौतम ने बड़े ही स्नेह और सरलता से उत्तर दिया—“हम अपने धर्माचार्य भगवान महावीर के पास रहते हैं, जो इस समय नगर के बाहर श्रीवन में विराजमान हैं, हम उनके शिष्य हैं।”

अतिमुक्तक छह वर्ष का बालक था। वह गणधर गौतम से काफी प्रभावित हो चुका था। ऐसा लगता था कि उनका पूर्व परिचित हो।



गौतम स्वामी प्रभु महावीर के साथ लौटे। साथ में उँगली पकड़े अतिमुक्तक कुमार भी था। प्रभु महावीर को जैसे गौतम ने वन्दन किया उसका अनुसरण अतिमुक्तक ने भी किया। अतिमुक्तक ने प्रभु महावीर का वैराग्यमय उपदेश सुना।

उपदेश सुनने के बाद अतिमुक्तक ने कहा—“भंते ! मैं भी आपके समान श्रमण बनना चाहता हूँ।”

प्रभु महावीर ने कहा—“भंते ! जैसे आपकी आत्मा को सुख हो वैसा करो पर शुभ कार्य में प्रमाद मत करो।”

वह अपने महलों में आया। उसने माता-पिता से साधु बनने की आज्ञा माँगी तो माता-पिता ने कहा—“बेटा ! अभी तू अल्पायु है फिर साधु-जीवन कोई बच्चों का खेल नहीं है। यह तो नंगी तलवार पर चलना है। तू जिस वातावरण में पला है उसे त्यागना तेरे लिए कठिन है फिर तू धर्म के विषय में क्या जानता है ?”

अतिमुक्तक ने कहा—“हे माता-पिता ! मैं कुछ जानता भी हूँ, कुछ नहीं भी जानता।”

माता पिता ने कहा—“बेटा ! तू क्या जानता है, क्या नहीं जानता हमें भी बता ?”

अतिमुक्तक ने जो उत्तर दिया, वह धर्म के इतिहास में अभूतपूर्व था। फिर मात्र छह वर्ष का बालक धर्मचर्चा कर रहा था। यह अवस्था बाल्यावस्था कहलाती है पर जिसकी आत्मा जागृत हो जाये, जिस पर वैराग्य का रंग चढ़ गया हो उसे संसार अपने रंग में रंग नहीं सकता। अतिमुक्तक की आत्मा सरल और विशुद्ध थी। इसी आत्मा के स्वामी अतिमुक्तक ने कहा—“हे माता-पिता ! मैं ये जानता हूँ कि जो जन्मा है वह एक दिन मरेगा जरूर, पर मरकर कहाँ जायेगा, यह मैं नहीं जानता।”

इतना सूक्ष्म तत्त्व ज्ञान कम ही किसी के जीवन में वैराग्य से पहले मिलता है। माता-पिता समझा-बुझाकर थक गये। फिर उन्होंने कहा—“बेटा ! तुम खुशी से साधु बनो। हम कोई रुकावट नहीं बनेंगे। पर हम तुम्हें राजा के रूप में देखना चाहते हैं। तुझे एक दिन इस सिंहासन पर बैठना पड़ेगा।”

अतिमुक्तक ने माता-पिता की बात को सहर्ष स्वीकार किया। राज्याभिषेक की तैयारी की गई। एक दिन का राजा अतिमुक्तक बना। अगले दिन वह प्रभु महावीर के चरणों में साधु बन गया।

जैन परम्परा में ८ वर्ष से कम दीक्षा देने का विधान नहीं है पर प्रभु महावीर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे। उन्हें इस जीव के शीघ्र मोक्ष जाने का ज्ञान था। सो उन्होंने अतिमुक्तक को साधु बनाया।

भगवतीसूत्र में अतिमुक्तक मुनि के श्रमण-जीवन की एक घटना का वर्णन प्राप्त होता है।

एक बार आकाश घने बादलों से भरा पड़ा था। स्थविरो-मुनियों के साथ अतिमुक्तक श्रमण भी विहार भूमि को निकले। स्थविर इधर-उधर बिखर गये। उसी समय वर्षा शुरू हो गई। वर्षा इतनी तेज थी कि पानी ऊपर से नीचे की ओर बह रहा था। अतिमुक्तक चाहे मुनि था पर अभी उसका बचपन नहीं गया था। उसे वर्षा में खेलने की सूझी। उसने मिट्टी के पाल को बाँधकर जल के प्रवाह को रोका और लकड़ी का पात्र उसमें छोड़ दिया। आनन्द विभोर होकर वह कहने लगे—“देखो, मेरी नैया पार हो रही है।” पात्र की नैया बह रही थी।

साथी स्थविरो (मुनियों) ने देखा कि बाल मुनि साधु मर्यादा के विपरीत कार्य कर रहा है। उन्हें काफी रोष आया। स्थविरो का रोष मुख पर आ गया। अतिमुक्तक एकदम सँभल गया। अब अपनी भूल का पश्चात्ताप करने लगा। उसे अपनी मर्यादा का भान हो चुका था। उसने पश्चात्ताप से अपनी आत्मा को पावन बना लिया था।

भगवान महावीर की सेवा में पहुँचकर स्थविरो ने सविनय प्रश्न किया—“भगवन् ! आपका यह लघु शिष्य अतिमुक्तक कितने भवों में मुक्त होगा ?”

भगवान ने उत्तर दिया—“मेरा यह शिष्य इसी भव में शीघ्र ही मोक्ष जाने वाला है। स्थविरो ! तुम इसकी हीलना-निन्दना और गर्हणा मत करो। जहाँ तक हो सके इसकी सेवा करो, भक्ति करो। यह निर्मल आत्मा है। इस पर क्रोध व रोष मत करो।”

स्थविरों ने प्रभु महावीर के कथन को सहर्ष स्वीकार किया। वह परस्पर कहने लगे—“यह देह से लघु है, पर आत्मा की दृष्टि से महान् है। यह सागर से भी अधिक गंभीर है और हिमगिरि से भी अधिक उन्नत है। जिसकी आत्मा विशुद्ध है वही पूज्य है, आदरणीय है, साधना के क्षेत्र में देह की पूजा नहीं, किन्तु गुणों की पूजा होने लगती है।” स्थविर अतिमुक्तक मुनि की सेवा करने लगे।<sup>४६</sup>

अतिमुक्तक मुनि ने एकाग्र और एकनिष्ठ होकर स्थविरों से ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। संयम और तप के कारण उनका कोमल शरीर कुम्हलाने लगा। उनकी गुलाबी आभा तेज में परिणत हो गई। गुणसंवस्तर तप की सुदीर्घ आराधना से देह बल क्षीण होने लगा किन्तु मनोबल के साथ वह लघु साधक तपोमार्ग पर निरन्तर बढ़ता गया।

जीवन के अन्त में विपुलगिरि पर संलेखना से उसने अजर, अमर पद प्राप्त किया।<sup>४७</sup>

पोलासपुर से विहार कर प्रभु महावीर अपने सपस्त शिष्य-परिवार सहित अनेक नगरों-ग्रामों में धर्म-प्रचार करने लगे।

## बाईसवाँ वर्ष

अब वर्षावास आ चुका था। वह वर्षावास का समय बिताने वाणिज्यग्राम पधारे। इस वर्ष अनेक जीवों ने प्रभु के उपदेश से प्रभावित होकर महाव्रत व श्रावक व्रत अंगीकार किये।

चातुर्मास समाप्त होते ही प्रभु महावीर ने वाणिज्यग्राम से मगध देश की ओर विहार किया। वह इसकी राजधानी राजगृही के गुणशील चैत्य में पधारे। प्रभु महावीर के आगमन की सूचना राजा श्रेणिक व रानी चेलना को लगी। दोनों प्रभु महावीर को वन्दन करने आये।

प्रभु महावीर पोलासपुर से विहार कर राजगृह में धर्म-प्रचार कर रहे थे। यहीं उनका शिष्य महाशतक गाथापति रहता था। उसके पास १४ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ थीं। रेवती आदि १३ पत्नियाँ थीं। रेवती अपने पितृ-गृह से ८ करोड़ का हिरण्य लाई थी और एक व्रज भी लाई थी। शेष पत्नियाँ भी एक-एक करोड़ का हिरण्य लाई थीं और एक-एक व्रज।

भगवान महावीर के आगमन का समाचार महाशतक को मिल चुका था। वह भी अन्य लोगों की तरह प्रभु महावीर की धर्मदेशना सुनने गया। राजा श्रेणिक व राज्य-परिवार के सदस्य, गरीब, अछूत, साहूकार, प्रभु महावीर की वाणी का आनंद ले रहे थे। उपदेश समाप्त होने के पश्चात् महाशतक ने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये।

महाशतक की रेवती नामक पत्नी दुष्ट स्वभाव की थी। वह बड़ी क्रूर, लालची और कामासक्त थी। वह शराब, माँस का हर रोज सेवन करती थी। धर्म-कर्म के नाम से उसे चिढ़ थी। उसने इसी लालचवश अपनी छह सौतों को शस्त्र-प्रयोग से और छह को विष प्रयोग से मरवा दिया। उनकी सारी सम्पत्ति की वह स्वयं स्वामिनी बन गई।

एक बार प्रभु महावीर राजगृह में पधारे। राजा श्रेणिक ने अमारि की घोषणा की। इस कानून के अनुसार किसी भी व्यक्ति को माँस दुकानों से मिलना बंद हो गया। रेवती रसलोलुप थी। उसने अपने यहाँ एक नौकर को अपने पितृ-गृह भेजा। वहाँ से वह हर रोज दो बछड़ों का माँस मंगवाने लगी, जिसे पकाकर वह शराब के साथ सेवन करती। रेवती की किसी बात का भी महाशतक को पता नहीं था क्योंकि उसका अधिकांश समय धर्म-आराधना हेतु बनी पौषधशाला में बीतता। पर जब उसे रेवती की इस करतूत का पता चला कि वह पीहर से दो बछड़ों का माँस मँगाकर सेवन करती है तो महाशतक को रेवती से घृणा हो गई। वह उससे विरक्त होकर आत्म-साधना में लीन रहने लगा।

महाशतक को साधना करते हुए १४ वर्ष व्यतीत हो चुके थे तब उसने बड़े पुत्र को घर का भार सँभालने के लिए स्वयं पौषधशाला में धर्म प्रज्ञप्ति के अनुसार साधना करने लगा।

एक दिन की बात है रेवती गाथा पत्नी माँस और शराब के नशे में धुत्त हुई अत्यन्त कामातुर एवं निर्लज्ज होकर महाशतक के पास आई। उसे वह अपने कामपाश में बाँधने के लिए प्रयत्न करने लगी पर महाशतक पूर्ण विरक्त रहा।

रेवती कामुक प्रवृत्ति दिखाते हुए कामभोग की याचना करने लगी और रेवती ने कहा—“मुझे ज्ञात है तुम्हारे सिर पर धर्म का नशा चढ़ा है, तुम मुक्ति के लालच में फँसकर यह विरक्ति का ढोंग रच रहे हो। पर तुम नहीं जानते, यदि मेरी इच्छा को तृप्त कर मेरे साथ कामभोग सेवन करते हो, तो वह मुक्ति के सुख से भी अधिक आनंद देंगे। आओ ! मेरी इच्छा पूरी कर मुझे तृप्त करो।”

## महाशतक का बोध ज्ञान

रेवती बेशर्मा की सभी हर्षे पार कर चुकी थी। उसने अपने इसी वाक्य को तीन बार दोहराया। महाशतक को साधना से गिराने के लिए कामोद्दीपक हाव, भाव और कटाक्ष किया, पर महाशतक अडिग रहा। घोर तप की साधना से उसका शरीर कृश हो गया, अतः वह मारणान्तिक संलेखना द्वारा अशन, पान का त्याग कर दिया। शुभ अध्यवसाय से उसे अवधिज्ञान हुआ। इसके प्रभाव से वह पूर्व, पश्चिम, दक्षिण दिशा तक एक हजार योजन तक और उत्तर दिशा में चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत तक की हर घटना को जानने और देखने लगा। नीचे वह रत्नप्रभा पृथ्वी के चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाला लोलुप अच्युत नाम के नरकावास तक जानने-देखने लगा।

## रेवती का पुनः आगमन

महाशतक अब अवधिज्ञानी था। उसकी पत्नी को शराब-माँस की आदत पड़ चुकी थी। एक दिन रेवती पुनः मदिरा के नशे में उसके निकट आई। उस समय वह अनशन में धर्म जागरण कर रहा था। रेवती विह्वलतापूर्वक काम-प्रार्थना करने लगी। महाशतक मौन रहा। रेवती ने यह काम हरकत दो बार की। तीसरी बार रेवती महाशतक को कामवश धिक्कारने लगी। उसके व्रतों व आचार पर तिरस्कारपूर्वक आक्षेप करने लगी। और अंत में जब अत्यंत काम-विह्वल हो गर्हित आचरण करने पर उतारू हो गई, तो महाशतक को क्रोध आ गया। उसने रेवती को अभद्र व्यवहार के लिए फटकार लगाई फिर अपने अवधिज्ञान से रेवती का अंधकारमय भविष्य देखते हुए कहा—“रेवती, तुम सात दिनों में अलसक (विषुचिका) रोग से पीड़ित होकर रत्नप्रभा पृथ्वी में अच्युत नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाली नरक योनि में पैदा होगी। वहाँ अत्यंत उग्र कष्ट पायेगी।”

महाशतक की आक्रोशपूर्ण बात सुनकर रेवती घबरा गई। उसका नशा काफूर हो गया। उसे लगा कि मेरे पति ने मुझे शाप दिया है। मेरा पति धर्म की आराधना करता रहता है। इसी के प्रभाव से इसने मेरे मरने की भविष्यवाणी की है।

वह रोती-पीटती अपने घर आई। ठीक सात दिन बाद अलसक रोग से पीड़ित होने के कारण मरकर वह नरक में उत्पन्न हुई।

जब यह घटना घटी तब प्रभु महावीर राजगृही में ही थे। सर्वज्ञ से कुछ भी छिपा नहीं होता। उन्होंने अपने प्रथम शिष्य इन्द्रभूति गौतम को बुलाकर आज्ञा दी—“गौतम ! इस नगरी में महाशतक श्रावक रहता है, वह अवधिज्ञानी है। उसे जाकर मेरा संदेश कहो कि तुम्हें इस प्रकार कटु सत्य अपनी पत्नी रेवती के प्रति नहीं कहने चाहिये।” इस प्रकार का अनिष्ट, अप्रिय वचन, जिसे सुनने से किसी को पीड़ा होती हो, विचार करने पर मन में चुभता हो, नहीं बोलना चाहिये। महाशतक ने रेवती के प्रति आक्रोशपूर्ण व्यवहार कर अपने श्रावक व्रत को दूषित किया है। अतः तुम जाकर उसे (महाशतक से) कहो कि वह अपने इस अविचार की आत्म-आलोचना, आत्म-निन्दा करके आत्मा को विशुद्ध बनाये।”

प्रभु महावीर का संदेश लेकर गौतम राजगृह में महाशतक श्रावक के पास आये। महाशतक ने गौतम स्वामी को देखा तो बहुत प्रसन्न हुआ। विनयपूर्वक वन्दना की। महाशतक को भगवान महावीर का संदेश सुनाते हुए कहा—“देवानुप्रिय ! तुमने जो इस प्रकार आक्रोशपूर्ण कटु वचन कहकर रेवती की आत्मा को संतृप्त किया, भयभीत किया वह उचित नहीं था। तुम्हारे लिए उस समय मौन रहना उचित था। तुम्हारे क्रोध के कारण तुम्हारा व्रत भंग हुआ है।”

तुम अपनी भूल का प्रायश्चित्त करो, आलोचना कर आत्मा को निर्दोष बनाओ।”

महाशतक ने अपने शास्ता प्रभु महावीर का संदेश सुना। उसे शिरोधार्य किया। अपने गुरु के कथनानुसार अपने क्रोध की आलोचना कर अपनी आत्मा को शुद्ध बनाया।

महाशतक श्रावक ने लम्बे समय तक श्रावक के १२ व्रतों का पालन किया।

अन्तिम समय ६० भक्त का अनशन पूर्ण कर वह सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ।<sup>४८</sup>

महाशतक का जीवन बहुत ही क्रान्तिकारी था। उसका घर, परिवार धर्म-कार्य में उसका सहयोगी नहीं था। जिस घर में पत्नी माँस व शराब का सेवन करती हो वहाँ महावीर के धर्म पर चलना असंभव-सा लगता है। पर वह महाशतक धर्म के मार्ग पर अकेला चलने में विश्वास करता था। इस कथा से हमें प्रेरणा मिलती है कि कटु सत्य से बचना चाहिये।

इस अवसर पर बहुत से पार्श्वपत्य स्थविर भगवान महावीर के समवसरण में आये और उन्होंने कुछ दूर खड़े रहकर प्रश्न किया—“भगवन् ! इस असंख्येय लोक में अनन्त रात्रि-दिन उत्पन्न हुए, होते हैं और होंगे या परीत्त ?”

महावीर—“आर्यो ! इस असंख्येय लोक में अनन्त और परीत्त रात्रि-दिन उत्पन्न हुए, होते हैं और होंगे तथा अनन्त और परीत्त ही व्यतीत हुए, होते हैं और होंगे।”

स्थविर—“भगवन् ! यह कैसे ? असंख्येय लोक में अनन्त और परीत्त रात्रि-दिन कैसे उत्पन्न हुए और व्यतीत हुए ?”

महावीर—“आर्यो ! पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हन्त ने कहा है कि लोक शाश्वत-अनादि-अनन्त है। वह परीत्त (असंख्येय प्रदेशात्मक) और परिवृत्त (अलोकाकाश से व्याप्त) है। नीचे की तरफ विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर के भाग में विशाल है। आकार में वह अधोभाग में पलंग-जैसा, मध्य में वज्र-जैसा और ऊपरी भाग में ऊर्ध्वमृदंग-जैसा है। इस अनादि-अनन्त शाश्वत लोक में अनन्त जीवपिण्ड उत्पन्न हो-होकर विलीन होते हैं। परीत्त जीवपिण्ड भी उत्पन्न हो-होकर विलीन होते हैं, अतएव लोक उत्पाद, व्यय, धौव्यात्मक है। लोक का दूसरा अंश ‘अजीवकाय’ प्रत्यक्ष होने से लोक प्रत्यक्ष है। लोकवर्ती ‘अजीवद्रव्य’ प्रत्यक्ष देखा जाता है इसीलिये इसको ‘लोक’ कहते हैं—“लोक्यते इति लोकः।”

भगवान महावीर के स्पष्टीकरण से पार्श्वपत्य स्थविरों के मन का समाधान हो गया और उन्हें यह भी विश्वास हो गया कि भगवान महावीर ‘सर्वज्ञ’ और ‘सर्वदर्शी’ हैं। वे श्रमण भगवान को वन्दन-नमस्कार कर बोले—“भगवन् ! हम आपके पास चातुर्याम धर्म के स्थान पर पञ्चमहाव्रतात्मक सप्रतिक्रमण धर्म स्वीकार करना चाहते हैं।”

स्थविरों की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए महावीर ने कहा—“देवानुप्रियो ! तुम सुखपूर्वक ऐसा कर सकते हो।”

इसके बाद पार्श्वपत्य स्थविरों ने श्रमण भगवान के पास पंचमहाव्रतिक धर्म स्वीकार किया और बहुत काल तक श्रामण्य पालकर अन्त में निर्वाण-पद प्राप्त किया।<sup>४९</sup>

## रोह अनगार के प्रश्न

उस समय रोह नामक अनगार भगवान से कुछ दूर बैठे तत्त्व-चिन्तन कर रहे थे। लोक-विषयक चिन्तन करते हुए उन्हें कुछ शंका उत्पन्न हुई। वे तुरन्त उठकर भगवान के पास आये और वन्दन कर प्रश्न किया—“भगवन् ! पहले ‘लोक’ और पीछे ‘अलोक’ या पहले ‘अलोक’ और पीछे ‘लोक’ ?”

भगवान—“रोह ! ‘लोक’ और ‘अलोक’ दोनों पहले भी कहे जा सकते हैं और पीछे भी। ये शाश्वत-भाव हैं। इनमें पहले-पीछे का क्रम नहीं।”

रोह—“भगवन् ! पहले जीव और पीछे अजीव या पहले अजीव और पीछे जीव ?”

भगवान—“रोह ! जीव-अजीव भी शाश्वतभाव हैं, इनमें भी पहले-पीछे का क्रम नहीं।”

रोह—“भगवन् ! पहले भवसिद्धिक और पीछे अभवसिद्धिक या पहले अभवसिद्धिक और पीछे भवसिद्धिक ?”

भगवान-“रोह ! भवसिद्धि और अभवसिद्धि दोनों शाश्वतभाव हैं। इनमें भी पहले-पीछे का क्रम नहीं।”

रोह-“भगवन् ! पहले सिद्धि और पीछे असिद्धि या पहले असिद्धि और पीछे सिद्धि ?”

भगवान-“रोह ! ये दोनों शाश्वतभाव हैं। इनमें पहले-पीछे का क्रम नहीं।”

रोह-“भगवन् ! पहले सिद्ध और पीछे असिद्धि या पहले असिद्धि और पीछे सिद्ध ?”

भगवान-“रोह ! ये भी शाश्वतभाव हैं। इनमें पहले-पीछे का क्रम नहीं।”

रोह-“भगवन् ! पहले अण्डा और पीछे मुर्गी या पहले मुर्गी और पीछे अण्डा ?”

भगवान-“रोह ! वह अण्डा कहाँ से हुआ ?”

रोह-“मुर्गी से।”

भगवान-“और वह मुर्गी कहाँ से हुई ?”

रोह-“अण्डे से।”

भगवान-“रोह ! इसी प्रकार अंडा और मुर्गी दोनों पहले भी कहे जा सकते हैं और पीछे भी। ये शाश्वतभाव हैं। इनमें पहले-पीछे का क्रम नहीं।”

रोह-“भगवन् ! पहले लोकान्त और पीछे अलोकान्त या पहले अलोकान्त और पीछे लोकान्त ?”

भगवान-“लोकान्त और अलोकान्त दोनों पहले भी कहे जा सकते हैं और पीछे भी। इनमें पहले-पीछे का कोई अनुक्रम नहीं।”

रोह-“भगवन् ! पहले लोक और पीछे सप्तम अवकाशान्तर या पहले सप्तम अवकाशान्तर और पीछे लोक ?”

भगवान-“रोह ! दोनों शाश्वत भाव हैं। इनमें पहले-पीछे का कोई क्रम नहीं।”

रोह-“भगवन् ! पहले लोकान्त और पीछे सप्तम तनुवात या पहले सप्तम तनुवात और पीछे लोकान्त ?”

भगवान-“रोह ! ये दोनों शाश्वतभाव हैं, पहले भी कहे जा सकते हैं, पीछे भी। इनमें कोई अनुक्रम नहीं।”

रोह-“भगवन् ! पहले लोकान्त और पीछे घनवात या पहले घनवात और पीछे लोकान्त ?”

भगवान-“रोह ! दोनों शाश्वतभाव हैं।”

रोह-“भगवन् ! पहले लोकान्त और पीछे घनोदधि या पहले घनोदधि और पीछे लोकान्त ?”

भगवान-“दोनों शाश्वतभाव हैं। इनमें पहले-पीछे का कोई क्रम नहीं।”

रोह-“भगवन् ! पहले लोकान्त और पीछे सप्तम पृथ्वी या पहले सप्तम पृथ्वी और पीछे लोकान्त ?”

भगवान-“रोह ! ये दोनों शाश्वतभाव हैं। इनमें पहले-पीछे का कोई क्रम नहीं।”

इसी तरह रोह अनगार ने उक्त सभी प्रश्न अलोकान्त के साथ भी पूछे और भगवान ने उत्तर दिये।

रोह-“भगवन् ! पहले सप्तम अवकाशान्तर और पीछे सप्तम तनुवात या पहले सप्तम तनुवात और पीछे सप्तम अवकाशान्तर ?”

भगवान-“दोनों शाश्वत भाव हैं, इनमें पहले-पीछे का क्रम नहीं है।”

### लोकस्थिति के सम्बन्ध में गौतम के प्रश्न

इसी प्रकार रोह ने पूर्व-पूर्व पद छोड़कर उत्तर-उत्तर पद के साथ पहले-पीछे का क्रम पूछा और भगवान ने उत्तर दिया।

भगवान के उत्तरों से रोह अनगार परम संतुष्ट हुआ।

गौतम ने पूछा—“भगवन् ! लोकस्थिति कितने प्रकार की कही है ?”

भगवान—“गौतम ! लोकस्थिति आठ प्रकार की कही है, जैसे—(१) आकाश पर हवा प्रतिष्ठित है, (२) हवा पर समुद्र, (३) समुद्र पर पृथ्वी, (४) पृथ्वी पर त्स-स्थावर प्राणी, (५) (त्स-स्थावर) जीवों पर अजीव (जीव शरीर), (६) कर्मों पर जीव प्रतिष्ठित हैं, (७) अजीव-जीव संगृहीत हैं, और (८) जीव-कर्म संगृहीत हैं।”

गौतम—“भगवन् ! यह कैसे ? आकाश पर हवा और हवा पर पृथ्वी आदि कैसे प्रतिष्ठित हो सकती है ?”

भगवान—“गौतम ! जैसे कोई पुरुष मशक को हवा से पूर्ण भरकर उसका मुँह बंद कर दे, फिर उसको बीच में से मजबूत बाँधकर मुँह पर की गाँठ खोल हवा निकालकर उसमें पानी भर दे और फिर मुँह पर तानकर गाँठ दे दे और बाद में बीच की गाँठ छोड़ दे तो वह पानी नीचे की हवा पर ठहरेगा ?”

गौतम—“हाँ भगवन् ! वह पानी हवा के ऊपर ठहरेगा।”

भगवान—“इसी तरह आकाश के ऊपर हवा और हवा के ऊपर पृथ्वी आदि रहते हैं। गौतम ! कोई आदमी मशक को हवा से भरकर अपनी कमर में बाँधे हुए अथाह जल को अवगाहन करे तो वह ऊपर ठहरेगा या नहीं ?”

गौतम—“हाँ भगवन् ! वह मनुष्य ऊपर रहेगा।”

भगवान—“इसी प्रकार आकाश पर हवा और हवा पर पृथ्वी आदि प्रतिष्ठित हैं।”<sup>१०</sup>

## तेईसवाँ वर्ष

इस वर्ष भगवान ने वर्षावास राजगृह में ही किया।

वर्षाकाल पूरा होते ही भगवान ने राजगृह से पश्चिमोत्तर प्रदेश की ओर विहार किया और गाँवों में धर्म-प्रचार करते हुए कयंगला नगरी के छत्रपलास चैत्य में पधारे। कयंगला-निवासी तथा आसपास के गाँवों के अनेक भाविक लोग भगवान का आगमन सुनकर छत्रपलास में एकत्र हुए और वन्दन-नमस्कारपूर्वक धर्म-श्रवण कर अपने-अपने स्थान पर गये।

## स्कन्दक परिव्राजक के प्रश्न-समाधान

उस समय श्रावस्ती के समीप एक मठ में गर्दभालि शिष्य कात्यायन गोतीय स्कन्दक नामक परिव्राजक रहता था। वह वेद, वेदांग, पुराण आदि वैदिक साहित्य का पारंगत विद्वान् तथा तत्त्वान्वेषी और जिज्ञासु तपस्वी था। जिस समय भगवान छत्रपलास में पधारे स्कन्दक कार्यवश श्रावस्ती आया हुआ था। वहाँ उसे ‘पिंगलक’ नामक कात्यायन गोतीय एक निर्ग्रन्थ श्रमण मिले। श्रमण पिंगलक ने स्कन्दक से पूछा—“मागध ! इस लोक का अन्त है या नहीं ? जीव का अन्त है या नहीं ? सिद्धि का अन्त है या नहीं ? सिद्धों का अन्त है या नहीं ? और हे मागध ! किस मरण से मरता हुआ जीव बढ़ता और घटता है ?” पाँचों प्रश्न एक साथ पूछकर निर्ग्रन्थ ने उत्तर की प्रतीक्षा की।

स्कन्दक कात्यायन ने पाँचों प्रश्नों को अच्छी तरह सुना और उन पर खूब विचार भी किया परन्तु उनका उत्तर नहीं दे सका। उल्टा वह ज्यों-ज्यों उन पर विचार करता जाता शंकाकुल हो विशेष उलझता जाता। पिंगलक ने दूसरी और तीसरी बार भी उन प्रश्नों की आवृत्ति की, पर स्कन्दक की तरफ से कोई उत्तर नहीं मिला।

ठीक इसी समय भगवान महावीर के छत्रपलास चैत्य में पधारने के समाचार श्रावस्ती में पहुँचे। चौक, बाजार, मुहल्ले और गलियों में उनकी चर्चा होने लगी और क्षणभर में श्रावस्ती की आस्तिक प्रजा से छत्रपलास के मार्ग पट गये।

नगरवासियों की यह चर्चा और प्रवृत्ति कात्यायन स्कन्दक ने देखी और वे भी सावधान हो गये। ज्ञानी महावीर के पास जाकर वन्दन-नमस्कार और धर्मचर्चा करने के विचार से वे श्रावस्ती से जल्दी लौटकर अपने आश्रम में आये

और गेरुआ वस्त्र धारणकर त्रिदंड, कुण्डिका, कञ्चनिका, कटोरिका, बिसिका, केसरिका, छत्रालक, अंकुशक, पवित्रिका तथा गणेत्रिका ले पादुकाएँ पहन आश्रम से निकले और श्रावस्ती के मध्य में होते हुए छत्रपलास चैत्य की सीमा में पहुँचे।

उधर भगवान महावीर ने गौतम से कहा—“गौतम ! आज तुम अपने एक पूर्व-परिचित को देखोगे।”

गौतम—“भगवन् ! मैं किस पूर्व-परिचित को देखूँगा ?”

महावीर—“आज तुम कात्यायन स्कन्दक परिव्राजक को देखोगे।”

गौतम—“भगवन् ! यह कैसे ? स्कन्दक यहाँ कैसे मिलेगा ?”

महावीर—“श्रावस्ती में पिंगलक निर्ग्रन्थ ने स्कन्दक से कुछ प्रश्न पूछे थे जिनका उत्तर वह नहीं दे सका। फिर हमारा यहाँ आगमन सुनकर वह अपने आश्रम में लौट गया और वहाँ से गेरुआ वस्त्र पहन त्रिदण्ड, कुण्डिकादि उपकरण ले यहाँ आने के लिये प्रस्थान कर चुका है। तुम्हारा पूर्व-परिचित स्कन्दक अभी मार्ग में आ रहा है। वह अब बहुत दूर नहीं, थोड़े ही समय में तुम्हें दृष्टिगोचर होगा।”

गौतम—“भगवन् ! क्या कात्यायन स्कन्दक में आपका शिष्य होने की योग्यता है ?”

महावीर—“स्कन्दक में शिष्य होने की योग्यता है और वह हमारा शिष्य हो जायेगा।”

भगवान महावीर और गौतम का वार्त्तालाप हो ही रहा था कि इतने में स्कन्दक समवसरण के निकट आ पहुँचे। उन्हें देखते ही गौतम उठे और सामने जाकर स्वागत करते हुए बोले—“मागध ! क्या यह सच है कि श्रावस्ती में पिंगल निर्ग्रन्थ ने आपसे कुछ प्रश्न पूछे थे और उनका ठीक उत्तर न सूझने पर उसके समाधान के लिये आपका यहाँ आना हुआ है ?”

स्कन्दक—“बिलकुल ठीक है। पर गौतम ! ऐसा कौन ज्ञानी और तपस्वी है जिसने मेरे दिल की यह गुप्त बात तुम्हें कह दी ?”

गौतम—“महानुभाव स्कन्दक ! मेरे धर्माचार्य भगवान महावीर ऐसे ज्ञानी और तपस्वी हैं जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों काल के सब भावों को जानते और देखते हैं। इन्हीं महापुरुष के कहने से मैं तुम्हारे दिल की गुप्त बात जान सका हूँ।”

स्कन्दक—“अच्छा, तब चलिये गौतम, तुम्हारे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर को वन्दन कर लूँ।”

गौतम—“बहुत अच्छा, चलिये।”

इन्द्रभूति गौतम और स्कन्दक दोनों भगवान महावीर के पास पहुँचे। स्कन्दक की दृष्टि उनके तेजस्वी शरीर पर पड़ते ही उनके अलौकिक रूप, रंग और तेज से वह आश्चर्य चकित हो गया। महातपस्वी, महाज्ञानी और दिव्य तेजस्वी महावीर के दर्शनमात्र से स्कन्दक का हृदय हर्षावेग से भर गया। वे भगवान के निकट आये, त्रिप्रदक्षिणापूर्वक वन्दन क्रिया और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गए।

स्कन्दक के मनोभाव को प्रकट करते हुए महावीर ने कहा—“स्कन्दक ! पिंगलक के ‘लोक सादि है या अनन्त ?’ इत्यादि प्रश्नों से तुम्हारे मन में संशय उत्पन्न हुआ है ?”

स्कन्दक—“जी हाँ, इस विषय में मेरा मन शंकित है और इसीलिए आपके चरणों में आया हूँ।”

महावीर—“स्कन्दक ! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव-भेद से लोक चार प्रकार का है। द्रव्य स्वरूप से लोक सान्त (अन्तवाला) है, क्योंकि वह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय रूप केवल पञ्च द्रव्यमय है। क्षेत्रस्वरूप से लोक असंख्यात योजन कोटाकोटि लंबा, असंख्यात योजन कोटाकोटि चौड़ा और असंख्यात योजन कोटाकोटि विस्तृत है, फिर भी वह सान्त है। कालस्वरूप से लोक अनन्त, नित्य और शाश्वत है क्योंकि वह पहले था, अब है और आगे रहेगा। त्रिकालवर्ती होने से कालात्मक लोक अनन्त है और भावस्वरूप से भी लोक अनन्त है, क्योंकि

वह अनन्त वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संस्थान, गुरु-लघु और अगुरु-लघु पर्यायात्मक है, अनन्त पर्यायात्मक होने से भावलोक 'अनन्त' है। जीव भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावस्वरूप से विचारणीय है। द्रव्यस्वरूप से जीव-द्रव्य एक होने से सान्त है। क्षेत्रस्वरूप से जीव असंख्यात प्रदेशिक और असंख्य आकाशप्रदेशव्यापी है, तथापि वह सान्त है। कालस्वरूप से जीव अनन्त है, क्योंकि यह पहले था, अब है और भविष्य में रहेगा, त्रिकालवर्ती होने से कालापेक्षया जीव नित्य (शाश्वत) है। भावस्वरूप से भी जीव अनन्त है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र के अनन्तानन्त पर्यायों से भरपूर और अनन्त अगुरु-लघु पर्यायस्वरूप होने से भाव से जीव अनन्त है।

स्कन्दक ! इसी प्रकार सिद्धि भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चार प्रकारों से विचारणीय है। द्रव्यस्वरूप से सिद्धि एक होने से सान्त है। क्षेत्रस्वरूप से सिद्धि पैंतालीस लाख योजन लंबी-चौड़ी और एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ योजन और कुछ कम दो कोस की परिधि वाली है। कालस्वरूप से सिद्धि अनन्त है, इसका पहले कभी अभाव नहीं था, वर्तमान में अभाव नहीं है और भविष्य में कभी अभाव नहीं होगा। यह शाश्वत है और रहेगी। भावस्वरूप से भी अनन्त पर्यायात्मक होने से सिद्धि अनन्त है।

सिद्धि भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भेद से चार प्रकार के हैं। द्रव्यापेक्षया सिद्धि एक होने से सान्त है। क्षेत्रविचार से सिद्धि असंख्य-प्रदेशात्मक तथा असंख्याकाश प्रदेशव्यापी होने पर भी सान्त है। कालस्वरूप से सिद्धि की आदि होने पर भी उसका अन्त नहीं होता। अतः वह अनन्त है। भावस्वरूप से सिद्धि अनन्त है, क्योंकि वह अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और अगुरु-लघु पर्यायमय होता है।

स्कन्दक ! मैंने दो तरह के मरण कहे हैं-एक बालमरण और दूसरा पंडितमरण। बालमरण के बारह भेद हैं-(१) भूख की पीड़ा से तड़पकर, (२) विषय-भोग की अप्राप्ति से निराश होकर, (३) जीवनभर में किए हुए पापों को हृदय में गुप्त रखकर, (४) वर्तमान जीवन की विशेष सफलता न कर फिर इसी गति का आयुष्य बाँधकर, (५) पर्वत से गिरकर, (६) वृक्ष से गिरकर, (७) जल में डूबकर, (८) अग्नि में जलकर, (९) विष खाकर, (१०) शस्त्र प्रयोग से, (११) फाँसी लगाकर, और (१२) गीध पक्षी अथवा अन्य माँसभक्षी पक्षियों से नुचवाकर मरना।

स्कन्दक ! इन बारह प्रकार के मरणों में से किसी भी मृत्यु से मरता हुआ जीव नरक और तिर्यञ्चगति का अधिकारी और चतुर्गत्यात्मक संसार-भ्रमण को बढ़ाता है। मरण से बढ़ना इसी को कहते हैं।

पण्डितमरण के दो भेद हैं-(१) पादपोषगमन, और (२) भक्त-प्रत्याख्यान।

आयुष्य का अन्त निकट जानकर खड़े-खड़े, बैठे-बैठे अथवा सोते-सोते जिस आसन में अनशन स्वीकार किया जाय उसी आसन में अन्त तक रहकर शुभ ध्यानपूर्वक प्राण त्याग करना पादपोषगमन मरण है।

अनशन करके भी दूसरी चेष्टाओं का त्याग न कर अपनी आवश्यक क्रियाओं को करते हुए समाधिपूर्वक प्राण-त्याग करना भक्त-प्रत्याख्यान मरण है।

स्कन्दक ! इन पण्डितमरणों से मरते हुए ज्ञानी मनुष्य नरक-तिर्यञ्चगति के भ्रमण कम कर देते हैं और इस अनादि-अनन्त दीर्घ संसार को कम करके मुक्ति के निकट जा पहुँचते हैं।'

इस स्पष्टीकरण से प्रतिबुद्ध हो स्कन्दक ने भगवान महावीर को वन्दन कर निर्ग्रन्थ-प्रवचन का विशेष उपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। भगवान ने उसी समय स्कन्दक तथा अन्य उपस्थित महानुभावों के समक्ष निर्ग्रन्थ-धर्म का उपदेश दिया जिसे सुनकर स्कन्दक आनन्दित होकर बोले-“भगवान् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को चाहता हूँ, मैं इस पर पूर्ण श्रद्धा करता हूँ, आपका कथन निस्संदेह सत्य है। मैं आपके प्रवचन को स्वीकार करता हूँ।” यह कहकर स्कन्दक ईशानकोण की तरफ कुछ दूर गये और त्रिदण्ड, कमण्डलु, पादुका आदि परित्राजकोपकरणों को एकान्त में छोड़ फिर भगवान के पास आये और वन्दन कर बोले-“भगवान् ! यह संसार चारों ओर से आग में जलते हुए घर के समान है। जलते घर



में जो भी सारभूत पदार्थ हाथ लगे उसे लेकर गृह-स्वामी बाहर निकल जाता है। हे भगवन् ! इस जलते हुए संसार दावानल में 'आत्मा' ही मेरा सर्वस्व है। इसको बचाने के लिये इस दावानल-तुल्य संसार से दूर होना ही मेरे लिये हितकर है।" यह कहकर स्कन्दक ने महावीर के पास श्रमणधर्म की दीक्षा ली।

श्रमण भगवान ने उसे निर्ग्रन्थ मार्ग में प्रविष्ट कर तत्संबन्धी शिक्षा और समाचारी से परिचय कराया।

भगवान की सेवा में रहते, श्रमणधर्म की आराधना करते और जिन-प्रवचन का अभ्यास करते हुए अनगार स्कन्दक ने एकादशाङ्गी का अध्ययन किया।

कात्यायन स्कन्दक पहले से ही तपस्वी थे। भगवान महावीर के पास दीक्षित होने के बाद वे और भी विशिष्ट तपस्वी हो गये, भिक्षु-प्रतिमा, गुणरत्न-संवत्सर तप आदि विविध तप और विशिष्ट साधनाओं से कर्मक्षय करने में स्कन्दक ने शक्ति भर प्रयत्न किया और पूरे १२ वर्ष तक श्रमण्य पालने के उपरान्त स्कन्दक अनगार ने अन्त में विपुलाचल पर्वत पर जाकर अनशन कर दिया और समाधिपूर्वक देह छोड़ 'अच्युत कल्प' नामक स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया। वहाँ से महाविदेह में मनुष्य जन्म पाकर पुनः धर्म की आराधना से निर्वाणपद प्राप्त करेंगे। ६१

छत्रपलास चैत्य से विहार कर भगवान श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य में पधारे। भगवान के आगमन पर श्रावस्ती की प्रजा आपके दर्शन-वन्दन के लिये उमड़ पड़ी। श्रमण भगवान की धर्मदेशना से अनेक भाविक मनुष्यों को धर्म-प्राप्ति हुई, अनेक गृहस्थों ने गृहस्थ धर्म के व्रत लिये जिनमें गाथापति नन्दिनी पिता, उसकी स्त्री अश्विनी १२ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के स्वामी थे। गाथापति सालिही पिता और उसकी स्त्री फाल्गुनी के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके पास १२ करोड़ स्वर्ण-मुद्रायें और ४ व्रज गायें थीं।

श्रावस्ती से भगवान विदेह भूमि की तरफ पधारे और वाणिज्यग्राम में जाकर वर्षावास किया।

### चौबीसवाँ वर्ष

वर्षाकाल पूर्ण होने पर भगवान वाणिज्यग्राम से ब्राह्मणकुण्ड के बहुसाल चैत्य में पधारे। यहाँ पर जमालि अनगार को अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ पृथक् विहार करने की इच्छा हुई, वे उठे और भगवान को वन्दन कर बोले— "भगवन् ! आपकी आज्ञा से मैं अपने परिवार के साथ पृथक् विहार करना चाहता हूँ।" जमालि की इस प्रार्थना का भगवान ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

जमालि ने दूसरी, तीसरी बार भी इसी तरह वन्दनपूर्वक पृथक् विहार की आज्ञा माँगी परन्तु श्रमण भगवान की तरफ से उसे कोई उत्तर नहीं मिला, तब जमालि बिना आज्ञा ही अपने अनुयायी ५०० साधुओं के साथ बहुसाल चैत्य से निकल गया। ब्राह्मणकुण्ड से श्रमण भगवान ने वत्सभूमि में प्रवेश किया और निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रचार करते हुए कौशांबी पधारे। यहाँ पर आपको सूर्य और चन्द्र वन्दन करने के लिए पृथ्वी पर आये।

कौशांबी से काशी राष्ट्र में से होकर भगवान राजगृह के गुणशील चैत्य में पधारे। उन दिनों कुछ पार्श्वपत्य स्थविर ५०० अनगारों के साथ विचरते हुए राजगृह के निकटवर्ती तुंगीया नगरी के पुष्यवतीक चैत्य में आये हुये थे। स्थविरों का आगमन सुनकर तुंगीया के अनेक श्रमणोपासक वन्दन तथा धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए उद्यान में गये। श्रमणोपासक तथा सभा के सामने स्थविरों ने चातुर्थाय धर्म का उपदेश दिया जिसे सुनकर श्रमणोपासकगण संतुष्ट हुआ और फिर पूछा— "भगवन् ! संयम का फल क्या है और तप का फल क्या है ?"

स्थविर— "आर्यो ! संयम का फल है 'अनास्रव' और तप का फल है 'निर्जरा'।"

श्रमणोपासक— "भगवन् ! यदि संयम का फल अनास्रव और तप का फल 'निर्जरा' है तो देवलोक में देव किस कारण से उत्पन्न होते हैं ?"

कालियपुत्र स्थविर— "आर्यो ! प्राथमिक तप से देवलोक में देव उत्पन्न होते हैं।"

मेहिल स्थविर—“आर्यो ! प्राथमिक संयम से देवलोक में देव उत्पन्न होते हैं।”

आनन्दरक्षित स्थविर—“आर्यो ! कार्मिकता से देवलोक में देव उत्पन्न होते हैं।”

काश्यप स्थविर—“आर्यो ! संगिकता (आसक्ति) से देवलोक में देव उत्पन्न होते हैं। पूर्वतप, पूर्वसंयम, कार्मिकता और संगिकता से देवलोक में देव उत्पन्न होते हैं।”

स्थविरों के उत्तर सुनकर श्रमणोपासक बहुत प्रसन्न हुए और स्थविरों को वन्दन कर अपने-अपने स्थान पर गये। बाद में स्थविर भी वहाँ से विहार कर अन्यत्र चले गये।

उसी समय इन्द्रभूति गौतम भगवान की आज्ञा ले राजगृह में भिक्षाचर्या के लिए निकले। ऊँच, नीच, मध्यम कुलों में भिक्षाटन करते हुए उन्होंने पूर्वोक्त पार्श्वपत्य स्थविरों से तुंगीया के श्रमणोपासकों द्वारा पूछे गये प्रश्नों और स्थविरों की तरफ से दिये गये उनके उत्तरों के विषय में लोकचर्चा सुनी। इस पर गौतम को कुछ संदेह हुआ और स्थविरों के उत्तर ठीक हैं या नहीं इसका निर्णय करने का विचार कर वे भगवान के पास गये। भिक्षाचर्या की आलोचना करने के बाद उन्होंने पूछा—“भगवन् ! मैंने राजगृह में स्थविरों के प्रश्नोत्तर संबन्धी जो चर्चा सुनी है, क्या वह ठीक है ? स्थविरों ने जो उत्तर दिये, क्या वे ठीक हैं ? ऐसे उत्तर देने में वे समर्थ हो सकते हैं ?”

भगवान ने कहा—“गौतम ! तुंगीया-निवासी श्रमणोपासकों के प्रश्नों के पार्श्वपत्य स्थविरों ने जो उत्तर दिये हैं वे यथार्थ हैं। उन्होंने जो कुछ कहा सत्य है। हे गौतम ! इस विषय में मेरा भी यही सिद्धान्त है कि पूर्व-तप तथा पूर्व-संयम से देव देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

### चन्द्र-सूर्य का आगमन

वर्षावास पूर्ण करने के पश्चात् प्रभु महावीर ब्राह्मणकुण्डग्राम के बहुशाल चैत्य में पधार चुके थे। जमालि यही अपने ५०० साधुओं के साथ अलग धर्म-प्रचार करने लगा था। प्रभु महावीर से जमालि ने तीन बार आज्ञा माँगी। पर प्रभु महावीर ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

प्रभु महावीर ने ब्राह्मणकुण्डग्राम से वत्स देश की ओर विहार किया। वह कोशाम्बी नगर में पधारे। यहाँ एक आश्चर्यजनक घटना घटी। चन्द्र व सूर्य दोनों देव प्रभु महावीर के दर्शन को आये।

सूर्य देव के आगमन से धरती पर तो तेज प्रकाश छा गया। सूर्य जा चुका था। अचानक रात्रि का आगमन हुआ। वहाँ साध्वी मृगावती सूर्य के भ्रम के कारण बैठी प्रवचन सुन रही थी। अब अचानक अंधकार से वह घबरा गई। क्योंकि अकेली साध्वी को रात्रि के समय उपाश्रय से निकलना मना है।

साध्वी मृगावती की गुरुणी साध्वी प्रमुखा चन्दना थी जो साध्वियों के उपाश्रय में मृगावती का इंतजार करते-करते सो चुकी थी। मृगावती का मन इस दुःख से भर गया कि मेरे से कितनी बड़ी गलती प्रमादवश हो गई है, मुझे ध्यान रखना चाहिये था कि दिन डूब रहा है। अब मेरी गुरुणी मेरे से नाराज होगी।

इसी दुविधा में डूबी साध्वी मृगावती उपाश्रय में पहुँची। सभी साध्वियाँ सो चुकी थीं। साध्वी मृगावती आत्म-ध्यान में लीन हुई उपाश्रय में पहुँची, तो शुभ अध्यवसाय के परिणामस्वरूप उसे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। अब अंधेरे की जगह उसे प्रकाश नजर आ रहा था चाहे उपाश्रय गहन अंधकार में डूबा हुआ था। वह ज्यों ही बैठने लगी, तो उसने देखा कि एक साँप चन्दनबाला के शरीर के पास आ रहा है। उसने चन्दना को स्पर्श करते हुये उठाया। चन्दनबाला उठी। उसने पूछा—“मेरे शरीर का स्पर्श किसने किया है ?”

“मृगावती ने कहा—“यहाँ से उठिये, यहाँ साँप आपके शरीर पर चढ़ने वाला है।”

साध्वी चन्दना ने देखा, गहन अंधकार है उसे तो कहीं साँप दिखाई नहीं दे रहा था।

साध्वी चन्दना ने मृगावती से पूछा—“यहाँ तो साँप दिखाई नहीं देता।”

मृगावती ने झट से साँप को उठाया और दूसरी ओर फेंक दिया। चन्दना ने देखा, सचमुच साँप था। चन्दना ने पूछा—“क्या तूने इस गहन अंधकार में साँप को पकड़ा है? क्या तुम्हें केवलज्ञान तो प्राप्त नहीं हो गया?”

मृगावती ने कहा—“गुरुणी जी! आपकी कृपा से मुझे केवलज्ञान प्राप्त हो गया है।”

उसी समय साध्वी चन्दनबाला सँभली। उसने चिंतन किया कि उसने मृगावती साध्वी की आशातना की है। केवली के कथन को असत्य ठहराया है। वह पश्चात्ताप में डूब गई। यही पश्चात्ताप साध्वी चन्दना के लिये वरदान सिद्ध हुआ।

इसी आत्म-चिंतन में डूबी चन्दना को भी केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त हो गया।

इस प्रकार एक रात्रि में शिष्या मृगावती और गुरुणी चन्दना ने केवलज्ञान प्राप्त किया। यही उनके जीवन का उद्देश्य था। अब उनका जन्म-मरण समाप्त हो चुका था। अब वे मोक्षगामिनी बन गई थीं।

### उपासना का फल

इसी प्रसंग में गणधर गौतम ने प्रभु महावीर से निम्न प्रश्न पूछे—

गणधर गौतम—“भगवन्! श्रमण ब्राह्मण की पर्युपासना करने वाले को उसका फल क्या मिलता है?”

प्रभु महावीर—“उसकी पर्युपासना से सत्शास्त्र श्रवण करने को मिलता है।”

गणधर गौतम—“श्रवण का फल क्या है?”

प्रभु महावीर—“सुनने से ज्ञान होता है।”

गणधर गौतम—“जानने का फल क्या है?”

प्रभु महावीर—“जानने का फल विज्ञान है।”

गणधर गौतम—“विज्ञान का फल क्या है?”

प्रभु महावीर—“विज्ञान का फल प्रत्याख्यान है।”

गणधर गौतम—“प्रभु! प्रत्याख्यान का फल क्या होता है?”

प्रभु महावीर—“प्रत्याख्यान का फल संयम है। प्रत्याख्यान होने के पश्चात् सर्वस्व त्याग रूप संयम होता है।”

गणधर गौतम—“प्रभु! संयम का फल क्या है?”

प्रभु महावीर—“संयम का फल आस्रव (रहितपना) है। आत्म-भाव में रमण करना है।”

गणधर गौतम—“आस्रव-निरुंधन का फल क्या है?”

प्रभु महावीर—“उसका फल तप है।”

गणधर गौतम—“तप का फल क्या है?”

प्रभु महावीर—“तप कर्मरूपी मैल को नष्ट करता है।”

गणधर गौतम—“कर्मरूपी मैल नष्ट होने से किस फल की प्राप्ति होती है?”

प्रभु महावीर—“उससे अक्रियापन प्राप्त होता है।”

गणधर गौतम—“अक्रियापन से क्या प्राप्त होता है?”

प्रभु महावीर—“अक्रियापन का फल मोक्ष है।”

इसी वर्ष भगवान के शिष्य वेहास और अभय आदि श्रमणों ने विपुलाचल पर मोक्ष प्राप्त किया। प्रभु महावीर ने २५वाँ चातुर्मास राजगृह में व्यतीत किया।

## मैतार्य मुनि

मगध देश में राजा श्रेणिक के शासनकाल में एक चाण्डाल राजगृह में रहता था। उसका नाम मेहर (यम) था। उसकी पत्नी मेती बड़े घरों में सफाई आदि के कार्य के लिये जाती थी। उसका एक ऐसे सम्पन्न परिवार में आना-जाना था जहाँ कि बच्चे पैदा होते ही मर जाया करते थे। सेठानी का जीवन एक बाँझ स्त्री से ज्यादा दुःखमय था क्योंकि बाँझ प्रसव पीड़ा से बच जाती है। यह तो प्रसव वेदना भी सहती थी और निःसन्तान भी रहती थी।

एक समय की बात है कि सेठानी ने अपना दुख मेती नाम की चाण्डालिनी से कहा।

मेती ने सेठानी को धैर्य बँधाते हुए कहा—‘सेठानी जी ! आप दुःखी मत होइये। इस बार अगर मेरे सन्तान हुई, तो मैं तुम्हें दे दूँगी।’ सेठानी व मेती में गुप्त समझौता हो गया।

कालान्तर में दोनों स्त्रियाँ गर्भवती हुईं। सेठानी ने एक कन्या को जन्म दिया और मेती ने एक पुत्र को। रातोंरात दोनों सन्तानों की अदला-बदली हो गई। सेठानी ने अपने पुत्र का नाम मैतार्य रखा। उसका लालन-पालन चाव से हुआ।

जब मैतार्य कुमार १६ वर्ष का हुआ, तो स्वर्ग में स्थित एक मित्र देव ने उसे प्रतिबोध देने की बात सोची। उसने मैतार्य को स्वप्न में कहा कि ‘‘अब गृह-त्याग करके संयम ग्रहण करो।’’

पर मैतार्य ने स्वप्न को स्वप्न समझा। उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। समय बीता। मैतार्य की शादी ८ कन्याओं के साथ तय हुई।

देव ने पुनः उसे सावधान करते हुए कहा—‘‘अब तुम्हारी शादी होने वाली है। शादी के बाद तू भोग-विलास में फँस जायेगा। इसलिए अब भी समय है कि तू असार संसार का त्याग कर साधु बन जा।’’ पर वह न माना। देव ने सोचा—‘‘इसे अब किसी अन्य ढंग से प्रतिबोध देना चाहिये।’’

देव ने एक योजना बनाई। उसने मेती चाण्डालिनी के शरीर में प्रवेश किया। देव के वशीभूत हुई चाण्डालिनी यह प्रचार करने लगी—‘‘मैतार्य मेरा पुत्र है। मैंने इसे जन्म दिया है, इसका पिता मेहर है। मैंने सेठानी से अदला-बदली की थी। अब यह तरुण हो गया है। हम इसकी शादी चाण्डाल-परिवार में करेंगे न कि श्रेष्ठी कन्याओं के यहाँ उसकी शादी करेंगे।’’

मैतार्य के चाण्डाल होने की सूचना से मैतार्य से आठ कन्याओं ने संपर्क तोड़ लिया। मैतार्य को अपना घर छोड़ना पड़ा। मैतार्य पुनः चाण्डाल-परिवार में अपनी माता के पास आ गया। मैतार्य चाण्डाल-पुत्र होते हुए भी वह इस रूप में नहीं रहना चाहता था। इतनी बेइज्जती उसके लिए असहनीय थी।

अब मैतार्य एकांत में बैठा अपनी आँखों से आँसू बहाता रहता। उसे समझ में न आता कि वह चाण्डाल-पुत्र है या सेठानी का पुत्र ?

एक दिन वह इसी तरह दुःखी बैठा था कि स्वर्ग से वही मित्र देव प्रकट होकर कहने लगा—‘‘मित्र ! मुझे पहचानो। मैं उज्जयिनी के राजा मुनिचन्द्र का पुत्र था और तुम पुरोहित पुत्र। संयम का पालन करने के कारण हम दोनों देवता बने। तीर्थंकर देव ने तुम्हें दुर्लभबोध बताया था। मैंने तुम्हें वचन दिया था कि स्वर्ग से आकर तुम्हें प्रतिबोध दूँगा। उठो ! जागो और मानव-जन्म की कद्र करो। संयम ग्रहण कर आत्मा का कल्याण करो।’’

अब मैतार्य को अपने पूर्वभव की सब बातें याद आने लगीं।

मैतार्य पहले से अपनी दशा से दुःखी था। उसने देव से कहा—‘‘हे मित्र ! तूने यह क्या अनर्थ किया ? मुझे श्रेष्ठी-पुत्र से चाण्डाल-पुत्र बना दिया। पहले मेरी प्रतिष्ठा वापस कराओ। अब मैं पुनः श्रेष्ठी-पुत्र तो नहीं बन सकता। अतः तुम मुझे राजा श्रेणिक के जामाता बनाओ, तभी दीक्षा ग्रहण करूँगा।’’

देवता ने कहा—“ठीक है, जैसा तुम चाहते हो. वैसा हो जायेगा। मैं तुम्हें राजा श्रेणिक का जामाता बनाऊंगा।”

मैतार्य यह सुनकर प्रसन्न हो गया। देवता देवलोक में वापस हो गया। देवता ने अपनी देवमाया द्वारा एक योजना बनाई। उसने एक बकरे की उत्पत्ति की, जो सोने की मैंगनी करता था। लोग उस बकरे से हैरान थे।

मैतार्य ने अपने पिता यम को कहा—“पिताजी ! राजा श्रेणिक को यह स्वर्ण-मैंगनी भेंट करके प्रसन्न करो। जब राजा प्रसन्न हो जाये, तो बदले में मेरे लिए राजकन्या का रिश्ता माँग लेना।”

मैतार्य के पिता ने तीन दिन की मैंगनी तीन थालों में इकट्ठी कर राजा श्रेणिक को भेंट की। अभयकुमार को भी इन स्वर्ण-मैंगनियों को देखकर अचम्भा हुआ। उसने पूछा—“सोने की मैंगनी तुम कहाँ से लाते हो ?”

अभय ने कहा—“हमारे घर एक बकरा है जो रोजाना सोने की मैंगनी देता है। वह आम बकरों से अलग है।”

अभयकुमार ने पूछा—“तुम यह मैंगनियाँ राजा को क्यों देते हो ?”

यम ने स्पष्ट उत्तर दिया—“मन्त्रिवर ! बात यह है कि मैं राजकन्या की शादी अपने पुत्र से करने का इच्छुक हूँ।”

इतनी बात सुनते ही राजा श्रेणिक क्रुद्ध हो गया। पर अभय ने अपनी बुद्धि से काम लेते हुए यम से कहा—“पहले तुम हमें अपना बकरा दे जाओ। हम सलाह करके तुम्हें बतायेंगे।”

दूसरे दिन बकरा राजा श्रेणिक के पास आ गया। वहाँ उसने मैंगनियाँ दुर्गन्धपूर्ण कीं। अभय को उस बकरे और सामान्य बकरे में कुछ अंतर लगा। वह सोचने लगा—“यह बकरा कोई देवमाया है। अगर देवता की इच्छा यही है तो मुझे चाण्डाल की बात की पूरी परीक्षा करनी चाहिये।”

दूसरे दिन चाण्डाल बकरा वापस लेने आया तो अभयकुमार ने उसे बकरा सौंपते हुए कहा—“यदि तुम हमारी शर्तें पूरी कर सको तो मगधेश श्रेणिक अपनी कन्या का विवाह तुम्हारे पुत्र से कर देंगे।”

चाण्डाल ने पूछा—“आप शर्त बतायें।”

अभय ने कहा—“अगर रातभर में तुम सोने की दीवार राजगृह के चारों ओर खड़ी कर दो। वैभारगिरि से राजगृह तक एक सेतु का निर्माण करो। उस सेतु के नीचे गंगा, यमुना, सरस्वती और क्षीरसागर का सम्मिलित जल प्रवाहित करो। उस मिश्रित जल में तुम्हारा पुत्र मैतार्य स्नान करके पवित्र बने तभी हम उसे राज-जामाता स्वीकार करेंगे। इसके बाद राज्य-सिंहासन पर बैठ छत्र, चामर धारण करे। तभी यह राजकन्या का स्वामी होगा।”

चाण्डाल ने सारी शर्तें ध्यान से सुनीं। घर आकर सभी बातें अपने पुत्र को बता दीं। वे सारी शर्तें मित्र देव से कहीं। देव के लिए क्या असम्भव था। रातभर में सब बातें पूरी हो गईं। मैतार्य को चार प्रकार के मिश्रित जल से स्नान कराकर सिंहासन पर बिठाया गया। छत्र, चामर धारण कराया। राजगृही की जनता ने यह सुखद आश्चर्य देखा।

राजा श्रेणिक ने अपनी कन्या की शादी मैतार्य से कर दी। अब वह राज-जामाता बन गया। उसकी प्रतिष्ठा जितनी गिरी थी उससे कई गुना बढ़ गई। अब वह महलों के सुख भोग रहा था। अब मित्र देव पुनः प्रतिबोध देने आया।

मैतार्य ने कहा—“मित्र ! मेरी नई शादी हुई है। मुझे १२ वर्ष तक पत्नी से भोग भोगने दो। उसके बाद मैं संयम ग्रहण करूँगा।”

१२ वर्ष का समय बीत चुका था। तो राजकन्या ने कहा—“स्वामी ! १२ वर्ष आप अपनी इच्छा से घर पर रहे। अब १२ वर्ष मेरी इच्छा से घर पर रहो।”

इस बार भी देव पुनः आया। पर मैतार्य ने १२ वर्ष का समय माँगा।

२४ वर्ष बीतने पर मैतार्य प्रभु महावीर के चरणों में मुनि बन गया। उसने ९ पूर्वों तक शास्त्रों का अध्ययन किया फिर एकलविहारी बन आत्म-साधना करने लगा।

एक बार मुनि भैतार्य राजगृह नगर में आये।

मासिक उपवास का पारणा करने के लिए एक सुनार के घर गये। सुनार अपने कार्य में व्यस्त था। राजा श्रेणिक के आदेश से वह सोने के जौ बना रहा था। मुनि को आया देखकर उसने अपना कार्य ज्यों का त्यों छोड़ा। उनकी वन्दना की। भिक्षा देने के लिये वह घर के अन्दर गया।

उधर एक मुर्गा आँगन में पीपल के वृक्ष पर बैठा था। उसने उन जौ को असल समझा। वह सारे जौ निगल गया और पुनः वृक्ष पर जा बैठा।

सुनार भिक्षात्र देकर बाहर आया। जौ गायब थे। उसने मुनि को चोर समझा। उसने मुनि से पूछा—“महाराज ! मेरे स्वर्णमय जौ कहाँ गये ? आपके पास हों, तो वापस कर दो।”

मुनि चुप रहे। उन्होंने सोचा—‘अगर मैं कहूँगा कि जौ मुर्गा निगल गया है, तो यह मुर्गे को मार देगा। अगर अपना नाम लूँ, तो बात झूठी है। बात जीव-दया की थी, सो नाम लेना मुशिकल था।’

यह समय धर्म-संकट का था सो मुनिराज मौन रहे। सुनार ने उन्हें धूप में खड़ा कर उनके माथे पर गीला चमड़ा बाँध दिया। मुनि ने सब कुछ क्षमता से सहन किया। परीपहों के बीच उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया और वह मुनिराज मोक्ष पधार चुके थे।

सुनार को ध्यान आया कि मुनिराज तो राजा श्रेणिक के जामाता हैं। राजा मुझे प्राण-दण्ड देगा, अच्छा है, मैं भी प्रभु महावीर के चरणों के संयम ग्रहण कर लूँ। सुनार ने दीक्षा ली और सद्गति को प्राप्त किया।

## रोहिणेय चोर

भगवान महावीर के शिष्यों में रोहिणेय दस्यु का नाम बहुत प्रसिद्ध है। राजगृह में रोहिणेय का पूरा आतंक था। राजा श्रेणिक ने अनेक बार इसे पकड़ने की कोशिश की, पर यह कभी हाथ न लगा। कहा जाता है कि रोहिणेय वेश बदलने में माहिर था, झूठ बोलने में इतना माहिर था कि उसका झूठ सत्य लगता था।

उसका पिता लोहखुर था, जो पहले से ही मगध के राजा का सिरदर्द था। लोहखुर जब मरने लगा तो उसने पुत्र को अंतिम शिक्षा प्रदान करते हुये कहा—“कभी महावीर के वचन मत सुनना।”

पर कभी वह राजगृह में गुणशील चैत्य के पास जंगल में जा रहा था। उसने दोनों कानों को बंद कर लिया, ताकि प्रभु का उपदेश उसके कानों में न पड़ जाये। नगे पाँव घूमते रोहिणेय के पाँव में तीक्ष्ण काँटा लगा। हाथ कान से उठाने पड़े। पाँव से काँटा निकाला, तो प्रभु महावीर का एक वाक्य कान में पड़ा—“देवों का जीवन भव्य होता है। देवों को कभी पसीना नहीं आता। उनकी पलकें भी मनुष्यों की तरह नहीं झपकतीं। उनके पाँव जमीन पर नहीं टिकते। इतना ही नहीं, उनके गले की मालाओं के फूल भी नहीं मुरझाते।”

यह प्रभु वाणी उसने सुनी। मन में पिता की आज्ञा भंग करने का दुःख हुआ। इस चोर का इतना आतंक था कि लोग शहर छोड़ने लगे। अभयकुमार को रोहिणेय चोर को पकड़ने की जिम्मेवारी सौंपी गई।

रोहिणेय को अभयकुमार ने बड़े मायाजाल से ढूँढ़ा। उसे नशा पिलाकर महल में ले आया। महल को सुन्दर श्रृंगारित किया गया। नृत्य होने लगा। स्वर्ग का दृश्य उपस्थित किया गया।

कुछ समय बाद रोहिणेय का नशा उतरा। रोहिणेय ने अपने आसपास सजी-धजी स्त्रियों को पाया। उसने पूछा—“मैं कहाँ हूँ?”

एक सजी-धजी स्त्री ने कहा—“आप मरकर स्वर्ग में पैदा हुए हैं। अब आप स्वर्ग में हैं। हम आपकी सेवा में हैं। आज्ञा दीजिये। हम आपके लिये क्या कर सकते हैं?”

रोहिणीय ने आसपास देखा फिर उसे प्रभु महावीर का देवों के बारे में कथन याद आ गया।

उसने अभयकुमार को बता दिया--“मैं ही रोहिण्येय चोर हूँ। बाकी मैं प्रभु महावीर की कृपा से आज बच गया हूँ। आप चाहें तो मुझे सजा दे दीजिये। मैं स्वयं तो अनगार बनना चाहता हूँ।”

राजा श्रेणिक ने रोहिण्येय को छोड़ दिया। रोहिण्येय चोर से मुनि बन गया। प्रभु महावीर के चरणों में एक दस्यु ने अहिंसक ढंग से समर्पण ही नहीं किया बल्कि वैभारगिरि की गुफा में छिपाया सारा धन राजा श्रेणिक के कोष में जमा करवा दिया। राजा श्रेणिक ने वह धन जिनका था उन्हें लौटा दिया।

इस प्रकार प्रभु महावीर ने एक दस्यु का जीवन ही पलट दिया।

### पच्चीसवाँ वर्ष राजा : श्रेणिक की अपूर्व भक्ति

राजा बिम्बसार श्रेणिक का अनेक पुत्र-पुत्रियों का परिवार था। रानी चेलना का बेटा कोणिक था जिसका दूसरा नाम अजातशत्रु भी है। जब यह गर्भ में था तो इसकी माता को पति के कलेजे का माँस चबाने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। माता ने पहले इस गर्भस्थ जीव को विनाश करने का हर संभव यत्न किया। पर रानी चेलना असफल रही। फिर उसने बालक को जन्म देकर इसे रूढ़ि पर फिकवा दिया, जहाँ मुर्ग ने इसकी छोटी उँगली को काटा। इसी कारण इसका नाम कोणिक पड़ा। राजा श्रेणिक ने बालक को रूढ़ि से उठवाकर इसका पोषण किया।

जब यह बड़ा हुआ, तो यह महत्वाकांक्षी था। राजपाट की खातिर इसने अपने पिता को कैद कर लिया। अपने भाइयों की सहायता से यह राजा बन गया।

रानी चेलना की फटकार पर इसने अपने पिता को कैद से छोड़ने का फैसला किया। यह कुल्हाड़ी लेकर अपने पिता के बन्धन काटने आ रहा था कि श्रेणिक ने समझा कि ‘यह मुझे कुल्हाड़ी से काटने आ रहा है।’ यह सोचकर श्रेणिक ने हीरा चाटकर प्राण त्याग दिये।

पर इस सबके होते हुए यह भी अपने पिता श्रेणिक की तरह प्रभु महावीर का परम भक्त था। औपपातिकसूत्र में इसकी भक्ति का वर्णन सुन्दर ढंग से प्राप्त होता है।

प्रभु महावीर चौबीसवाँ वर्षावास राजगृह सम्पन्न कर चम्पा पधारे। यहाँ का राजा श्रेणिक भगवान महावीर के आगमन का संवाद सुनकर प्रसन्न होता था। एक बार जब इसे प्रभु महावीर के चम्पा के उपनगर में आगमन का समाचार मिला, तो सर्वप्रथम इसने अपने ५ राजसी चिन्ह दूर किये। उत्तरासन ग्रहण किया। अंजिलबद्ध सात-आठ कदम महावीर की दिशा की ओर बढ़ा। बायें पैर व दायें पैर को संकोचित किया। फिर नमुक्कण के पाठ से अभिवादन कर बोला--“श्रमण भगवान महावीर जो आदिकर हैं, तीर्थकर हैं यावत् सिद्धगति के अभिलाषावान हैं। मेरे धर्मोपदेशक और धर्माचार्य हैं उन्हें मेरा नमस्कार हो। यहाँ से मैं तटस्थ भगवान को वन्दन करता हूँ। भगवान वही से मुझे देखते हैं।”

फिर सूचना देने वाले को एक लाख आठ हजार रजत-मुद्रायें प्रदान करते हुए कहा--“जब भगवान महावीर चम्पा के पूर्णभद्र चैत्य में पधारें, तब मुझे पुनः सूचित करना।”

इसी सन्दर्भ में राजा कोणिक द्वारा प्रभु महावीर को शाही ढंग से वन्दन करने का अलौकिक वर्णन है।

प्रभु महावीर का उपदेश सुनकर उसने निर्ग्रन्थ प्रवचन को श्रद्धा से स्वीकार किया।

इसी वर्ष प्रभु महावीर के शिष्य वेहास, अभय आदि ने विपुलाचल पर मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान महावीर के प्रवचन से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने प्रभु महावीर से प्रव्रज्या ग्रहण की। मुनिधर्म अंगीकार करने वालों में पद्म, महापद्म, भद्र, सुभद्र, पद्मभद्र, पद्मसेन, पद्मगुलक, नलिनीगुल्म, आनंद और नन्दन<sup>५१</sup> प्रमुख थे जो राजा श्रेणिक के पौत्र थे। इनके अतिरिक्त जिनपालित<sup>५२</sup> ने श्रमणधर्म अंगीकार किया। पालित<sup>५३</sup>—जैसे बड़े व्यापारी ने श्रावकधर्म स्वीकार किया। यह चातुर्मास राजगृह में सम्पन्न हुआ।

## छब्बीसवाँ वर्ष

चम्पा से भगवान महावीर ने विदेहभूमि की ओर विहार किया। वहाँ के गाथापति धृतिधर क्षेमक ने संयम ग्रहण किया। क्षेम और धृतिधर ने १६ वर्ष संयम का पालन कर विपुल पर्वत पर अनशन द्वारा सिद्ध गति प्राप्त की।<sup>१४</sup>

चातुर्मास के बाद प्रभु महावीर अंग देश पधारे। राजा श्रेणिक की मृत्यु के पश्चात् उनका पुत्र कोणिक राजा बना। इन दिनों वैशाली युद्ध-स्थल बन चुकी थी। एक तरफ मगध का सम्राट् कोणिक और उसके दस सौतेले भाई थे। सभी अपनी विशाल सेना के साथ वैशाली की रणभूमि में पहुँचे हुए थे। दूसरी ओर वैशाली गणराज्य प्रमुख चेटक थे। इनके साथ काशी, कोशल देश के १८ गणराजा अपनी विशाल सेनाओं के साथ आये हुए थे। झगड़े का कारण हाथी और एक हार था। ये दोनों वस्तुएँ राजा श्रेणिक ने अपने जीवनकाल में हल्ल-विहल्लकुमार को दी थीं। राजा कोणिक की रानी पद्मावती दोनों वस्तुएँ स्वयं चाहती थी। कोणिक ने दोनों वस्तुएँ माँगीं। विहल्लकुमार ने इंकार कर दिया। उसने चम्पा में रहना ठीक न समझा। दोनों वस्तुओं और परिवार के साथ वह राजा चेटक की शरण में आ गया। राजा चेटक के पास कोणिक ने पुनः दूत भेजकर दोनों वस्तुएँ माँगीं। राजा चेटक श्रमणोपासक श्रावक थे। उन्होंने शरणागत की रक्षा के लिये कोणिक राजा के युद्ध की चुनौती को स्वीकार किया। वैशाली में घमासान युद्ध होने लगा जिसे जैन इतिहास में रथ-मूसल संग्राम का नाम दिया है।

इस युद्ध में कालकुमार आदि दस भाई काम आये। लड़ाई चल रही थी। विनाश जोरों पर था।

इस मध्य प्रभु महावीर चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पधारे। नागरिक जब प्रभु महावीर के दर्शन करने आये, उन नागरिकों में १० कुमारों की माताएँ शामिल थीं। राजमाताओं ने प्रभु महावीर से पूछा—“भगवन् ! कालकुमार आदि लड़ाई में आये हैं। क्या वे सकुशल वापस लौटेंगे ?”

भगवान ने उत्तर दिया—“आपके पुत्र तो युद्ध-क्षेत्र में मारे गये हैं ?”

भगवान महावीर ने रानियों को वैराग्य उपदेश के माध्यम से सांत्वना दी। संसार की असारता समझाई। सभी रानियों ने प्रभु दीक्षा ग्रहण कर श्रमणी संघ में प्रवेश किया।

## सत्ताईसवाँ वर्ष

यह वर्ष प्रभु महावीर के जीवन का महत्त्वपूर्ण वर्ष था। प्रभु महावीर चम्पा में कुछ समय धर्म-प्रचार करने के पश्चात् पुनः मिथिला पधारे। यह वर्षावास भी मिथिला में सम्पन्न हुआ। अनेक भव्यात्माओं ने श्रावकधर्म व मुनिधर्म को स्वीकार किया।

प्रभु महावीर ग्राम-ग्राम धर्म-ध्वज फहराते हुए वैशाली पधारे। फिर श्रावस्ती की तरफ विहार किया। उन्हीं दिनों कोणिक के दो भ्राता हल्ल-विहल्ल जो वैशाली के विनाश का कारण बन रहे थे, किसी तरह संघर्ष से जान बचाकर मुनि बन गये।

## गोशालक का उपद्रव

भगवान महावीर श्रावस्ती के कोटक उद्यान में पधारे। उन्हीं दिनों मंखलिपुत्र गोशालक भी नगर में अपने शिष्यों के साथ आया हुआ था। वह स्वयं को जिन, केवली, तीर्थंकर व सर्वज्ञ कहता था। गोशालक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में प्रभु महावीर का शिष्य बनकर साथ रहा था। उसने प्रभु महावीर से तेजोलेश्या सीखी। फिर उसने निमित्त शास्त्र में स्वयं को प्रसिद्ध किया। इन दो कारणों से वह स्वयं तीर्थंकर कहलाने लगा।

श्रावस्ती नगरी में गोशालक के दो परम भक्त थे। एक थी हालाहला कुम्हारिन और दूसरा अयंपुल गाथापति। गोशालक जब भी श्रावस्ती आता तो वह हालाहला की भाण्डशाला में ठहरता। दोनों सम्पन्न व प्रसिद्ध थे। गोशालक पहले



तो प्रभु महावीर का स्वयं शिष्य बना था। फिर छह वर्ष तक साथ रहकर प्रभु महावीर के लिये मुसीबतें खड़ी करता रहा। फिर वह १८ वर्ष से प्रभु महावीर से अलग विचर रहा था। वह स्वयं को आजीवक मत का आचार्य कहता था। गोशालक पहले से ही यहाँ चातुर्मास के लिये ठहरा हुआ था। चातुर्मास पूरा होने के बाद भी वह यहाँ टिका हुआ था।

## नगरचर्चा

एक दिन भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति भिक्षार्थ नगर में आये। उन्होंने श्रावस्ती नगरी के चौराहों पर यह जनचर्चा सुनी—“आजकल इस नगर में दो जिन विचरण कर रहे हैं, दोनों अपने को तीर्थकर, सर्वज्ञ, केवली बताते हैं। एक हैं भगवान महावीर व दूसरा मंखलिपुत्र गोशालक।”

गणधर गौतम ने प्रभु महावीर से नगर में फैली जनचर्चा के बारे में बताया। प्रभु महावीर ने गणधर गौतम को गोशालक के बारे में बताते हुए कहा—“गोशालक कोई जिन, सर्वज्ञ, केवली या तीर्थकर नहीं है। यह तो मेरा पूर्व-शिष्य है। यह तेजोलेश्या की आराधना द्वारा कुछ शक्ति का धारक है। पर यह छद्मस्थ है। कुछ नैमित्तिक शास्त्र का भी ज्ञाता है।”

गणधर गौतम ने प्रभु महावीर की बातों को ध्यान से सुना।

## गोशालक की आनन्द से चर्चा

प्रभु महावीर का एक शिष्य आनन्द नामक अनगर भिक्षा के लिये नगर में घूम रहा था। वह अचानक हालाहला कुम्हारिन के घर के पास से निकला। गोशालक अपने शिष्यों सहित वहाँ ठहरा हुआ था। उसने प्रभु महावीर के इस शिष्य को देखा। गोशालक उन्हें बोला—“देवानुप्रिय ! जरा ठहर और एक बात कहता हूँ उसे ध्यान से सुन। तुम्हारे धर्माचार्य की स्थिति इन लोभी व्यापारियों—जैसी है जिनकी कथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ—

पूर्व समय की बात है एक नगर में रहने वाले कुछ व्यापारियों ने किराने का माल भरा। वह गाड़ी भरकर प्रदेश में चले गये। रास्ते में भयंकर जंगल आया। व्यापारी उसे पार करने लगे, जंगल था कि खत्म होने का नाम नहीं ले रहा था। मार्ग में ग्रामरहित, निर्जल, दीर्घ अटवी में वे व्यापारी प्रविष्ट हुए। पानी समाप्त हो चुका था। पानी की तलाश में व्यापारी भटकने लगे।

अचानक उन भटकते व्यापारियों की दृष्टि एक विशाल वल्मीक पर पड़ी। उसके ऊँचे-ऊँचे चार शिखर थे। व्यापारियों ने प्रथम शिखर फोड़ा। जहाँ स्वच्छ जल प्राप्त हुआ। सभी ने पानी पिया; बैलों को पिलाया। मार्ग में उपयोग के लिये भी बर्तनों में भरा। फिर व्यापारियों के मन में अन्य शिखरों के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई।

उन्होंने दूसरा शिखर फोड़ा, तो उसमें से विपुल स्वर्ण—राशि मिली। व्यापारियों का लोभ बढ़ता गया। उन्होंने तीसरा शिखर फोड़ा। उसमें अमूल्य मणिरत्न प्राप्त हुये। अब चौथा शिखर बाकी था। सभी व्यापारियों की उसे तोड़ने की तीव्र अभिलाषा थी। उन्हें विश्वास था कि इस शिखर को फोड़ने से अमूल्य वज्र रत्न प्राप्त होंगे। पर एक वृद्ध व्यापारी ने उन सभी व्यापारियों को ऐसा करने से रोकते हुए कहा—“चतुर्थ शिखर नहीं फोड़ना चाहिये, क्योंकि यह हमारे लिये संकट का कारण हो सकता है।”

पर व्यापारियों की लोभवृत्ति इतनी प्रबल हो चुकी थी कि उन्होंने उस संतोषी व्यापारी की बात नहीं मानी। उन्होंने चौथा शिखर फोड़ा। उसमें से दृष्टि-विष साँप निकला। उसने सबको क्रोध भरी आँखों से देखा। साँप की दृष्टि पड़ते ही सब व्यापारी जलकर भस्म हो गये। केवल वही व्यापारी बच पाया जिसने चौथा शिखर फोड़ने को मना किया था।

“हे देवानुप्रिय ! तुम्हारे धर्माचार्य और धर्म—गुरु श्रमण ज्ञातपुत्र ने श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त की है। देव और मनुष्यादि में उनकी यश व कीर्ति फैली हुई है। अगर वह मेरे विरोध में कुछ भी कहेंगे तो मैं अपने तप—तेज से उन्हें भस्म कर दूँगा।”

गोशालक की धमकी से आनन्द मुनि बहुत भयभीत हो गया। उसने प्रभु महावीर से सारा घटना—क्रम बताया।

प्रभु महावीर ने आनंद को समझाते हुए कहा—“वह अपने तप-तेज के एक ही प्रहार से किसी को भी भस्म कर सकता है। पर अरिहंत भगवान को नहीं। उसमें जितना अधिक तप-तेज है अनगार क्षमा से उस क्रोध का निग्रह करने में समर्थ है। अनगार के तप-तेज से स्थविर का तप-तेज श्रेष्ठ है और उस (स्थविर) के तप-तेज से अनन्त गुणा तप-तेज अरिहंत परमात्मा का है। क्योंकि मुनि व अरिहंत में क्षमा गुण है इसलिये इन्हें जला नहीं सकता। हाँ, कुछ परिताप जरूर दे सकता है।

इसलिये तुम जाओ और गौतम इन्द्रभूति आदि श्रमण निर्ग्रंथों को सूचित कर दो कि गोशालक इधर आ रहा है। कोई भी श्रमण उसकी द्वेषपूर्ण बातों से क्रोधित न हो, न ही उसे उसकी बात का उत्तर दे।”

## गोशालक का आगमन

आनन्द मुनि ने प्रभु महावीर का सारा संदेश गणधर गौतम को सुनाया। सभी मुनि सावधान हो गये। गोशालक अपने संघ सहित कोष्टक चैत्य में पहुँचा और उसने कहा—“आयुष्मान् काश्यप ! मंखलिपुत्र जो कभी आपका शिष्य था, वह कथन तो आज ठीक है। पर आपको ज्ञात नहीं कि तुम्हारा वह शिष्य मरकर देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हो चुका है। मैं मंखलिपुत्र गोशालक से भिन्न कोण्डियायन गोत्रीय उदायी हूँ। गोशालक का शरीर मैंने इसलिए धारण किया है कि वह परीषद सहने में सक्षम है। यह मेरा सातवाँ शरीरान्तर प्रवेश है। हमारे सिद्धांत के अनुसार जो आज दिन तक मोक्ष गये हैं, जाते हैं, जायेंगे, वे सभी चौरासी लाख महाकल्प के उपरान्त सात देव भव, सात संयुक्त निकाय, सात सन्नियम और सात प्रवृत्त परिहार कर, पाँच लाख साठ हजार छह सौ तीन कर्मभेदों का अनुक्रम से क्षय कर मोक्ष गये हैं और सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए हैं।”

और भी सुनो। कुमार अवस्था में मेरे मन में प्रब्रज्या ग्रहण कर ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की इच्छा हुई। मैंने प्रब्रज्या ग्रहण की।

(१) मैंने निम्न सात प्रवृत्त परिहार किये। मेरा प्रथम शरीरान्तर राजगृह के बाहर मंडी कुक्षी चैत्य में उदायन कोण्डियायन का शरीर त्यागकर ऐणयक के शरीर में २२ वर्ष तक रहा।

(२) मेरा दूसरा शरीरान्तर प्रवेश उदण्डपुर के बाहर चन्द्रावतरण चैत्य में ऐणयक का शरीर त्यागने के पश्चात् मल्लराम के रूप में हुआ। इस शरीर में मैं २१ वर्ष तक रहा।

(३) फिर उस शरीर को त्यागकर मैं चम्पानगरी के बाहर मण्डिक के शरीर में यहाँ २० वर्ष रहा।

(४) फिर मैंने वाराणसी के बाहर काम महावन चैत्य में रोहक के शरीर के चतुर्थ शरीरान्तर प्रवेश किया। यहाँ मैं १९ वर्ष तक रहा।

(५) आलभिआ नगरी के बाहर प्राप्त काल चैत्य में भारद्वाज के शरीर में १८ वर्ष तक रहा।

(६) वैशाली के कुण्डियायन चैत्य में गौतमपुत्र अर्जुन के शरीर में १७ वर्ष तक रहा।

(७) फिर श्रावस्ती नगरी में हालाहला कुम्हारिन के कुम्भकारायण में मंखलिपुत्र गोशालक के शरीर को ग्रहण किया है।

सो आप मंखलिपुत्र गोशालक की बात करते हैं, वह आपका शिष्य था। मैं वह नहीं। अब मैं दूसरा मंखलिपुत्र गोशालक हूँ।

गोशालक के व्यर्थ प्रलाप को सुनकर प्रभु महावीर ने स्पष्ट किया—

“जैसे कोई चोर ग्रामवासियों से डरा हुआ भागता है उस भागते चोर को खड्ग, गुफा, दुर्ग या विषम स्थान न मिलने पर वह ऊन, सन, कपास या तृण में अपने को छिपाने का प्रयास करता है। पर वह इन वस्तुओं से छिप नहीं

सकता। फिर भी वह चोर स्वयं को इनमें छिपा मानता है। इसी प्रकार तुम सत्य को छिपाने के लिये मिथ्यात्व का सहारा ले रहे हो। अन्य न होते हुये भी, स्वयं को अन्य बता रहे हो। तुम्हारा यह कथन योग्य नहीं है।”

केवलज्ञानी से किसी की बात कैसे छिप सकती थी? वह त्रिकाल सर्वज्ञ प्रभु थे। इसीलिए उन्होंने आने वाले खतरे को भाँपते हुए अपने श्रमणसंघ को सावधान किया।

गोशालक का क्रोध बढ़ रहा था, क्योंकि उसकी असलियत का भांडा भगवान महावीर ने फोड़कर जन-साधारण को उसकी असलियत की सूचना दी, लोगों को सावधान किया। प्रभु महावीर का संदेश था कि मिथ्यात्व के साथ किसी भी तरह का समझौता सम्यक्त्व के लिये घातक है।

गोशालक ने प्रभु महावीर को सम्बोधन करते हुये क्रोधित स्वर में कहा—“काश्यप ! तू आज ही नष्ट, विनष्ट और भ्रष्ट होगा। तेरा जीवन नहीं रहेगा।”

### तेजोलेश्या द्वारा दो मुनियों को भस्म करना

गोशालक की बकवास व धमकी को सभी शिष्य व संघ ने सुना। पर प्रभु महावीर की आज्ञा को ध्यान में रखकर सब चुप रहे।

पूर्व देश का रहने वाला सर्वानुभूति अनगर उसी समय यह बातें सुन रहा था। वह स्वभाव का भद्र, प्रकृति से विनीत व सरल था। अपने धर्माचार्य के प्रति अपमानजनक शब्द उसके लिये असहनीय थे। उसने गोशालक की धमकी की परवाह किये बिना गोशालक को समझाया—“गोशालक ! किसी श्रमण ब्राह्मण से यदि कोई पुरुष एक भी आर्य वचन सुन लेता है, तो उन्हें बन्दना-नमस्कार करता है। पर्युपासना करता है। पर तू कैसा शिष्य है? प्रभु महावीर ने तुम्हें शिक्षा व दीक्षा दोनों प्रदान की। तुम्हारा उनके प्रति यह अपमानजनक व्यवहार तुझे शोभा नहीं देता। ऐसी बातें करना तुम्हारे लिये योग्य नहीं है।”

सुनक्षत्र मुनि की ऐसी वाणी सुनते ही गोशालक का चेहरा क्रोध से जलने लगा। उसने तेजोलेश्या से मुनि को उसी स्थान पर भस्म कर दिया।

गोशालक अब क्रोध की सीमार्ये पार कर चुका था। उसी समय अयोध्या निवासी सुनक्षत्र मुनि को गोशालक का यह व्यवहार सहा न गया। धर्माचार्य की आज्ञा एक तरफ थी। मुनि का शव सामने नजर आ रहा था। यह क्षमा की सीमा थी। सुनक्षत्र मुनि ने गोशालक को सर्वानुभूति की तरह समझाने का प्रयत्न किया। गोशालक को हितकारी वचन अच्छे न लगे और उसने उन पर भी तेजोलेश्या छोड़ दी। इस बार तेजोलेश्या का प्रभाव मन्द था। मुनि छटपटाते प्रभु महावीर के पास आये, समाधिमरण द्वारा आत्मालोचना की। समस्त साधु-साध्वियों से क्षमा याचना कर शरीर त्यागा। इस प्रकार दो मुनियों को गोशालक ने देखते ही भस्म कर डाला।

### गोशालक द्वारा प्रभु महावीर पर तेजोलेश्या प्रहार

निरपराध दो मुनियों के बलिदान से भी गोशालक की क्रोध-ज्वाला शान्त नहीं हुई। वह क्रोधावेश में अनर्गल बक रहा था। यह देखकर भगवान महावीर ने कहा—“गोशालक ! एक अक्षर देने वाला भी विद्या-गुरु कहलाता है, एक भी आर्यधर्म का वचन सुनाने वाला धर्म-गुरु माना जाता है। मैंने तो तुझे दीक्षित और शिक्षित किया है, मैंने ही तुझे पढ़ाया और मेरे ही साथ तेरा यह बरताव ! गोशालक, तू अनुचित कर रहा है। महानुभाव ! तुझे ऐसा करना उचित नहीं है।”

प्रभु महावीर के हित-वचनों का भी विपरीत परिणाम हुआ। शान्त होने के स्थान पर गोशालक अधिक उत्तेजित हो गया। वह अपने स्थान से सात-आठ कदम पीछे हटा और तेजःसमुद्घात करने लगा। उसने क्षणभर में अपनी तेजःशक्ति को भगवान महावीर के ऊपर छोड़ दिया। उसका अटल विश्वास था कि इस प्रयोग से वह अपने प्रतिपक्ष का अन्त कर देगा, पर उसकी धारणा निष्फल सिद्ध हुई। पहाड़ से टकराती हुई हवा की तरह गोशालक-निःसृष्ट तेजोलेश्या महावीर से

टकराकर चक्कर काटती हुई ऊँची चढ़कर वापस गोशालक के शरीर में घुस गई। तेजोज्वाला के शरीर में घुसते ही जलता और आकुल होता हुआ गोशालक बोला—“आयुष्मन् काश्यप ! मेरे तपस्तेज से तेरा शरीर व्याप्त हो गया है। अब तू पित्त और दाह-ज्वर से पीड़ित होकर छह महीनों के भीतर छद्मस्थ दशा में ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।”

प्रभु महावीर ने कहा—“गोशालक तेरे तपस्तेज से मेरा नहीं, तेरा स्वयं का ही शरीर दग्ध हो गया है। मैं तो अभी सोलह वर्ष तक इस भूमंडल पर सुखपूर्वक विचरूँगा और हाँ तू स्वयं ही पित्त-ज्वर रोग की पीड़ा से सात दिन के भीतर छद्मस्थावस्था में मृत्यु को प्राप्त होगा। गोशालक, तूने बुरा किया। देवानुप्रिय ! इस कार्य का तुझे पश्चात्ताप करना पड़ेगा।”

प्रभु महावीर और मंखलिपुत्र गोशालक के इस विवाद के समाचार उद्यान से नगर तक पहुँच गये। लोग कहने लगे—“आज कोष्ठकोद्यान में दो जिनों के बीच वाद हो रहा है। एक कहता है तू पहले मरेगा और दूसरा कहता है तू। भला इनमें सत्यवादी कौन होगा और मिथ्यावादी कौन ? इस पर समझदार मनुष्य कहते कि इसमें संशय की बात क्या है ? भगवान महावीर ही तीर्थंकर और सर्वज्ञ हैं और वे ही सत्यवादी हैं। गोशालक, जिन नहीं, पाखण्डी है और वही मिथ्यावादी है।” श्रावस्ती के प्रत्येक चौक और मुहल्ले में ये बातें हो रही थीं।

अब गोशालक की तेजोलेश्या क्षीण हो चुकी थी। वह निर्विष नाग की तरह निस्तेज हालत में महावीर के सामने खड़ा था। इस समय अपने अनगार शिष्यों को संबोधन करते हुए भगवान ने कहा—“आयुष्मन् श्रमणो ! अग्नि से जली हुई घास जिस तरह निस्तेज हो जाती है उसी तरह गोशालक अब तेजोलेश्या से हीन हो गया है। अब इसके साथ तुम कुछ भी प्रश्नोत्तर करके इसे पराजित कर सकते हो। अब इसके साथ धार्मिक विवाद करने में तुम्हें कोई भय नहीं।”

भगवान महावीर की आज्ञा पाते ही निर्ग्रन्थ श्रमण गोशालक के पास जाकर उससे धार्मिक प्रश्नोत्तर करने लगे पर गोशालक इस चर्चा में अपना पक्ष-समर्थन नहीं कर सका। अपने धर्माचार्य की इस कमजोरी को देखकर उसके कितने ही शिष्यों ने आजीवक संप्रदाय का त्याग कर भगवान महावीर के पास निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार किया। इस घटना से गोशालक के धैर्य का अन्त हो गया। उसने अपनी भयकातर दृष्टि चारों ओर फेंकी और ‘हाय मरा’ इस प्रकार की करुण चीख के बाद वहाँ से लौटकर वह अपने स्थान गया।

गोशालक की अवस्था बड़ी दयनीय हो रही थी। अपनी तेजोलेश्या के प्रवेश से उसके शरीर में असह्य पीड़ा हो रही थी जिसे शान्त करने के लिये गोशालक विविध उपाय कर रहा था। एक आम की गुठली अपने हाथ में लेकर उसे बार-बार चूसता, आन्तर वेदना को दबाने के लिये बार-बार मदिरा पान करता, शारीरिक ताप शान्त करने के लिये अपने शरीर पर मिट्टी मिला जल सींचता, क्षण-क्षण में उन्मादवश हो, नाचता-गाता और हालाहला को नमस्कार करता हुआ वह बड़े कष्ट से समय व्यतीत करने लगा।

## अयंपुल व गोशालक

उस समय श्रावस्ती निवासी आजीवकोपासक अयंपुल गाथापति को ‘हल्ला’ वनस्पति के संस्थान के विषय में शंका उत्पन्न हुई कि ‘हल्ला’ का आकार कैसा होता होगा। यह तर्क उसके हृदय में पिछली रात को उठा और प्रभात समय अपने धर्माचार्य से इसका खुलासा पूछने के विचार से वह हालाहला की भाण्डशाला में गया, पर गोशालक की तत्कालीन उन्मत्त दशा को देखते ही लज्जित होकर वह पीछे हटा। आजीवक भिक्षु अयंपुल का मनोभाव ताड़ गये। उन्होंने तुरंत उसे अपने पास बुलाया और बातचीत में आगमन का कारण जान लिया।

गोशालक के तत्कालीन आचरणों का बचाव करते हुए भिक्षुओं ने उसे कहा—“अयंपुल ! अपने धर्माचार्य को तुमने जिस स्थिति में देखा है उसके संबंध में उनका यह कहना है कि ये आठ बातें अन्तिम तीर्थंकर के समय में अवश्यंभावी होती हैं, जैसे—(१) चरम पान, (२) चरम गान, (३) चरम नृत्य, (४) चरम अञ्जलि-कर्म (नमस्कार), (५) चरम पुष्कर संवर्तक महामेघ, (६) चरम सेचनक गन्धहस्ती, (७) चरम महाशिला कंटक संग्राम, और (८) चरम ‘मैं तीर्थंकर’। ये आठों ही वस्तु चरम (अन्तिम) हैं, इस अवसर्पिणी काल में ये फिर होने वाली नहीं हैं।

आर्य अयंपुल, जल के विषय में भगवान का कथन यह है कि भिक्षु के काम में आने योग्य चार तो पेय जल होते हैं और चार अपेय।

पेय जल ये हैं—(१) गोपृष्ठज, (२) हस्तमर्दित, (३) आतपतप्त, और (४) शिलाप्रभ्रष्ट।

(१) गौ के पीठ का स्पर्श करके गिरा हुआ जल 'गोपृष्ठज'।

(२) मिट्टी आदि पदार्थों से लिप्त हाथों से बिलोड़ा हुआ जल 'हस्तमर्दित'।

(३) सूर्य और अग्नि के ताप से तपा हुआ जल 'आतपतप्त'।

(४) पत्थर, शिला के ऊपर से जोर से गिरा हुआ जल 'शिलाप्रभ्रष्ट' कहलाता है।

पिये न जा सकें, पर किसी अंश में जल का काम दें वैसे चार अपेय जल इस प्रकार कहे हैं—(१) स्थाल जल, (२) त्वचा जल, (३) फली जल, और (४) शुद्ध जल।

(१) जल से भीगी खस की टट्टी और जलार्द्र घट बगैरह पदार्थ जिनका शीतल स्पर्श दाह की शान्ति करता है वह 'स्थाल जल' कहलाता है।

(२) कच्चे आम, बेर बगैरह जिनको चूसकर शीतलता प्राप्त की जाती है वह 'त्वचा जल' कहलाता है।

(३) मूँग, उड़द बगैरह की कच्ची फली को मुख में चबाकर जो शीतलता प्राप्त की जाती है उसको 'फली जल' कहते हैं।

(४) कोई मनुष्य छह मास तक शुद्ध खाद्य वस्तु का सेवन करे। इस बीच दो मास जमीन पर, दो मास काठ पर और दो मास कुश की पथारी पर सोवे तब छोटे महीने की आखिरी रात में पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक दो महर्दिक देव वहाँ प्रकट होते हैं और अपने जल भीगे शीतल हाथ से साधक का स्पर्श करते हैं, यदि व्यक्ति उस शीतल स्पर्श का अनुमोदन करता है तो उसे आशीविष लब्धि प्राप्त होती है अर्थात् उसकी दाढ़ में साँप के विष से भी अधिक उग्र विष प्रकट होता है और जो उन स्पर्शक देवों का अनुमोदन नहीं करता उसके शरीर में अग्निकाय की उत्पत्ति होती है। उस अग्नि से अपने शरीर को जलाकर वह उसी भव में सब दुःखों का अन्त करके संसार से मुक्त हो जाता है। उक्त देव के जल भीगे हाथ का शीतल स्पर्श ही 'शुद्ध जल' कहलाता है।

अयंपुल ! अपने धर्माचार्य ने उपर्युक्त आठ चरम, चार पेय जलों और चार अपेय जलों की प्ररूपणा की है। इस वास्ते वे जो नाच, गान, पान, अञ्जलिकर्म और शरीर पर मृत्तिका जल सींचते हैं वह सब ठीक है। ये कार्य अन्तिम तीर्थंकर के अवश्य कर्तव्य हैं। इनमें कुछ भी अनुचित नहीं। आर्य अयंपुल ! खुशी से अपने धर्माचार्य के पास जाइये और प्रश्न पूछकर अपनी शंका की निवृत्ति कीजिए।

आजीवक भिक्षुओं ने अयंपुल के मन का समाधान कर उसे गोशालक की तरफ भेजा और उसके वहाँ पहुँचने के पहले ही दूसरे रास्ते से अंदर जाकर गोशालक को उन्होंने सावधान रहने और अमुक प्रश्न का उत्तर देने का इशारा कर दिया।

अयंपुल गोशालक के पास अंदर गया और तीन प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन—नमस्कार करके उचित स्थान पर बैठ गया। वह अभी प्रश्न पूछ ही नहीं पाया था कि गोशालक ने उसकी शंका को प्रकट करते हुए कहा—“अयंपुल ! आज पिछली रात को कुटुम्ब—चिन्ता करते हुए तुझे हल्ला के संस्थान के विषय में शंका उत्पन्न हुई और उसका समाधान करने के लिये तू यहाँ आया। क्यों यह ठीक है ?”

अयंपुल ने हाथ जोड़कर कहा—“जी हाँ, मेरे अभी यहाँ आने का यही प्रयोजन है।”

“परन्तु यह आम की गुठली नहीं, उसकी छाल है..... क्या कहा—हल्ला का संस्थान कैसा होता है ? हल्ला का संस्थान बाँस के मूल—जैसा होता है।..... बीन बजा अरे वीरका ! बीन बजा !”

मदिरा के नशे और दाह-ज्वर की पीड़ा से विकल गोशालक अयंपुल को उत्तर देता हुआ इस प्रकार असंबद्ध प्रलाप कर रहा था तो भी श्रद्धालु अयंपुल पर उसका कुछ भी विपरीत प्रभाव नहीं हुआ। वह अपने धर्माचार्य के उत्तर से संतुष्ट होकर तथा अन्य भी कतिपय प्रश्न पूछकर उनके उत्तरों से आनन्दित होकर अपने घर गया।

### गोशालक की अन्तिम अवस्था

गोशालक की शक्ति प्रतिक्षण क्षीण हो रही थी इससे, और 'तू स्वयं पित्त-ज्वर की पीड़ा से सात दिन के भीतर छद्मस्थावस्था में मृत्यु को प्राप्त होगा' इस महावीर की भविष्यवाणी के स्मरण से, गोशालक को निश्चय हो गया कि अब उसकी जीवन-लीला समाप्त होने को है। उसने अपने शिष्यों को पास बुलाकर कहा- 'भिक्षुओ ! मेरे प्राण-त्याग के बाद मेरे इस शरीर को सुगन्धित जल से नहलाना, सुगन्धित काषाय-वस्त्र से पोछना और गोशीर्ष चन्दन के रस से विलेपन करना। फिर इसे श्वेत वस्त्र से ढककर हजार पुरुषों से उठाने योग्य पालकी में रखकर श्रावस्ती के मुख्य-मुख्य सब चौक बाजारों में फिराना और ऊँचे स्वर से उद्घोषित करना कि इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम जिन, कर्म खपाकर मुक्त हो गये।''

गोशालक की उक्त आज्ञा को आजीवक स्थविरों ने विनय के साथ सिर पर चढ़ाया।

### मंखलिपुत्र गोशालक द्वारा अपनी भूल का अहसास

गोशालक की बीमारी का सातवाँ दिन था। उसका शरीर काफी कमजोर हो गया था पर विचार-शक्ति तब तक लुप्त नहीं हुई थी। वह सोता था पर उसके हृदय में जीवन के भले-बुरे प्रसंगों की स्मृति चक्कर काट रही थी। अपना मंखजीवन, महावीर के पीछे पड़कर उनका शिष्य होना, कई बार उसके प्रति बताया हुआ दयाभाव इत्यादि बातें उसके हृदय में ताजी हो रही थीं। साथ ही अपने मुख से की गई महावीर की बुराईयों क्रोधवश की हुई सर्वानुभूति और सुनक्षत्र मुनि की हत्या और महावीर पर तेजोलेश्या छोड़ना इत्यादि कृतघ्नतासूचक प्रवृत्तियाँ भी स्मृति-पट पर ताजी होकर उसके चित्त को आकुल कर रही थीं। पहले केवल शरीर में ही जलन थी पर अब तो उसका मन भी पश्चात्ताप की आग में जलने लगा। क्षणभर उसने नीरव और निश्चेष्ट होकर हृदयमन्थन किया, फिर अपने शिष्यों को पास बुलाकर कहा- 'भिक्षुओ ! मैं तुम्हें एक कार्य की सूचना देना चाहता हूँ, क्या तुम उस पर अमल करोगे ?'

स्थविर- 'अवश्य, आपकी बातों पर अमल करना हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है।'

मंखलिपुत्र गोशालक- 'हे आर्य ! मेरी आज्ञा मानने में तुमने कभी आनाकानी नहीं की, फिर भी मेरे विश्वास के लिए शपथपूर्वक कहो कि मेरा कहना मानोगे।'

स्थविर- 'हम शपथबद्ध होकर कहते हैं कि आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करेंगे।'

गोशालक- 'भिक्षुओ ! मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने तुम्हें ठगा है। मैंने संसार को भी ठगा है। मैं जिन न होते हुए भी जिन और सर्वज्ञ के नाम से पुजाता रहा हूँ, यह मेरा दंभ था। मैं श्रमणघातक तथा अपने धर्माचार्य की अपकीर्ति करने वाला हूँ। अब मैं मृत्यु के समीप हूँ, कुछ क्षणों में मर जाऊँगा। अब मेरे मरने के बाद तुम्हारा जो कर्तव्य है उसे सुनो-जब मैं मर जाऊँ तो मेरे शव के बाँए पाँव में मूँज की रस्सी बाँधकर मुख में तीन बार धूकना, फिर उसे खींचते हुए श्रावस्ती के सब चौक, बाजारों में फिराना और साथ-साथ उच्च स्वर से उद्घोषित करना- 'यह मंखलि गोशालक मर गया ! जिन न होने पर भी जिन होने का ढोंग करने वाला, श्रमणघातक, गुरुद्रोही गोशालक मर गया।'

भिक्षुओ ! यही मेरा अन्तिम आदेश है जिसके पालन के लिये तुम शपथबद्ध हुए हो। इसका पालन करना। मेरी आत्म-शान्ति के लिये इस पर अमल करना।'

पश्चात्ताप की आग में अशुभ कर्मों को जलाकर गोशालक शुद्ध हो गया। सम्यक्त्व की प्राप्ति के साथ देह छोड़कर वह अच्युत देवलोक में देवपद को प्राप्त हुआ।

## गोशालक का अन्तिम संस्कार

आजीवक स्थविरो के लिये गोशालक के मरण से भी उसके अन्तिम आदेश का पालन करना अधिक दुःखदायक था। इसके पालन में गोशालक के साथ उनका अपना अपमान था पर शपथबद्ध होने के कारण वे इस बात का अनादर भी नहीं कर सकते थे। खूब सोच-विचार के बाद उन्होंने शपथ-मोक्ष का उपाय खोज निकला। तुरंत हालाहला की भाण्डशाला का द्वार बन्द किया और चौक के मध्य में श्रावस्ती की एक विस्तृत नक्शे के रूप में रचना की। बाद में गोशालक के आदेशानुसार उसके शव को उस कल्पित श्रावस्ती में सर्वत्र फिराया और अतिमन्द स्वर से उस प्रकार की उद्घोषणा भी कर दी।

इस प्रकार आजीवक स्थविरो ने अपने धर्माचार्य के आदेश के पालन का नाटक खेला। फिर शव को नहलाकर चन्दन-विलेपनपूर्वक उज्ज्वल वस्त्र से ढककर पालकी में रखा और सारी श्रावस्ती में फिराकर उसका उचित संस्कार किया।<sup>५५</sup>

## श्रमण भगवान महावीर की बीमारी व सिंह अनगार

गोशालक के देहान्त के बाद भगवान महावीर श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य से विहार करते हुए मेंढिक गाँव के बाहर सालकोष्ठक चैत्य में पधारे। भगवान का आगमन सुनकर श्रद्धालु जन वन्दन और धर्मश्रवण के लिये सम्मिलित हुए। भगवान ने धर्मदेशना दी जिसे सुनकर सभा विसर्जित हुई।

मंखलि गोशालक ने श्रावस्ती के उद्यान में भगवान पर जो तेजोलेश्या छोड़ी थी उससे यद्यपि तात्कालिक हानि नहीं हुई थी, पर उसकी प्रचण्ड ज्वालाएँ अपना थोड़ा-सा प्रभाव उन पर कर ही गईं। उसके ताप से आपके शरीर में पित्त-ज्वर हो गया था। जिस समय आप मेंढिक ग्राम में विराजे थे, गोशालक-घटना को छह महीने होने आये थे। तब तक पित्त-ज्वर और खून के दस्तों से महावीर का शरीर काफी शिथिल और कृश हो गया था। भगवान की यह दशा देखकर वहाँ से वापस जाते हुए नगरवासी आपस में बातें कर रहे थे—“भगवान का शरीर क्षीण हो रहा है, कहीं गोशालक की भविष्यवाणी सत्य न हो जाय?”

सालकोष्ठक चैत्य के पास मालुकाकच्छ में ध्यान करते हुए भगवान के शिष्य ‘सिंह’ अनगार ने उक्त लोक-चर्चा सुनी। छट्ट-छट्ट तप और धूप में आतापना करने वाले महातपस्वी सिंह अनगार का ध्यान टूट गया। वे सोचने लगे—‘भगवान को करीब छह महीने हुए पित्त-ज्वर हुआ है। साथ में खून के दस्त भी हो रहे हैं। शरीर बिल्कुल कृश हो गया है। क्या सचमुच ही गोशालक का भविष्य-कथन सत्य होगा? यदि ऐसा ही हुआ तो मेरे धर्मापदेशक धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर के संबंध में संसार क्या कहेगा?’ इत्यादि विचार करते-करते उनका दिल हिल गया। उन्होंने तपोभूमि से प्रस्थान किया और कच्छ के मध्य भाग में आते-आते रो पड़े, वहीं खड़े-खड़े वे फूट-फूटकर रोने लगे।

भगवान ने अनगार सिंह का रोना और उसका कारण जान लिया। अपने शिष्यों को संबोधन करते हुए महावीर ने कहा—“आर्यो ! सुनते हो। मेरा शिष्य सिंह मेरे रोग की चिन्ता से मालुकाकच्छ में रो रहा है ! श्रमणो ! तुम जाओ और अनगार सिंह को मेरे पास बुला लाओ।”

भगवान का आदेश पाते ही श्रमण निर्ग्रन्थों ने सिंह के पास जाकर कहा—“चलो सिंह ! तुम्हें धर्माचार्य बुलाते हैं।”

श्रमणों के साथ सिंह सालकोष्ठक चैत्य की तरफ चले और आकर भगवान को त्रिप्रदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमस्कार कर हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हुए।

सिंह के मानसिक दुःख का कारण प्रकट करते हुए भगवान बोले—“वत्स सिंह ! मेरे अनिष्ट भावी की चिन्ता से तू रो पड़ा।”

सिंह-“भगवन् ! बहुत समय से आपकी तबियत अच्छी नहीं रहती इससे और गोशालक की बात के स्मरण से मेरा चित्त उचट गया।”

महावीर-“वत्स ! इस विषय में तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं अभी साढ़े पंद्रह वर्ष तक सुखपूर्वक इस भूमण्डल पर विचरूंगा।”

सिंह-“भगवन् ! आपका वचन सत्य हो। हम यही चाहते हैं, परन्तु भगवन् ! आपका शरीर प्रतिदिन क्षीण होता जाता है यह बड़े दुःख की बात है। क्या इस बीमारी को हटाने का कोई उपाय नहीं ?”

महावीर-“आर्य ! तेरी यही इच्छा है तो तू मेंढिय गाँव में रेवती गाथापतिनी के यहाँ जा। उसके घर कुम्हड़े और बीजोरे से बनी हुई दो औषधियाँ तैयार हैं। इनमें पहली जो हमारे लिये बनाई गई है, उसकी जरूरत नहीं। दूसरी जो रेवती ने अन्य प्रयोजनवश बनाई है वह इस रोग-निवृत्ति के लिये उपयुक्त है, उसे ले आ।”

भगवान की आज्ञा पाकर सिंह बहुत प्रसन्न हुए। भगवान को वन्दन कर वे मेंढिक ग्राम में रेवती के घर पहुँचे। मुनि को आते देखकर रेवती सात-आठ कदम आगे गई और सविनय वन्दन कर बोली-“पूज्य ! किस निमित्त आना हुआ ? कहिये, क्या आज्ञा है ?”

सिंह ने कहा-“गाथापतिनी ! तुम्हारे यहाँ जो दो औषधियाँ हैं, जिनमें एक भगवान महावीर के लिये बनाई है उसकी आवश्यकता नहीं है। जो तुमने अन्य उद्देश्य से बीजोरे से औषधि तैयार की है उसकी आवश्यकता है। उसके लिये मैं आया हूँ।”

आश्चर्यचकित होकर रेवती बोली-“मुनि ! तुम्हें किस ज्ञानी या तपस्वी ने मेरे इस गुप्त कार्य का भेद कहा ? मेरे यहाँ अमुक औषधियाँ हैं और वे अमुक-अमुक उद्देश्य से बनाई गई हैं, यह रहस्य तुमने किसके कहने से जाना ?”

सिंह ने उत्तर दिया-“श्राविके ! यह रहस्य मैं भगवान महावीर के कहने से जानता हूँ। भगवान ने ही इसके लिये मुझे यहाँ भेजा है।”

अनगार सिंह की बात से रेवती को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अपने रसोईघर में गई और बीजोरा-पाक लाकर मुनि के पात्र में रख दिया। इस शुभ दान और शुभ भाव से रेवती का मनुष्य-जन्म सफल हो गया। उसने शुभाध्यवसाय से देवगति का आयुष्य बाँधा।

रेवती के घर से लाये हुए औषधमिश्र आहार के सेवन से भगवान के पित्त-ज्वर और रक्तातिसार की पीड़ा बन्द हो गई। धीरे-धीरे उनका शरीर पहले की तरह तेजस्वी होकर चमकने लगा।

भगवान महावीर की रोग-निवृत्ति से सबको आनन्द हुआ। साधु-साध्वियाँ और श्रावक-श्राविकाएँ ही नहीं, स्वर्ग के देव तक भगवान की नीरोगता से परम संतुष्ट हुए।<sup>५६</sup>

## जमालि का विद्रोह

प्रभु महावीर की आज्ञा के बिना स्वतंत्र होकर विचरता हुआ जमालि एक समय श्रावस्ती गया और तिन्दुकोद्यान में ठहरा। उस समय जमालि पित्त-ज्वर से पीड़ित था। साधु उसके लिये बिस्तर बिछा रहे थे। जमालि ने पूछा-“संधारा हो गया ?”

साधुओं ने कहा-“हो गया।” इस पर जमालि सोने के लिये उठा, पर संधारा अभी तक पूरा नहीं हुआ था। निर्बलता के कारण जमालि को खड़ा रहना कठिन हो गया था। उसने झुँझलाकर कहा-“करेमाणे कडे” (किया जाने लगा सो किया) ऐसा सिद्धान्त है, पर मैं देख रहा हूँ कि ‘करेमाणे कडे’ का कोई मतलब नहीं। कोई भी कार्य जब पूरा हो जाता है, तभी कार्य-साधक हो सकता है अतः उसी अवस्था में ‘कडे’ (किया) कहना चाहिये।



जमालि का यह तर्क कई साधुओं ने ठीक समझा। तब कई स्थविरों ने इसका विरोध भी किया। उन्होंने कहा— “भगवान महावीर का ‘करेमाणे कडे’ यह कथन निश्चयनय की अपेक्षा से सत्य है। निश्चयनय क्रियाकाल और निष्ठाकाल को अभिन्न मानता है। इसके मत से कोई भी क्रिया अपने समय में कुछ भी कार्य करके ही निवृत्त होती है। तात्पर्य इसका यह है कि यदि क्रियाकाल में कार्य न होगा तो उसकी निवृत्ति के बाद वह किस कारण से होगा? इसलिए निश्चयनय का यह सिद्धान्त तर्कसंगत है और इसी निश्चयात्मक नय को लक्ष्य में रखकर भगवान का ‘करेमाणे कडे’ यह कथन हुआ है जो तार्किक दृष्टि से बिलकुल ठीक है। दूसरी भी अनेक युक्तियों से स्थविरों ने जमालि को समझाया पर वह अपने हठ पर अड़ा रहा। परिणामस्वरूप बहुतेरे समझदार स्थविर श्रमण उसको छोड़कर भगवान महावीर के पास चले आए।

स्वस्थ होने पर जमालि ने श्रावस्ती से विहार कर दिया, पर उसने जो नया तर्क स्थापित किया था जिसकी चर्चा हर जगह करता रहता।

एक समय भगवान महावीर चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य में ठहरे हुए थे। जमालि भगवान के निवास-स्थान पर आया और उनसे कुछ दूर खड़ा होकर बोला— ‘देवानुप्रिय ! आपके बहुतेरे शिष्य जिस प्रकार छद्मस्थ-विहार से विचरे हैं वैसा आप मेरे संबंध में न समझें। मैं केवली-विहार से विचर रहा हूँ।’

जमालि का उक्त आत्म-श्लाघात्मक भाषण सुनकर महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति उसे संबोधन कर बोले— “जमालि ! केवलज्ञान, केवलदर्शन को तूने क्या समझ रक्खा है? केवलज्ञान और केवलदर्शन वह ज्योति है जो लोक और अलोक तक अपना प्रकाश फैलाती है, जिसका सर्वव्यापक प्रकाश नदी, समुद्र और गगनभेदी पर्वतमालाओं से भी स्खलित नहीं होता, जिस प्रकाश के आगे अंधेरी गुफायें और तमस् क्षेत्र भी करामलकवत् प्रकाशित होते हैं। महानुभाव जमालि ! जिसमें इस दिव्य ज्योति का प्रादुर्भाव होता है वह आत्मा छिपी नहीं रहती। तू केवली है या नहीं इस संबंध में अधिक चर्चा करना निरर्थक समझता हूँ। सिर्फ दो प्रश्न पूछता हूँ इनका उत्तर दे—(१) लोक शाश्वत है या अशाश्वत? और (२) जीव शाश्वत है या अशाश्वत?”

इन्द्रभूति गौतम के उक्त प्रश्नों का जमालि ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इस पर भगवान महावीर ने कहा— “जमालि ! मेरे बहुतेरे ऐसे शिष्य हैं जो छद्मस्थ होते हुए भी इन प्रश्नों के यथार्थ उत्तर देने में समर्थ हैं, तथापि वे केवली होने का दावा नहीं करते। देवानुप्रिय ! केवलज्ञान कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसका अस्तित्व बताने के लिये केवली को अपने मुख से घोषणा करनी पड़े।’

‘जमालि ! लोक ‘शाश्वत’ है, क्योंकि यह अनन्तकाल पहले भी था, अब है और भविष्य में सदाकाल रहेगा।’

अन्य अपेक्षा से लोक ‘अशाश्वत’ भी है। कालस्वरूप से वह उत्सर्पिणी मिटकर अवसर्पिणी बनता है और अवसर्पिणी मिटकर उत्सर्पिणी। इसी प्रकार अन्य जो लोकात्मक द्रव्य हैं उनमें अथवा उनके अवयवों में पर्याय परिवर्तन (आकार परावर्तन) होता ही रहता है। इस वास्ते लोक को ‘अशाश्वत’ भी कह सकते हैं।

इसी तरह जीव भी शाश्वत है और अशाश्वत भी। शाश्वत इसलिये कि उसका अस्तित्व त्रिकालवर्ती है और अशाश्वत इसलिये कि पर्यायरूप से वह सदाकाल एक-सा नहीं रहता। कभी वह नारकरूप धारण करता है तो कभी तिर्यक् बनता है, कभी वह मनुष्य बनता है और कभी देव। इस प्रकार अनेक पर्यायों के उत्पाद और व्यय की अपेक्षा से जीव ‘अशाश्वत’ है।’

जमालि को पूछे गये गौतम के प्रश्नों का स्पष्टीकरण करके भगवान ने बहुत समझाया पर उसने अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा। वह चला गया और दुराग्रहवश अनेक मिथ्या बातों से लोगों को बहकाता और अपने मतवाद में मिलाता हुआ विचरता रहा।

जमालि के ५०० साधुओं में से कतिपय साधु और प्रियदर्शन प्रमुख १,००० साध्वियाँ भी जमालि के पंथ में मिल गई थीं।

## साध्वी प्रियदर्शना का सम्बन्ध—विच्छेद

एक समय प्रियदर्शना अपने साध्वी-परिवार के साथ विहार करती हुई श्रावस्ती पहुँची और ढंक कुम्हार की भाण्डशाला में ठहरीं। ढंक भगवान महावीर का भक्त-श्रावक था। जमालि के मतभेद से वह पहले ही परिचित था। प्रियदर्शना जमालि का मत मानने वाली है यह भी उसे मालूम था। जमालि तथा उसके अनुयायी किसी तरह समझें और भगवान के साथ जो विरोध खड़ा किया है उसे मिटा दें, यह ढंक की उत्कृष्ट इच्छा थी। इसी विषय को लक्ष्य में रखकर उसने प्रियदर्शना की संघाटी (चादर) पर अग्निकण फेंका। संघाटी जलने लगी जिसे देखकर प्रियदर्शना बोल उठी—“आर्य ! यह क्या किया, मेरी संघाटी जला दी ?”

ढंक ने कहा—“संघाटी जली नहीं, अभी जल रही है। जलते हुए को ‘जला’ कहना यह भगवान महावीर का मत है। तुम्हारा मत जले हुए को ‘जला’ कहने का है, फिर तुमने जलती संघाटी को ‘जली’ कैसे कहा ?”

ढंक की इस युक्ति से प्रियदर्शना समझ गई, बोली—“आर्य ! तूने अच्छा बोध दिया।” प्रियदर्शना ने उसी समय जमालि का मत छोड़कर अपने परिवार के साथ भगवान महावीर के संघ में प्रवेश किया।

जमालि के साथ जो साधु रहे थे वे भी धीरे-धीरे उसे छोड़कर महावीर के श्रमणसंघ में मिल गये फिर भी जमालि अपने हठाग्रह से पीछे नहीं हटा। जहाँ जाता वहाँ अपने मतवाद का प्रचार करता और भगवान महावीर के विरुद्ध लोगों को बहकाता। बहुत वर्षों तक श्रमणधर्म पालने के उपरान्त जमालि ने अनशन किया और पन्द्रह दिन तक निराहार रह देह छोड़ा और लान्तक देवलोक में किल्बिष जाति का देव हुआ।

मैढिय ग्राम से विहार करते हुए भगवान मिथिला पहुँचे और वर्षावास मिथिला में ही किया। चातुर्मास पूरा होते ही भगवान ने मिथिला से पश्चिम के जनपदों की तरफ विहार कर दिया।

## महाशिलाकंटक युद्ध

जैसे हिन्दू धर्म में महाभारत के युद्ध का वर्णन मिलता है उसी प्रकार जैन इतिहास प्रसिद्ध महाशिलाकंटक युद्ध का वर्णन भगवती और निरयावलिका सूतों में मिलता है। यह युद्ध कई वर्ष चला। युद्ध की भूमिका का कुछ वर्णन हम पीछे कर आये हैं। इस युद्ध में राजा श्रेणिक के कालकुमार आदि पुत्र मारे गये थे। बहुत विशाल सेना, ३३ हजार हाथी, ३३ हजार घोड़े व ३३ हजार रथ कोणिक राजा व भाइयों के इस सेना का अंग थे।

राजा चेटक ने भी खूब तैयारी कर ली थी। राजा चेटक की सेना में मनुष्यों के अतिरिक्त ५७ हजार हाथी, ५७ हजार घोड़े, ५७ हजार रथ थे। चेटक ने श्रावक के १२ व्रत अंगीकार किये थे। उसने एक नियम यह भी ले रखा था। एक दिन में एक बाण से ज्यादा बाण नहीं चलाऊँगा उसका बाण निष्फल नहीं जाता था।

प्रथम दिन अजातशत्रु कूणिक ने गरुड व्यूह रचना की। इसमें कालकुमार मारा गया था।

राजा चेटक ने शकट व्यूह रचना की थी। भयंकर युद्ध हुआ था। एक-एक करके उसके नौ भाई मर चुके थे। इनकी मातायें व पत्नियाँ साध्वी बन चुकी थीं।

## इन्द्र द्वारा सहायता

वैशाली महायुद्ध का कोई परिणाम सामने नहीं आ रहा था। युद्ध में अपनी पराजय देखकर कोणिक ने तीन दिन का उपवास किया। उसने शक्रेन्द्र व चमरेन्द्र की आराधना की। वे प्रकट हुए।

उन्होंने पहले दिन महाशिलाकंटक संग्राम योजना बनायी। शक्रेन्द्र द्वारा निर्मित अभेद्य व छह व्रज प्रतिरूप कवच को कोणिक ने धारण किया।<sup>१७</sup> वह युद्ध में आया। राजा चेटक का अमोघ बाण अब काम न आ सका। घमासान युद्ध हो रहा था। कूणिक की सेना के द्वारा राजा चेटक पर कंकड़, तृण, पत्त आदि कुछ भी डाला जाता, वह महाशिला की तरह प्रहार करता।<sup>१८</sup>

पहले दिन ८४ लाख योद्धा मारे गये। द्वितीय दिन रथमूसल की विकुर्वणा की गई। देव-निर्मित रथ पर चमरेन्द्र स्वयं आसीन हुआ। वह मूसल से चारों तरफ प्रहार करने लगा।<sup>६९</sup> दूसरे दिन भी लाखों मनुष्य मारे गये।

इस युद्ध में राजा चेटक नौ भल्ल, नौ लिच्छवी, काशी कोशल के गणराजाओं की पराजय हुई। कोणिक ने विजय-ध्वजा फहरा दी।<sup>६०</sup>

राजा चेटक पराजित होकर वैशाली में चला गया। महल के द्वार बंद कर दिये। कोणिक किसी भी तरह इन कपाट को तोड़ न सका। तभी आकाशवाणी हुई—“श्रमण कूलबालक,<sup>६१</sup> जब मागधिका वेश्या से अनुरक्त होगा, तब राजा अशोक चन्द कूणिक वैशाली को अधिग्रहण करेगा। कूणिक ने कूलबालक साधु व मागधिका की वेश्या को बुलाया। मागधिका ने श्राविका का वेश बनाया और कूलबालक मुनि को अपने जाल में फँसा लिया।

कूलबालक नैमित्तिक का वेश धारण कर किसी तरह वैशाली पहुँचा। उसे पता था कि जब तक वैशाली में मुनिसुव्रत स्वामी का स्तूप विद्यमान है इस नगरी का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

नागरिकों ने शत्रु संकट का उपाय पूछा। नैमित्तिक बने मुनि ने कहा—“जब तक यह स्तूप नहीं तोड़ा जायेगा, शत्रु नहीं हटेगा। लोगों ने स्तूप को तोड़ डाला। स्तूप टूटते ही कूणिक ने वैशाली पर आक्रमण कर वैशाली को नष्ट कर दिया।”<sup>६२</sup>

हार, हाथी को लेकर हल्ल और विहल्ल शत्रु से बचने के लिए वैशाली से भागे। प्राकार की खाई में आग लगी थी। हाथी सेचनक को विभंगज्ञान हुआ था जिस कारण वह आगे न बढ़ा। जब उसे आगे बढ़ाने की कोशिश की गई, तो उसने अपनी सूड़ से हल्ल-विहल्ल को नीचे उतार दिया। सेचनक हाथी ने उस अग्नि में स्वयं प्रवेश कर लिया था। शुभ अध्यवसाय से आयु पूर्ण कर वह हाथी प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुआ।

देव-प्रदत्त हार को देवताओं ने ग्रहण कर लिया। शासन देव ने अपनी शक्ति से हल्ल और विहल्ल को भगवान महावीर के पास मिथिला के पास पहुँचा दिया। प्रभु महावीर का उपदेश सुनकर उन दोनों को वैराग्य हो गया। वह प्रभु महावीर के शिष्य बन गये।<sup>६३</sup>

इस संग्राम का वर्णन प्रभु महावीर ने स्वयं भगवतीसूत में करते हुए एक प्रश्न का स्पष्टीकरण किया है। वह प्रश्न है कि क्या युद्ध में मरने वाले सभी स्वर्ग में जाते हैं ?

प्रभु महावीर का उत्तर था—“सभी युद्ध में मरने वाले स्वर्ग या नरक में नहीं जाते। स्वर्ग-नरक हर व्यक्ति के किये कर्म के फलानुसार प्राप्त होता है, युद्ध का इससे कोई संबंध नहीं है।”

### अट्ठाईसवाँ वर्ष

भगवान कोशल भूमि में विचरते हुए पश्चिम की ओर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। इसी बीच में इन्द्रभूति गौतम अपने शिष्यगण के साथ आगे निकलकर श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य में जा ठहरे।<sup>६४</sup>

उन दिनों पार्श्वपत्य केशीकुमार श्रमण भी अपने शिष्यगण सहित श्रावस्ती के तिन्दुकोद्यान में आए हुए थे।

दोनों स्थविरों के शिष्य एक-दूसरे समुदाय में आचार-भिन्नता देखकर सोचने लगे—“यह धर्म कैसा और वह कैसा ? यह आचार-व्यवस्था कैसी और वह कैसी ? महामुनि पार्श्वनाथ का धर्म चातुर्याम और वर्धमान का पंचशिक्षात्मक, एक धर्म सचेलक और दूसरा अचेलक ? मोक्ष-प्राप्तिरूप एक ही कार्य की साधना में प्रवृत्त होने वालों के धर्म तथा आचार मार्ग में इस प्रकार विभेद होने का क्या कारण होगा ? अपने शिष्यगणों में चर्चास्पद बनी हुई बातें केशी और गौतम ने सुनीं और परस्पर मिलकर इनका समाधान करने का उन्होंने निश्चय किया।

गौतम ने यह समझकर कि कुमार श्रमण केशी वृद्ध कुल के पुरुष हैं, अपने शिष्य समुदाय के साथ केशी के स्थान पर तिन्दुकोद्यान में गये।

केशी ने गौतम का उचित आदर किया। कुश-आसन आवि देकर बैठने का इशारा किया। गौतम बैठे। दोनों स्थविर सूर्य और चन्द्र की तरह शोभायमान होने लगे।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ और वर्धमान के श्रमणों का यह सम्मेलन एक अभूतपूर्व घटना थी। इसे देखने और संवाद सुनने के लिये अनेक अन्यतीर्थिक साधु और हजारों गृहस्थ लोग वहाँ एकत्र हुए।

केशी ने कहा-“महाभाग गौतम ! आपसे कुछ पूछूँ?”

गौतम-“पूज्य कुमारश्रमण ! आपको जो कुछ पूछना हो, हर्ष से पूछें।”

केशी-“महानुभाव गौतम ! महामुनि पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया और भगवान वर्धमान ने पञ्चशिक्षक धर्म का। इस मतभेद का क्या कारण है? समान मुक्ति-मार्ग के साधकों के धर्ममार्ग में इस प्रकार की विभिन्नता क्यों? गौतम ! इस मतभेद को देखकर आपको शंका और अश्रद्धा नहीं उत्पन्न होती?”

गौतम-“पूज्य कुमारश्रमण ! सर्वत्र धर्म-तत्त्व का निर्णय बुद्धि से होता है। इसलिए जिस समय में जैसी बुद्धि वाले मनुष्य हों उस समय में उसी प्रकार की बुद्धि के अनुकूल धर्म का उपदेश करना योग्य है।

प्रथम तीर्थंकर के समय में मनुष्य सरल परन्तु जड़ बुद्धि वाले थे। उनके लिये आचार मार्ग का शुद्ध रखना कठिन था। अन्तिम तीर्थंकर के समय में प्रायः कुटिल और जड़ बुद्धि वाले जीवों की अधिकता रहती है। उनके लिये आचार-पालन कठिन है। इस कारण प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों में पाञ्चमहाव्रतिक धर्म का उपदेश दिया, परन्तु मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के समय में जीव सरल और चतुर होते थे। वे थोड़े में बहुत समझ लेते और आचार को शुद्ध पाल सकते थे। इसी कारण बाईस तीर्थंकरों ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया।”

केशी-“गौतम ! तुम्हारी बुद्धि को धन्यवाद ! मेरा यह संशय दूर हो गया। अब मेरी दूसरी शंकाओं को सुनो-भगवान वर्धमान ने अचेलक धर्म कहा और महायशस्वी पार्श्वनाथ ने सवस्तु धर्म का उपदेश दिया। एक ही कार्य में प्रवृत्त दो पुरुषों के उपदेश में यह भेद कैसा? क्यों गौतम ! इस प्रकार साधु-वेश में भिन्नता देखकर तुम्हारे हृदय में संशय उत्पन्न नहीं होता?”

गौतम-“पूज्य कुमारश्रमण ! धर्म की साधना ज्ञान के साथ संबंध रखती है, बाह्य वेश के साथ नहीं। बाह्य वेश पहचान और संयम-निर्वाह का कारणमात्र है। मोक्ष-प्राप्ति ज्ञान, दर्शन और चारित्र के स्वीकार से ही होती है।”

केशी-“गौतम ! तुम हजारों शत्रुओं के बीच में रहते हो और शत्रु तुम पर हमला भी करते हैं फिर भी तुम उन्हें कैसे जीत लेते हो?”

गौतम-“कुमारश्रमण ! पहले मैं अपने एक शत्रु को जीतता हूँ और तब पाँच शत्रुओं को सहज जीत लेता हूँ। पाँच को जीतकर दस को और दस को जीतने के बाद हजारों को आसानी से जीत लेता हूँ।”

केशी-“गौतम ! वे शत्रु कौन हैं?”

गौतम-“हे मुनि ! ‘बेबस’ आत्मा ही अपना शत्रु है जिसके जीतने से क्रोध, मान, माया, लोभ नामक कषाय-शत्रु जीत लिए जाते हैं और इस तरह इन पाँच के जीत लेने से श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, जिह्वा और स्पर्शात्मक पाँच इन्द्रियरूप शत्रु जीते जाते हैं। इन दस शत्रुओं को यथा न्याय जीतकर मैं सुख से विचरता हूँ।”

केशी-“गौतम ! इस लोक में बहुसंख्यक लोग पाशों से बँधे हुए हैं, तो तुम इस प्रकार स्वतंत्र होकर कैसे फिरते हो?”

गौतम-“हे मुनि ! मैंने उपाय से उन पाशों को काट दिया है और उनका सर्वथा नाश कर पाश-मुक्त होकर फिरता हूँ।

केशी-“वे पाश कौन हैं?”

गौतम—“राग, द्वेष और स्नेह-बन्धन ये तीव्र और भयंकर पाश हैं। इन सबका यथा न्याय उच्छेद करके आचार के अनुसार विचरता हूँ।”

केशी—“जीव के हृदय में एक बेल उगती है, बढ़ती है और विषैले फलों से फलती है। गौतम ! उस बेल को तुमने कैसे उखाड़ दिया ?”

गौतम—“उस संपूर्ण बेल को पहले काटा, फिर उसका मूल उखाड़ा और ऐसा करके मैं विषैले फलों के भोग से बच गया हूँ।”

केशी—“गौतम ! वह बेल कौन-सी है ?”

गौतम—“हे महामुनि ! वह बेल है ‘भव-तृष्णा’। यह स्वयं भयंकर है और भयंकर फल देती है। इसे मूल से उखाड़कर मैं यथा न्याय विचरता हूँ।”

केशी—“शरीर में जाज्वल्यमान घोर अग्नि रहती है जो शरीर को जलाती रहती है। गौतम ! उस देहस्थ अग्नि को तुमने किस प्रकार शान्त किया ?”

गौतम—“महामेघ से बरसे हुए उत्तम जल को लेकर उस अग्नि में छिड़का करता हूँ जिससे मुझे वह नहीं जलाती।”

केशी—“गौतम ! वह अग्नि कौन-सी है ?”

गौतम—“कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) विविध प्रकार की ‘अग्नि’ है और श्रुतज्ञान, शील और तप ‘जल’। इस श्रुत शीलादि की जलधारा से छिड़की हुई कषाय-अग्नि शान्त हो जाती है। वह मुझे जला नहीं सकती।”

केशी—“गौतम ! जिस पर तुम चढ़े हो वह घोड़ा बड़ा साहसिक, भयंकर और दुष्ट है। वह बड़ा तेज दौड़ता है। वह घोड़ा तुम्हें उन्मार्ग पर नहीं ले जाता ?”

गौतम—“दौड़ते हुए उस घोड़े को मैं श्रुतज्ञान की लगाम से पकड़े रखता हूँ जिससे वह मार्ग को नहीं छोड़ता।”

केशी—“गौतम ! वह घोड़ा कौन-सा है ?”

गौतम—“‘मन’। यह साहसिक, भयंकर और अत्यन्त तेज दौड़ने वाला दुष्ट घोड़ा है जिसे मैं धर्मशिक्षा से वश में किये रहता हूँ।”

केशी—“गौतम ! इस जगत् में अनेक कुमार्ग हैं जिन पर चढ़कर जीव भटकते हुए मर जाते हैं, परन्तु गौतम ! तुम मार्ग में कैसे भूले नहीं पड़ते ?”

गौतम—“कुमारश्रमण ! जो मार्ग पर चलते हैं और जो उन्मार्गगामी हैं उन सबको मैं जानता हूँ। यही कारण है कि मैं मार्ग नहीं भूलता।”

केशी—“वह मार्ग कौन-सा है ?”

गौतम—“जिनोपदिष्ट ‘प्रवचन’ सन्मार्ग है और इसके विपरीत ‘कुप्रवचन’ उन्मार्ग। जो जिन-प्रवचन के अनुसार चलते हैं वे मार्गगामी हैं और कुप्रवचन पर चलने वाले उन्मार्गगामी।”

केशी—“मुनि गौतम ! जल-प्रवाह के वेग में बहते हुए प्राणियों की शरण और आधार क्या है ?”

गौतम—“जल के बीच एक महाद्वीप है जिसका विस्तार अतिमहान् है जहाँ जल के महावेग की गति नहीं होती, वही शरण है।”

केशी—“गौतम ! वह द्वीप कौन-सा है ?”

गौतम—“जरा-मरण के महावेग में बहते हुए प्राणियों के लिये शरण, आधार और अवलंबनदायक ‘धर्म’ ही द्वीप है।”

केशी- "जिसमें तुम बैठे हो वह नाव समुद्र में चारों ओर घसीटी जा रही है। गौतम ! इस तरह तुम इस अगाध समुद्र को कैसे पार कर सकोगे ?"

गौतम- "सिद्ध नाव समुद्र पार नहीं कर सकती, पर जो नाव निश्चिद्र होती है वह समुद्र पार कर सकती है। मैं निश्चिद्र नाव में बैठा हूँ अतः समुद्र को पार करूँगा।"

केशी- "गौतम ! वह नाव कौन-सी है ?"

गौतम- "शरीर नाव है, जीव नाविक और यह संसार समुद्र जिसे महर्षि लोग पार करते हैं।"

केशी- "गौतम ! बहुत से प्राणधारी जो घोर अंधकार में रहते हैं उनके लिये लोक में प्रकाश कौन करेगा ?"

गौतम- "सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करने वाला निर्मल सूर्य अखिल लोक में जीवों को प्रकाश देगा।"

केशी- "गौतम ! वह सूर्य कौन है ?"

गौतम- "जिनके जन्म-मरण टल गये हैं ऐसे सर्वज्ञ 'जिन' ही सूर्य हैं। वे उदय पाकर सम्पूर्ण लोक में जीवों को प्रकाश देते हैं।"

केशी- "हे गौतम ! शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित प्राणधारियों के लिए निर्बाध और निरुपद्रव कौन-सा स्थान है ?"

गौतम- "लोक के अग्र भाग में ऐसा स्थान है जो निश्चल और दुरारोह है। वहाँ जरा-मरण और व्याधि-वेदना कुछ भी नहीं है।"

केशी- "गौतम ! वह स्थान कौन-सा है ?"

गौतम- "निर्वाण, अनाबाध, सिद्धि और लोकाग्र इत्यादि नामों से वह पहचाना जाता है। वह कल्याणकारक, निरुपद्रव और निर्बाध है। इसकी स्थिति शाश्वत और चढ़ाव दुरारोह है। संसार-प्रवाह को तैरकर जो महर्षि इस स्थान को प्राप्त होते हैं वे सब शोकों से परे हो जाते हैं।"

केशी- "गौतम ! तुम्हारी बुद्धि को साधुवाद ! मेरे सभी संशय दूर हो गये। सर्वसूत्रों के महासागर गौतम ! तुम्हें नमस्कार हो।"

इस प्रकार अपने संदेह दूर होते ही केशीकुमार श्रमण ने गौतम को सिर झुकाकर अभिवादन किया और वहीं भगवान महावीर के मार्गानुगत पञ्चमहाव्रतिक धर्म को स्वीकार किया।

केशी और गौतम के इस सम्मेलन से वहाँ श्रुतज्ञान और संयम धर्म का बड़ा उत्कर्ष हुआ और अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का निर्णय हुआ। वहाँ एकत्रित सभा भी संतुष्ट होकर सन्मार्ग के स्वीकारने में तत्पर हुई।<sup>६५</sup>

भगवान महावीर श्रावस्ती पधारे और कुछ समय वहाँ ठहरने के उपरान्त पाञ्चाल की तरफ विहार करके अहिच्छत्रा पधारे। वहाँ प्रचार करने के बाद कुरु जनपद की ओर उन्होंने विहार किया और हस्तिनापुर पहुँचकर नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान में ठहरे।

## शिव राजर्षि द्वारा सम्मान

हस्तिनापुर के राजा शिव सुखी, संतोषी और धर्म-प्रेमी थे। एक दिन मध्य रात्रि में शिव की नींद टूट गई। वे राजकाज की चिन्ता करते-करते अपनी वर्तमान स्थिति और उसके कारणों की मीमांसा में उतर पड़े। सोचने लगे - 'अहा ! मैं इस समय सब प्रकार से सुखी हूँ। पुत्र, पशु, राज्य, राष्ट्र, सेना, वाहन, कोष, स्त्री और धन-संपदा आदि सब बातों से मैं बढ़ रहा हूँ। यह सब मेरे पूर्वभव के शुभ कर्मों का फल है। धर्म का यह फल भोगते हुए मुझे भविष्य

के लिये भी कुछ करना चाहिए। अच्छा, तो अब मैं कल ही लोहमय कड़ाह, कडुच्छुय और ताप्रीयभाजन बनवाऊँगा और कुमार शिवभद्र को राज्याभिषिक्त कर लोही, लोहकड़ाह आदि उपकरण लेकर गंगातटवासी दिशा-प्रोक्षक वानप्रस्थ तापसों के समीप जाकर परिव्रज्या स्वीकार कर लूँगा। उसी समय नियम धारण करूँगा कि 'आज से जीवन पर्यन्त मैं दिशा-चक्रवाल तप करूँगा'।

प्रातःकाल होते ही शिव ने अपने सेवकों को बुलाया और सब तैयारियाँ करवाईं। युवराज शिवभद्र का राज्याभिषेक करके उसने एक बड़ी जातीय सभा बुलाई जिसमें ज्ञातिजनों के उपरान्त मित्र और स्नेही संबन्धियों को भी आमंत्रित किया। आगन्तुक मेहमानों का भोजनादि से योग्य सत्कार करने के उपरान्त शिव ने उनके सामने अपना अभिप्राय प्रकट किया और शिवभद्र तथा उन सबकी सन्मति प्राप्त कर लोही, लोहकड़ाह आदि लेकर शिव दिशा-प्रोक्षक तापसों के निकट पहुँचे और उनके मत की परिव्रज्या ले दिशा-प्रोक्षक तापस हो गए।

शिव राजर्षि अपने निश्चयानुसार प्रतिज्ञा कर छट्ट-छट्ट से दिशाचक्रवाल तप करने लगे। पहला छट्ट पूरा होने पर वल्कल पहने हुए शिव राजर्षि तपोभूमि से अपनी कुटिया में आये। किठिन-सांकायिका-बाँस का पात्र और कावड़ लेकर पूर्व दिशा का प्रोक्षण करते हुए बोले-“पूर्व दिशा में सोम महाराजा प्रस्थान-प्रस्थित शिव राजर्षि का अभिरक्षण करो और वहाँ के कंद, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, हरियाली और तृणों के ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान करो।”

उक्त प्रार्थना कर वे पूर्व दिशा में चले और वहाँ से कंद, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फलादि से किठिन-सांकायिका को भरकर तथा दर्भ, कुश, समिध्, पत्तामोट आदि लेकर अपने झोपड़े में लौटे। किठिन-सांकायिका को एक तरफ रखकर वेदिका को झाड़ा तथा लीपा। फिर दर्भगर्भित कलश लिए गंगा में गये। वहाँ स्नान-मज्जन किया और दैवत-पितरों को जलादि अर्पण करके कलश भरकर कुटिया को लौटे। दर्भ-कुश और बालुका की रचना की। अरणि को शर से रगड़कर आग उत्पन्न की और समिध् काष्ठों से उसे जलाया। अग्नि-कुंड की दाहिनी तरफ सकथा, वल्कल, स्थान, शय्या-भाण्ड, कमण्डलु, काष्ठदण्ड और आत्मा को एकत्र कर शहद, घृत और तंदुलों से अग्नि में आहुतियाँ दे चरु तैयार किया। उसमें वैश्वदैव-बलि करने के उपरान्त अतिथि-पूजन किया और फिर स्वयं भोजन किया।

इसके बाद शिव राजर्षि दूसरा षष्ठ क्षण कर तपोभूमि में गये और पूर्ववत् ध्यान किया। पारणा के दिन वे अपने झोपड़े में आए और दक्षिण दिशा का प्रोक्षण कर बोले-“दक्षिण दिशा में यम महाराजा प्रस्थान-प्रस्थित शिव राजर्षि का अभिरक्षण करो।” फिर वही क्रिया की जो पहले पारणा के दिन की थी।

इसी तरह तीसरा छट्ट कर पारणा के दिन पश्चिम दिशा का प्रोक्षण कर शिव ने कहा-“पश्चिम दिशा में वरुण महाराजा प्रस्थान-प्रस्थित शिव राजर्षि का अभिरक्षण करो।” शेष सब विधान पूर्ववत् किया।

चौथे छट्ट के अन्त में उत्तर दिशा का प्रोक्षण कर शिव बोले-“उत्तर दिशा में वैश्रमण महाराजा प्रस्थान-प्रस्थित शिव राजर्षि का अभिरक्षण करो।” शेष सभी क्रियाएँ पूर्ववत् कीं।

शिव राजर्षि ने लम्बे समय तक तप किया-आतापना की, जिसके फलस्वरूप उन्हें विभंगज्ञान हुआ और सात समुद्रों तक स्थूल-सूक्ष्मरूपी पदार्थों को जानने-देखने लगे।

इस ज्ञानदृष्टि से शिव राजर्षि के मन में यह संकल्प उत्पन्न हुआ कि मुझे विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए हैं। इन ज्ञान-दर्शन से मैं जानता और देखता हूँ कि इस लोक में सात द्वीप और सात ही समुद्र हैं। इनके उपरान्त न द्वीप हैं, न समुद्र। ज्ञान उत्पन्न होने के उपरान्त शिव तपोभूमि से अपने झोपड़े में गये और वल्कल पहन लोही, लोहकड़ाह, कडुच्छुय, दण्ड, कमण्डल, ताम्रभाजन और किठिन-सांकायिका लिये हस्तिनापुर के तापसाश्रम में गये और भाजनादि सामग्री वहाँ रखकर हस्तिनापुर में गये। वहाँ पर उन्होंने अपने ज्ञान से जाने हुए सात द्वीप-समुद्रों की बात कही और बोले-“संसारभर में सात ही द्वीप और समुद्र हैं, अधिक नहीं।”

जिस समय भगवान महावीर हस्तिनापुर पधारे थे उस समय शिव भी वही थे और अपने सात द्वीप-समुद्र विषयक सिद्धान्त का प्रतिपादन कर रहे थे। लोगों में इस नये सिद्धान्त पर टीका-टिप्पणियाँ हो रही थीं।

इन्द्रभूति गौतम भगवान की आज्ञा ले हस्तिनापुर में भिक्षाचर्या को गये तो उन्होंने भी सात द्वीप-समुद्रों की बात सुनी। गौतम ने सहस्राप्रवचन में लौटकर उक्त जनप्रवाद के संबन्ध में भगवान से पूछा कि “सात ही द्वीप-समुद्र हैं’ यह शिवर्षि का कथन ठीक है क्या? और इस विषय में आपका क्या सिद्धान्त है?”

भगवान ने कहा-“सात द्वीप-समुद्र संबन्धी शिवर्षि का सिद्धान्त मिथ्या है। इस विषय में मेरा कथन यह है कि जम्बूद्वीप प्रभृति असंख्य द्वीप और लवण आदि असंख्य ही समुद्र हैं। इन सबका आकार विधान तो एक-सा है पर विस्तार भिन्न-भिन्न है।”

भगवान के पास उस समय सभा जमी हुई थी। दर्शन, वन्दन और धर्मश्रवण के निमित्त आए नगर-निवासी अभी वहीं बैठे हुए थे। धर्मश्रवण कर नगर-निवासीजन अपने-अपने स्थान पर गये। सबके मुँह में सुने हुए उपदेश की-विशेषतः शिवर्षि के सिद्धान्त विषयक गौतम के प्रश्नोत्तर की चर्चा थी। वे कहते थे-“शिवर्षि का सात द्वीप-समुद्र संबन्धी सिद्धान्त ठीक नहीं है। श्रमण भगवान महावीर कहते हैं कि द्वीप-समुद्र सात ही नहीं, असंख्य हैं।”

शिवर्षि महावीर की योग्यता से अपरिचित नहीं थे। उनके ज्ञान और महत्त्व की बातें उन्होंने कई बार सुन रक्खी थीं। जब उन्होंने अपने सिद्धान्त के विषय में महावीर का अभिप्राय सुना तो वे विचार में पड़ गये। मन ही मन बोले-‘यह कैसी बात है? द्वीप-समुद्र असंख्य हैं? मैं तो सात ही देख रहा हूँ और महावीर असंख्य बताते हैं? क्या मेरा ज्ञान अपूर्ण है?’ इस प्रकार संकल्प-विकल्प करते हुए वे शंकाशील होते गये। परिणामस्वरूप उनको जो कुछ आत्मिक साक्षात्कार हुआ था वह तिरोहित हो गया। तब उन्होंने सोचा कि ‘अवश्य ही इस विषय में महावीर का कथन सत्य होगा। वे ज्ञानी तीर्थंकर हैं। उन्हें अनेक योग विभूतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं ऐसे अर्हन्तों का दर्शन तो क्या नाम-श्रवण भी दुर्लभ होता है। अच्छा, तो अब मैं भी इन महापुरुष के पास जाऊँ और उपदेश सुनूँ।’

शिव राजर्षि वहाँ से तापसाश्रम में गये और लोही, लोहकड़ाह आदि को लेकर हस्तिनापुर के मध्य में से होते हुए सहस्राप्रवचन में पहुँचे। महावीर के पास जाकर त्रिप्रदक्षिणापूर्वक उनको वन्दन करके योग्य स्थान पर बैठ गये।

श्रमण भगवान ने शिव राजर्षि तथा उस महती सभा के समक्ष निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश दिया जिसे सुनकर शिवर्षि परम संतुष्ट हुए। वे उठे और हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना करते हुए बोले-“भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ। भगवन् ! मुझे भी हस्तालम्बन दीजिये। निर्ग्रन्थ मार्ग की दीक्षा देकर आप मुझे भी मोक्षमार्ग का पथिक बनाइये।”

भगवान ने शिव राजर्षि की प्रार्थना को स्वीकार किया। राजर्षि लोही, लोहकड़ाह आदि को लेकर ईशान दिशा की तरफ चले। थोड़ी दूर जाकर अपने उपकरणों को छोड़ दिया और पंचमुष्टिक लोच कर महावीर के पास लौटे। भगवान ने उन्हें पंच महाव्रत दिए और श्रमण धर्म की विशेष शिक्षा-दीक्षा के लिये उन्होंने स्थविरों के सुपुर्द कर दिया। निर्ग्रन्थ मार्ग में प्रवेश करने के बाद भी शिवर्षि ने कठिन तप किये और एकादशाङ्ग निर्ग्रन्थ प्रवचन का अध्ययन किया। अन्त में शिव राजर्षि सर्व कर्मों का नाश कर निर्वाण को प्राप्त हुए।<sup>६६</sup>

भगवान महावीर के इस समवसरण में अन्य कई धर्मार्थियों ने निर्ग्रन्थ प्रवचन की दीक्षा ली जिनमें अनगर पुट्टिल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यहाँ के पोटिल ने ३२ पत्नियों का त्यागकर दीक्षा ग्रहण की।<sup>६७</sup>

हस्तिनापुर से भगवान मोका नगरी की तरफ पधारे और मोका के नन्दन चैत्य में ठहरे जहाँ पर उन्होंने अग्निभूति और वायुभूति के प्रश्नों के उत्तर में देवों की निकुर्वणा-शक्ति का वर्णन करने के उपरान्त ईशानेन्द्र और चमरेन्द्र के पूर्वभवों का निरूपण किया।<sup>६८</sup> मोका से भगवान वापस लौटे और वाणिज्यग्राम में जाकर चातुर्मास व्यतीत किया।



## मोका नगरी में गणधरों द्वारा प्रश्नोत्तर

प्रभु महावीर जब हस्तिनापुर में विराजमान थे तो लम्बा समय वहाँ रहे। हस्तिनापुर जैन संस्कृति का प्राचीन केन्द्र था। इसके साथ अन्य धर्मों के धर्माचार्य भी यहाँ घूमते थे।

हस्तिनापुर धर्म-प्रचार करने के पश्चात् प्रभु महावीर मोका नगरी पधारे। मुनि कल्याणविजय, आचार्य विजयइन्द्रसूरि व आचार्य देवेन्द्र मुनि ने इसकी पहचान पंजाब के शहर मगामण्डी से की है।

उस समय प्रभु महावीर नन्दन चैत्य में विराजमान हुए। गणधर अग्निभूति ने प्रभु महावीर से पूछा—

“हे भगवन् ! असुरराज चमर के पास कितनी ऋद्धि, कास्ति, बल, कीर्ति, सुख, प्रभाव तथा विकुर्वणा शक्ति है ?”

प्रभु महावीर ने अपने शिष्य को उत्तर देते हुए समझाया—“हे देवानुप्रिय ! उस असुरराज चमर के पास ३४ लाख भवनवासी, ६४ हजार सामानिक देव, ३३ त्रायस्त्रिंशक देव, ४ लोकपाल, ५ पटरानी, ७ सेन तथा २ लाख ५६ हजार आत्म-रक्षकों और अन्य भवनवासी की देव ऋद्धि है। वह उन पर शासन करता हुआ सांसारिक सुखभोग भोगता हुआ जीवन-यापन कर रहा है। उसे वैक्रिय शरीर बनाने की विशेष अभिरुचि है। वह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप तो क्या तिर्यक् लोक के असंख्य द्वीप व समुद्र असुरकुमार देव और देवियों से भर जाएँ, उनके रूप विकुर्वित कर सकता है।

### वायुभूति गणधर की जिज्ञासा

अब वायुभूति ने असुरराज बलि के सम्बंध में प्रश्न किया।

प्रभु महावीर ने अग्निभूति को उत्तर देते हुए समझाया—“उसके पास ४४ लाख भवनवासी, ६ हजार सामानिक देव, ३३ त्रायस्त्रिंशक देव, ४ लोकपाल, ६ पटरानी, २४ हजार आत्म-रक्षक देव हैं। बाकी ऋद्धि व शक्ति असुरराज चमर की तरह ही समझनी चाहिये।

अग्निभूति ने इसी तरह स्तनितकुमार, व्यंतर देव और ज्योतिष्कों के संबंध में प्रश्न पूछे।

इनके उत्तर में प्रभु महावीर ने फरमाया—“व्यंतरों तथा ज्योतिष्कों में त्रायस्त्रिंशक तथा लोकपाल नहीं होते। वह ४ हजार सामानिक देव तथा १६ हजार आत्म-रक्षक देवों और पटरानियों के स्वामी होते हैं।”

ये प्रश्न भगवतीसूत्र ३/१/२७०-२८३ में उपलब्ध होते हैं। यह प्रथम बार है जब इन्द्रभूति के अतिरिक्त प्रभु महावीर के किसी अन्य गणधर ने प्रश्न किये हों।

भगवान महावीर यहाँ से पुनः वापस लौटे। वह वाणिज्यग्राम में वर्षावास हेतु पधारे।

### उनतीसवाँ वर्ष

वर्षावास समाप्त करके प्रभु महावीर विदेह देश की ओर पधारने लगे। आप फिर मगध देश की राजधानी राजगृही के गुणशील चैत्य में पधारे। राजगृही अब निर्ग्रंथों का मुख्य केन्द्र बन चुका था। यहाँ के राजा व प्रजा दोनों प्रभु महावीर के प्रति समर्पित थी। इतना सब होते हुए भी यहाँ बौद्ध, आजीवक, सांख्य आदि मतों को मानने वाले विपुल संख्या में निवास करते थे।

एक समय आजीवक भिक्षुओं के संबन्ध में इन्द्रभूति गौतम ने भगवान से पूछा—“आजीवक लोग स्थविरों से पूछते हैं कि निर्ग्रन्थो ! तुम्हारे श्रमणोपासक का, जब वह सामायिक व्रत में रहा हुआ हो, कोई भाण्ड चोरी चला जाय तो सामायिक पूरा कर वह उसकी तलाश करता है या नहीं ? यदि करता है तो वह अपने भाण्ड की तलाश करता है या पराये की ?”

उत्तर में भगवान ने कहा—“गौतम ! वह अपने भाण्ड की तलाश करता है, पराये की नहीं।”

गौतम—“भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से उसका भाण्ड ‘अभाण्ड’ नहीं हो जाता ?”

महावीर--“हाँ, सामायिक, पौषधादि व्रत में स्थित श्रमणोपासक का भाण्ड ‘अभाण्ड’ हो जाता है।”

गौतम--“भगवन् ! जब व्रत दशा में उसका वह भाण्ड ‘अभाण्ड’ हो गया तो उस दशा में चोरी हुए उस भाण्ड का व्रत पूरा करने के बाद श्रमणोपासक के तलाश करने पर ‘वह अपने भाण्ड की तलाश करता है’ यह कैसे कहा जायेगा ? जब उसका वह भाण्ड ही नहीं रहा तो उसकी तलाश करने का उसे क्या अधिकार है ?”

महावीर--“गौतम ! व्रत दशा में उसकी भावना यह होती है कि यह सोना, रूपा, कांस्य, दूष्य या मणि-रत्नादि कोई पदार्थ मेरा नहीं है। इस प्रकार उस समय उन पदार्थों से वह अपना संबन्ध छोड़ देता है--उनका उपयोग नहीं करता। पर उन पदार्थों पर से उसका ममत्वभाव नहीं छूटता और ममत्वभाव के न छूटने से वह पदार्थ पराया नहीं होता, उसी का रहता है।”

गौतम--“भगवन् ! सामायिक व्रत में स्थित श्रमणोपासक की भार्या से कोई संगम करे तो क्या कहा जायेगा--भार्या से संगम ? या अभार्या से ?”

महावीर--“श्रमणोपासक की भार्या से संगम करता है यही कहना चाहिये।”

गौतम--“भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत और पौषधोपवास से भार्या ‘अभार्या’ हो सकती है ?”

महावीर--“हाँ, गौतम ! व्रत दशा में श्रमणोपासक की यह भावना होती है कि माता, पिता, भाई, बहन, भार्या, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधू कोई मेरा नहीं है। यह भावना होते हुये भी उनसे उसके प्रेम-बन्धनों का विच्छेद नहीं होता। इसलिये ‘भार्या-संगम’ ही कहा जायेगा ‘अभार्या-संगम’ नहीं।<sup>६९</sup>”

### श्रमणोपासक व आजीवकोपासक

श्रमणोपासक गतकाल में किए हुए प्राणातिपात का ४९ प्रकार से प्रतिक्रमण करता है, वर्तमानकालीन प्राणातिपात का ४९ प्रकार से नियमन करता है और अनागत काल के प्राणातिपात का ४९ प्रकार से निषेध करता है। इस प्रकार श्रमणोपासक के स्थूल प्राणातिपात-विरमणव्रत के कुल १४७ भेद होते हैं।

इसी प्रकार स्थूल मृषावाद-विरमण, स्थूल अदत्तादान-विरमण, स्थूल मैथुन-विरमण और स्थूल परिग्रह-विरमण के भी प्रत्येक के १४७-१४७ भेद होते हैं जिनमें से अमुक व्रत का अमुक भेद पालन करने वाला भी श्रमणोपासक होता है। इस प्रकार विविध भंग से व्रत पालने वाले श्रमणोपासक होते हैं, आजीवकोपासक नहीं होते।

आजीवक मत के शास्त्रों का अर्थ ही यह है कि सचित्त पदार्थों का भोजन करना-सर्व प्राणियों का छेदन-भेदन और विनाश कर उनका भोजन करना।

आजीवक मत में ये बारह प्रसिद्ध आजीवकोपासक कहे गये हैं-ताल, तालपलंब, उव्विह, संविह, अवविह, उदय, नामुदय, नमोदय, अणुवालय, संखवालय, अयंपुल और कायरय। ये सभी आजीवकोपासक अरिहंत को देव मानने वाले और माता-पिता की सेवा करने वाले थे। ये गूलर, बड़, बेर, सतर (शहतूत) और पीपल इन पाँच जाति के फलों और प्याज, लहसुन आदि कन्दमूल को नहीं खाते थे। ये तस जीवों की रक्षा करते हुए ऐसे बैलों से अपनी जीविका चलाते जो न बधिया होते और न नाक बींधे हुए।” जब आजीवकोपासक भी इस प्रकार निर्दोषरीत्या जीविका चलाते थे तो श्रमणोपासक का तो कहना ही क्या ? उन्हें तो पन्द्रह ही कर्मादानों का त्याग करना चाहिये।

इस वर्ष राजगृह के विपुल पर्वत पर अनेक अनंगारों ने अनशन किया।

### तीसवाँ वर्ष

वर्षा चातुर्मास्य भगवान ने राजगृह में किया। चातुर्मास्य की समाप्ति होने पर भगवान ने राजगृह से चम्पा की ओर विहार कर चम्पा के पश्चिम में ‘पृष्ठचम्पा’ नामक उपनगर में ठहरे। पृष्ठचम्पा के राजा शाल और उसके छोटे भाई युवराज

महाशाल ने महावीर का उपदेश सुना। संसार से विरक्त होकर शाल ने कहा—“भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ और अपना राज्य युवराज महाशाल को सौंपकर आपके चरणों में आकर श्रमण धर्म को स्वीकार करूँगा।”

भगवान ने कहा—“विलम्ब मत करो।”

घर जाकर शाल ने अपने छोटे भाई को राज्यारूढ़ होने की प्रार्थना की पर महाशाल ने उसको स्वीकार नहीं किया और कहा कि जो धर्म आपने सुना है वही मैंने भी सुना है। जैसे आप संसार से विरक्त हैं वैसे मैं भी विरक्त हूँ। मैं भी प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा।

महाशाल के अतिरिक्त शाल के राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। महाशाल के अस्वीकार करने पर अपने भागिनेय गागली नामक राजकुमार को बुलाकर उसे राज्यारूढ़ कर शाल तथा महाशाल ने भगवान महावीर के वरद हाथ से श्रमणधर्म की दीक्षा ली।

### कामदेव श्रमणोपासक

पृष्ठ चम्पा से भगवान चम्पा के पूर्णभद्र चैत्य में पधारे। उन दिनों चम्पा निवासी श्रमणोपासक कामदेव अपने घर का कार्यभार ज्येष्ठ पुत्र के ऊपर छोड़कर भगवान महावीर के अन्तिम उपदेशों का पालन करने लगे थे? एक दिन कामदेव अपनी पौषधशाला में पौषध करते हुए रात्रि के समय ध्यान कर रहे थे। करीब मध्य रात्रि के समय वहाँ एक देव प्रकट हुआ और कामदेव को ध्यान से चलित करने का प्रयत्न करने लगा। पहले उसने पिशाच रूप में, फिर हाथी के रूप में और अन्त में सर्प के रूप में विविध विभीषिकाएँ और यातनाएँ दिखाई पर कामदेव अपने ध्यान और विश्वास से विचलित न हुए। अन्त में देव हारकर उसकी प्रशंसा करता हुआ चला गया।

प्रातः समय कामदेव भगवान महावीर के समवसरण में गए और वन्दन-नमस्कार कर धर्मोपदेश सुनने बैठे।

धर्मोपदेश पूर्ण होने के बाद भगवान ने कामदेव को संबोधन करते हुए कहा—“कामदेव ! गत रात्रि में किसी देव ने पिशाच, हाथी और सर्प के रूप बनाकर तुझे ध्यान-भ्रष्ट करने के लिए विविध उपसर्ग किए, यह सत्य है?”

कामदेव—“जी हाँ, यह बात सत्य है।”

निर्ग्रन्थ श्रमण-श्रमणियों को संबोधन करते हुए भगवान महावीर ने कहा—“आर्यो ! घर में रहते हुए गृहस्थ श्रमणोपासक भी दिव्य, मानुषिक और तिर्यक् योनि सम्बन्धी उपसर्ग सहन कर सकते हैं तो द्वादशाङ्ग गणिपिटकपाठी श्रमण निर्ग्रन्थों को तो अवश्य ही इस प्रकार के उपसर्ग सहन करने चाहिए।

निर्ग्रन्थ श्रमण-श्रमणियों ने भगवान का वचन विनयपूर्वक स्वीकार किया।<sup>६९</sup>

### महाराज दशार्ण की प्रभु-भक्ति व दीक्षा

चम्पा से भगवान ने दशार्णपुर को प्रयाण किया। दशार्ण का राजा दशार्णभद्र आपका भक्त था। आपके आगमन पर उसने बड़ा उत्सव किया और बड़े ही ठाटबाट के साथ वह वन्दन करने गया।

दशार्णभद्र को अपनी ऋद्धि, समृद्धि का बड़ा अभिमान था पर भगवान के वन्दनार्थ आये हुए देवेन्द्र की ऋद्धि देखकर उसका अभिमान उतर गया। भगवान के पास श्रमणधर्म को स्वीकार कर वह श्रमणसंघ में दाखिल हुआ।

दशार्णपुर से भगवान विदेह भूमि की तरफ प्रयाण कर वाणिज्यग्राम पधारे।

वाणिज्यग्राम में सोमिल नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था जो धनी, मानी, अपने कुटुम्ब का मुखिया और ५०० विद्यार्थियों का अध्यापक था। उसने जब सुना कि तीर्थंकर भगवान महावीर नगर के दूतिपलास चैत्य में पधारे हैं तो उसने भी वहाँ जाने का विचार किया—यह सोचकर कि वहाँ जाकर उन्हें कई प्रश्न पूछूँ।

सोमिल एक सौ छात्रों के साथ अपने घर से निकला और वाणिज्यग्राम के मध्य में से होता हुआ दूतिपलास पहुँचा। वहाँ भगवान से कुछ दूर खड़े रहकर बोला—“भगवन् ! तुम्हारे सिद्धान्त में यात्रा है ? यापनीय है ? अव्याबाध है ? प्रासुक विहार है ?”

महावीर—“हाँ, सोमिल ! मेरे यहाँ यात्रा भी है, यापनीय भी। अव्याबाध भी है और प्रासुक विहार भी है।”

सोमिल—“भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है ?”

महावीर—“तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यकदि योगों में जो यतना-उद्यम है वह मेरी यात्रा है।”

सोमिल—“भगवन् ! आपका यापनीय क्या है ?”

महावीर—“सोमिल ! यापनीय दो प्रकार का कहा है—एक इन्द्रिय-यापनीय और दूसरा नोइन्द्रिय-यापनीय। श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय तथा स्पर्शेन्द्रिय इन पाँच इन्द्रियों को वश में रखता हूँ—यह मेरा ‘इन्द्रिय-यापनीय’ है और मेरे क्रोध, मान, माया, लोभ विच्छिन्न हो गये हैं। इन कषायों का कभी प्रादुर्भाव नहीं होता। यह मेरा ‘नोइन्द्रिय-यापनीय’ है।”

सोमिल—“भगवन् ! आपका अव्याबाध क्या है ?”

महावीर—“सोमिल ! मेरे शरीरगत वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, सान्निपातिक आदि विविध रोगातङ्क दोष उपशान्त हो गये हैं। कभी ये प्रकट नहीं होते हैं। यही मेरा अव्याबाध है।”

सोमिल—“भगवन् ! आपका प्रासुक विहार क्या है ?”

महावीर—“सोमिल ! आरामों, उद्यानों, देवकुलों, सभाओं, प्रपाओं और स्त्री-पशु-पण्डक वर्जित बस्तियों में प्रासुक तथा कल्पनीय पीठफलक, शय्या, संस्तारक स्वीकार करके विचरता हूँ। यही मेरा प्रासुक विहार है।”

सोमिल—“भगवन् ! सरिसवय आपके भक्ष्य हैं या अभक्ष्य ?”

महावीर—“सरिसवय भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी।”

सोमिल—“दोनों प्रकार कैसे ?”

महावीर—“ब्राह्मण्यनयों में (ब्राह्मणों के ग्रन्थों में) सरिसवय शब्द के दो अर्थ होते हैं—एक मित्त-सरिसवय (सदृशवयाः) और दूसरा धान्य-सरिसवय (सर्षपः)। इनमें मित्त-सरिसवय तीन प्रकार के कहे हैं—(१) सहजात, (२) सहवर्धित, और (३) सहप्रांशुकीडित। ये सरिसवय श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

धान्य-सरिसवय दो प्रकार के होते हैं—(१) शस्त्र-परिणत, और (२) अशस्त्र-परिणत। इनमें जो अशस्त्र-परिणत होते हैं वे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

शस्त्र-परिणत सरिसवय भी दो प्रकार के होते हैं—(१) एषणीय, और (२) अनेषणीय। इनमें अनेषणीय श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

एषणीय भी दो प्रकार के होते हैं—(१) याचित, और (२) अयाचित। इनमें अयाचित श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

याचित भी दो प्रकार के होते हैं—(१) लब्ध, और (२) अलब्ध। इनमें अलब्ध श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं। केवल शस्त्र-परिणत एषणीय याचित और लब्ध धान्य सरिसवय ही श्रमण निर्ग्रन्थों को भक्ष्य हैं। इस कारण सरिसवय भक्ष्य भी कहे जा सकते हैं और अभक्ष्य भी।”

सोमिल—“भगवन् ! ‘मास’ आपको भक्ष्य हैं या अभक्ष्य ?”

महावीर—“ब्राह्मण्यनयों में ‘मास’ दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) द्रव्यमास (माष), और (२) कालमास। इनमें कालमास श्रावण से आषाढ़ पर्यन्त बारह है, जो अभक्ष्य हैं।

द्रव्यमास (माष) दो प्रकार के कहे हैं—(१) अर्धमास (माष), और (२) धान्यमास (माष)। इनमें से अर्धमास दो प्रकार के होते हैं—(१) सुवर्णमाष, और (२) रूप्यमाष। ये दोनों श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं। रहे धान्यमाष, सो उनके भी शस्त्रपरिणत-अशस्त्रपरिणत, एषणीय-अनेषणीय, याचित-अयाचित, लब्ध-अलब्ध आदि अनेक प्रकार हैं। इनमें शस्त्रपरिणत एषणीय याचित और लब्ध धान्यमाष श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए भक्ष्य हैं, शेष अभक्ष्य।”

सोमिल—“भगवन् ? ‘कुलत्था’ आपके भक्ष्य हैं या अभक्ष्य ?”

महावीर—“कुलत्था भक्ष्य भी हैं, अभक्ष्य भी।”

सोमिल—“यह कैसे ?”

महावीर—“ब्राह्मण्य-ग्रन्थों में ‘कुलत्था’ शब्द के दो अर्थ होते हैं—(१) कुलथी धान्य और (२) कुलीन स्त्री।

कुलीन स्त्री तीन प्रकार की होती है—(१) कुलकन्या, (२) कुलवधु, और (३) कुलमाता। ये कुलत्था श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

‘कुलत्था’ धान्य भी सरिसवय की तरह अनेक तरह का होता है, उसमें शस्त्रपरिणत, एषणीय, याचित और लब्ध ‘कुलत्था’ श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए भक्ष्य हैं, शेष अभक्ष्य।”

सोमिल—“भगवन् ! आप एक हैं या दो ? तथा आप अक्षय, अव्यय और अवस्थित हैं या भूत, वर्तमान, भविष्यत् के अनेक रूपधारी ?”

महावीर—“मैं एक भी हूँ और दो भी। मैं अक्षय, अव्यय, अवस्थित हूँ और भूत, वर्तमान, भविष्यद्रूपधारी भी।”

सोमिल—“भगवन् ! यह कैसे ?”

महावीर—“सोमिल ! मैं आत्मद्रव्य रूप से एक हूँ और ज्ञान-दर्शन रूप से दो भी हूँ। मैं आत्म-प्रदेशों की अपेक्षा से अक्षय, अव्यय, अवस्थित हूँ पर उपयोग-पर्याय की अपेक्षा से भूत, वर्तमान और भविष्यत् के नाना रूपधारी भी हूँ।

धर्मचर्चा सुनकर सोमिल ब्राह्मण तत्त्वमार्ग को समझ गया। वह वन्दन करके बोला—“भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है। मैं आपके निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ। मैं अन्य राजा-महाराजाओं और सेठ-साहूकारों की तरह आपके पास निर्ग्रन्थ श्रमणमार्ग की प्रब्रज्या ग्रहण करने में तो समर्थ नहीं हूँ, परन्तु मैं आपके पास श्रावकधर्म को स्वीकार कर सकता हूँ।” भगवान की आज्ञा प्राप्त कर सोमिल ने श्रावकधर्म के द्वादश व्रत ग्रहण किए और भगवान को वन्दन कर अपने घर गया।

श्रमणोपासक होने के बाद सोमिल ने निर्ग्रन्थ प्रवचन का विशेष तत्त्वज्ञान प्राप्त किया और अन्त में समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गवासी हुआ।<sup>१०</sup>

भगवान महावीर ने तीसवाँ वर्षा चातुर्मास वाणिज्यग्राम में व्यतीत किया।

### इकतीसवाँ वर्ष

वाणिज्यग्राम का वर्षावास पूर्ण कर भगवान कोशल देश के साकेत, सावन्धी आदि नगरों को पावन करते हुए पांचाल की ओर पधारे तथा कम्पिलपुर के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान में विराजे। कम्पिलपुर में अम्बड नामक एक ब्राह्मण परिव्राजक अपने सात सौ शिष्यों के साथ रहता था। उसने भगवान महावीर के त्याग-वैराग्यमय जीवन को देखा, केवलज्ञान, केवलदर्शन से युक्त प्रवचन सुने तो वह अपने शिष्यों के साथ जैनधर्म का उपासक हो गया। परिव्राजक सम्प्रदाय की वेश-भूषा रखने पर भी वह जैन श्रावकों के पालन योग्य व्रत-नियमों का सम्यक् प्रकार से पालन करता था।

## अम्बड़ परिव्राजक

एक दिन भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए गणधर गौतम ने सुना कि अम्बड़ संन्यासी कम्पिलपुर में एक साथ सौ घरों में आहार ग्रहण करता है और वह सौ ही घरों में दिखलाई देता है।

गौतम ने भगवान से पूछा—“भगवन् ! क्या यह सत्य है ?”

महावीर—“गौतम ! अम्बड़ परिव्राजक स्वभाव से विनीत और प्रकृति से भद्र है। निरन्तर बेले-बेले की तपस्या के साथ आतापना लेने से और शुभ परिणामों से वीर्यलब्धि और वैक्रियलब्धि के साथ अबधिज्ञान भी उसे प्राप्त हुआ है, जिसके कारण वह सौ रूप बनाकर सौ घरों में दिखलाई देता है और सौ घरों में आहार ग्रहण करता है, यह सत्य है !”

गौतम—“प्रभो ! क्या अम्बड़ परिव्राजक आपके पास श्रमणधर्म ग्रहण करेगा ?”

महावीर—“अम्बड़ जीवाजीव का ज्ञाता श्रमणोपासक है। वह उपासक जीवन में ही आयु पूर्ण करेगा, किन्तु श्रमणधर्म स्वीकार नहीं करेगा। अम्बड़ स्थूल हिंसा, स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान से विरत तथा सर्वथा ब्रह्मचारी और पूर्ण सन्तोषी है। वह याला में चलते हुए मार्ग में आए पानी के अतिरिक्त किसी नदी, कूप या तालाब आदि में नहीं उतरता है। रथ, गाड़ी, पालकी आदि यान अथवा हाथी, घोड़ा आदि किसी भी वाहन पर नहीं बैठता है, केवल पैदल चलता है। खेल, तमाशे, नाटक आदि नहीं देखता है और न राजकथा, देशकथा आदि ही करता है। वह हरी वनस्पति का छेदन-भेदन और स्पर्श भी नहीं करता। वह तुम्बा, काष्ठ-पात्र, और मृत्तिकाभाजन के अतिरिक्त लोह, त्रपु, ताम्र, जस्ता, सीसा, चांदी, सोना आदि किसी प्रकार का धातुपात्र नहीं रखता है। एक ताम्रमय पवित्रक के अतिरिक्त किसी प्रकार का आभूषण धारण नहीं करता। गेरुआ चादर के अतिरिक्त किसी अन्य रंग के वस्त्र धारण नहीं करता। शरीर पर गंगा की मिट्टी के लेप के सिवाय चन्दन, केसर आदि का भी विलेपन नहीं करता। जो भोजन अपने लिए बनाया है, खरीदा है या अन्य के द्वारा लाया गया है, वह भोजन ग्रहण नहीं करता। उसने स्नान और पीने के लिए जल का भी प्रमाण कर रखा है, वह छाना हुआ और दिया हुआ जल ग्रहण करता है किन्तु अपने हाथ से जलाशय से ग्रहण नहीं करता।”

गौतम—“अम्बड़ आयु पूर्ण कर किस गति में जायेगा ?”

महावीर—“अनेक वर्षों तक साधना का जीवन व्यतीत कर अम्बड़ संन्यासी अन्त में एक मास के अनशन की आराधना कर ब्रह्म देवलोक में देव बनेगा और अन्त में अम्बड़ का जीव महाविदेह में मनुष्य-जन्म पाकर निर्वाण प्राप्त करेगा।”<sup>७१</sup>

कम्पिलपुर से भगवान ने पुनः विदेह भूमि की ओर प्रस्थान किया और इकतीसवाँ वर्षावास वैशाली में किया।

## बत्तीसवाँ वर्ष : गांगेय अनगार

वैशाली का वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान ने काशी-कौशल के प्रदेशों में परिभ्रमण किया और पुनः ग्रीष्मकाल में विदेह भूमि की ओर लौटे। भगवान महावीर वाणिज्यग्राम के बाहर पधारे। दूतिपलाश उद्यान में विराजे। प्रवचन पूर्ण होने पर श्रोतागण अपने-अपने घरों की ओर प्रस्थान कर चुके थे। उस समय गांगेय नामक एक पार्श्वपत्य मुनि भगवान के सन्निकट आये। भगवान से कुछ दूर पर खड़े रहकर उन्होंने पूछा—“भगवन् ! नरकावास में नारक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?”<sup>७१</sup>

महावीर—“गांगेय ! नारक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी।”

गांगेय—“भगवन् ! असुरकुमारादि भवनपति देव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?”

महावीर—“असुरकुमारादि भवनपति देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी।”

गांगेय—“भगवन् ! पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?”

महावीर—“गांगेय ! पृथ्वीकायादि जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते, वे अपने-अपने स्थानों में निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं।”

गांगेय—“भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?”

महावीर—“गांगेय ! द्वीन्द्रिय जीव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी।”

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, तिर्यच, मनुष्य और देव भी सान्तर और निरन्तर उत्पन्न होते हैं।”

गांगेय—“भगवन् ! नैरयिक सान्तर च्यवता है या निरन्तर च्यवता है ?”

महावीर—“गांगेय ! नैरयिक सान्तर भी च्यवता है और निरन्तर भी च्यवता है।”

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, तिर्यच, मनुष्य तथा देव भी कभी सान्तर और निरन्तर च्यवते हैं परन्तु पृथ्वीकायिक आदि निरन्तर उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय जीव निरन्तर ही च्यवते हैं।

गांगेय—“भगवन् ! प्रवेशन कितने प्रकार के कहे हैं ?”

महावीर—“गांगेय ! प्रवेशन चार प्रकार के कहे हैं—(१) नैरयिक प्रवेशन, (२) तिर्यक् योनि प्रवेशन, (३) मनुष्य प्रवेशन, (४) देव प्रवेशन। उसके पश्चात् भगवान ने विभिन्न नैरयिकों के प्रवेशन के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएँ दीं।

गांगेय—“भगवन् ! तिर्यचयोनिक प्रवेशन कितने प्रकार का कहा है ?”

महावीर—“गांगेय ! पाँच प्रकार का कहा है—एकेन्द्रिय योनिक प्रवेशनक यावत् पंचेन्द्रिय योनिक प्रवेशनक। उसके पश्चात् भगवान ने विस्तृत रूप से उसके सम्बन्ध में वर्णन किया।”

गांगेय—“भगवन् ! मनुष्य प्रवेशन कितने प्रकार का है ?”

महावीर—“वह दो प्रकार का है—(१) सम्मूर्च्छिम मनुष्य प्रवेशनक, और (२) गर्भज मनुष्य प्रवेशनक।”

उसके बाद भगवान ने उसका विस्तार से विश्लेषण किया।

गांगेय—“भगवन् ! देव प्रवेशनक कितने प्रकार का है ?”

महावीर—“गांगेय ! देव प्रवेशनक चार प्रकार का है—(१) भवनवासी देव प्रवेशनक, (२) वाणव्यन्तर, (३) ज्योतिष्क, और (४) वैमानिक।

उसके सम्बन्ध में फिर भगवान ने विस्तार से वर्णन किया।

गांगेय—“भगवन् ! सत् नारक उत्पन्न होते हैं या असत्। इसी प्रकार सत् तिर्यच, मनुष्य और देव उत्पन्न होते हैं या असत् ?”

महावीर—“गांगेय ! सभी सत् उत्पन्न होते हैं, असत् कोई भी उत्पन्न नहीं होता।”

गांगेय—“भगवन् ! नारक, तिर्यच और मनुष्य सत् मरते हैं या असत् ? इसी प्रकार देव भी सत् च्युत होते हैं या असत् ?”

महावीर—“गांगेय ! सभी सत् मरते हैं, असत् कोई नहीं मरता।

गांगेय—“भगवन् ! सत् की उत्पत्ति कैसी ? और मरे हुए की सत्ता किस प्रकार ?”

महावीर—“गांगेय ! पुरुषादानीय पार्श्व अरिहन्त ने लोक को शाश्वत कहा है। उसमें सर्वथा असत् की उत्पत्ति नहीं होती और ‘सत्’ का सर्वथा नाश भी नहीं होता।<sup>१२</sup>

गांगेय—“भगवन् ! यह वस्तुतत्त्व आप स्वयं आत्म-प्रत्यक्ष से जानते हैं या किसी हेतु-प्रयुक्त अनुमान से अथवा किसी आगम के आधार से ?”

महावीर—“गांगेय ! यह सभी मैं स्वयं जानता हूँ। किसी भी अनुमान अथवा आगम के आधार पर मैं नहीं कहता। आत्म-प्रत्यक्ष से जानी हुई बात ही कहता हूँ।”

गांगेय—“भगवन् ! अनुमान और आगम के आधार के बिना इस विषय में कैसे जाना जा सकता है ?”

महावीर—“गांगेय ! केवली पूर्व से जानता है, पश्चिम से जानता है, उत्तर और दक्षिण से जानता है। केवली परिमित जानता है और अपरिमित भी जानता है। केवली का ज्ञान प्रत्यक्ष होने से उसमें सर्व वस्तुतत्त्व प्रतिभासित होते हैं।”

गांगेय—“भगवन् ! नरकगति में नारक, तिर्यचगति में तिर्यच, मनुष्यगति में मनुष्य और देवगति में देव स्वयं उत्पन्न होते हैं या किसी की प्रेरणा से ? वह अपनी गतियों से स्वयं निकलते हैं या उन्हें कोई निकालता है ?”

महावीर—“आर्य गांगेय ! सभी जीव अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार शुभाशुभ गतियों में उत्पन्न होते हैं और वहाँ से निकलते हैं। इसमें दूसरा कोई भी प्रेरक नहीं है।”

इस प्रकार प्रश्नोत्तर के पश्चात् गांगेय अनगार ने भगवान को यथार्थ रूप से पहचाना, उसे यह पूर्ण निष्ठा हो गई कि ये सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। भगवान महावीर को त्रिप्रदक्षिणापूर्वक वन्दन और नमस्कार कर महावीर के पंच महाव्रतरूप धर्म में प्रविष्ट हुए।

भगवान अनेक क्षेत्रों में धर्म की प्रभावना कर पुनः वैशाली पधारे और यह बत्तीसवाँ वर्षावास भी वैशाली में किया।

### तैंतीसवाँ वर्ष : गौतम की जिज्ञासाएँ : शील और श्रुत

वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान ने वैशाली से मगध की ओर प्रस्थान किया। अनेकानेक क्षेत्रों को पावन करते हुए राजगृह पधारे और गुणशील उद्यान में ठहरे। गुणशील उद्यान के आसपास अन्य मतावलम्बी कई साधु व परिव्राजक रहते थे। समय-समय पर उनमें प्रश्नोत्तर होते थे। वे अपने मत का मण्डन और परमत का खण्डन किया करते थे। अन्य मतावलम्बियों की विचारधारा कहाँ तक सत्यलक्षी है, यह जानने के लिए गौतम ने भगवान से प्रश्न किया—“भगवन् ! कुछ अन्यतीर्थिक यह कहते हैं कि शील (सदाचार) श्रेष्ठ है। दूसरे कहते हैं श्रुत श्रेष्ठ है। तीसरे का अभिमत है कि शील और श्रुत दोनों श्रेष्ठ हैं। भगवन् ! आपका इस सम्बन्ध में क्या कथन है ?”

महावीर—“गौतम ! अन्यतीर्थिकों का प्रस्तुत कथन सम्यक् नहीं है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है—पुरुष चार प्रकार के होते हैं। कितने ही शील-सम्पन्न होते हैं श्रुत-सम्पन्न नहीं, कितने ही श्रुत-सम्पन्न होते हैं शील-सम्पन्न नहीं, कितने ही शील-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी। और कितने ही शील-सम्पन्न भी नहीं होते और न श्रुत-सम्पन्न ही होते हैं।

इनमें जो शीलवान हैं परन्तु श्रुतवान उनको उसे मैं देश-आराधक कहता हूँ, जो शीलवान नहीं पर श्रुतवान हैं उनको मैं देश-विराधक कहता हूँ, जो शीलवान और श्रुतवान हैं उन्हें मैं सर्वाराधक कहता हूँ और जो न शीलवान हैं और न श्रुतवान हैं उन्हें मैं सर्वविराधक कहता हूँ।”<sup>७३</sup>

### आराधना

भगवान के समाधान से प्रसन्न होकर गौतम की जिज्ञासा और आगे बढ़ी तथा उन्होंने अन्य विविध प्रश्न पूछे—

गौतम—“भगवन् ! आराधना कितने प्रकार की है ?”

महावीर—“आराधना के तीन प्रकार हैं—(१) ज्ञानाराधना, (२) दर्शनाराधना, और (३) चारित्ताराधना।”

गौतम—“ज्ञानाराधना के कितने प्रकार हैं ?”

महावीर—“वह तीन प्रकार की है—(१) उत्कृष्ट, (२) मध्यम, और (३) जघन्य।



गौतम—“दर्शनाराधना कितने प्रकार की है?”

महावीर—“वह भी ज्ञानाराधना की तरह तीन प्रकार की है।”

गौतम—“भगवन् ! जिस जीव को उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है उसे क्या उत्कृष्ट दर्शनाराधना भी होती है ? जिस जीव को उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है क्या उसे उत्कृष्ट ज्ञानाराधना भी होती है ?”

महावीर—“जिस जीव को उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है उसे उत्कृष्ट या मध्यम दर्शनाराधना होती है और जिसे उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है उसे उत्कृष्ट या जघन्य ज्ञानाराधना होती है।”

गौतम—“भगवन् ! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना का आराधक कितने भवों के पश्चात् सिद्ध होता है ?”

महावीर—“कितने ही जीव उसी भव में सिद्ध होते हैं, कितने ही दो भवों में सिद्ध होते हैं, कितने ही जीव कल्पोपपन्न (१२ देवलोक में) और कितने ही कल्पातीत देव में उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार दर्शनाराधना और चारित्र्याराधना के सम्बन्ध में जानना चाहिए।”

### पुद्गल-परिणाम

गौतम—“भगवन् ! पुद्गल का परिणाम कितने प्रकार का है ?”

महावीर—“वह वर्ण-परिणाम, गंध-परिणाम, रस-परिणाम, स्पर्श-परिणाम और संस्थान-परिणाम रूप पाँच प्रकार का है।”

गौतम—“भगवन् ! वर्ण-परिणाम कितने प्रकार का है ?”

महावीर—“कृष्ण वर्ण-परिणाम, नील वर्ण-परिणाम, लोहित वर्ण-परिणाम, हरिद्रा वर्ण-परिणाम, शुक्ल वर्ण-परिणाम।<sup>१४</sup> इसी प्रकार गंध-परिणाम-सुरभिगंध और दुरभिगंध रूप दो प्रकार का है। रस-परिणाम तिक्त रस-परिणाम, कटुक रस-परिणाम, कषाय रस-परिणाम, अम्ल रस-परिणाम, मधुर रस-परिणाम रूप पाँच प्रकार है। और स्पर्श-परिणाम-कर्कश, कोमल, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष रूप आठ प्रकार का है।”

गौतम—“भगवन् ! संस्थान-परिणाम कितने प्रकार का है ?”

महावीर—“परिमण्डल संस्थान-परिणाम, वर्तुल संस्थान-परिणाम, त्रस संस्थान-परिणाम, चतुरस्र संस्थान-परिणाम, आयत संस्थान-परिणाम, इस प्रकार पाँच प्रकार का है।”

गौतम ने पुद्गलों के सम्बन्ध में भी अनेक जिज्ञासाएँ प्रस्तुत कीं, भगवान ने सभी का सम्यक् प्रकार से समाधान दिया।<sup>१५</sup>

### जीव और जीवात्मा

गौतम—“भगवन् ! अन्यतीर्थिकों का यह अभिमत है कि प्राणीहिंसा, मृषावाद, चौर्य, मैथुन, संग्रहेच्छा, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, हर्ष, शोक, पर-निन्दा, माया, मृषा, मिथ्यात्व आदि दुष्ट भावों में प्रवृत्ति करने वाले प्राणी का जीव पृथक् है और उसका जीवात्मा पृथक् है। इसी तरह इन दुष्ट भावों का परित्याग करके धर्ममार्ग में प्रवृत्ति करने वाले प्राणी का जीव भी अन्य है। जो औत्पत्तिकी, पारिणामिकी आदि बुद्धियुक्त हैं उनका जीव पृथक् है और जीवात्मा पृथक् है। पदार्थ-ज्ञान तर्क, निश्चय और अवधारण करने वाले का जीव पृथक् है और जीवात्मा पृथक् है, जो अज्ञान और पराक्रम करने वाला है उसका भी जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। यहाँ तक कि नारक, देव और तिर्यक् जातीय पशु-पक्षी आदि देहधारियों का भी जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। ज्ञानावरणीयादि कर्मवान, कृष्णलेश्यादि लेश्यवान, सम्यक् दृष्टि, मिथ्या दृष्टि, दर्शनवान और ज्ञानवान इन सभी का जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है।

अन्यतीर्थिकों की प्रस्तुत मान्यता के सम्बन्ध में आपश्री का क्या कथन है ?”

महावीर—“अन्यतीर्थिकों की यह मान्यता मिथ्या है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है कि ‘जीव’ और ‘जीवात्मा’ एक ही पदार्थ है। जो ‘जीव’ है वही जीवात्मा है।”

## केवली की भाषा

गौतम—“भगवन् ! अन्यतीर्थिकों का यह मन्तव्य है कि यक्षावेश से परवश होकर कभी केवली भी मृषा अथवा सत्यमृषा भाषा बोलते हैं, यह किस प्रकार ? क्या केवली ये दो प्रकार की भाषा बोलते हैं ?”

महावीर—“अन्यतीर्थिकों का प्रस्तुत कथन मिथ्या है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है कि न कभी केवली को यक्षावेश होता है और न वे कभी भी मृषा या सत्यमृषा भाषा बोलते हैं। वे असावद्य, अपीडाकारक सत्य भाषा बोलते हैं।”<sup>७६</sup>

## राजा गागलि की दीक्षा

राजगृह से भगवान चम्पा की तरफ विचरे और पृष्ठ चम्पा में पिठर, गागलि आदि की दीक्षाएँ हुईं। वहाँ से भगवान वापस गुणशील चैत्य में पधारे। उन दिनों गुणशील चैत्य के निकट कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी, उदक, नामोदक, अन्नपाल, शैवाल, शंखपाल, सुहस्ती और गाथापति आदि अनेक अन्यतीर्थिक रहते थे।

## श्रमणोपासक मद्दुक और कालोदायी की तत्त्वचर्चा

एक समय वे श्रमण भगवान महावीर प्ररूपित पञ्चास्तिकाय विषयक चर्चा करते हुए बोले—“श्रमण ज्ञातपुत्र धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय इन पाँच ‘अस्तिकायों’ की प्ररूपणा करते हैं और इन पाँच में से ‘जीवास्तिकाय’ को वे ‘जीवकाय’ कहते हैं और शेष चारों को ‘अजीवकाय’, फिर वे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय इन चार अस्तिकायों को ‘अरूपिकाय’ बताते हैं और एक पुद्गलास्तिकाय को ‘रूपिकाय’। आर्यों ! श्रमण ज्ञातपुत्र का यह निरूपण क्या सत्य है ? इस कथन में वास्तविकता क्या होनी चाहिये ?”

जिस समय अन्यतीर्थिक उक्त चर्चा कर रहे थे, उसके पहले ही भगवान के आगमन के समाचार राजगृह में पहुँच चुके थे और भाविक नागरिकगण वन्दन-नमस्कार और धर्म-श्रवण के लिए गुणशील चैत्य की तरफ जा रहे थे। उन नागरिकगणों में एक मद्दुक नामक श्रमणोपासक भी था।

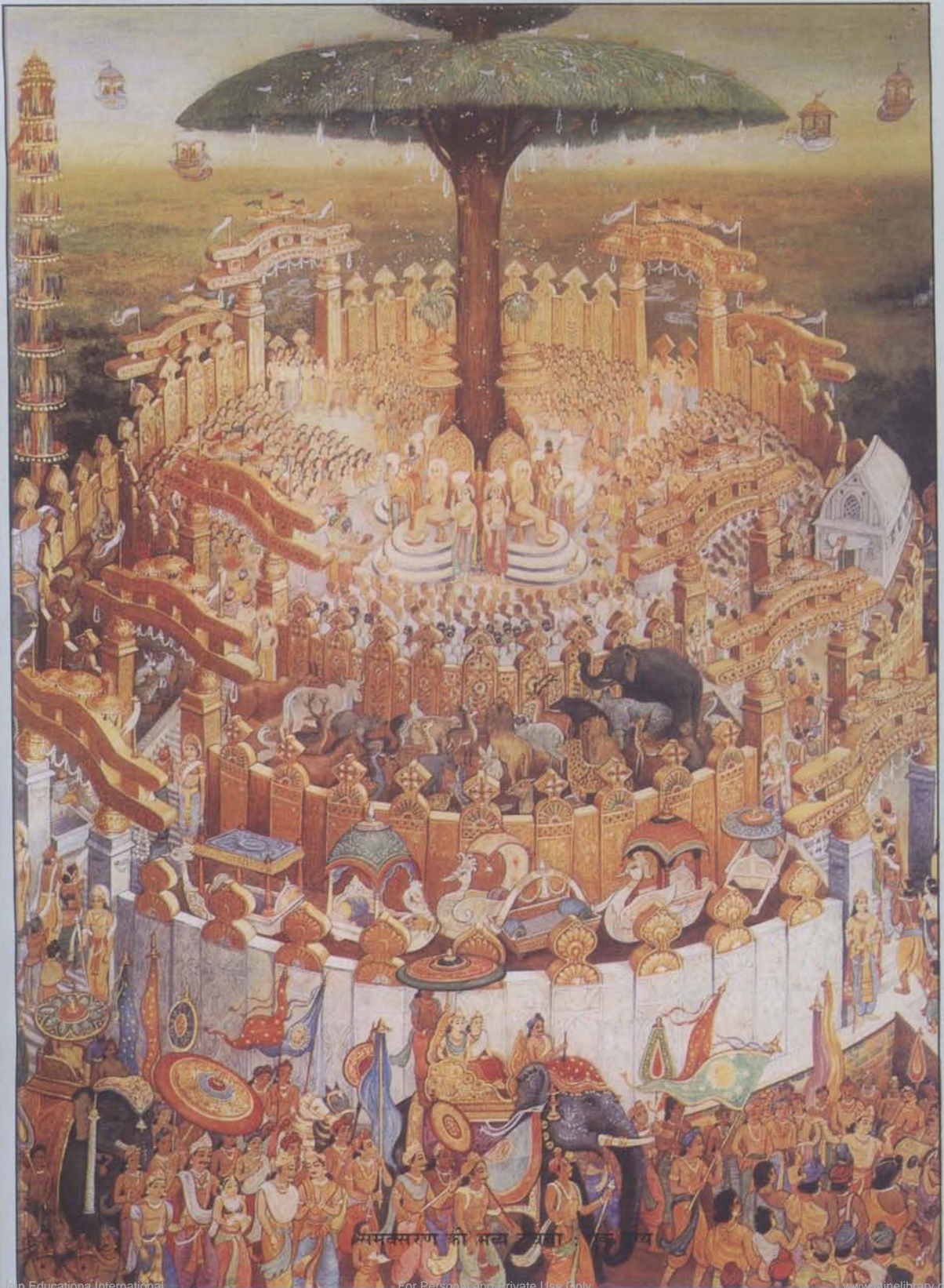
मद्दुक महावीर का भक्त और जिन-प्रवचन का ज्ञाता गृहस्थ था। वह पैदल महावीर के समवसरण में जा रहा था। कालोदायी आदि अन्यतीर्थिक बैठे हुए महावीर के पञ्चास्तिकाय की चर्चा कर रहे थे कि मद्दुक वहाँ से होकर गुजरा। उसे देखते ही वे एक-दूसरे को संबोधन करते हुए बोले—“देवानुप्रियो ! देखिये यह श्रमणोपासक जा रहा है, चलिए हम इस विषय में इसे पूछें। यह ज्ञातपुत्र के तत्त्वों का खासा अभ्यासी है।” यह कहते हुए वे मद्दुक के पास गये और उसे रोककर बोले—“हे मद्दुक ! तेरे धर्माचार्य धर्मापदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र पाँच अस्तिकायों का प्रतिपादन करते हैं और उनमें से किसी को जीव कहते हैं, किसी को अजीव, किसी को रूपी बतलाते हैं और किसी को अरूपी, सो मद्दुक ! तेरा इस विषय में क्या अभिप्राय है ? क्या तू इन धर्मास्तिकायादि को जानता और देखता है ?”

मद्दुक—“इनके कार्यों से इनका अनुमान किया जा सकता है, बाकी धर्मास्तिकायादि पदार्थ अरूपी होने से जाने और देखे नहीं जा सकते।”

° अन्यतीर्थिक—“हे मद्दुक ! तू कैसा श्रमणोपासक है जो अपने धर्माचार्य के कहे हुए धर्मास्तिकायादि पदार्थों को जानता और देखता नहीं है ?”

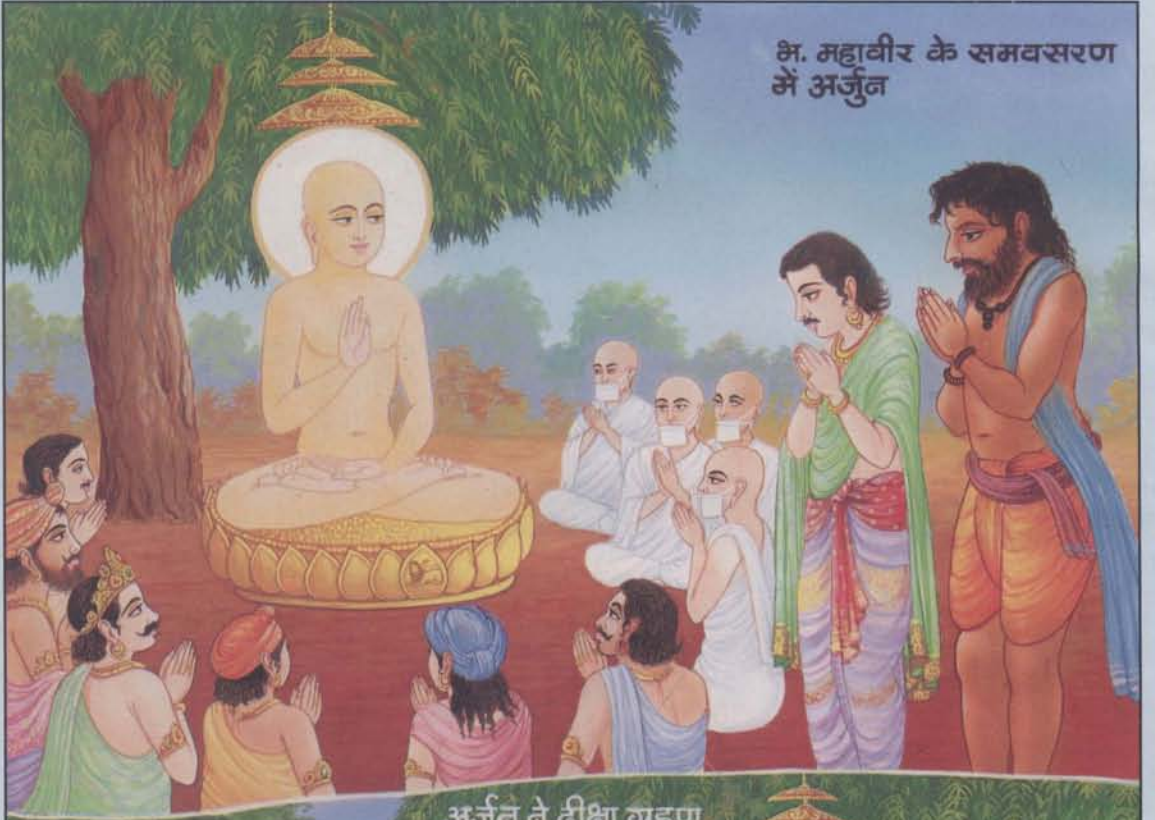
मद्दुक—“आयुध्मानो ! हवा चलती है, यह बात सत्य है ?”

अन्यतीर्थिक—“हाँ, हवा चलती है, पर इससे क्या ?”

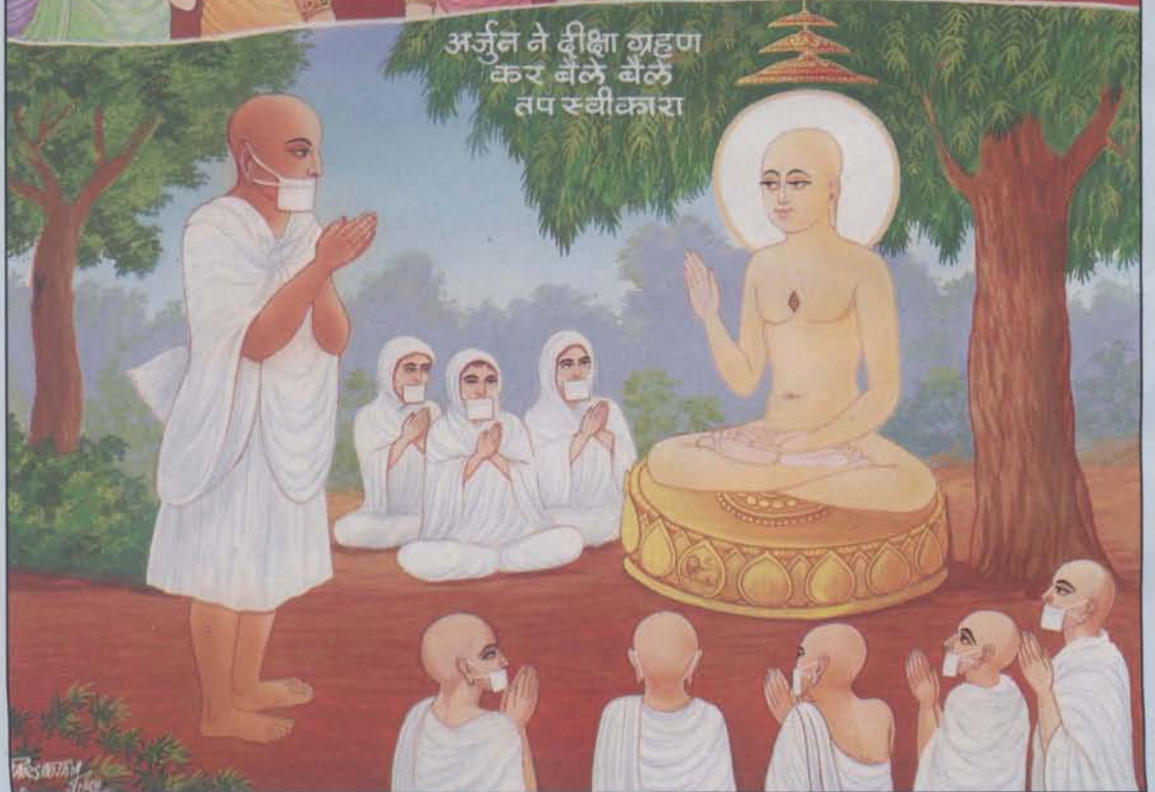


पंचमेवविर्नावमी का महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम

भ. महावीर के समवसरण  
में अर्जुन



अर्जुन ने दीक्षा ग्रहण  
कर बैले बैले  
तप स्वीकारा



मद्दुक-“आयुष्मानो ! तुम हवा का रंग-रूप देखते हो ?”

अन्यतीर्थिक-“नहीं, हवा का रूप देखा नहीं जाता।”

मद्दुक-“आयुष्मानो ! घ्राणेन्द्रिय के साथ स्पर्श करने वाले गन्ध के परमाणु होते हैं ?”

अन्यतीर्थिक-“हाँ, घ्राणेन्द्रिय का विषय गंध के परमाणु होते हैं।”

मद्दुक-“आयुष्मानो ! तुम घ्राणेन्द्रिय का स्पर्श करने वाले गन्ध के परमाणुओं का रूप देखते हो ?”

अन्यतीर्थिक-“नहीं, गन्ध के परमाणुओं का रूप देखा नहीं जाता।”

मद्दुक-“आयुष्मानो ! अरणि-सहगत अग्नि होती है ?”

अन्यतीर्थिक-“हाँ, अरणि-सहगत अग्नि होती है।”

मद्दुक-“आयुष्मानो ! तुम उस अरणि-सहगत अग्नि के रूप को देखते हो ?”

अन्यतीर्थिक-“नहीं, तिरोहित होने से वह देखा नहीं जाता।”

मद्दुक-“आयुष्मानो ! समुद्र के उस पार कोई रूप है ?”

अन्यतीर्थिक-“हाँ, समुद्र के उस पार कई रूप हैं।”

मद्दुक-“आयुष्मानो ! समुद्र के उस पार के रूपों को तुम देखते हो ?”

अन्यतीर्थिक-“नहीं, समुद्र के उस पार के रूप देखे नहीं जा सकते।”

मद्दुक-“आयुष्मानो ! देवलोकगत रूपों को तुम देख सकते हो ?”

अन्यतीर्थिक-“नहीं, देवलोकगत रूप देखे नहीं जा सकते।”

मद्दुक-“इसी तरह हे आयुष्मानो ! मैं, तुम या कोई अन्य छद्मस्थ मनुष्य जिस वस्तु को देख न सके वह वस्तु है ही नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। दृष्टिगत न होने वाले पदार्थों को न मानोगे तो तुम्हें बहुत से पदार्थों के अस्तित्व का निषेध करना पड़ेगा और ऐसा करने पर तुम्हें अधिकांश-लोक के अस्तित्व को भी अस्वीकार करना पड़ेगा।”

मद्दुक अपनी युक्तियों से अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर कर भगवान के पास पहुँचा और वन्दन-नमस्कारपूर्वक पर्युपासना करने लगा।

मद्दुक ने अन्यतीर्थिकों के कुतर्कों का जो वास्तविक उत्तर दिया था उसका अनुमोदन करते हुए भगवान महावीर ने कहा-“मद्दुक ! तूने अन्यतीर्थिकों को बहुत ठीक उत्तर दिया है। किसी भी प्रश्न या उत्तर में बिना समझे-सुने नहीं बोलना चाहिये। जो मनुष्य बिना समझे लोक समूह में हेतु-तर्क की चर्चा करता है अथवा बिना समझे किसी बात का प्रतिपादन करता है वह अर्हन्त केवली की तथा उनके धर्म की आशातना करता है। मद्दुक ! तूने जो कहा है वह ठीक, उचित और यौक्तिक है।”

भगवान के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर मद्दुक बहुत संतुष्ट हुआ और अन्यान्य धर्मचर्चा कर वह अपने स्थान पर गया।

मद्दुक के चले जाने के बाद गौतम ने पूछा-“भगवन् ! मद्दुक श्रमणोपासक आपके पास निर्ग्रन्थ-श्रामण्य धारण करने की योग्यता रखता है ?”

महावीर-“गौतम ! मद्दुक हमारे पास प्रव्रज्या लेने में समर्थ नहीं है। मद्दुक गृहस्थाश्रम में रहकर देशविरति गृहस्थ-धर्म की आराधना करेगा और अन्त में समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण कर ‘अरुणाभ’ देव विमान में देव होगा और वहाँ से फिर मनुष्य-जन्म पाकर संसार से मुक्त होगा।”<sup>७७</sup>

इस साल का वर्षावास भगवान ने राजगृह में किया।

## चौतीसवाँ वर्ष

हेमन्त ऋतु में राजगृह से महावीर ने बाहर के प्रदेश में विहार किया और अनेक ग्राम-नगरों में निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रचार किया। ग्रीष्मकाल में भगवान फिर राजगृह पधारे और गुणशील चैत्य में वास किया।

अनगार इन्द्रभूति गौतम एक दिन राजगृह से भिक्षा लेकर भगवान के पास गुणशील चैत्य में जा रहे थे, उस समय गुणशील चैत्य के मार्ग में कालोदायी, शैलोदायी प्रभृति अन्यतीर्थिक महावीर प्ररूपित पञ्चास्तिकायों की चर्चा कर रहे थे। गौतम को देखकर वे एक-दूसरे को संबोधन कर बोले—“देवानुप्रियो ! हम धर्मास्तिकायादि के विषय में ही चर्चा कर रहे हैं। देखो ये श्रमण ज्ञातपुत्र के शिष्य गौतम भी आ गये। चलिये इस विषय में हम गौतम को पूछें।” यह कहकर कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी प्रमुख अन्यतीर्थिक गौतम के पास पहुँचे और उन्हें ठहराकर बोले—“हे गौतम ! तुम्हारे धर्माचार्य धर्मापदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र धर्मास्तिकाय आदि पाँच अस्तिकायों की प्ररूपणा करते हैं। इनमें से चार को वे ‘अजीवकाय’ कहते हैं और एक को ‘जीवकाय’ तथा चार को ‘अरूपिकाय’ कहते हैं और एक को ‘रूपिकाय’। इस विषय में क्या समझना चाहिये, गौतम ? इस अस्तिकाय संबन्धी प्ररूपणा का रहस्य क्या है, गौतम ?”

गौतम—“देवानुप्रियो ! हम ‘अस्तित्त्व’ में नास्तित्त्व नहीं कहते और ‘नास्तित्त्व’ में अस्तित्त्व नहीं कहते। हम अस्ति को अस्ति और नास्ति को नास्ति कहते हैं। हे देवानुप्रियो ! इस विषय में तुम स्वयं विचार करो जिससे कि इसका रहस्य समझ सको।”

अन्यतीर्थिकों के प्रश्न का रहस्यपूर्ण उत्तर देकर गौतम महावीर के पास चले गये, पर कालोदायी गौतम के उत्तर का रहस्य नहीं समझ पाया। परिणामस्वरूप वह स्वयं गौतम के पीछे-पीछे भगवान के पास पहुँचा। महावीर उस समय सभा में धर्मदेशना कर रहे थे। प्रसंग आते ही उन्होंने कालोदायी को संबोधन करके कहा—“कालोदायिन् ! तुम्हारी मण्डली में मेरे पञ्चास्तिकाय निरूपण की चर्चा चली ?”

कालोदायी—“जी हाँ, आप पञ्चास्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं यह बात हमने जब से सुनी है तब से प्रसंगवश इस पर चर्चा हुआ करती है।”

महावीर—“कालोदायिन् ! यह बात सत्य है कि मैं पञ्चास्तिकाय की प्ररूपणा करता हूँ। यह भी सत्य है कि चार अस्तिकायों को ‘अजीवकाय’ और एक को ‘जीवकाय’ तथा चार को ‘अरूपिकाय’ और एक को ‘रूपिकाय’ मानता हूँ।”

कालोदायी—“भगवन् ! आपके माने हुए इन धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय अथवा जीवास्तिकाय पर कोई सो, बैठ या खड़ा रह सकता है ?”

महावीर—“यह नहीं हो सकता कालोदायिन् ! इन धर्मास्तिकायादि अरूपिकाय पर सोना-बैठना या चलना-फिरना नहीं हो सकता। ये सब क्रियाएँ केवल एक पुद्गलास्तिकाय पर, जोकि रूपी और अजीवकाय है, हो सकती हैं, अन्यत्र कहीं नहीं।”

कालोदायी—“भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय में जीवों के दुष्ट-विपाक पापकर्म किये जाते हैं ?”

महावीर—“नहीं कालोदायिन् ! ऐसा नहीं होता।”

कालोदायी—“भगवन् ! इस जीवास्तिकाय में दुष्ट-विपाक पापकर्म किये जाते हैं ?”

महावीर—“हाँ, कालोदायिन् ! किसी भी प्रकार के कर्म जीवास्तिकाय में ही किये जाते हैं।”

पञ्चास्तिकाय विषयक प्रश्नों का सविस्तार उत्तर देकर भगवान ने कालोदायी के संशय को दूर किया। फलस्वरूप कालोदायी का चित्त निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनने को उत्कण्ठित हुआ। भगवान को वन्दन कर वह बोला—“भगवन् ! मैं विशेष प्रकार से आपका प्रवचन सुनना चाहता हूँ।”

भगवान ने कालोदायी को लक्ष्य करके निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश दिया जिसे सुनकर वह आपके पास निर्ग्रन्थ मार्ग में दीक्षित हो गया।

कालोदायी अनगार क्रमशः निर्ग्रन्थ प्रवचन के एकादशाङ्ग सूत्रों का अध्ययन कर प्रवचन के रहस्य के ज्ञाता हुए।<sup>१८</sup>

राजगृह नगर से ईशान दिशा में धनवानों के सैकड़ों प्रासादों से सुशोभित नालन्दा नामक एक समृद्ध उपनगर था। यहाँ 'लेव' नामक एक धनाढ्य गृहस्थ रहता था जो निर्ग्रन्थ प्रवचन का अनुयायी और जैन श्रमणों का परम भक्त था। नालन्दा के उत्तर-पूर्व दिशा भाग में उक्त लेव श्रमणोपासक की 'शेषद्रविका' नाम की उदकशाला और उसके पास ही 'हस्तियाम' नामक उद्यान था।

एक समय भगवान महावीर हस्तियाम में ठहरे हुए थे कि शेषद्रविका के पास इन्द्रभूति को मैतार्य गोत्रीय पेढालपुत्र उदक नामक एक पार्श्वोपत्य निर्ग्रन्थ मिले और गौतम को संबोधन कर बोले—“गौतम ! तुमसे कुछ पूछना है। आयुष्मन् ! मेरे प्रश्नों का उपपत्तिपूर्वक उत्तर दीजियेगा।”

गौतम—“पूछिये।”

उदक—“आयुष्मन् गौतम ! तुम्हारे प्रवचन का उपदेश करने वाले कुमारपुत्रीय श्रमण अपने पास नियम लेने को तैयार हुए श्रमणोपासक को इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते हैं—‘राजाज्ञा आदि कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बाँधने-छोड़ने के अतिरिक्त मैं त्सजीवों की हिंसा नहीं करूँगा।’

आर्य ! इस प्रकार का प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है। जो ऐसा प्रत्याख्यान कराते हैं वे दुष्प्रत्याख्यान कराते हैं। इस प्रकार का प्रत्याख्यान करने और कराने वाले अपनी प्रतिज्ञा में अतिचार लगाते हैं क्योंकि प्राणी संसारी है। स्थावर मरकर त्सरूप में उत्पन्न होते हैं और त्स मरकर स्थावररूप में भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार जो जीव ‘त्सरूप’ में ‘अघात्य’ थे वे ही स्थावररूप में उत्पन्न होने के बाद ‘घात्य’ हो जाते हैं। इस कारण प्रत्याख्यान इस प्रकार सविशेषण करना और कराना चाहिये—‘राजाज्ञा आदि कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बाँधने-छोड़ने के अतिरिक्त मैं त्सभूत जीवों की हिंसा नहीं करूँगा।’

इस प्रकार ‘भूत’ इस विशेषण के सामर्थ्य से उक्त दोषापत्ति टल जाती है। इस पर भी जो क्रोध अथवा लोभ से दूसरों को निर्विशेषण प्रत्याख्यान कराते हैं वह ‘न्याय’ नहीं है।

क्यों गौतम ! मेरी यह बात तुमको ठीक जँचती है कि नहीं ?”

गौतम—“आयुष्मन् उदक ! तुम्हारी बात मेरे दिल में ठीक नहीं बैठती। मेरी राय में ऐसा करने वाले श्रमण—ब्राह्मण यथार्थ भाषा नहीं बोलते, वे अनुतापिनी भाषा बोलते हैं और श्रमण तथा ब्राह्मणों के ऊपर झूठा आरोप लगाते हैं। यही नहीं, बल्कि प्राणी-विशेष की हिंसा को छोड़ने वालों को भी वे दोषी ठहराते हैं क्योंकि प्राणी संसारी हैं, वे त्स मिटकर स्थावर होते हैं और स्थावर मिटकर त्स। फिर वे त्सकाय से निकलकर स्थावर में जाते हैं और स्थावरकाय से त्स में। संसारी जीवों की यह स्थिति है। इस वास्ते जब वे त्सकाय में उत्पन्न होते हैं तब त्स कहलाते हैं और तभी त्स हिंसा का जिसने प्रत्याख्यान किया है उसके लिए वे ‘अघात्य’ होते हैं। इसलिये प्रत्याख्यान में ‘भूत’ विशेषण जोड़ने की जरूरत नहीं है।”

उदक—“आयुष्मन् गौतम ! तुम ‘त्स’ का अर्थ क्या करते हो ? ‘त्सप्राण त्स त्स’ यह अथवा दूसरा ?”

गौतम—“आयुष्मन् उदक ! जिन जीवों को तुम ‘त्सभूतप्राण’ कहते हो उन्हीं को हम ‘त्सप्राण’ कहते हैं और जिन्हें हम ‘त्सप्राण’ कहते हैं उन्हीं को तुम ‘त्सभूतप्राण’ कहते हो। ये दोनों तुल्यार्थक हैं, परन्तु आर्य उदक ! तुम्हारे विचार में इन दो में ‘त्सभूतप्राण त्स’ यह व्युत्पत्ति निर्दोष है और ‘त्सप्राण त्स’ यह सदोष। आयुष्मन् ! जिनमें वास्तविक भेद नहीं है ऐसे दो वाक्यों में से एक का खण्डन करना और दूसरे का मण्डन यह क्या न्याय है ?

हे उदक ! कितने ऐसे भी मनुष्य होते हैं जो कहते हैं कि हम गृह त्यागकर श्रामण्य धारण करने में समर्थ नहीं हैं। अभी हम श्रावकधर्म स्वीकार करते हैं, क्रमशः चारित्र्य का भी स्पर्श करेंगे। वे अपनी अविरतिमय प्रवृत्तियों को मर्यादित करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं कि 'राजाज्ञा आदि कारण से गृहपति अथवा चोर के बाँधने-छोड़ने के अतिरिक्त हम तस जीवों की हिंसा नहीं करेंगे।' यह प्रतिज्ञा भी उनके कुशल का ही कारण है।

आर्य उदक ! 'तस मरकर स्थावर होते हैं अतः तसहिंसा के प्रत्याख्यान के हाथ से उनकी हिंसा होने पर उसके प्रत्याख्यान का भंग हो जाता है' यह तुम्हारा कथन ठीक नहीं है क्योंकि 'तस नामकर्म' के उदय से ही जीव 'तस' कहलाते हैं, परन्तु जब उनका तसगति का आयुष्य क्षीण हो जाता है और तसकाय की स्थिति को छोड़कर वे स्थावरकाय में जाकर उत्पन्न होते हैं तब उनमें स्थावर नामकर्म का उदय होता है और वे 'स्थावरकायिक' कहलाते हैं। इसी तरह स्थावरकाय का आयुष्य पूर्ण कर जब वे तसकाय में उत्पन्न होते हैं तब तस भी कहलाते हैं, प्राण भी कहलाते हैं। उनका शरीर बड़ा होता है और आयुष्य स्थिति भी लंबी होती है।'

उदय--'आयुष्मन् गौतम ! तब तो ऐसा कोई पर्याय ही नहीं मिलेगा जो त्याज्य-हिंसा का विषय हो और जब हिंसा का कोई विषय ही नहीं रहेगा तब श्रावक किसकी हिंसा का प्रत्याख्यान करेगा ? क्योंकि जीव संसारी हैं, वे सभी स्थावर मिटकर तस हो जाएँगे और सभी तस मिटकर स्थावर भी। अब यदि सब जीव तस मिटकर स्थावर हो जायें तो श्रमणोपासक का 'तसहिंसा-प्रत्याख्यान' किस प्रकार निभ सकेगा ? क्योंकि जिनकी हिंसा का उसने प्रत्याख्यान किया था वे सब जीव स्थावर हो गये हैं अतः उनकी हिंसा वह टाल नहीं सकता।'

गौतम--'आयुष्मन् उदक ! हमारे मत से कभी ऐसा होता ही नहीं कि सब स्थावर तस अथवा सब तस स्थावर हो जायें। थोड़ी देर के लिये तुम्हारा कथन प्रमाण मान लिया जाय तब भी श्रमणोपासक के तसहिंसा-प्रत्याख्यान में बाधा नहीं आती क्योंकि स्थावर-पर्याय की हिंसा में उसका व्रत खण्डित नहीं होता और तस-पर्याय में वह अधिक तस जीवों की हिंसा को टालता है।

आर्य उदक ! अधिक तस जीवों की हिंसा से निवृत्त होने वाले श्रमणोपासक के लिए 'उसके किसी भी पर्याय की हिंसा का प्रत्याख्यान नहीं है' यह तुम्हारा कथन क्या उचित है ? आयुष्मन् ! इस प्रकार निर्ग्रन्थ प्रवचन में मतभेद खड़ा करना न्याय नहीं है।

इस समय पार्श्वपत्य अन्य स्थविर भी वहाँ आ गये जिन्हें देखकर गौतम ने कहा--'आर्य उदक ! लो, इस विषय में तुम्हारे स्थविर निर्ग्रन्थों को ही पूछ लें। हे आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! इस संसार में कितने ही ऐसे मनुष्य होते हैं जिनकी प्रतिज्ञा होती है कि 'जो ये अनगर साधु हैं इनको जीवन-पर्यन्त नहीं मारूँगा।' बाद में उनमें से कोई साधु चार-पाँच वर्ष या ज्यादा-कम सभय विहारचर्या में रहकर फिर गृहवास में चला जाय और साधुहिंसा-प्रत्याख्यानी गृहस्थ गृहवास में रहता हुआ उस पुरुष की हिंसा करे तो क्या साधु को न मारने की उसकी प्रतिज्ञा का भंग होगा ?'

निर्ग्रन्थ स्थविर--'नहीं, इससे प्रतिज्ञा-भंग न होगा ?'

गौतम--'निर्ग्रन्थो ! इसी प्रकार तसकाय की हिंसा का त्यागी श्रमणोपासक स्थावरकाय की हिंसा करता हुआ भी अपने प्रत्याख्यान का भंग नहीं करता, यही जानना चाहिये।

हे निर्ग्रन्थो ! कोई गृहपति अथवा गृहपति-पुत्र धर्म सुन संसार से विरक्त होकर सर्वसावध का त्यागी श्रमण हो जाय तो उस समय वह सर्व प्रकार की हिंसा का त्यागी कहा जायेगा कि नहीं ?'

निर्ग्रन्थ--'हाँ, उस समय वह सर्वथा हिंसात्यागी ही कहा जायेगा।'

गौतम--'वही साधु चार-पाँच अथवा अधिक-कम समय तक श्रामण्य-पर्याय पालकर फिर गृहस्थ हो जाय तो वह सर्वथा हिंसा-त्यागी कहा जायेगा ?'

निर्ग्रन्थ--'नहीं, गृहवासी होने के बाद वह सर्वहिंसा-त्यागी श्रमण नहीं कहला सकता।'



गौतम—“वही यह जीव है जो पहले सब जीवों की हिंसा का त्यागी था, पर अब वैसा नहीं रहा क्योंकि पहले वह संयमी था पर अब असंयत है। इसी तरह त्सकाय में से स्थावरकाय में गया हुआ जीव ‘स्थावर’ है ‘त्स’ नहीं, यह जानना चाहिये।

निर्ग्रन्थो ! कोई परिव्राजक या परिव्राजिका अन्य मत से निकलकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रवेश करके श्रमणधर्म को स्वीकार कर निर्ग्रन्थ-मार्ग में विचरे तो उसके साथ निर्ग्रन्थ श्रमण आहार-पानी आदि का व्यवहार करेंगे ?”

निर्ग्रन्थ—“हाँ, उसके साथ आहार-पानी आदि का व्यवहार करने में कोई हानि नहीं है।”

गौतम—“निर्ग्रन्थो ! यदि वह श्रमण बना हुआ परिव्राजक गृहस्थ हो जाय तो उसके साथ भोजनादि व्यवहार किया जायेगा ?”

निर्ग्रन्थ—“नहीं, फिर उसके साथ वैसा कोई भी व्यवहार नहीं किया जा सकता।”

गौतम—“निर्ग्रन्थो ! वही यह जीव है जिसके साथ पहले भोजन किया जा सकता था, पर अब नहीं किया जा सकता क्योंकि पहले वह श्रमण था, पर अब वैसा नहीं है। इसी तरह त्स में से स्थावरकाय में गया हुआ जीव त्सहिंसा-प्रत्याख्यान के प्रत्याख्यान का विषय नहीं है, यही समझना चाहिये।”

उपर्युक्त अनेक दृष्टान्तों से गौतम ने निर्ग्रन्थ उदय की ‘त्स मरकर स्थावर हो और वहाँ उसकी हिंसा हो तो श्रमणोपासक के प्रत्याख्यान का भंग होता है’ इस मान्यता का निरसन किया।

‘सब जीव स्थावर हो जायेंगे तब त्स प्रत्याख्यान का व्रत निर्विषय होगा’ इस प्रकार के उदय के तर्क का खण्डन करते हुए गौतम ने कहा—“जो श्रमणोपासक देशविरति-धर्म का पालन करके अन्त में अनशनपूर्वक समाधिमरण से मरते हैं अथवा जो श्रमणोपासक प्रथम विशेष व्रत-प्रत्याख्यान का पालन नहीं कर सकते पर अन्त में अनशनपूर्वक समाधिमरण करते हैं, उनका मरण कैसा समझना चाहिये ?”

निर्ग्रन्थ—“इस प्रकार का मरण प्रशंसनीय माना जाता है।”

गौतम—“जो जीव इस प्रकार के मरण से मरते हैं वे त्सप्राणी के रूप में ही उत्पन्न होते हैं और ये ही त्स जीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय हो सकते हैं। बहुत से मनुष्य महालोभी, महारम्भी और परिग्रहधारी अधार्मिक होते हैं जो अपने अशुभ कर्मों से फिर अशुभ गतियों में उत्पन्न होते हैं। अनारम्भी साधु और अल्पारम्भी धार्मिक मनुष्य मरकर शुभ गतियों में जाते हैं। आरण्यक, आवसथिक, ग्रामनियंत्रिक और राहसिक आदि तापस मरकर भवान्तर में असुरों की गतियों में उत्पन्न होते हैं और वहाँ से निकलकर फिर मनुष्यगति में गूंगे-बहरे मनुष्य का भव पाते हैं। दीर्घायुष्क, समायुष्क अथवा अल्पायुष्क जीव मरकर फिर त्सरूप में उत्पन्न होते हैं।

उक्त सब प्रकार के जीव यहाँ ‘त्स’ हैं और मरकर फिर त्स होते हैं। ये सर्व त्सजीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय हैं।

कितने ही श्रमणोपासक अधिक व्रत-नियम नहीं पाल सकते, फिर भी वे ‘देशावकाशिक’ व्रत ग्रहण करते हैं। अमुक नियमित सीमा से बाहर जाने-आने का प्रत्याख्यान करते हैं। उनके व्रत का विषय नियमित हद के बाहर के जीव तो हैं ही, परन्तु हद के भीतर भी जो त्स जीव हैं या त्स मरकर फिर त्स होते हैं अथवा स्थावर मरकर त्स होते हैं और स्थावर जीव भी जिनकी निरर्थक हिंसा का श्रमणोपासक त्यागी होता है, श्रमणोपासक के व्रत के विषय हैं।

निर्ग्रन्थो ! यह बात कदापि नहीं हो सकती कि सब त्स जीव मिटकर स्थावर हो जायें अथवा स्थावर मिटकर त्स। जब संसार की स्थिति ऐसी है तो फिर ‘कोई ऐसा पर्याय नहीं जो श्रमणोपासक के व्रत का विषय हो’ यह कथन क्या उचित होगा ? और ऐसी बातों को लेकर मतभेद खड़ा करना क्या न्यायानुगत है ?

आयुष्मन् उदक ! मैत्री बुद्धि से भी जो श्रमण-ब्राह्मण की निन्दा करता है वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य को पाकर भी परलोक की आराधना में विघ्न डालता है। जो गुणी श्रमण-ब्राह्मण की निन्दा न करके उसको मित्त भाव से देखता है वह ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य को पाकर परलोक का सुधार करता है।”

गौतम का विस्तृत विवेचन और हितवचन सुनकर निर्ग्रन्थ उदक वहाँ से चलने लगा तब गौतम ने कहा-“आयुष्मन् उदक ! विशिष्ट श्रमण-ब्राह्मण के मुख से एक भी आर्य-धार्मिक वचन सुनकर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के बल से योग-क्षेम को प्राप्त करने वाला मनुष्य उस आर्य-धार्मिक वचन के उपदेशक का देव की तरह आदर करता है।”

उदक-“आयुष्मन् गौतम ! इन पदों का मुझ पहले ज्ञान नहीं था। इस कारण इस विषय में मेरा विश्वास नहीं जमा। परन्तु अब इन पदों को सुना और समझा है। अब मैं इस विषय में श्रद्धा करता हूँ।”

गौतम-“आयुष्मन् उदक ! इस विषय में तुम्हें अवश्य ही श्रद्धा और रुचि लानी चाहिये।”

इसके बाद निर्ग्रन्थ उदक ने चातुर्याम-धर्म परम्परा से निकलकर पाञ्चमहाव्रतिक धर्ममार्ग स्वीकार करने की अपनी इच्छा व्यक्त की और गौतम उनका अनुमोदन करते हुए अपने साथ उन्हें भगवान के पास ले गये। भगवान महावीर को विधिपूर्वक वन्दन-नमस्कार कर निर्ग्रन्थ उदक ने कहा-“भगवन् ! मैं आपके समीप चातुर्याम-धर्म से पाञ्चमहाव्रतिक धर्म में आना चाहता हूँ।”

महावीर ने कहा-“देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसे सुख हो, वैसा करो। इस काम में प्रतिबन्ध या प्रमाद करना योग्य नहीं।”

इसके बाद निर्ग्रन्थ उदक महावीर-प्ररूपित पाञ्चमहाव्रतिक सप्रतिक्रमण धर्म का स्वीकार कर महावीर के श्रमणसंघ में सम्मिलित हो गये।

इस वर्ष जालि, मयालि आदि अनेक अनगारों ने विपुलाचल पर अनशन कर देह छोड़ा। वर्षा चातुर्मास नालन्दा में किया।

### पैंतीसवाँ वर्ष : सुदर्शन श्रेष्ठी की दीक्षा

वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान महावीर नालन्दा से विहार कर अनेक क्षेत्रों को पावन करते हुए वैशाली के सन्निकट वाणिज्यग्राम पधारे। यह व्यापार का मुख्य-प्रमुख केन्द्र था। सुदर्शन सेठ वहाँ का एक प्रमुख व्यापारी था।

प्रभु महावीर के आगमन का समाचार सुनकर वह प्रभु महावीर के दर्शन करने आया। उसने प्रवचन सुना। प्रवचन के बाद उसने जो प्रश्न किये उससे उसके तत्त्वों के प्रति ज्ञान का पता चलता है। उसने प्रभु महावीर को वन्दन करते ही प्रश्न किया-“भगवन् ! काल कितने प्रकार का है ?”

प्रभु महावीर-“सुदर्शन ! काल चार प्रकार का है--(१) प्रमाण काल, (२) यथायुनिर्वृत्ति काल, (३) मरण काल तथा (४) अद्धा काल।”

सुदर्शन-“भगवन् ! प्रमाण काल कितने प्रकार का है ?”

प्रभु महावीर-“यह दिवस प्रमाण काल और रात्रि प्रमाण काल के रूप में दो प्रकार का है। चार-चार पोरसी की दिन व रात्रि होती है। अधिक से अधिक साढ़े चार मुहूर्त की पोरसी और न्यून से न्यून तीन मुहूर्त की पोरसी होती है।

सुदर्शन-“प्रभु ! कौन से दिन या रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पोरसी होती है और कब जघन्य पोरसी होती है ?”

प्रभु महावीर-“आषाढ पूर्णिमा को अठारह मुहूर्त का दिन होता है और बारह मुहूर्त की रात होती है। पौष पूर्णिमा को चौदह मुहूर्त की रात होती है और बारह मुहूर्त का दिन होता है।”

सुदर्शन—“प्रभु ! क्या रात्रि व दिन कभी बराबर भी होते हैं ?”

प्रभु महावीर—“चैत्र पूर्णिमा और आश्विन पूर्णिमा को दिन-रात्रि बराबर होते हैं। उस दिन १५ मुहूर्त का दिन और १५ मुहूर्त की रात्रि होती है। उस समय चार मुहूर्त में चौथाई मुहूर्त की एक पोरसी दिन और रात में होती है।”

सुदर्शन—“प्रभु यथायुनिर्वृत्ति काल कितने प्रकार का है ?”

प्रभु महावीर—“जो कोई नारकी, तिर्यच, मनुष्य व देव अपनी आयुष्य जैसे बाँधता है उसी अनुसार पालन करता है वह यथायुनिर्वृत्ति काल है।”

सुदर्शन—“प्रभु ! मरण काल क्या है ?”

प्रभु महावीर—“शरीर से जीव का या जीव से शरीर का वियोग मरण काल है।”

सुदर्शन—“अद्धाकाल किसे कहते हैं ?”

प्रभु महावीर—“अद्धाकाल समयरूप, आवलिकारूप यावत् अवसपिर्णी काल रूप अनेक प्रकार का है।”

सुदर्शन—“प्रभु ! पल्योपम और सागरोपम की क्या आवश्यकता है ? क्या उनका कभी क्षय होता है या नहीं ?”

प्रभु महावीर—“चार गति के जीवों के माप के लिए पल्योपम और सागरोपम की आवश्यकता है।”

प्रभु महावीर से अपने प्रश्नों का उचित समाधान पाकर प्रसन्न हुआ।

प्रभु महावीर ने उसका पूर्वभव बताते हुए कहा—“पूर्वभव में तू एक बार महाबल नाम का राजकुमार था। तू गृहस्थ छोड़ श्रमण बना। संयम-साधना के कारण तू मरकर वह देवलोक दस सागरोपम आयु की स्थिति वाला देव बना।

वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर तू अब सुदर्शन सेठ के रूप में उत्पन्न हुआ है। पूर्व-जन्म में भी तुम्हें जिन (जैन) धर्म के प्रति गहन श्रद्धा थी। यह श्रद्धा वर्तमान भव में भी दिखाई दे रही है। तुम्हें जिन-धर्म प्रिय था। इस जन्म में भी तूने स्थविरों से तत्त्व-ज्ञान सीखा है। अब भी तू निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति आस्थावान है।”

प्रभु महावीर की बातें सुनते ही सुदर्शन को जाति-स्मरण ज्ञान हो गया।

उसने कहा—“प्रभु ! आपका कथन सत्य है। अब मैं श्रमण बनकर जीवन सुधारना चाहता हूँ।”

सेठ सुदर्शन साधु बन गया। उसने १४ पूर्वों का ज्ञान अर्जित किया।

लम्बे समय तक साधुधर्म का पालन करते हुए कर्मों का क्षय कर डाला और मुक्ति का अधिकारी बना।<sup>१९</sup>

## आनन्द को अवधिज्ञान

गणधर गौतम प्रभु महावीर की आज्ञा लेकर भिक्षार्थ वाणिज्यग्राम घूम रहे थे। वह वापस दूतिपलाश चैत्य की ओर लौट रहे थे। रास्ते में कोल्लाग सन्निवेश के सन्निकट उन्होंने आनन्द श्रावक के अनशन की वार्त्ता सुनी।

गौतम के मन में विचार आया कि आनन्द श्रमणोपासक प्रभु महावीर का परम भक्त है। उसने अनशन व्रत ग्रहण कर रखा है। मुझे आनन्द को देखना चाहिये। गणधर गौतम आनन्द श्रावक को दर्शन देने कोल्लाग सन्निवेश से सीधे ही आनन्द की पौषधशाला में पहुँचे।

गौतम को अचानक देखकर श्रावक आनन्द-प्रसन्न हो गया। वह वन्दना करना चाहता था पर कमजोरी के कारण उठ न सका। उसने विनयपूर्वक निवेदन किया—“भगवान् ! मेरी शारीरिक शक्ति अत्यधिक क्षीण हो गई है अतः मैं उठने में असमर्थ हूँ, कृपया आप इधर पधारिये जिससे मैं आपके चरणों में नतमस्तक होकर वन्दन कर सकूँ।”

गौतम आनन्द के निकट गये। आनन्द ने विधिपूर्वक वन्दन किया।

वार्त्तालाप के मध्य आनंद ने प्रश्न किया—“क्या भगवन् ! घर में रहते हुए एवं धर्म का पालन करते हुए श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है ?”

गौतम—“हाँ आनन्द ! श्रमणोपासक को अवधिज्ञान हो सकता है।”

आनन्द—“भगवन् ! यदि ऐसा हो सकता है तो मुझे भी अवधिज्ञान हुआ है जिसके प्रभाव से मैं पूर्व-दक्षिण और पश्चिम में लवण समुद्र में पाँच सौ योजन, उत्तर में क्षप्रहिम-वहर्षधर ऊपर सौधर्मकल्प और नीचे लाल लुप नामक नरकावास तपस्वी पदार्थों को देखता-जानता हूँ।”

गौतम ने आनन्द के विशाल अवधिज्ञान का वर्णन सुना तो आश्चर्य हुआ।

गणधर गौतम ने कहा—“हाँ आनन्द ! श्रमणोपासक को अवधिज्ञान तो होता है पर इतना विस्तृत नहीं जितना आप कह रहे हो। तुम्हारा कथन भ्रान्तियुक्त है, यह सत्य प्रतीत नहीं होता। इसलिए तुम्हें अपनी इस भूल के लिये दण्ड प्रायश्चित्त करना चाहिये।”

आनंद ने निर्भय होकर पूछा—“भगवन् ! क्या जिनशासन में सत्य, तथ्य एवं सद्भूत कथन के लिये प्रायश्चित्त दिया जाता है ?”

गौतम—“आनंद ! ऐसा नहीं है, जैनधर्म में ऐसा कोई विधान नहीं कि सत्य बोलने के लिए दण्ड प्रायश्चित्त लेना है।”

आनंद—“भगवन् ! तो फिर आप मुझे सत्य कथन के लिए प्रायश्चित्त के लिए क्यों कह रहे हैं ? आप मिथ्या वचन के लिये प्रायश्चित्त लें।”

आनंद के अवधिज्ञान के बारे में सुनकर असमंजस में पड़ गये। उन्हें अपनी बात पर शंका हुई, वह सीधे ही प्रभु महावीर के पास पहुँचे।

भगवान को वन्दना करने के पश्चात् गणधर गौतम ने आनंद से हुई बातचीत का ब्यौरा दिया।

प्रभु महावीर ने कहा—“गौतम ! आनन्द का कथन पूर्ण सत्य है, तुम्हारा कथन मिथ्या है। तुम अभी वापस जाओ और आनंद से क्षमा याचना करो।”

गणधर गौतम ने प्रभु महावीर के वचनों को स्वीकार करते हुए आनन्द से क्षमा माँगी। इस घटना ने गणधर गौतम को महानतम बना दिया। गणधर गौतम जो प्रभु महावीर के प्रथम शिष्य व १४,००० साधुओं में प्रमुख थे, कितने विचित्र थे, इस बात से उनकी सहजता, सरलता झलकती है।

## छत्तीसवाँ वर्ष : किरातराज की दीक्षा

वर्षावास समाप्त होते ही प्रभु महावीर वैशाली की ओर पधारे, फिर वह कोशल भूमि की ओर पधारे। धर्म उपदेश देते हुए वह साकेत नगरी में पधारे। साकेत कोशल देश का प्रसिद्ध नगर और प्रमुख व्यापार का केन्द्र था।

यहाँ जिनदेव नाम का श्रावक रहता था। वह एक बार भ्रमण करता हुआ कोटिचर्ष पहुँचा। वहाँ पर मल्लेधों का राज्य था। जिनदेव ने किरातराज को बहुमूल्य रत्न भेंट किये। उनकी रत्नों की चमक से राजा विस्मित हुआ। उसने जिनदेव से पूछा—“तुम यह रत्न कहाँ से लाये हो ? मैंने तो इतनी चमक वाले रत्न पहली बार देखे हैं ?”

जिनदेव—“राजन् ! इससे भी बढ़िया रत्न हमारे देश में होते हैं।”

किरातराज—“मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं तुम्हारे साथ जाकर ऐसे रत्न प्राप्त करूँ ? परन्तु मुझे तुम्हारे शक्तिशाली राजा का भय है।”

जिनदेव ने राजा को आश्वासन देते हुए कहा—“राजन् ! डरने की जरूरत नहीं। मैं अपने राजा से अभी आज्ञा मंगवा लेता हूँ। तुम हमारे साथ यात्रा का कार्यक्रम बनाओ।” जिनदेव के कहने से राजा तैयार हो गया।

जिनदेव ने अपने देश के राजा से आज्ञा मंगवाई। आज्ञा प्राप्त हो गई। जिनदेव और किरातराज शाहीशान से साकेत नगरी आए। किरातराज जिनदेव का अतिथि था। वह जिनदेव के घर में ठहरा।

उन्हीं दिनों प्रभु महावीर जन-जन का कल्याण करते हुए शिष्य-परिवार सहित साकेत पधारे। वहाँ का राजा शलुंजय था जो प्रभु-भक्त था। उसे जब प्रभु के पधारने की सूचना प्राप्त हुई, तो शाही ठाट के साथ प्रभु महावीर के दर्शनार्थ आया।

नगर में विचित्र चहल-पहल देखकर किरातराज ने जिनदेव से पूछा—“ये सभी लोग कहाँ जा रहे हैं ?”

जिनदेव—“राजन् ! आज हमारे शहर में रत्नों का एक बड़ा व्यापारी आया है वह अनमोल रत्न बाँटता है इसीलिए लोग उसके पास जा रहे हैं।”

किरातराज—“सेठ जी ! फिर हम क्यों पीछे रहें ? हमें भी तो रत्नों की प्राप्ति करनी है। हम भी उस व्यापारी से मिलें और उत्तम रत्न प्राप्त करें।”

जिनदेव और किरातराज दोनों प्रभु महावीर के दरबार में पहुँचे। भगवान महावीर का समवसरण लगा था। रत्नजड़ित सिंहासन मन को लुभा रहा था। आठ अष्ट प्रातिहार्यों को देखकर किरातराज को विस्मय हुआ। ऐसा रत्न-व्यापारी उसने कभी देखा नहीं था। प्रभु महावीर का पवित्र उपदेश सुना। उपदेश सुनने के पश्चात् उसने प्रभु महावीर से रत्नों के बारे में पूछा। प्रभु महावीर ने कहा—“रत्न दो प्रकार के होते हैं—(१) द्रव्य रत्न, (२) भाव रत्न। द्रव्य रत्न अनेक प्रकार के हैं। पर भाव रत्न तीन प्रकार के होते हैं—

(१) ज्ञान रत्न, (२) दर्शन रत्न, तथा (३) चारित्र्य रत्न। भाव रत्न पर प्रभु महावीर ने प्रकाश डालते हुए बताया—“यह अत्यंत प्रभावशाली रत्न और अनमोल रत्न है। जो इन रत्नों को धारण करता है उसमें यह लोक और परलोक सम्बंधी दुःखों का अंत हो जाता है।”

“द्रव्य रत्न केवल इस जन्म में ही सुख देते हैं। भविष्य निर्माण के क्षेत्र में व आत्मा के कल्याण से उनका कोई सम्बंध नहीं।” प्रभु महावीर की मंगलमय वाणी का किरातराज पर सुन्दर प्रभाव पड़ा।

उसने कहा—“प्रभु ! आप मुझे भाव रत्न प्रदान करें।” भगवान महावीर ने उसे जीवन का कल्याण करने वाले साधु उपकरण दिये। उस किरातराज ने प्रभु महावीर के कर-कमलों से प्रव्रज्या अंगीकार की और अब वह साधु बन गये थे।<sup>८०</sup>

भगवान महावीर ने साकेत से पंचाल की ओर प्रस्थान किया। कुछ समय यहाँ के ग्रामों-नगरों में अपनी धर्मदेशना दी। फिर शूरसेन देश में आ गये। यहाँ से मथुरा, शौर्यपुर आदि में घूमते हुए पुनः विदेह देश पधार गये। प्रभु महावीर का छत्तीसवाँ चातुर्मास मिथिला में सम्पन्न हुआ।

### राजा गागलि द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण करना

प्रभु महावीर राजगृह में विराजमान थे। वहाँ से वह चम्पा पधारे। उस समय साल-महासाल मुनियों ने प्रभु महावीर से वन्दन करके कहा—“हे प्रभु ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम पृष्ठ चंपा में चले जायें, जहाँ हमारा भानजा गागलि नामक राजा है। हम उसे प्रतिबोध देकर आपकी शरण में लाना चाहते हैं।”

प्रभु महावीर ने गणधर गौतम को उन दोनों के साथ भेजा। राजा गागलि ने अपने मुनि बने मामा के आगमन का समाचार सुना तो वह वन्दन करने व उपदेश सुनने आया।

उपदेश सुनते ही उसे वैराग्य हो गया। वैराग्य राजा तक ही सीमित नहीं रहा। राजा के पिता पिठर और माता यशोमति भी वैराग्य के रंग में डूब गये। अंततः निर्णय किया कि गांगलि के पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की जाये। तीनों ने राजकुमार का राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेक के बाद तीनों साधु बने।<sup>८१</sup>

इस प्रकार गणधर गौतम, साल, महासाल मुनि तीनों नवदीक्षितों को लेकर पृष्ठ चंपा से चंपा की ओर आये। उस समय प्रभु महावीर चंपा में विराजमान थे।

## केवलज्ञान की प्राप्ति

रास्ते में सभी जा रहे थे। साल-महासाल सोचने लगे- 'मेरी बहन, बहनोई और भानजा प्रव्रजित हो गये, यह अच्छा ही हुआ।'

गांगलि विचार कर रहे थे- 'मेरे मामा साल-महासाल कितने महान् हैं जिन्हें मेरी भटकती आत्मा की चिंता है। इसी कारण लम्बा कष्ट उठाकर मुझे प्रतिबोध देने यहाँ पधारे। इन्हीं की कृपा से मुझे पहले राज्यलक्ष्मी मिली। अब मोक्षलक्ष्मी मिल रही है।' इस प्रकार का चिंतन करते-करते वे क्षमक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। शुभ ध्यान से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया।<sup>८२</sup>

गौतम इन्द्रभूति चम्पा आये। उन पाँचों ने भगवान की प्रदक्षिणा की। वे समवसरण में स्थापित केवली परिषद् की ओर बैठने लगे। गौतम ने उन्हें टोकते हुए कहा- 'श्रमणो ! ठहरो। आपको ज्ञात नहीं कि आप किधर जा रहे हैं? पहले प्रभु महावीर को वन्दना करो।'

सर्वज्ञ महावीर सब जानते-देखते थे। उन्होंने गणधर गौतम से कहा- 'गौतम ! केवली की आशातना मत करो।'

अब गणधर गौतम को अपनी भूल का अहसास हुआ। उसने प्रभु महावीर की साक्षी से सभी केवलियों से अपनी अज्ञानपूर्वक की गई भूल की क्षमा माँगी। अपनी आत्मा को शुद्ध किया।

गौतम इन्द्रभूति को स्वयं केवलज्ञान न होने का दुःख था। प्रभु महावीर का स्नेह-बंधन उनके मोक्षमार्ग में रुकावट था। इस बात को प्रभु महावीर ने गणधर गौतम को कई बार समझाया था। पर यह सच्चे प्यार की अनुभूति थी। प्रभु महावीर भी जानते थे कि मोहवश यह मुझे नहीं छोड़ सकता। कई जन्मों से हम दोनों इकट्ठे इसी तरह रह रहे हैं। गौतम को अपनी भक्ति की चिंता जरूर थी पर जल्दी नहीं थी। मुक्ति और प्रभु महावीर में से उन्होंने हमेशा प्रभु महावीर को चुना। उन्हें वह मुक्ति स्वीकार नहीं थी जिसके निमित्त प्रभु महावीर स्वयं न हों।

गणधर गौतम का जीवन सरलता, सहजता, समर्पण की खुली किताब है। उनके हाथों से दीक्षित हुए कितने लोग मोक्ष पधार चुके थे। पर वह अभी वहीं थे। उन्होंने प्रभु महावीर की आज्ञा को महानता दी।

## पंद्रह सौ तापस

इसी संदर्भ में एक कथा भगवतीसूत्र की टीका में उपलब्ध होती है जिसका वर्णन आचार्य देवेन्द्र मुनि ने 'भगवान महावीर : एक अनुशीलन' के पृष्ठ ५६४ पर किया है। उनका कथन है-

प्रस्तुत घटना के साथ ही एक अन्य घटना का वर्णन भी मिलता है जिसकी चर्चा अभयदेवसूरि की भगवतीसूत्र, टीका १४/७, नेमिचन्द्र द्वारा उत्तराध्ययनसूत्र की टीका (१०/१७) व कल्पसूत्र की टीकाओं में मिलता है। घटना का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

'कोडिन्न, दिन्न और सेवाल नामक तीन तापसों के गुरु थे। प्रत्येक के ५००-५०० शिष्य थे। इस प्रकार १,५०० तापस अष्टापद पर आरोहण कर रहे थे। सभी तपस्या से दुर्बल हो चुके थे।

कोडिन्न तापस ५०० शिष्यों के साथ पहली मेखला तक चढ़ पाया। दिन्न दूसरी मेखला पर अटक गया। सेवाल शिष्य तीसरी मेखला तक पहुँच गया।

अष्टापद पर एक-एक योजन की आठ मेखला थीं। सभी तापस थककर रास्ते में बैठ गये।

तभी गौतम गणधर उधर आये। अपने लब्धि-बल से अष्टापद के अंतिम शिखर तक पहुँच गये। गौतम के तपोबल से सभी तापस प्रभावित हुए। वह जानते थे कि एक मेखला पार करनी कितनी कठिन है। यह साधक जो ऊपर पहुँचा है, सचमुच महान् है। तपोबली है। जब यह अष्टापद से नीचे आयेगा तब हम उनके शिष्य बन जायेंगे।

इन्द्रभूति गौतम अब नीचे आये। सभी तापसों ने उन्हें प्रणाम किया और प्रार्थना की—“प्रभु ! हम आपके शिष्य हैं, हमें अपने चरणों में स्वीकार कीजिये।”

तापसों के आग्रह को स्वीकार कर गणधर गौतम ने सभी को दीक्षा प्रदान की। सभी तापस भूखे थे। इस बात को गणधर गौतम ने पहचाना। पर यहाँ कुछ उपलब्ध नहीं था। नगर कोसों दूर थे। गौतम स्वामी ने अक्षीण महानस लब्धि से खीर के एक भरे हुये पात्र से पंद्रह सौ तापसों को भरपेट खीर खिलाई। अपने गुरु के अद्भुत लब्धि-बल को देखकर सभी श्रमण प्रसन्न हुए। उनके शरीर में शक्ति का संचार हुआ। वह तापस से श्रमण बने मुनि प्रसन्नचित्त हो प्रभु महावीर के दर्शन को आ रहे थे।

गौतम स्वामी ने अपने धर्माचार्य निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र भगवान महावीर के गुणों व समवसरण का वर्णन करना शुरू किया। इस वर्णन को सुनकर सभी तापस भाव-विभोर हो गये। भगवान महावीर के दर्शन किये बिना उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। वह प्रभु महावीर की प्रदक्षिणा कर सीधे केवली परिषद् में पधारे। गणधर गौतम को यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ। पर साथ में उन्हें अपनी छद्मस्थ अवस्था का ज्ञान था जिसके कारण केवलज्ञान में बाधा उत्पन्न हो रही है।

प्रभु महावीर ने गणधर गौतम को बताया—“हे देवानुप्रिय ! इन्हें तो रास्ते में केवलज्ञान प्राप्त हो गया था। केवली की आशातना मत करो। भूल के लिये दण्ड प्रायश्चित्त ग्रहण करो।”

जैनधर्म की यही महानता है कि शिष्य को वह गुरु बनाता है गुरु भी संघ का भगवान बन जाता है। जैनधर्म गुण-प्रधान है, व्यक्ति-प्रधान नहीं। यहाँ गुणों की पूजा है, पद व शक्ति की नहीं।

### सैंतीसवाँ वर्ष

चातुर्मास समाप्त होने पर भगवान ने मगध की ओर विहार किया। प्रत्येक ग्राम और नगर में निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश कर देते हुए आप राजगृह पधारे और गुणशील चैत्य में समवसरण हुआ।

### अन्यतीर्थिकों के आक्षेपात्मक प्रश्न

गुणशील चैत्य में अनेक अन्यतीर्थिक बसते थे। भगवान की धर्मसभा विसर्जित होने पर अनेक अन्यतीर्थिक भगवान के आसपास बैठे हुए स्थविरों के पास आकर बोले—“आर्यों ! तुम त्रिविध-त्रिविध से असंयत, अविरत और बाल हो।”

अन्यतीर्थिकों का आक्षेप सुनकर स्थविरों ने कहा—“आर्यों ! किस कारण से हम असंयत, अविरत और बाल हो सकते हैं ?”

अन्यतीर्थिक—“आर्यों ! तुम अदत्त ग्रहण करते हो, अदत्त खाते हो, अदत्त चखते हो। इस कारण से तुम असंयत, अविरत और बाल हो।”

स्थविर—“आर्यों ! हम किस प्रकार अदत्त लेते, खाते अथवा चखते हैं ?”

अन्यतीर्थिक—“आर्यों ! तुम्हारे मत में दीयमान अदत्त है, प्रतिगृह्यमाण अप्रतिगृहीत है और निसृज्यमान अनिसृष्ट है क्योंकि तुम्हारे मत में दीयमान पदार्थ को दाता के हाथ से छूटने के बाद तुम्हारे पात्र में पड़ने से पहले यदि कोई बीच में से ले ले तो वह पदार्थ गृहस्थ का गया हुआ माना जाता है, तुम्हारा नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि तुम्हारे पात्र में

जो पदार्थ पड़ता है वह अदत्त है क्योंकि जो पदार्थ दानकाल में तुम्हारा नहीं हुआ वह बाद में भी तुम्हारा नहीं हो सकता और इस प्रकार अदत्त को लेते, खाते और चखते हुए तुम असंयत, अविरत और बाल ही सिद्ध होते हो।”

स्थविर—“आर्यो ! हम अदत्त नहीं लेते, खाते और चखते किन्तु हम दत्त लेते, खाते और चखते हैं और इस प्रकार दिया हुआ ग्रहण करते और खाते हुए हम त्रिविध-त्रिविध से संयत, विरत और पण्डित सिद्ध होते हैं।”

अन्यतीर्थिक—“आर्यो ! किस प्रकार तुम दत्तग्राही सिद्ध होते हो, सो हमें समझाओ।”

स्थविर—“आर्यो ! हमारे मत में दीयमान दत्त, प्रतिगृह्यमाण प्रतिगृहीत और निसृज्यमान निसृष्ट माना जाता है। गृहपति के हाथ से छूटने के अनन्तर यदि कोई उसे बीच में से उड़ा ले तो वह हमारा जाता है, गृहपति का नहीं। इस कारण हम किसी भी हेतु-युक्ति से अदत्तग्राही सिद्ध नहीं होते। परन्तु हे आर्यो ! तुम खुद ही त्रिविध-त्रिविध से असंयत, अविरत और बाल सिद्ध होते हो।”

अन्यतीर्थिक—“क्यों ? हम असंयत, अविरत और बाल किसलिए कहलायेंगे ?”

स्थविर—“इसलिए कि तुम अदत्त लेते हो।”

अन्यतीर्थिक—“हम किस हेतु से अदत्तग्राही सिद्ध होंगे ?”

स्थविर—“आर्यो ! तुम्हारे मत से दीयमान अदत्त, प्रतिगृह्यमाण अप्रतिगृहीत और निसृज्यमान अनिसृष्ट है। इस कारण तुम अदत्त लेने वाले हो। त्रिविध असंयत, अविरत और बाल हो।”

अन्यतीर्थिक—“आर्यो ! तुम त्रिविध असंयत, अविरत और बाल हो।”

स्थविर—“क्यों ? किस कारण से हम असंयत, अविरत और बाल कहे जायेंगे ?”

अन्यतीर्थिक—“आर्यो ! तुम चलते हुए पृथ्वीकाय पर आक्रमण करते हो, उस पर प्रहार करते हो, उसको घिसते हो, दूसरे से मिलाते हो, उसे इकट्ठा करते और छूते हो, उसको सताते हो और उसके जीवों का नाश करते हो। इस प्रकार पृथ्वी के जीवों पर आक्रमणादि क्रियाएँ करते हुए तुम असंयत, अविरत और बाल साबित होते हो।”

स्थविर—“आर्यो ! चलते हुए हम पृथ्वी पर आक्रमण आदि नहीं करते। शरीर की चिन्ता के लिए, बीमार की सेवा के निमित्त अथवा विहारचर्या के वश जब हमें पृथ्वी पर चलना पड़ता है तब भी विवेकपूर्वक धीरे-धीरे पादक्रम से चलते हैं। इसलिए न हम पृथ्वी का आक्रमण करते हैं और न उसके जीवों का विनाश ही। परन्तु आर्यो ! तुम खुद ही इस प्रकार पृथ्वी के जीवों पर आक्रमण और उपद्रव करते हुए असंयत, अविरत और एकान्त बाल बन रहे हो।”

अन्यतीर्थिक—“आर्यो ! तुम्हारा मत तो यह है कि गम्यमान अगत, व्यतिक्रम्यमाण, अव्यतिक्रान्त और राजगृह को संप्राप्त होने का इच्छुक असंप्राप्त है।”

स्थविर—“आर्यो ! ऐसा मत हमारा नहीं है। हमारे मत में तो गम्यमान गत, व्यतिक्रम्यमाण व्यतिक्रान्त और संप्राप्यमाण संप्राप्त ही माना जाता है।”

इस प्रकार स्थविर भगवन्तों ने चर्चा में अन्यतीर्थिकों को परास्त करके वहाँ ‘गति-प्रवाद’ नामक अध्ययन की रचना की।

## अनगार कालोदायी के प्रश्न

### (9) अशुभ कर्मकरण विषय में

उस समय भगवान महावीर को वन्दन करके अनगार कालोदायी ने पूछा—“भगवन् ! जीव दुष्ट फलदायक अशुभ कर्मों को स्वयं करते हैं, यह बात सत्य है ?”



महावीर—“हाँ कालोदायिन् ! जीव अशुभ फलदायक कर्मों को करते हैं, यह बात सत्य है।”

कालोदायी—“भगवन् ! जीव ऐसे अशुभ विपाकदायक पापकर्म कैसे करते होंगे ?”

महावीर—“कालोदायिन् ! जैसे कोई मनुष्य मनोहर रस वाले अनेक व्यंजनयुक्त विष-मिश्रित पक्वान्न का भोजन करता है तब उसे वह पक्वान्न बहुत प्रिय लगता है। उसके तात्कालिक स्वाद में लुब्ध होकर वह प्रीतिपूर्वक खाता है, परन्तु परिणाम में वह अनिष्टकर होता है। भक्षक के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि पर वह बुरा प्रभाव डालता है। इसी प्रकार हे कालोदायिन् ! जीव जब हिंसा करते हैं, असत्य बोलते हैं, चोरी करते हैं, मैथुन करते हैं, वस्तु-संग्रह करते हैं, क्रोध, मान, कपट, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति, अरति, पर-परिवाद, माया-मृषावाद, मिथ्यात्व और शल्य आदि का सेवन करते हैं तब ये कार्य जीवों को अच्छे लगते हैं, परन्तु इनसे जो दुर्विपाक पापकर्म बँधते हैं उनका फल बड़ा अनिष्ट होता है, जो बाँधने वालों को भोगना पड़ता है।”

कालोदायी—“भगवन् ! जीव कल्याणफलदायक शुभ कर्मों को करते हैं ?”

महावीर—“हाँ कालोदायिन् ! जीव शुभफलदायक कर्मों को भी करते हैं।”

कालोदायी—“जीव शुभ कर्मों को कैसे करते हैं ?”

महावीर—“कालोदायिन् ! जैसे कोई मनुष्य औषध-मिश्रित पक्वान्न का भोजन करता है। उस समय यद्यपि वह भोजन उसे अच्छा नहीं लगता तथापि परिणाम में वह बल, रूप आदि की वृद्धि करके हितकारक होता है। इसी प्रकार हिंसा, असत्य, चोरी आदि प्रवृत्तियों और क्रोधादि दुर्गुणों का त्याग जीवों को पहले बहुत दुष्कर मालूम होता है, परन्तु यह पापकर्मों का त्याग अन्त में सुखदायक और कल्याणकारक होता है। इस प्रकार हे कालोदायिन् ! जीवों को पापकर्म करना अच्छा लगता है और शुभ कर्म करना दुष्कर, तथापि परिणाम में एक दुःखकारक होता है और दूसरा सुखकारक।”<sup>८१</sup>

## (२) अग्निकाय के आरम्भ के विषय में

कालोदायी—“भगवन् ! दो समान पुरुष हैं। दोनों के पास समान ही उपकरण हैं। वे दोनों ही अग्निकाय के आरम्भक हैं परन्तु उनमें से एक अग्नि को जलाता है और दूसरा उसे बुझाता है। इन दो में अधिक आरम्भक और कर्मबंधक कौन ?”

महावीर—“कालोदायिन् ! इन दो पुरुषों में अग्नि को जलाने वाला अधिक आरंभक है और वही अधिक कर्मबंधक है, क्योंकि जो पुरुष अग्नि को जलाता है वह पृथ्वीकाय का, अप्काय का, वायुकाय का, वनस्पतिकाय का और त्रसकाय का अधिक आरंभ करता है और अग्निकाय का कम। इसके विपरीत जो पुरुष अग्नि को बुझाता है वह अग्निकाय का अधिक आरंभ करता है, परन्तु पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन सबका अल्प आरंभ करता है। इसलिए जो अग्नि को प्रज्वलित करता है वह अधिक आरंभ करता है और उसको शान्त करने वाला अल्प।”<sup>८२</sup>

## (३) अचित्त पुद्गलों के प्रकाश के विषय में

कालोदायी—“भगवन् ! अचित्त पुद्गल प्रकाश अथवा उद्योत करते हैं ? यदि करते हैं तो अचित्त पुद्गल किस प्रकार प्रकाशित होते होंगे ?”

महावीर—“कालोदायिन् ! अचित्त पुद्गल प्रकाश करते हैं। कोई तेजोलेश्याधारी अनगार जब तेजोलेश्या छोड़ता है उस समय उसकी तेजोलेश्या के कुछ पुद्गल दूर जाकर गिरते हैं, कुछ नजदीक। दूर-निकट गिरे हुए वे पुद्गल प्रकाश को फैलाते हैं। हे कालोदायिन् ! इस प्रकार अचित्त पुद्गल प्रकाशित होते हैं।”

कालोदायी ने भगवान का यह विवेचन स्वीकार किया।

छट्ट, अट्टमादि तप करके कालोदायी ने अन्त में अनशनपूर्वक देह छोड़कर निर्वाण को प्राप्त किया।<sup>८३</sup>

इस वर्ष गुणशील चैत्य में गणधर प्रभास ने एक मास का अनशन करके निर्वाण प्राप्त किया और अनेक अनगार विपुलाचल पर अनशनपूर्वक निर्वाण को प्राप्त हुए। अनेक नयी दीक्षाये भी हुई।

यह वर्षावास भगवान ने राजगृह में किया।

### अड़तीसवाँ वर्ष

इस वर्ष भगवान ने मगधभूमि में ही विहार कर निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रचार किया। चातुर्मास निकट आने पर भगवान राजगृह पधारे और गुणशील में समवसरण हुआ।

## अन्यतीर्थिकों की मान्यताओं के सम्बन्ध में गौतम के प्रश्न

### (१) क्रियाकाल और निष्ठाकाल के विषय में

गौतम ने पूछा—“भगवन् ! अन्यतीर्थिक कहते हैं चलमान चलित नहीं होता, इसी तरह उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, हीयमान हीन, छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत और निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण नहीं होता।

### (२) परमाणुओं के संयोग—वियोग के सम्बन्ध में

अन्यतीर्थिक कहते हैं—“दो परमाणु पुद्गल एकत्र नहीं मिलते, क्योंकि दो परमाणु पुद्गलों में स्निधता नहीं होती। तीन परमाणु एकत्र मिल सकते हैं, क्योंकि तीन परमाणुओं में स्निधता होती है। इन एकत्र मिले हुए तीन परमाणुओं का विश्लेषण करने पर दो अथवा तीन टुकड़े होंगे। दो टुकड़े होने पर डेढ़-डेढ़ परमाणु का एक-एक टुकड़ा होगा और तीन टुकड़े होने पर एक-एक परमाणु का एक-एक टुकड़ा होगा। इसी प्रकार चार तथा पाँच आदि परमाणु-पुद्गल एकत्र मिलते हैं और इस प्रकार मिले हुए परमाणु समुदाय ही दुःख का रूप धारण करते हैं। वह दुःख भी शाश्वत है और उसमें सदा हानि-वृद्धि होती रहती है।

### (३) भाषा के भाषात्व के सम्बन्ध में

अन्यतीर्थिक कहते हैं—“बोली जाने वाली अथवा बोली गई भाषा ‘भाषा’ कहलाती है, पर बोली जाती भाषा ‘भाषा’ नहीं कहलाती। और भाषा ‘भाषक’ की नहीं किन्तु ‘अभाषक’ की कहलाती है।”

### (४) क्रिया की दुःखात्मता के विषय में

अन्यतीर्थिक कहते हैं—“पहले क्रिया दुःखरूप होती है और पीछे भी वह दुःखरूप होती है, पर क्रिया-काल में क्रिया दुःखात्मक नहीं होती क्योंकि ‘करण’ से नहीं किन्तु ‘अकरण’ से ही क्रिया दुःखात्मक होती है, यह कहना चाहिए।”

### (५) दुःख की अकृत्रिमता के विषय में

अन्यतीर्थिक कहते हैं—“दुःख को कोई बनाता नहीं है और न कोई उसे छूता है। प्राणिमात्र बिना किए ही दुःखों का अनुभव करते हैं, यह कहना चाहिए। भगवन् ! अन्यतीर्थिकों के ये मन्तव्य क्या सत्य हैं ?”

महावीर—“गौतम ! अन्यतीर्थिकों का यह कथन कि ‘चलमान चलित नहीं होता’ ठीक नहीं है। इस विषय में मैं कहता हूँ कि “चलेमाणे चलिए” अर्थात् चलने लगा। वह चला क्योंकि प्रत्येक समय की क्रिया अपने कार्य की उत्पत्ति के साथ समाप्त होती है। इससे सिद्ध हुआ कि क्रियाकाल और निष्ठाकाल एक है, अतः ‘चलेमाणे’ शब्द से सूचित ‘वर्तमान’ और ‘चलिए’ से ध्वनित ‘भूत’ काल वास्तव में भिन्न नहीं हैं। अतएव ‘चलत्’ और ‘चलित’ भी एक ही कार्य के ‘साध्यमान’ और ‘सिद्ध’ ऐसे दो भिन्न रूप हैं। यही बात ‘उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, हीयमान हीन, छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत और निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए।

गौतम ! परमाणुओं के मिलने-बिखरने के सम्बन्ध में भी अन्यतीर्थिकों की मान्यता ठीक नहीं है। इस विषय में मेरा मत यह है कि दो परमाणु भी एकत्र जुट सकते हैं, क्योंकि दो परमाणुओं में भी उन्हें जोड़ने वाली सिग्धता विद्यमान होती है। मिले हुए दो परमाणुओं को तोड़ने पर फिर वे एक-एक करके जुदा हो जाते हैं। इसी तरह तीन परमाणु भी आपस में मिल सकते हैं और तोड़ने पर फिर वे एक-एक करके अलग हो जाते हैं।

तीन परमाणु भी आपस में मिल सकते हैं और तोड़ने पर अलग हो जाते हैं। तीन परमाणुओं के स्कन्ध को तोड़कर यदि उसके दो विभाग किए जाएँ तो एक भाग में एक परमाणु रहेगा और एक में दो। इन्हीं तीन परमाणुओं के स्कन्ध को तोड़कर तीन भाग किए जाएँ तो एक-एक परमाणु का एक-एक भाग होगा।

इसी प्रकार चार, पाँच आदि परमाणु एकत्र मिलकर स्कन्ध बनते हैं, परन्तु वे स्कन्ध अशाश्वत होते हैं और नित्य ही उनमें हानि-वृद्धि होती रहती है।

भाषा के विषय में भी अन्यतीर्थिकों के विचार प्रामाणिक नहीं हैं। इस विषय में मेरा सिद्धान्त यह है कि बोली जाने वाली अथवा बोली हुई भाषा 'भाषा' नहीं, पर बोली जाती भाषा ही 'भाषा' है। और वह भाषा 'अभाषक' की नहीं, पर 'भाषक' की होती है।

क्रिया की दुःखरूपता के सम्बन्ध में भी अन्यतीर्थिकों की मान्यता यथार्थ नहीं। पहले या पीछे क्रिया दुःखरूप नहीं होती, किन्तु क्रियाकाल में ही वह दुःखात्मक होती है और वह भी अकरणरूप से नहीं, करणरूप से दुःखात्मक होती है।

गौतम ! जो लोग दुःख को 'अकृत्य' और 'अस्पृश्य' कहते हैं वे भी मिथ्यावादी हैं। दुःख 'कृत्य' और 'स्पृश्य' है, क्योंकि संसारी जीव उसको बनाते, छूते और भोगते हैं, यह कहना चाहिए।'<sup>८५</sup>

### एक समय में दो क्रियाओं के विषय में

गौतम ने कहा—“भगवन् ! अन्यतीर्थिक कहते हैं—एक जीव एक समय में ईर्यापथिकी और सांपरायिकी इन दो क्रियाओं को करता है। जिस समय में ईर्यापथिकी करता है उसी समय में सांपरायिकी भी करता है और जिस समय में सांपरायिकी करता है उसी समय में वह ईर्यापथिकी भी करता है। अर्थात् ईर्यापथिकी करता हुआ सांपरायिकी और सांपरायिकी करता हुआ ईर्यापथिकी करता है। इस प्रकार अन्यतीर्थिक एक समय में दो क्रियाओं के करने की बात कहते हैं, सो क्या यह कथन ठीक है ?”

महावीर—“नहीं गौतम ! अन्यतीर्थिकों का यह कथन ठीक नहीं है। इस विषय में मेरा मत यह है कि एक जीव एक समय में एक ही क्रिया करता है— ईर्यापथिकी अथवा सांपरायिकी। जिस समय वह ईर्यापथिकी क्रिया करता है, उस समय सांपरायिकी नहीं करता और सांपरायिकी करने के समय ईर्यापथिकी नहीं करता।”'<sup>८६</sup>

### निर्ग्रन्थों के देवभव के भोग—सुखों के विषय में

गौतम ने पूछा—“भगवन् ! अन्यतीर्थिक कहते हैं—निर्ग्रन्थ कालधर्म प्राप्त होकर देवलोक में देव होता है तब वह अपनी दिव्य आत्मा से वहाँ के अन्य देव-देवियों के साथ अथवा अपनी देवियों के साथ विषय-भोग नहीं करता किन्तु वह अपनी ही आत्मा में से अन्य वैक्रिय रूप बना-बनाकर उनके साथ विषय-सुख भोगता है। क्या भगवन् ! अन्यतीर्थिकों का यह कथन सत्य है ?”

महावीर—“गौतम ! अन्यतीर्थिक इस विषय में जो कहते हैं वह सत्य नहीं है। सच तो यह है कि निर्ग्रन्थ कालधर्म प्राप्त होने के बाद किसी भी ऐसे देवलोक में देव होता है जो महाऋद्धि और प्रभाव-सम्पन्न हो और जहाँ के देवों की आयुष्य-स्थिति बहुत लम्बी हो वहाँ देवरूप से उत्पन्न निर्ग्रन्थ का जीव महातेजस्वी और ऋद्धिमान् देव होता है। वह वहाँ पर दूसरे देवों, उनकी देवियों और अपनी देवियों को अनुकूल करके उनसे विषयवासना पूर्ण करता है और एक

जीव एक समय में एक ही वेद का अनुभव करता है—स्त्रीवेद का अथवा पुरुषवेद का। स्त्रीवेद के अनुभवकाल में पुरुषवेद का अनुभव नहीं करता और पुरुषवेद के अनुभवकाल में स्त्रीवेद का।

पुरुषवेद के उदयकाल में पुरुष स्त्री की और स्त्रीवेद के उदयकाल में स्त्री पुरुष की प्रार्थना करती है। इस प्रकार अपने-अपने वेदोदयकाल में स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की अभिलाषा करते हैं।<sup>१८७</sup>

गणधर अचलभ्राता और मेतार्य ने गुणशील चैत्य में मासिक अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया।

इस साल का वर्षावास भगवान ने नालन्दा में किया।

### उनचालीवाँ वर्ष

चातुर्मास के अनन्तर नालन्दा से विचरते हुए भगवान विदेह जनपद में पधारे। देश के अन्यान्य ग्राम, नगरों में प्रवचन का उपदेश देते हुए आप मिथिला पधारे। यहाँ पर राजा जितशत्रु ने आपका बड़ा आदर किया।

समवसरण मिथिला के बाहर माणिभद्र चैत्य में हुआ। राजा जितशत्रु और रानी धारणी प्रमुख राज-परिवार तथा भाविक नगरजनों से चैत्य का मैदान विशाल धर्मसभा के रूप में परिवर्तित हो गया। आपने निर्ग्रन्थ प्रवचन-उपदेश दिया। सभा जन संतुष्ट होकर अपने-अपने स्थानों पर चले गए।

सभा-विसर्जन के बाद अनगार इन्द्रभूति ने वन्दन पुरस्सर ज्योतिषशास्त्र से सम्बन्धित अनेक प्रश्न किये जिनमें बीस प्रश्न मुख्य थे।

गौतम ने पूछा—

“(१) सूर्य प्रतिवर्ष कितने मण्डलों का भ्रमण करता है ?

(२) सूर्य तिर्यक्भ्रमण कैसे करता है ?

(३) सूर्य तथा चन्द्र कितने क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ?

(४) प्रकाशक का अवस्थान कैसा है ?

(५) सूर्य का प्रकाश कहाँ रुकता है ?

(६) ओजस् (प्रकाश) की स्थिति कितने काल की है ?

(७) कौन-से पुद्गल सूर्य के प्रकाश का स्पर्श करते हैं ?

(८) सूर्योदय की स्थिति कैसी है ?

(९) पौरुषी छाया का क्या परिणाम है ?

(१०) योग किसे कहते हैं ?

(११) संवत्सरो का प्रारम्भ कहाँ से होता है ?

(१२) संवत्सर कितने कहे हैं ?

(१३) चन्द्रमा की वृद्धि-हानि क्यों दीखती है ?

(१४) किस समय चाँद की चाँदनी बढ़ती है ?

(१५) चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा इनमें शीघ्र गति कौन है ?

(१६) चाँद की चाँदनी का लक्षण क्या है ?

(१७) चन्द्रादि ग्रहों का च्यवन और उपपात कैसे होता है ?

(१८) भूतल से चन्द्र आदि ग्रह कितने ऊँचे हैं ?

(१९) चन्द्र, सूर्यादि कितने हैं ?

(२०) चन्द्र, सूर्यादि क्या हैं ?”

गौतम के उक्त प्रश्नों के उत्तर भगवान महावीर ने इतने विस्तृत रूप से दिये हैं कि उनसे सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति—जैसे प्राचीन पद्धति के ज्योतिष-विज्ञान के मौलिक ग्रन्थ बन गये हैं। उक्त प्रश्नों के उत्तरों से हम इस ग्रन्थ को जटिल बनाना उचित नहीं समझते।

भगवान ने इस साल का वर्षावास मिथिला में ही बिताया।

### चालीसवाँ वर्ष

चातुर्मास के बाद भगवान विदेह देश में ही विचरे। अनेक श्रद्धालुओं को निर्ग्रन्थ मार्ग में दीक्षित किया और अनेक गृहस्थों को श्रमणोपासक बनाया। वर्षाकाल निकट आने पर आप फिर मिथिला पधारे और वर्षावास मिथिला में ही किया।

### इकतालीसवाँ वर्ष

चातुर्मास की समाप्ति पर भगवान ने मिथिला से मगध की तरफ विहार कर दिया और क्रमशः राजगृह पधारकर गुणशील चैत्य में वास किया।

### महाशतक को चेतावनी

उन दिनों राजगृह-निवासी महाशतक श्रमणोपासक गृहस्थधर्म की अन्तिम आराधना करके अनशन किए हुए था। अनशन के बाद शुभाध्यवसाय और कर्मों के क्षयोपशम से महाशतक को अवधिज्ञान प्रकट हो गया था जिससे वह आनन्द की ही तरह ऊपर, नीचे और तिर्यक् लोक में दूर-दूर तक जानता तथा देखता था।

उस समय उसकी स्त्री रेवती मदिरा से मतवाली होकर महाशतक के पास गई और विकृत चेष्टाओं तथा असभ्य वचनों से उसका ध्यान भंग करने लगी।

दो बार तो महाशतक ने उसकी बातें सुनी-अनसुनी कर दीं। पर जब वह बार-बार विरुद्ध बातों और अभद्र चेष्टाओं से उसे सताती ही गई तब वह अपने क्रोध को दबा न सका। अवधिज्ञान से उसकी भविष्य की दशा को जानकर बोला—“हे मृत्युप्रार्थिनी रेवती ! इतनी उन्मत्त क्यों हो रही है ? सात दिन के भीतर ही अलस रोग से पीड़ित हो असमाधिपूर्वक मरकर नरकगति को प्राप्त होने वाली है, इस बात की भी जरा चिन्ता कर।”

महाशतक के कटु वचनों से रेवती भयभीत होकर सोचने लगी—“सचमुच आज महाशतक मेरे ऊपर रुष्ट हुए हैं। न जाने अब मुझे किस बुरी तरह मारेंगे।” वह धीरे-धीरे वहाँ से हटकर अपने स्थान पर चली गई।

महाशतक के कथनानुसार ही रेवती को अलस रोग हुआ और सात दिन के भीतर उसका देहान्त हो गया।

रेवती के प्रति किये गये कटु भाषण के सम्बन्ध में महाशतक को चेतावनी देने के लिए भगवान महावीर ने इन्द्रभूति गौतम को बुलाकर कहा—“गौतम ! यहाँ मेरा अन्तेवासी महाशतक श्रमणोपासक अपनी पौषधशाला में अन्तिम अनशन कर काल निर्गमन कर रहा है। अपनी स्त्री रेवती द्वारा मोहजनक वचनों से सताये जाने पर उसने क्रोधवश ही रेवती की कठोर वचनों से तर्जना की है। इसलिए गौतम ! महाशतक को जाकर कह कि अन्तिम अनशन कर समभाव में रहे हुए श्रमणोपासक को ऐसा करना उचित नहीं। यथार्थ-सत्य होने पर अप्रिय कठोर वचन बोलना अनशनधारी श्रमणोपासक का कर्त्तव्य नहीं। देवानुप्रिय ! रेवती को अप्रिय वचन कहकर तूने अच्छा नहीं किया। इसका उचित आलोचना-प्रायश्चित्त लेकर तूझे शुद्ध होना चाहिए।”

महावीर की आज्ञा पाकर गौतम महाशतक के यहाँ गये और भगवान का संदेश उसे दिया। महाशतक ने भी भगवान की आज्ञा सिर आँखों पर चढ़ाई और अपनी भूल का प्रायश्चित्त किया।

### उष्ण जलहृद के विषय में प्रश्न

एक समय वैभारगिरि के नीचे उष्ण जलहृद के विषय में इन्द्रभूति गौतम ने पूछा—“भगवन् ! अन्यतीर्थिक यह कहते हैं कि राजगृह नगर के बाहर वैभार पर्वत के नीचे एक बड़ा भारी जलहृद है जिसकी लम्बाई और चौड़ाई अनेक योजन परिमित है। उसके किनारे विविध जाति के वृक्षों की घटाओं से सुशोभित हैं। उसमें से बड़े-बड़े बादल तैयार होते और बरसते हैं। इसके अतिरिक्त उसमें जो अधिक जलसमूह होता है वही उष्ण जलस्रोतों के रूप में निरन्तर बहता रहता है। भगवन् ! क्या अन्यतीर्थिकों का यह कथन सत्य है ?”

महावीर—“गौतम ! अन्यतीर्थिकों का यह कथन सत्य नहीं है। इस विषय में मेरा मत यह है कि राजगृह के बाहर वैभार पर्वत के पास अत्यन्त उष्ण स्थान के पास से निकलने वाला ‘महातपस्तीरप्रभव’ नामक जलस्रोत है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई पाँच-पाँच सौ धनुष्य परिमाण है। इसके किनारों पर अनेक जाति के वृक्ष लगे हुए हैं जिनसे इनकी शोभा दर्शनीय हो गई है। इस उष्ण जलस्रोत में उष्ण योनि के जीव उत्पन्न होते और मरते हैं तथा उष्ण स्वभाव के जल-पुद्गल भी उष्ण जल के रूप में इसमें आते और निकलते रहते हैं। यही कारण है कि स्रोत में से नित्य और सतत उष्ण जल का प्रवाह बाहर बहता रहता है। महातपस्तीरप्रभव जलस्रोत की यही हकीकत है और यही इसका रहस्य है।”

गौतम—“भगवन् ! आपका कथन सत्य है। महातपस्तीरप्रभव जलस्रोत का रहस्य यही हो सकता है।”

### आयुष्य कर्म के विषय में प्रश्न

गौतम ने कहा—“भगवन् ! अन्यतीर्थिक कहते हैं—नियमानुसार गठे हुए और नियत अन्तर पर गाँठों वाले एक जाल के जैसी अनेक जीवों के अनेक भवसंचित आयुष्यों की रचना होती है। जिस प्रकार जाल में सब गाँठें नियत अन्तर पर रहती हैं और एक-दूसरी के साथ सम्बन्धित रहती हैं, उसी तरह सब आयुष्य एक-दूसरे से नियत अन्तर पर रहे हुए होते हैं। इनमें से एक जीव एक समय में दो आयुष्यों को भोगता है—इहभविक और पारभविक। जिस समय इहभविक आयुष्य भोगता है उसी समय पारभविक भी भोगता है। भगवन् ! क्या अन्यतीर्थिकों की यह मान्यता ठीक है ?”

महावीर—“गौतम ! इस विषय में अन्यतीर्थिक जो कहते हैं वह ठीक नहीं है। हमारा मत यह है कि अनेक जीवों के आयुष्य जाल-ग्रन्थियों के आकार के नहीं होते परन्तु एक जीव के अनेक भवों के आयुष्य वैसे हो सकते हैं तथा एक जीव एक समय में दो आयुष्यों को भोग नहीं सकता किन्तु एक ही को भोग सकता है—इहभविक आयुष्य को अथवा पारभविक आयुष्य को।”

### मनुष्यलोक की मानव बस्ती के सम्बन्ध में

गौतम बोले—“भगवन् ! अन्यतीर्थिक कहते हैं—जैसे युवा पुरुष अपने हाथ में युवती-स्त्री का हाथ पकड़ता है अथवा जिस प्रकार चक्रनाभि से अरक भिड़े रहते हैं, वैसे ही यह मनुष्यलोक चार सौ-पाँच सौ योजन तक मनुष्यों से भरा हुआ है। भगवन् ! क्या अन्यतीर्थिकों का यह कथन सत्य है ?”

महावीर—“नहीं गौतम ! अन्यतीर्थिकों की यह मान्यता ठीक नहीं है। इस विषय में मेरा कहना यह है कि मनुष्यलोक तो नहीं पर नरकलोक इस प्रकार चार सौ-पाँच सौ योजन पर्यन्त नारक जीवों से ठसाठस भरा हुआ रहता है।”

### सुख अथवा दुःख के परिमाण के विषय में

गौतम ने पूछा—“भगवन् ! अन्यतीर्थिक यह कहते हैं—इस राजगृह नगर में जितने जीव हैं, उन सबके सुखों अथवा दुःखों को इकट्ठा करके बेर की गुठली, बाल, क्लाय, जूँ अथवा लीख जितने परिमाण में भी बताने में कोई समर्थ नहीं है। क्या अन्यतीर्थिकों का यह कथन यथार्थ है ?”

महावीर—“गौतम ! अन्यतीर्थिकों का उक्त कथन ठीक नहीं है। इस विषय में मेरा सिद्धान्त यह है—राजगृह के तो क्या संसारभर के सब जीवों के सुख-दुःखों को इकट्ठा करके लिक्षा-परिमाण भी दिखाने को कोई समर्थ नहीं है। गौतम ! सम्पूर्ण लोक के सुख-दुःखों को इकट्ठा करने पर भी उसका पिण्ड लिक्षा के बराबर भी क्यों नहीं होता, इसको मैं एक दृष्टान्त से समझाऊँगा। मान लो कि कोई एक महान् सामर्थ्यवान् देव है। वह सुगन्धी से भरा हुआ एक डिब्बा लेकर लक्ष-योजन परिमाण वाले सम्पूर्ण जम्बूद्वीप के ऊपर पलक मात्र में इक्कीस बार चक्कर काटता हुआ डिब्बे की तमाम सुगन्धी सारे जम्बूद्वीप में बिखेर दे, तब वे सुगन्धी-पुद्गल सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का स्पर्श करेंगे या नहीं ?”

गौतम—“हाँ, भगवन् ! वे सूक्ष्म सुगन्धी-परमाणु सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में फैलकर उसका स्पर्श कर लेंगे।”

महावीर—“गौतम ! अगर उन सूक्ष्म सुगन्धी-परमाणुओं को कोई फिर इकट्ठा करना चाहे तो क्या वह एक लिक्षा-परिमाण भी इकट्ठा करके दिखा सकता है ?”

गौतम—“नहीं भगवन् ! उन सूक्ष्म पुद्गलों को फिर इकट्ठा कर दिखाना अशक्य है।”

महावीर—“इसी प्रकार लोकगत सर्वजीवों के सम्पूर्ण सुख-दुःखों को इकट्ठा करके लिक्षा-परिमाण भी दिखाने को कोई समर्थ नहीं है।”<sup>११</sup>

### एकान्त दुःखवेदना के सम्बन्ध में

गौतम ने पूछा—“भगवन् ! अन्यतीर्थिक कहते हैं कि प्राण, भूत और सत्त्वनामधारी सर्वजीव एकान्त दुःख को भोगते हैं। क्या यह कथन सत्य है ?”

महावीर—“नहीं, गौतम ! अन्यतीर्थिकों का उक्त कथन ठीक नहीं है। सिद्धान्त यह है कि कुछ जीव नित्य एकान्त-दुःख को भोगते हैं और कभी-कभी सुख को। कुछ जीव नित्य एकान्त-सुख का अनुभव करते हैं और कभी-कभी दुःख का। तब कितने ही जीव सुख और दुःख को अनियमितता से भोगते हैं।

नारक जीव नित्य एकान्त-दुःख का अनुभव करते हैं और समय-विशेष में वे सुख को भी पाते हैं। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव एकान्त-सुख का अनुभव करते हैं, पर समय-विशेष में वे दुःख को भी भोगते हैं। पृथ्वीकायिक आदि तिर्यञ्चगति के जीव और मनुष्य अनियमितता से सुख-दुःख को भोगते हैं। कभी वे सुख-विपाक को भोगते हैं और कभी दुःख-विपाक को।”<sup>१२</sup>

इस वर्ष का वर्षावास भगवान ने राजगृह में किया।

### बयालीसवाँ वर्ष

वर्षा चातुर्मास के बाद भी भगवान महीनों तक राजगृह में ठहरे। इस बीच उनके गणधर अव्यक्त, मण्डिक, मौर्यपुत्र और अकम्पित मासिक अनशनपूर्वक गुणशील चैत्य में निर्वाण को प्राप्त हुए।

### दुषम-दुषमकाल का भारत और उसके मनुष्य

इन्द्रभूति गौतम ने पूछा—“भगवन् ! अवसर्पिणी काल के दुषम-दुषमा समय के पूर्ण रूप से लग जाने पर जम्बूद्वीप के भारतवर्ष की क्या अवस्था होगी ?”

महावीर—“गौतम ! उस समय का भारत हाहाकार, आर्त्तनाद और कोलाहलमय होगा। विषमकाल के प्रभाव से कठोर, भयंकर और असह्य हवा के बवण्डर उठेंगे और आँधियाँ चलेंगी जिनसे सब दिशाएँ धूमिल, रजस्वला और अन्धकारमय हो जायेंगी। समय की रूक्षता के वश ऋतुएँ विकृत हो जायेंगी, चन्द्र अधिक शीत फेंकेंगे और सूर्य अत्यधिक गर्मी करेंगे।

उस समय जोरदार बिजलियाँ चमकेंगी और प्रचण्ड पवन के साथ मूसलाधार पानी बरसेगा जिसका जल अरस, विरस, खारा, खट्टा, विषैला और तेजाब-सा तेज होगा। उससे निर्वाह न होकर विविध व्याधि-वेदनाओं की उत्पत्ति होगी। उन मेघों के जल से भारत के ग्रामों और नगरों के मनुष्यों और जानवरों का, आकाश में उड़ने वाले पक्षियों का, ग्राम्य तथा आरण्यक त्रस-स्थावर प्राणियों का और सब प्रकार की वनस्पतियों का विनाश हो जाएगा। एक वैताक्य पर्वत को छोड़कर सभी पहाड़-पहाड़ियाँ वज्रपातों से खण्ड-विखण्ड हो जायेंगी। गंगा और सिन्धु को छोड़कर शेष नदी, नाले, सरोवर आदि ऊँचे-नीचे स्थल समतल हो जायेंगे।”

गौतम-“भगवन् ! तब भारत-भूमि की क्या दशा होगी ?”

महावीर-“गौतम ! उस समय भारतवर्ष की भूमि अंगारस्वरूप, मुर्मुस्वरूप, भस्मस्वरूप, तपे हुए तवे और जलती हुई आग-सी गर्म, मरुस्थली-सी बालुकामयी और छिछली झील-सी काई (शैवाल), कीचड़ से दुर्गम होगी।”

गौतम-“भगवन् ! तत्कालीन भारतवर्ष का मनुष्य-समाज कैसा होगा ?”

महावीर-“गौतम ! तत्कालीन भारतवर्ष के मनुष्यों की दशा बड़ी दयनीय होगी। विरूप, विवर्ण, दुर्गन्ध, दुःस्पर्श और विरस शरीरों वाले होने से वे अप्रिय और अदर्शनीय होंगे। वे दीनस्वर, हीनस्वर, अनिष्टस्वर, अनादेयवचन, अविश्वसनीय, निर्लज्ज, कपटपट्ट, क्लेशप्रिय, हिंसक, वैरशील, अमर्याद, अकार्यरत और अविनीत होंगे। उनके नख बड़े, केश कपिल, वर्ण श्याम, सिर बेडौल और शरीर नसों से लिपटा हुआ-सा प्रतीत होने के कारण अदर्शनीय होगा।

उनके अंगोपांग बलों से संकुचित, मस्तक खुले घड़े से, आँख और नाक टेढ़े तथा मुख बुद्धों के से विरलदन्त बलों से भीषण होंगे। उनकी शारीरिक रचना निर्बल, आकार भौंडा और बैठने-उठने, खाने-पीने की क्रियाएँ निन्दनीय होंगी। उनके शरीर विविध व्याधि-पीड़ित, गति स्वल्पनायुक्त और चेष्टाएँ विकृत होंगी।

वे उत्साहहीन, सत्त्वहीन, तेजोहीन, शीतदेह, उष्णदेह, मलिनदेह, क्रोध-मान-माया से भरे, लोभी, दुःखग्रस्त, बहुधा धर्मसंज्ञाहीन और सम्यक्त्व से भ्रष्ट होंगे।

उनके शरीर हाथ भर के और उम्र सोलह अथवा बीस वर्ष की होगी।

वे पुत्र-पौत्रादि बहुल परिवारयुक्त होंगे।

उनकी संख्या परिमित होगी और वे गंगा-सिन्धु महानदियों के तटाश्रित पर्वत के बहत्तर बिलों में निवास करेंगे।”

गौतम-“भगवन् ! उन मनुष्यों का आहार क्या होगा ?”

महावीर-“गौतम ! उस समय गंगा-सिन्धु महानदियों का प्रवाह रथमार्ग जितना चौड़ा होगा। उनकी गहराई चक्रनाभि से अधिक न होगी। उसका जल मत्स्य, कच्छपादि जलचर जीवों से व्याप्त होगा। जब सूर्योदय और सूर्यास्त का समय होगा, वे मनुष्य अपने-अपने बिलों से निकलकर नदियों में से मत्स्यादि जीवों को स्थल में ले जायेंगे और धूप में पके-भुने उन जलचरों का आहार करेंगे। दुषम-दुषमा के भारतीय मानवों की जीवनचर्या इक्कीस हजार वर्षों तक इसी तरह चलती रहेगी।”

गौतम-“भगवन् ! वे निश्शील, निर्गुण, निर्मर्याद, त्याग-व्रतहीन, बहुधा माँसाहारी और मत्स्याहारी मनुष्य मरकर कहाँ जायेंगे ? कहाँ उत्पन्न होंगे ?”

महावीर-“वे बहुधा नारक और तिर्यञ्च योनियों में उत्पन्न होंगे।”

राजगृह से विहार करते हुए भगवान् अपापा पधारे। अपापा के उद्यान में समवसरण हुआ। गणधर के प्रश्नोत्तर में यहाँ पर भी भगवान् ने काल-चक्र का सविस्तार वर्णन किया।

उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल, उनमें होने वाले मनुष्यों और उनकी उन्नत-अवनत स्थितियों का वर्णन करते हुए आपने वर्तमान अवसर्पिणी के दुषमा नामक पञ्चमारक का विशेष वर्णन किया।



आपने कहा—“तीर्थंकरों के समय में यह भारतवर्ष धनधान्य से समृद्ध, नगर-गाँवों से व्याप्त स्वर्ग सदृश होता है। तत्कालीन ग्राम-नगर समान, नगर-देवलोक समान, कौटुम्बिक राजातुल्य और राजा कुबेरतुल्य समृद्ध होते हैं। उस समय आचार्य चन्द्र समान, माता-पिता देवता समान, सास माता समान, श्वसुर पिता समान होते हैं। तत्कालीन जनसमाज धर्माधर्मविधिज्ञ, विनीत, सत्य-शौच-सम्पन्न, देव-गुरुपूजक और स्वदारसंतोषी होता है। विज्ञानवेत्ताओं की कदर होती है। कुल, शील तथा विद्या का मूल्य होता है। लोग ईर्ष्या, उपद्रव, भय और शोक से मुक्त होते हैं। राजा जिन-भक्त होते हैं और जैनधर्म-विरोधी बहुधा अपमानित होते हैं।

यह सब आज तक था। अब जब चौपन उत्तम पुरुष व्यतीत हो जायेंगे और केवली, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी तथा श्रुतकेवली इन सबका विरह हो जायेगा तब भारतवर्ष की दशा इसके विपरीत होती जायेगी। प्रतिदिन मनुष्य समाज क्रोधादि कषाय-विष से विवेकहीन बनते जायेंगे। प्रबल जल-प्रवाह के आगे जैसे गढ़ छिन्न-भिन्न हो जाता है वैसे ही स्वच्छन्द लोक-प्रवाह के आगे हितकर मर्यादाएँ छिन्न-भिन्न हो जायेंगी। ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा जन-समाज दया-दान-सत्यहीन और कुतीर्थियों से मोहित होकर अधिकाधिक अधर्मशील होता जायेगा।

उस समय ग्राम श्मशानतुल्य, नगर प्रेतलोक सदृश, भद्रजन दास समान और राजा लोग यमदण्ड समान होंगे। लोभी राजा अपने सेवकों को पकड़ेंगे और सेवक नागरिकों को। इस प्रकार भक्तियों की तरह दुर्बल सबलों से सताये जायेंगे। जो अन्त में हैं वे मध्य में और मध्य में हैं वे प्रत्यन्त होंगे। बिना पतवार के नाव की तरह देश डोलते रहेंगे। चोर धन लूटेंगे। राजा करों से राष्ट्रों को उत्पीड़ित करेंगे और न्यायाधिकारी रिश्वतखोरी में तत्पर रहेंगे। जनसमाज स्वजन-विरोधी, स्वार्थप्रिय, परोपकार-निरपेक्ष और अविचारितभाषी होगा। बहुधा उनके वचन सारहीन होंगे। मनुष्यों की धन-धान्य विषयक तृष्णा कभी शान्त नहीं होगी। वे संसार-निमग्न, दाक्षिण्यहीन, निर्लज्ज और धर्मश्रवण में प्रमादी होंगे।

दुषमाकाल के शिष्य गुरुओं की सेवा नहीं करेंगे और गुरु शिष्यों को शास्त्र का शिक्षण नहीं देंगे। गुरुकुलवास की मर्यादा उठ जायेगी। लोगों की बुद्धि धर्म में शिथिल हो जायेगी और पृथ्वी क्षुद्र जन्तुओं से भर जायेगी। देव पृथ्वी पर दृष्टिगोचर नहीं होंगे। पुत्र माता-पिता की अवज्ञा करेंगे और कटु वचन सुनावेंगे। हास्यों, भाषणों, कटाक्षों और सविलास निरीक्षणों से निर्लज्ज कुलवधुएँ वेश्याओं को भी शिक्षण देंगी। श्रावक-श्राविका और दान-शील-तप-भावात्मक धर्म की हानि होगी।

धोड़े से कारण से श्रमणों और श्रमणियों में झगड़े होंगे। धर्म में शठता और चापलूसी का प्रवेश होगा। झूठे तोल-माप प्रचलित होंगे। बहुधा दुर्जन जीतेंगे और सज्जन दुःख पायेंगे।

विद्या, मंत्र, तंत्र, औषधि, मणि, पुष्प, फल, रस, रूप, आयुष्य, ऋद्धि, आकृति, ऊँचाई और धर्म इन सब उत्तम पदार्थों का हास होगा और दुषम-दुषमा नामक छठे आरे में तो इनकी अत्यन्त ही हीनता हो जायेगी।

प्रतिदिन क्षीणता को प्राप्त होते हुए इस लोक में कृष्ण पक्ष में चन्द्र की तरह जो मनुष्य अपना जीवन धार्मिक बनाकर धर्म में व्यतीत करेंगे उन्हीं का जन्म सफल होगा।

इस हानिशील दुषमा समय के अन्त में दुःप्रसह आचार्य, फल्गुश्री साध्वी, नागिल श्रावक और सत्यश्री श्राविका इन चार मनुष्यों का चतुर्विधसंघ शेष रहेगा। विमलवाहन राजा और सुमुख अमात्य ये दुषमाकालीन भारतवर्ष के अन्तिम राजा और अमात्य होंगे।

दुषमा के अन्त में मनुष्य का शरीर दो हाथ भर और आयुष्य बीस वर्ष का होगा। दुषमा के अन्तिम दिन पूर्वार्द्ध में चारित्र्यधर्म का, मध्याह्न में राजधर्म का और अपराह्न में अग्नि का विच्छेद होगा।

यह इक्रीस हजार वर्ष का दुषमाकाल पूरा होकर इतने ही वर्षों का दुषम-दुषमा नामक छठा आरा लगेगा। तब धर्मनीति, राजनीति आदि के अभाव में लोक अनाथ होंगे। माता, पुत्रादि का व्यवहार लुप्त होगा और मनुष्यों में पशुवृत्तियाँ प्रचलित होंगी।

दुषम-दुषमा के प्रारम्भ में ही प्रचण्ड आँधियाँ चलेंगी और प्रलयकारी मेघ बरसेंगे जिनसे भारत-भूमि के मनुष्यों और पशुओं का अधिकांश नाश हो जायेगा। अत्यल्पसंख्यक मनुष्य और पशु गंगा एवं सिन्धु के तटों पर पहाड़ी गुफाओं में रहेंगे और माँस मत्स्यों के आहार से जीवन निर्वाह करेंगे।

अवसर्पिणी काल के दुषम-दुषमा विभाग के बाद उत्सर्पिणी का इसी नाम का प्रथम आरा लगेगा और इक्कीस हजार वर्ष तक भारत की वही दशा रहेगी जो छठे आरे में थी।

उत्सर्पिणी का प्रथम आरा समाप्त होकर दूसरा लगेगा तब फिर शुभ समय का आरम्भ होगा। पहले पुष्कर-संवर्तक मेघ बरसेगा जिससे भूमि का ताप दूर होगा। फिर क्षीर-मेघ बरसेगा जिससे धान्य की उत्पत्ति होगी। तीसरा घृत-मेघ बरसकर पदार्थों में चिकनाहट उत्पन्न करेगा। चौथा अमृत-मेघ बरसेगा तब नाना प्रकार के रस-वीर्य वाली औषधियाँ उत्पन्न होंगी और अन्त में रस-मेघ बरसकर पृथ्वी आदि में रस की उत्पत्ति करेगा। ये पाँचों ही मेघ सात-सात दिन तक निरन्तर बरसेंगे जिससे दुग्धप्राय बनी हुई इस भारत-भूमि पर हरियाली, वृक्ष, लता, औषधि आदि प्रकट होंगे। भूमि की इस समृद्धि को देखकर मनुष्य गुफा-बिलों से बाहर आकर मैदानों में बसेंगे और माँसाहार को छोड़कर वनस्पतिभोजी बनेंगे। प्रतिदिन उनमें रूप, रंग, बुद्धि, आयुष्य आदि की वृद्धि होगी और उत्सर्पिणी के दुषमा समय के अन्त तक वे पर्याप्त सभ्य बन जायेंगे। वे अपना सामाजिक संगठन करेंगे। ग्राम-नगर बसाकर रहेंगे। घोड़े, हाथी, बैल आदि का संग्रह करना सीखेंगे। पढ़ना, लिखना, शिल्पकला आदि का प्रचार होगा। अग्नि के प्रकट होने पर भोजन पकाना आदि विज्ञान प्रचलित होंगे। दुषमा के बाद दुषम-सुषमा नामक तृतीय आरक आरम्भ होगा जबकि एक-एक करके फिर चौबीस तीर्थंकर होंगे और तीर्थ-प्रवर्तन कर भारतवर्ष में धर्म का प्रचार करेंगे।

उत्सर्पिणी के दुषम-सुषमा के बाद क्रमशः सुषम-दुषमा, सुषमा और सुषम-सुषमा नामक चौथा, पाँचवाँ और छठा ये तीन आरे होंगे। इनमें सुषम-दुषमा के आदि भाग में फिर धर्म-कर्म का विच्छेद हो जायेगा। तब जीवों के बड़े-बड़े शरीर और बड़े-बड़े आयुष्य होंगे। वे वनों में रहेंगे और दिव्य वनस्पतियों से अपना जीवन निर्वाह करेंगे।

फिर अवसर्पिणी काल लगेगा और प्रत्येक वस्तु का हास होने लगेगा।

इस एकार अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी इस संसार में व्यतीत हो गई और होंगी। जिन जीवों ने संसार-प्रवाह से निकलकर वास्तविक धर्म का आराधन किया, उन्हीं ने इस काल-चक्र को पारकर स्व-स्वरूप को प्राप्त किया और करेंगे।”

काल-चक्र का सविस्तार स्वरूप निरूपण करके भगवान ने संसार के दुःखों और भ्रमणों की भयंकरता दिखाई जिसे सुनकर अनेक भव्य आत्माओं ने संसार से विरक्त होकर निर्ग्रन्थ-धर्म की शरण ली।

### अंतिम वर्षावास व पुण्यपाल राजा के स्वप्न व भविष्य-कथन

प्रभु महावीर राजगृह से पावा पधारे। पावा में उस समय राजा हस्तीपाल राज्य करता था। उसकी रज्जुक सभा में प्रभु महावीर विराजे। प्रभु महावीर का यह अंतिम वर्षावास था। प्रभु महावीर पावापुरी के लोगों को उपदेश दे रहे थे।

एक दिन की बात है कि राजा पुण्यपाल ने भगवान महावीर से प्रार्थना की—“प्रभु ! मैंने आज रात विचित्र प्रकार के हाथी, बन्दर, क्षीरतरु, कौआ, सिंह, पद्म, बीज और कुम्भ यह आठ अशुभ स्वप्न देखे हैं; मुझे यह चिंता सता रही है कि कहीं इसका फल अमंगलदायक तो नहीं है ?”

प्रभु महावीर ने प्रथम स्वप्न का उत्तर देते हुए कहा—“भविष्य में विवेकशील श्रमणोपासक भी क्षणिक सुख के कारण हाथी की तरह रहेंगे। वह कष्ट की घड़ी में संयम ग्रहण करने का विचार नहीं करेंगे।

द्वितीय स्वप्न बन्दर इस बात का प्रतीक है कि भविष्य में बड़े आचार्य भी बन्दर की तरह चंचल वृत्ति के, अल्प पराक्रमी व्रत-पालन में प्रमादी होंगे। वे विचारशून्य, विवेकशून्य होंगे।

तृतीय स्वप्न में क्षीरतरु तुमने देखा है। इसका अर्थ है कि भविष्य में क्षुद्र भाव से दान देने वाले श्रावकों को पाखण्डी श्रमण चारों ओर से घेरे रहेंगे। वह आचारनिष्ठ श्रमणों को शिथिलाचारी और शिथिलाचारी को आचारनिष्ठ समझेंगे। पाखण्डी श्रमणों की गिनती बढ़ेगी।

चतुर्थ स्वप्न में तूने कौआ देखा। इसका अर्थ है कि भविष्य के साधु कौआ वृत्ति अंगीकार करेंगे। अधिकांश साधु वर्ग अनुशासन मर्यादा को त्यागकर पाखण्डपूर्ण पंथों का आश्रय लेंगे।

पाँचवें स्वप्न में तूने सिंह को विपन्नावस्था में देखा है। इसका अर्थ है कि भविष्य में सिंह की तरह प्रबल धर्म भी निर्बल होगा। मिथ्यात्वी की पूजा होगी।

छठे स्वप्न में तुमने कमल देखा। इसका अर्थ है भविष्य में समय के प्रबल प्रभाव से प्रभावित होकर कुलीन व्यक्ति भी बुरी संगति में पड़कर धर्ममार्ग से विमुख होकर पापाचार का सेवन करेंगे।

सातवें स्वप्न में जो बीज तुमने देखा है। इसका अर्थ है कि जिस प्रकार एक अदिवेकी किसान बढ़िया बीज को तो निकम्मी भूमि में बोता है और सड़े गले बीज को उपजाऊ भूमि में बोता है, इसी प्रकार श्रमणोपासक भी विवेक विस्मृत होकर सुपात्र को छोड़कर कुपात्र को दान देंगे।<sup>१३</sup>

आठवें स्वप्न में तुमने कुम्भ देखा है। इसका अर्थ है कि भविष्य में सद्गुण सम्पन्न और आचारनिष्ठ श्रमण कम होंगे।'

राजा पुण्यपाल के स्वप्नों का फल जनसाधारण ने भी सुना। बहुत से लोगों ने संयम ग्रहण करने का निर्णय किया।

फिर गणधर गौतम ने प्रभु महावीर से पाँचवें व छठे आरे के भरत क्षेत्र में होने वाली घटनाओं का विस्तार से वर्णन सुना। इन घटनाओं को जनसाधारण ने भी सुना। भविष्य को अशुभ जानकर अनेकों ने साधुधर्म व श्रावकधर्म स्वीकार किया।

प्रभु महावीर के भगवतीसूत्र के अतिरिक्त विविध तीर्थकल्प में आचार्य जिनप्रभवसूरि ने लिखा है कि गणधर गौतम ने प्रश्न किया—“प्रभु ! आपके परिनिर्वाण के पश्चात् प्रमुख घटनायें कौन-सी होंगी ?”

प्रभु महावीर ने समाधान करते हुए कहा—“मेरे मोक्षगमन के तीन वर्ष और साढ़े आठ माह के पश्चात् पाँचवाँ आरा शुरू होगा। मेरे निर्वाण के १२ वर्ष बाद गणधर गौतम मोक्षगमन करेंगे। बीस वर्ष बाद सुधर्मा स्वामी को मोक्षगमन होगा और चौंसठ वर्ष बाद अन्तिम केवली जम्बू स्वामी मोक्ष पधारेंगे।

जम्बू के निर्वाण के बाद भरत क्षेत्र में ये बातें उत्पन्न नहीं होंगी—(१) मनःपर्यवज्ञान, (२) परम अवधिज्ञान, (३) पुलाकलब्धि, (४) आहारक शरीर, क्षपकश्रेणी, जिनकल्प, परिहार-विशुद्धि सूक्ष्मसम्पराय, यथाख्यातचारित्र, केवलज्ञान और परिनिर्वाण।<sup>१४</sup>

मेरे निर्वाण के पश्चात् मेरे शासन में २००४ युग-प्रधान आचार्य होंगे। इनमें प्रथम आर्य सुधर्मा व अन्तिम पंचम आरे के आचार्य दुःप्रसह होंगे।

मेरे निर्वाण के १७० वर्ष पश्चात् आचार्य भद्रबाहु का स्वर्गारोहण होगा। उनके काल के पश्चात् अन्तिम चार पूर्व, समचतुरस्र संस्थान, वज्र ऋषभनाराय संहनन और महाप्राण ध्यान ये चार बातें भरत क्षेत्र से समाप्त हो जायेंगी।

मेरे निर्वाण के पाँच सौ वर्ष पश्चात् आर्य वज्र के समय १०वाँ पूर्व और प्रथम संहनन चतुष्क नष्ट हो जायेंगे।

मेरे निर्वाण के पश्चात् पालक का राज्यकाल ६० वर्ष, नन्द का राज्यकाल १५५ वर्ष, मौर्य का राज्यकाल १०८ वर्ष, पुण्यमित्र का ३० वर्ष, बलमित्र और भानुमित्र का ६० वर्ष, बरवाहन का ४० वर्ष, गर्दभिल्ल का १३ वर्ष, शक का ४ वर्ष होगा। और मेरे निर्वाण के ४७० वर्ष बाद महाराजा विक्रमादित्य सम्राट् होगा, जो अपने नाम से संवत् चलायेगा।

मेरे निर्वाण के ४५५ वर्ष के बाद गर्दभिल्ल के राज्य को नष्ट करने वाला कालकाचार्य होगा।<sup>१५</sup>

श्रमणों की विशुद्ध परम्परा विलुप्त हो जायेगी।'

प्रभु महावीर से इस प्रकार का भविष्य-कथन सुनकर हस्तिपाल आदि राजा ने दीक्षा स्वीकार की।

चातुर्मास के ३ महीने पूर्ण हुए। कार्तिक मास का कृष्ण पक्ष चल रहा था। प्रभु महावीर अपने समवसरण से जन-कल्याण की अमृतमय वाणी सुना रहे थे। उस समय प्रभु के समवसरण में काशी, कोशल के नौलिच्छवी नौ मल्ल राजा भी प्रभु महावीर का उपदेश सुन रहे थे। इनके साथ प्रभु महावीर के सांसारिक बड़े भ्राता राजा नन्दीवर्द्धन, बहिन सुदर्शना भी उपदेश सुन रही थीं।

## शक्र की आयु में वृद्धि की प्रार्थना

जब प्रभु महावीर का परिनिर्वाण का समय सन्निकट आया तो शक्रेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। देवों के परिवार उपस्थित होने लगे।

शक्र भाव-विह्वलता के साथ प्रभु महावीर के समवसरण में पहुँचा और निवेदन करने लगा—“प्रभु ! आप सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान हैं। आपका गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान हस्तोत्तरा नक्षत्र में हुए थे। इससे इन नक्षत्रों में २००० वर्ष तक चलने वाला भस्मक ग्रह आने वाला है जिसके प्रभाव से जिनशासन व धर्म को बहुत हानि होगी। २००० वर्ष बाद आपके निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी का सम्मान सत्कार पुनः प्रकट होगा, इसलिए आप अपना आयुष्य बल बढ़ा लें जिससे यह ग्रह आपके धर्मसंघ को प्रभावित न कर सके।”

प्रभु महावीर शक्रेन्द्र की बात से मुस्कराये, फिर बोले—“शुक्र ! आयुष्य कभी बढ़ाया नहीं जा सकता। ऐसा न कभी हुआ है, न कभी होगा। दुःषमा काल के प्रभाव से जिन शासन में जो बाधा होती है, वह तो होगी ही।”<sup>१६</sup>

## अन्तिम देशना और परिनिर्वाण

अब प्रभु महावीर का परिनिर्वाण का समय आ चुका था। इस बात को प्रभु स्वयं जानते थे। इसलिए उन्हें अपने प्रिय शिष्य लब्धिधारी गौतम का ध्यान आया। प्रभु महावीर ने करुणा की। इस पास के गाँव में देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोधित करके भिजवा दिया। पर गणधर गौतम तो साधना व सहजता के पुँज थे। वैसे भी गुरु-आज्ञा शिष्य का सर्वस्व होती है। प्रभु महावीर जानते थे कि मेरे निर्वाण से गणधर गौतम को कितनी पीड़ा होगी।<sup>१७</sup>

प्रभु महावीर ने अपनी अन्तिम देशना शुरू की। यह उपदेश १६ पहर तक चला। उस देशना में ५५ अध्ययन पुण्यफल विपाक के, ५५ अध्ययन पापफल विपाक के कहे।<sup>१८</sup> आजकल यह अध्ययन १०-१० अध्ययन के रूप में मिलते हैं। बाकी अध्ययन लुप्त हो गये हैं।

प्रभु महावीर ने छत्तीस अध्ययनों वाला अपृष्ठ व्याकरण फरमाया, जो उत्तराध्ययनसूत्र के रूप में विश्वविख्यात है।

## निर्वाण प्रक्रिया

सैंतीसवाँ अध्ययन का नाम प्रधान था। उसका कथन करते-करते प्रभु महावीर पर्यकासन में स्थिर हो गये।

भगवान महावीर ने बादर काययोग में स्थिर रहकर वादर मनोयोग, बादर वचनयोग का निरोध किया।

फिर काययोग से स्थित रहकर बादर काययोग को रोका। वाणी और मन के सूक्ष्म योग को रोका। शुक्लध्यान के “सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपाती” नामक तृतीय चरण को प्राप्त कर सूक्ष्म काययोग निरुन्धन किया।

समुच्छ्रित क्रिया, निवृत्ति नामक शुक्लध्यान का चतुर्थ चरण प्राप्त किया। पुनः अ-इ-उ, ऋ, लृ के उच्चारण काल जितनी शैलेशी अवस्था को प्राप्त कर चतुर्विध अघाती कर्मफल का क्षय कर भगवान महावीर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए। उनका जन्म-मरण समाप्त हो गया। वह वीतराग परमात्मा बन गये। वह निरंजन व अशरीर आत्मा सिद्धशिला पर जा विराजे। आचार्य भद्रबाहु ने निर्वाण-कल्याणक का चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है--

उस समय वर्षा ऋतु का चतुर्थ मास था। कृष्ण पक्ष था। पन्द्रहवाँ दिन था। पक्ष की चरम रात्रि अमावस्या थी। एक युग के पाँच संवत्सर होते हैं। उनमें यह चन्द्रनाभ द्वितीय संवत्सर था। एक वर्ष के बारह महीने होते हैं उनमें वह प्रीतीवर्द्धन नामक चतुर्थ मास था। एक मास में दो पक्ष होते हैं उनमें वह नन्दीवर्द्धन नाम का पक्ष था। एक पक्ष के पन्द्रह दिन होते हैं उनमें अग्निवेश्य नामक पन्द्रहवाँ दिन था जिसे उपशम नाम से कहा जाता है। पक्ष में पन्द्रह रातें होती हैं। वह देवानन्दा नाम की पन्द्रहवीं रात्रि थी जो निरति के नाम से विश्रुत थी। उस समय अर्च नाम का लव था, मुहूर्त्त प्राण था, सिंह नाम का स्तोक था, नाग नाम का चरण था, एक अहोरात्रि में तीस मुहूर्त्त होते हैं उस समय सर्वार्थसिद्ध मुहूर्त्त था। स्वाति नक्षत्र में चन्द्रमा का योग था।<sup>१९</sup>

### गौतम स्वामी : केवलज्ञानी

जैसे पहले कहा गया है कि प्रभु महावीर ने अपने परिनिर्वाण से पूर्व देव शर्मा को प्रतिबोध देने भेजा था। दूर भेजने का कारण यह था कि निर्वाण के समय अधिक स्नेहाकुल न हो।

देव शर्मा को प्रतिबोध देकर जब लौटने लगे, तो रात्रि हो चुकी थी। साधु चर्या का ध्यान रखकर वह उसी गाँव में रुक गये। यहीं उन्हें प्रभु महावीर के निर्वाण का समाचार मिला। आज गौतम को अपूर्व वज्रघात लगा। प्रभु महावीर के अन्तेवासी गौतम कभी एक पल के लिए भी प्रभु से अलग नहीं हुए थे। उन्हें इस बात का ज्यादा दुःख था कि “प्रभु ने मुझे अन्तिम समय अपने दर्शन करने का सौभाग्य क्यों न दिया? क्या मुझे मोक्षमार्ग में उन्होंने बाधक समझा? क्या मैं उनकी मोक्षलक्ष्मी छीन लेता? क्या मैं अज्ञानी था जो सारी आयु प्रभु महावीर को समझ न सका?”

कुछ पल के लिए गौतम फूट-फूटकर रोने लगे। फिर चीखकर कहने लगे—“प्रभु! आप तो सर्वज्ञ थे। मेरी कमी आप बता देते। मुझे दूर करने की जरूरत क्या थी?”

अब मैं किसे देखूँगा? किसे गुरु मानकर प्रणाम करूँगा। अब मुझे ‘गोयमा—गोयमा’ कौन कहेगा? अब मैं किससे प्रश्नों के समाधान पाऊँगा?

इस प्रकार विलाप चलता रहा। गौतम दुःखी होते गये। मन की स्थिति बदली। कुछ सँभले और सोचने लगे—

‘मैं भी कितना अज्ञानी था। सारी आयु, उस वीतराग परमात्मा को पहचान न सका। वह मुझे हर बार प्रमाद—त्याग का उपदेश देते। पर मैं उनके स्नेह को त्याग न सका। प्रभु महावीर तो जन्मजात राग—द्वेष से मुक्त थे। वह तो हमारे उपकारी थे। उन्होंने हमारे कल्याण के लिये राजपाट छोड़ा। परिवार का मोह तोड़ा। जंगलों में कष्ट झेले। वह सब हमारे लिये ही तो थे। उनकी कृपा से संसार के जीव मोक्षमार्ग पा गये। वह मेरे अकेले के थोड़े ही थे। वह तो सबके थे। वह रागी नहीं थे। उनकी मीठी वाणी में मुझे राग दिखाई देता था। वह सच कहते थे कि मृत्यु शाश्वत है, इसका कोई भरोसा नहीं। राग—द्वेष के कारण कर्मबन्ध होता है। यह कर्म बीज है। मुझे प्रभु महावीर की शिक्षा को ध्यान में रखकर राग—द्वेष त्यागना है।’

इस प्रकार चिंतन करते—करते गौतम के सब बंधन छूट गये, उन्हें भी आत्मा को परमात्मा बनाने वाला केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

एक रात्रि में दो मंगलमय घटनायें घट गईं। प्रभु महावीर का निर्वाण, गौतम स्वामी का केवलज्ञान। देवों ने दिव्य—ध्वनि के साथ पुष्प—वृष्टि की।

### गणधर इन्द्रभूति गौतम को मुक्ति का वरदान

हम पिछले घटना—क्रम में वर्णन करते आये हैं कि गणधर गौतम को केवलज्ञान उत्पन्न नहीं हो रहा था। उनके शिष्य प्रशिष्य कब के आत्म—कल्याण कर मोक्ष पधार चुके थे। वह स्वयं हर समय तपस्या, साधना, ध्यान, स्वाध्याय में लीन रहते थे। पर वह अब भी छद्मस्थ ही रहे। उनके मन को गहन चोट लगी।

गौतम को वह रुकावट समझ नहीं आ रही थी, जो उनको केवलज्ञान नहीं हो रहा था। वह आत्म-निरीक्षण करने लगे, पर उन्हें रुकावट का पता नहीं चल रहा था।

सर्वज्ञ प्रभु महावीर भी गणधर गौतम के दुःख से परिचित थे। उन्होंने कई बार गौतम को इसका कारण बताते हुये कहा था—“गौतम ! तुम्हारे मन में मेरे प्रति अनुराग है, स्नेह है। स्नेह-बंधन के कारण ही तुम अपने मोह का क्षय नहीं कर पा रहे। वह मोह ही सर्वज्ञता में बाधक बन रहा है।

गौतम ! तुम अतीत काल से मेरे साथ स्नेह-बंधन में बँधे हो। तुम जन्म-जन्म से मेरे प्रशंसक रहे हो, मेरे परिचित रहे हो। अनेक जन्मों में मेरी सेवा करते रहे हो, मेरा अनुसरण करते रहे हो और प्रेम के कारण मेरे पीछे-पीछे दौड़ते रहे हो। पिछले देवभव एवं मनुष्यभव में भी तुम मेरे साथी रहे हो। अपना स्नेह-बंधन सुदीर्घकालीन है। मैंने उसे तोड़ दिया है। तुम अभी उस बंधन को नहीं तोड़ पाये। विश्वास करो, तुम भी बहुत शीघ्र बंधन से मुक्त होकर, अब यहाँ से देहमुक्त होकर हम दोनों एक समान एक लक्ष्य, भेदरहित, तुल्य रूप प्राप्त कर लेंगे।”<sup>१००</sup>

जब संसार के सभी धर्मों का अवलोकन करते हैं तो भक्त कभी भगवान नहीं बन पाया। भक्त भक्त रहा है और प्रभु से आशीर्वाद पाता रहा है। पर यह जैन परम्परा है जहाँ भक्त को भी भगवान बनने का अवसर मिला है। इस घटना से यह भी पता लगा है कि गुरु को शिष्य के आत्म-कल्याण की कितनी चिंता रहती है।

यह प्रभु महावीर की महानता थी, पर गणधर गौतम इन्द्रभूति का प्रभु महावीर के प्रति समर्पण चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उन्होंने मोक्षलक्ष्मी के स्थान पर प्रभु-भक्ति को स्थान दिया। कितना स्वार्थरहित उनका जीवन था ? समर्पण का जीता-जागता प्रमाण गणधर गौतम से बढ़कर कहीं नहीं दीखता। इसी समर्पण के कारण वह प्रभु के आशीर्वाद का पात्र बना। पर प्रभु महावीर ने गौतम को वरदान दिया—“तुम भी मेरे समान सिद्ध, बुद्ध, अमर, मुक्त बनोगे।” इस वरदान को पाकर गणधर गौतम की आत्मा को परम शान्ति मिली। गणधर गौतम चार ज्ञान के धारक थे। प्रभु महावीर से उन्हें १४ पूर्वों का ज्ञान प्राप्त हुआ था। ११ अंगों के ज्ञाता थे।

प्रभु महावीर से वह एक क्षण भी कभी दूर नहीं रहे। प्रभु महावीर ने भी उन्हें अपना प्रिय शिष्य माना है। वह सरलात्मा थे। विनय के प्रतीक थे। प्रभु महावीर से आयु में बड़े थे। लब्धि के धारक होने के साथ-साथ वह रत्नत्रय की साधना में स्वयं को लीन रखते थे। वह किसी प्रकार के अहं से मुक्त थे। जैन परम्परा में गणधर गौतम को मंगल माना है। उनका नाम-स्मरण भक्तों के दुःख दूर करने वाला है।

### दीवाली और प्रभु का निर्वाण महोत्सव

आचार्य भद्रबाहु ने कल्पसूत्र में उल्लेख किया है जिस रात्रि को भगवान महावीर का निर्वाण हुआ, उस रात्रि से ९ काशी, ९ लिच्छवी, १८ काशी कौशल के राजाओं ने पौषध व्रत अंगीकार कर रखा था।

अमावस्या का अंधेरा था। उन राजाओं ने कहा—“आज संसार से भाव उद्योत उठ गया है अतः अब हम द्रव्य उद्योत करेंगे।”

जिस रात्रि प्रभु महावीर का परिनिर्वाण हुआ उस रात्रि को देवियों के गमनागमन से भूमण्डल आलोकित हुआ। अंधकार मिटाने के लिए मानवों ने दीप सँजोये। इस प्रकार दीपमाला पर्व का प्रारम्भ हुआ।<sup>१०१</sup>

भगवान महावीर के निर्वाण का समाचार सुनकर सुर-असुर जाति के सभी इन्द्र अपने परिवारों सहित धरती पर पहुँचे। सभी देव अपने को अनाथ मान रहे थे। भाव-विह्वल थे।

शुक्र के आदेश से गोशीर्ष चन्दन और क्षीरोदक लाया गया। क्षीरोदक से प्रभु महावीर के पार्थिव शरीर को स्नान कराया गया। फिर चन्दन का लेप किया गया।

दिव्य वस्त्र ओढ़ाया गया। उसके पश्चात् शरीर को देव-निर्मित शिविका में रखा गया।

इन्द्र ने शिविका उठाई। संस्कार स्थल पर चन्दन की चिता में प्रभु का शरीर रखा गया। अग्नि कुमार ने अग्नि प्रज्वलित की। वायु कुमार देवों ने वायु प्रज्वलित की।

अन्य देवों ने घृत और मधु चिता में उँड़ेला। इस प्रकार प्रभु महावीर का अंतिम संस्कार पावापुरी में सम्पन्न हुआ।

फिर मेघकुमार ने जल की वर्षा कर चिता शांत की। शक्रेन्द्र ने ऊपर की दाईं दाढ़ों का और ईशानेन्द्र ने बाईं दाढ़ों का संग्रह किया। इस प्रकार चमरेन्द्र और बलिन्द्र ने नीचे की दाढ़ों को लिया। अन्य देवों ने दाँत और अस्थि-खण्डों को लिया। मानवों के हिरसे भस्म आई।<sup>१०२</sup>

भगवान महावीर के बड़े भ्राता नन्दीवर्द्धन ने उनकी स्मृति में भव्य स्मारक का निर्माण किया।

## भाई नन्दीवर्द्धन व भैयादूज

प्रभु महावीर के बड़े भ्राता नन्दीवर्द्धन कुण्डलपुर के राजा थे। वह जब प्रभु महावीर का निर्वाण हुआ, तब उपस्थित थे। उन्हें इतना आघात पहुँचा कि उन्होंने खाना-पीना तक छोड़ दिया।

बहिन सुदर्शना ने उन्हें अपने घर बुलाकर संसार की क्षण-भंगुरता का ज्ञान कराया। साथ भोजन करवाया। भोजन के उपरांत तिलक किया। उस दिन का नाम भैयादूज पड़ा।



- |   |  |
|---|--|
| १. (क) ज्ञाताधर्मकथांग १/११,<br>(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/६/३१२-४०६,<br>(ग) महावीर चरियं (गुणचन्द्र) प्रस्ताव, ८ | १६. इस चैत्य का सुन्दर वर्णन उववाईसूत्र में उपलब्ध होता है।  |
| २. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/६/४३०   | १७. विपाकसूत्र, द्वितीय श्रुतरकन्ध, नौवाँ अध्यायन  |
| ३. (क) आचारांगसूत्र<br>(ख) कल्पसूत्र  | १८. भगवती, श. १६, उ. ६   |
| ४. (क) भगवती ४/६/३८१<br>(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/८/१०-११  | १९. (क) उत्तराध्ययन भावविजयगणी की टीका १८/५, प. ३८०<br>(ख) आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, प. १६४               |
| ५. (क) भगवती ९/६<br>(ख) महावीर चरियं (गुणचन्द्र) प्रस्तावना, प. २५५-२६०<br>(ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/८/१ २७      | २०. (क) आवश्यकचूर्णि ३९९,<br>(ख) उत्तरा. नेमिचन्द्र, पृ. २५५,<br>(ग) उत्तराध्ययन भावविजयगणी १८/५, पत्र ३८० |
| ६. भगवती, श. ९/३३३  | २१. आवश्यकचूर्णि ३९९   |
| ७. (क) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/८/३९<br>(ख) महावीर चरियं (गुणचन्द्र) ८/२६१  | २२. (क) बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति सहित, विभाग २. गा. ९९७--९९९, पृ. ३१५,<br>(ख) भगवतीसूत्र, श. १३, उ. ६         |
| ८. (क) महावीर चरियं (गुणचन्द्र)<br>(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/८/३०  | २३. आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृ. २  |
| ९. भगवती, श. १२, उ. २   | २४. (क) आवश्यकचूर्णि, पृ. २३४,<br>(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/१                                     |
| १०. अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोववाईदसाओ, पृ. ३४ (एन. पी. वैद्य सम्पादित)  | २५. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/९   |
| ११. उपासकदशांगसूत्र, अ. १ (आचार्य श्री आत्माराम जी)   | २६. (क) आवश्यकचूर्णि<br>(ख) उत्तराध्ययन, अ. १८   |
| १२. (क) त्रिषष्टिशलाका, पुरुष चरित्र १०/१०/८४<br>(ख) उपदेशमाला सटीक, गा. २०, प. २५६<br>(ग) भरत-बाहुबलि, भाग १, प. १०७     | २७. उपासकदशांग, अ. ३   |
| १३. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/१०/१२३   | २८. वही, अ. ४  |
| १४. वही १०/१०/१३७-१३८   | २९. भगवती, श. ११, उ. १२, सू. ६   |
| १५. वही १०/१०/१६५-१८१   | ३०. वही ११/१२/८  |
|   | ३१. उपासकदशांग, अ. ५   |
|   | ३२. अन्तकृद्दशांग, वर्ग ३, अ. ४  |
|   | ३३. श्रेणिक चरित (तिलोक ऋषि जी कृत)  |

३४. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/९/४८-५०  
 ३५. महावीर चरित्रं ८, प्रस्ताव, पृ. ३३४/१  
 ३६. अनुत्तरौपपातिक, वर्ग १, अध्ययन १  
 ३७. वही, वर्ग २, अ. १-१३  
 ३८. (क) अन्तकृद्दशांग, वर्ग ७, अ. १-१३  
 (ख) अनुत्तरौपपातिक, वर्ग १-२, अन्तकृद्दशांग, वर्ग ७, अ. १-१३  
 ३९. (क) सूत्रकृतांग निर्युक्ति टीका, श्रु. २, अ. ६, प. १३६,  
 (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/७/१७७-१७९  
 ४०. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ. ६७-६८  
 ४१. सूत्रकृतांग सूत्र श्रुत. २ अ. ६ शीलांक वृत्ति  
 ४१अ. भगवती, श. १२, उ. १२  
 ४२. आवश्यकचूर्णि, पृ. ९१  
 ४३. अनुत्तरौपपातिक, अ. १  
 ४४. वही, अ. १  
 ४५. भगवतीसूत्र सटीक, श. ५, उ. ४, सू. १८८, प. २१९-२  
 ४६. वही, श. ५, उ. ४, प. २१९-१-२  
 ४७. अन्तकृद्दशांग  
 ४८. उपासकदशांग, अ. ८  
 ४९. भगवती, श. ५, उ. ९  
 ५०. वही, श. १, उ. ६  
 ५१. निरयावलिया (कम्पवडिसिया)  
 ५२. ज्ञाताधर्मकथा  
 ५३. उत्तराध्ययन, अ. २१  
 ५४. अन्तगडदसाओ, पृ. ५-६  
 ५५. भगवतीसूत्र, श. १५  
 ५६. वही, श. १५  
 ५७. निरयावलिका टीका, प. ६  
 ५८. भगवतीसूत्र सटीक, सू. २९९, प. ५७८  
 ५९. वही, श. ७, उ. ९, सू. ३०१  
 ६०. वही, सूत्र ३०९  
 ६१. उत्तराध्ययन, अ. लक्ष्मी बल्लभ टीका  
 ६२. वही, प. ११  
 ६३. भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, प. १००-१०१  
 ६४. उत्तराध्ययन २३/६-८  
 ६५. वही २३, प. ३९९-४१४  
 ६६. भगवती, श. ११, उ. ९  
 ६७. अनुत्तरौपपातिक, पृ. ७०-८३  
 ६८. भगवतीसूत्र ३/१/२७०-२८३  
 ६९. वही, श. ८, उ. ५, पृ. ३६७  
 ७०. वही, श. १८, उ. १०, ६४७  
 ७१. औपपातिकसूत्र अम्बड़ प्रकरण  
 ७१अ. व्याख्याप्रज्ञप्ति ९/३२/३७१  
 ७२. वही, ९/३२  
 ७३. वही, श. ८, उ. १०  
 ७४. समवायाङ्ग २२  
 ७५. भगवतीसूत्र सटीक ८/१०, प. ७६४-७७८  
 ७६. वही १७/३  
 ७७. वही, श. १८, उ. ७, प. ७५०-७५१  
 ७८. वही, श. ७, उ. १०, पृ. ३२३-३२४  
 ७९. वही ११/११/४२४/४३२  
 ८०. (क) आवश्यकचूर्णि उत्त., पत्र २०३-२०४,  
 (ख) हरिभद्रिया वृत्ति ७१५-७१६,  
 (ग) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, गाथा १२०५  
 ८१. (क) उत्तराध्ययन सटीक, अ. १०, पत्र १५४,  
 (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/९/७४  
 ८२. भगवती, श. ७, उ. १०, पृ. ३२५-३२६  
 ८३. वही, श. ७, उ. १०, पृ. ३२६-३२७  
 ८४. वही, श. ७, उ. १०, पृ. ३२७  
 ८५. वही, श. १, उ. १०, पृ. १०२-१०३  
 ८६. वही, श. १, उ. १०, पृ. १०६  
 ८७. वही, श. २, उ. ५, पृ. १३१-१३२  
 ८८. वही, श. २, उ. ५, पृ. १४१  
 ८९. वही, श. ५, उ. ३, पृ. २१४  
 ९०. वही, श. ५, उ. ६, पृ. २३०  
 ९१. वही, श. ६, उ. ९, पृ. २८४-२८५  
 ९२. वही, श. ६, उ. ९, पृ. २८५-२८६  
 ९३. (क) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/१३/३२, ७२,  
 (ख) स्वप्न व उनके फलों का कथन सौभाग्य पञ्चग्यादि  
 पर्व कथा के दीपमालिका के व्याख्यान में पत्र ८१-  
 ८२ में भी आधार पर है।  
 ९४. कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, प. ४९३  
 ९५. "तह गर्दभिल्लरज्जस्स ठायगो कालगादियो होहि।  
 तेवण चउ सएहि, गुणसमकलिय सुअपउत्ती॥"  
 ९६. (क) कल्पसूत्र,  
 (ख) महावीर चरित्रं, प्रस्ताव ८/१  
 ९७. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/१३/२१८-२२०  
 ९८. (क) समवायांग ५५  
 (ख) कल्पसूत्र १४७  
 ९९. भगवान महावीर : एक अनुशीलन, पृ. ५९९ (आचार्य  
 देवेन्द्र मुनि)  
 १००. (क) भगवती १४/७  
 (ख) गौतम को समझाने के लिए प्रभु महावीर ने  
 उत्तराध्ययन सूत्र १०/२८ में बहुत प्रयास किया है।  
 १०१. (क) कल्पसूत्र १२७  
 (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/१५/२४७-२४८  
 (ग) प्रकल्पन महापुरिस चरित्रं, पृ. ३३१४  
 १०२. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/१३/२४९-२७१



तीर्थंकर परिचय

संख्या	नाम	लांछन	वंश नाम	पिता	माता
१.	ऋषभदेव	वृषभ	इक्ष्वाकु	नाभि	मरुदेवी
२.	अजितनाथ	गज	इक्ष्वाकु	जितशत्रु	विजया
३.	संभवनाथ	अश्व	इक्ष्वाकु	जितारि	सेना
४.	अभिनन्दन	बंदर	इक्ष्वाकु	संवर	सिद्धार्थ
५.	सुमतिनाथ	कौच-पक्षी	इक्ष्वाकु	मेघरथ	सुमंगला
६.	पद्मप्रभ	पद्म	इक्ष्वाकु	श्रीधर	सुसीमा
७.	सुपार्श्वनाथ	स्वस्तिक	इक्ष्वाकु	प्रतिष्ठ	पृथ्वी
८.	चन्द्रप्रभ	चन्द्र	इक्ष्वाकु	महसेन	लक्ष्मणा
९.	सुविधिनाथ	मकर	इक्ष्वाकु	सुग्रीव	रामा
१०.	शीतलनाथ	श्रीवत्स	इक्ष्वाकु	दुर्धरथ	नंदा
११.	श्रेयासनाथ	गंडा	इक्ष्वाकु	विष्णु	विष्णु
१२.	वासुपूज्य	महिष	इक्ष्वाकु	वासुपूज्य	जया
१३.	विमलनाथ	शूकर	इक्ष्वाकु	कृतवर्म	स्यामा
१४.	अनन्तनाथ	बाजपक्षी	इक्ष्वाकु	सिंहसेन	सुयशा
१५.	धर्मनाथ	वज्र	इक्ष्वाकु	भानु	सुव्रता
१६.	शान्तिनाथ	मृग	इक्ष्वाकु	विश्वसेन	अचिरा
१७.	कुथुनाथ	बकरा	इक्ष्वाकु	सूर	श्री
१८.	अरनाथ	नन्दावर्त	इक्ष्वाकु	सुदर्शन	देवी
१९.	मल्लिनाथ	कुम्भ	इक्ष्वाकु	कुम्भ	प्रभावती
२०.	मुनिसुव्रत	कधुवा	हरिवंश	सुमित्र	पद्मावती
२१.	नमिनाथ	नील कमल	इक्ष्वाकु	विजय	चप्रा
२२.	अरिष्टनेमि	शङ्ख	हरिवंश	समुद्रविजय	शिवादेवी
२३.	पार्श्वनाथ	सर्प	इक्ष्वाकु	अश्वसेन	वामादेवी
२४.	महावीर	सिंह	इक्ष्वाकु	सिद्धार्थ	त्रिशला

संख्या	च्यवन स्थान	च्यवन तिथि	जन्म भूमि	जन्म तिथि	दीक्षा तिथि	ज्ञान स्थान	ज्ञान तिथि
१.	सर्वार्थसिद्ध	४-११-४	विनीता	१-११-८	१-११-८	पुरिमताल	१२-११-११
२.	विजय	२-१-१३	विनीता	११-१-८	११-११-९	अयोध्या	१०-११-११
३.	सप्तम ग्रैवेयक	१२-१-८	सावथी	९-१-१४	९-१-१५	सावथी	८-११-५
४.	जयंत	२-१-४	विनीता	११-१-२	११-१-२	अयोध्या	१०-११-१४
५.	जयंत	५-१-२	विनीता	२-१-८	२-१-९	अयोध्या	१-११-११
६.	नवम ग्रैवेयक	११-११-८	कौशाबी	८-११-१२	८-११-१३	कौशाबी	१-१-१५
७.	षष्ठ ग्रैवेयक	६-११-८	वारणसी	३-१-१२	३-१-१३	वारणसी	१२-११-६
८.	वैजयन्त	१-११-५	चन्द्रपुरी	१०-११-१२	१०-११-१३	चन्द्रपुरी	१२-११-७
९.	आनत	१२-११-९	काकंदी	९-११-५	९-११-६	काकंदी	८-१-३
१०.	प्राणत	२-११-६	भदिलपुर	११-११-१२	११-११-१२	भदिलपुर	१०-११-१४
११.	अच्युत	३-११-६	सिंहपुरी	१२-११-१२	१२-११-१३	सिंहपुरी	११-११-१५
१२.	प्राणत	३-१-९	चम्पापुरी	१२-११-१४	१२-१-१४	चम्पापुरी	११-१-२
१३.	सहस्रार	२-१-१२	काम्पिलपुर	११-१-३	११-१-४	काम्पिलपुर	१०-१-६
१४.	प्राणत	५-११-७	विनीता	२-११-१३	२-११-१४	अयोध्या	२-११-१४
१५.	विजय	२-१-७	रत्नपुरी	११-१-३	११-१-१३	रत्नपुरी	१०-१-१५

संख्या	च्यवन स्थान	च्यवन तिथि	जन्म भूमि	जन्म तिथि	दीक्षा तिथि	ज्ञान स्थान	ज्ञान तिथि
१६.	सर्वार्थसिद्ध	६-११-७	हस्तिनापुर	३-११-१३	३-११-१४	हस्तिनापुर	१०-१-९
१७.	सर्वार्थसिद्ध	५-११-९	हस्तिनापुर	२-११-१४	१-११-५	हस्तिनापुर	१-१-३
१८.	सर्वार्थसिद्ध	१२-१-२	हस्तिनापुर	९-१-१०	९-१-११	मिथिला	८-१-१२
१९.	जयंत	१२-१-४	मिथिला	९-१-११	९-१-११	मथुरा	९-१-११
२०.	अपराजित	५-१-१५	राजगृह	३-११-८	१२-१-१२	राजगृह	१२-११-१२
२१.	प्राणत	४-१-१५	मथुरा	५-११-८	४-११-९	मथुरा	९-१-११
२२.	अपराजित	८-११-१२	सौरपुर	५-१-५	५-१-६	गिरनार	७-११-१५
२३.	प्राणत	१-११-४	वाराणसी	१०-११-१०	१०-११-११	वाराणसी	१-११-४
२४.	प्राणत	४-१-६	क्षत्रियकुण्ड	१-११-१३	९-११-१०	ऋजुबालुका नदी	२-११-१०

नोट : तिथियों के उल्लेख में प्रथम संख्या माह की है-१ = चैत्र, २ = वैशाख, ३ = ज्येष्ठ, ४ = आषाढ़, ५ = श्रावण, ६ = भाद्रपद, ७ = आसोज, ८ = कार्तिक,

९ = मंगसर, १० = पौष, ११ = माघ, १२ = फाल्गुन।

दूसरी संख्या पक्ष की है-शुक्ल पक्ष = I, कृष्ण पक्ष = II।

तीसरी संख्या १ से १५ तिथियों की है।

संख्या	निर्वाण स्थान	निर्वाण तिथि	छद्मस्थ काल	आयुष्य	प्रधान गणधर	गणधरों की संख्या	साधु संख्या
१.	अष्टापद गिरि	११-११-१३	१,००० वर्ष	८४ लाख पूर्व	पुण्डरीक	८४	८४ हजार
२.	सम्मेत शिखर	१-१-५	१२ वर्ष	७२ लाख पूर्व	सिंहसेन	९५	१ लाख
३.	सम्मेत शिखर	१-१-५	१४ वर्ष	६० लाख पूर्व	चारु	१०२	२ लाख
४.	सम्मेत शिखर	२-१-८	१८ वर्ष	५० लाख पूर्व	वज्रनाभ	११६	३ लाख
५.	सम्मेत शिखर	१-१-९	२० वर्ष	४० लाख पूर्व	चमर	१००	३.२ लाख
६.	सम्मेत शिखर	९-११-११	६ माह	३० लाख पूर्व	सुव्रत	१०७	३.३ लाख
७.	सम्मेत शिखर	१२-११-७	९ माह	२० लाख पूर्व	विदर्भ	९५	३ लाख
८.	सम्मेत शिखर	६-११-७	३ माह	१० लाख पूर्व	दत्त	९३	२.५ लाख
९.	सम्मेत शिखर	६-१-९	४ माह	२ लाख पूर्व	वराहक	८८	२ लाख
१०.	सम्मेत शिखर	२-११-२	३ माह	१ लाख पूर्व	आनन्द	८१	१ लाख
११.	सम्मेत शिखर	५-११-३	२ माह	८४ लाख वर्ष	गोशुभ	७६	८४ हजार
१२.	चम्पापुरी	४-१-१४	१ माह	७२ लाख वर्ष	सुभूम	६६	७२ हजार
१३.	सम्मेत शिखर	४-११-७	२ माह	६० लाख वर्ष	मन्दर	५७	६८ हजार
१४.	सम्मेत शिखर	१-१-५	३ वर्ष	३० लाख वर्ष	यशोधर	५०	६६ हजार
१५.	सम्मेत शिखर	३-१-५	२ वर्ष	१० लाख वर्ष	अरिष्ट	४३	६४ हजार
१६.	सम्मेत शिखर	३-११-१३	१ वर्ष	१ लाख वर्ष	चक्रायुध	३६	६२ हजार
१७.	सम्मेत शिखर	२-११-१	१६ वर्ष	९५ हजार वर्ष	स्वयंभू	३५	६० हजार
१८.	सम्मेत शिखर	९-१-१०	३ वर्ष	८४ हजार वर्ष	कुंभ	३३	५० हजार
१९.	सम्मेत शिखर	१२-१-१२	१ दिन	५५ हजार वर्ष	अभीक्ष्णिक	२८	४० हजार
२०.	सम्मेत शिखर	३-११-९	११ माह	३० हजार वर्ष	इन्द्र	१८	३० हजार
२१.	सम्मेत शिखर	२-११-१०	९ माह	१० हजार वर्ष	शुभ	१७	२० हजार
२२.	गिरनार	४-१-८	५४ दिन	१ हजार वर्ष	वरदत्त	११	१८ हजार
२३.	सम्मेत शिखर	५-१-८	८४ दिन	१०० वर्ष	दिव्य	१०	१६ हजार
२४.	पावापुरी	८-११-१५	१/२ वर्ष	७२ वर्ष	इन्द्रभूति	११	१४ हजार

संख्या	प्रधान साध्वी	साध्वी संख्या	श्रावक संख्या	श्राविका संख्या	शरीर वर्ण	शासन देव	शासन देवी
१.	ब्राह्मी	३ लाख	३.५ लाख	५.५४ लाख	सुवर्ण	गोमुख	चक्रेश्वरी
२.	फाल्गु	३.३ लाख	२.९८ लाख	५.४५ लाख	सुवर्ण	महायक्ष	अजितबाला
३.	श्यामा	३.३६ लाख	९.९३ लाख	६.३६ लाख	सुवर्ण	त्रिमुख	दुरितारि
४.	अजिता	६.३ लाख	२.८८ लाख	५.२७ लाख	सुवर्ण	यक्षनायक	काली
५.	काश्यपी	५.३ लाख	२.८१ लाख	५.१६ लाख	सुवर्ण	तुंबरू	महाकाली
६.	रति	४.२ लाख	२.७६ लाख	५.०५ लाख	रक्त	कुसुम	श्यामा
७.	सोमा	४.३ लाख	२.५७ लाख	४.९३ लाख	सुवर्ण	मातंग	शास्ता
८.	सुमना	३.८ लाख	२.५ लाख	४.९९ लाख	श्वेत	विजय	भृकुटि
९.	वारुणि	१.२ लाख	२.२९ लाख	४.७१ लाख	श्वेत	अजित	सुतारका
१०.	सुयशा	१ लाख	२.८९ लाख	४.५८ लाख	श्वेत	ब्रह्मा	अशोका
११.	धारिणी	१.०३ लाख	२.७९ लाख	४.४८ लाख	सुवर्ण	यक्षराज	मानवी
१२.	धारणी	१ लाख	२.१५ लाख	४.३६ लाख	रक्त	कुमार	चंडा
१३.	धरा	१.००८ लाख	२.०८ लाख	४.२४ लाख	सुवर्ण	षण्मुख	विदिता
१४.	पद्या	६२ हजार	२.०६ लाख	४.१४ लाख	सुवर्ण	पाताल	अकुशा
१५.	शिवा	६२.४ लाख	२.०४ लाख	४.१३ लाख	सुवर्ण	किन्नर	कंदर्पा
१६.	शुचि	६१.६ लाख	१.९ लाख	३.९३ लाख	सुवर्ण	गरुड़	निर्वाणी
१७.	दामिनी	६०.६ लाख	१.७९ लाख	३.८ लाख	सुवर्ण	गंधर्व	बला
१८.	रक्षिता	६० लाख	१.८४ लाख	३.७२ लाख	सुवर्ण	यक्षराज	धारिणी
१९.	बधुमती	५५ लाख	१.८३ लाख	३.७ लाख	नील	कुबेर	धारणप्रिया
२०.	पुण्यवती	३० लाख	१.७२ लाख	३.५ लाख	कृष्ण	वरुण	नरदत्ता
२१.	अनिला	४१ लाख	१.७ लाख	३.४८ लाख	सुवर्ण	भृकुटि	गांधारी
२२.	यक्ष दिव्या	४० लाख	१.६९ लाख	३.३६ लाख	कृष्ण	गोमंघ	अम्बिका
२३.	पुष्पचूला	३८ लाख	१.६४ लाख	३.३९ लाख	नील	---	पद्मावती
२४.	चन्दनबाला	३६ लाख	१.५९ लाख	३.१८ लाख	सुवर्ण	ब्रह्मशांति	सिद्धायिका

श्रमण भगवान महावीर के ग्यारह गणधर

क्र. सं.	नाम	माता	पिता	गोत्र	जन्म स्थान	आयु			निर्वाण काल	निर्वाण स्थल	शिष्य संख्या
						गृहस्थ	छद्मस्थ	केवली			
१.	इन्द्रभूति	पृथ्वी	वसुभूति	गौतम	गोबर ग्राम (मगध)	५०	३०	१२	९२	१२	५००
२.	अग्निभूति	पृथ्वी	वसुभूति	गौतम	गोबर ग्राम (मगध)	४६	१२	१६	७४	१४	५००
३.	वायुभूति	पृथ्वी	वसुभूति	गौतम	गोबर ग्राम (मगध)	४२	१०	१८	७०	१४	५००
४.	व्यक्त	वारुणी	धनमित्र	भारद्वाज	कोल्लाग सन्नियेश	५०	१२	१८	८०	१२	५००
५.	सुधर्मा	भद्रीला	धम्मिल	अग्नि	कोल्लाग सन्नियेश	५०	४२	८	१००	८	३५०
६.	मंडिक	विजया देवी	धनदेव	मौर्य	वाशिष्ठ	५३	१४	१६	८३	१२	३५०
७.	मौर्य पुत्र	विजया देवी	मौर्य	सन्नियेश	मौर्य सन्नियेश	६५	१४	१६	९५	१२	३५०
८.	अकम्पित	नन्दा	वसु	हारीत	मिथिला	४६	१२	१४	७२	१२	३००
९.	अचल भ्राता	जयन्ती	देव	गौतम	कोसल	४८	९	२१	७८	१६	३००
१०.	मेतार्य	वरुणा देवी	दत्ता	कौडिन्य	तुंगिय सन्नियेश (कौशाब्धी)	३६	१०	१६	६२	१६	३००
११.	प्रभास	अतिभद्रा	बल	कौडिन्य	राजगृह	१६	८	१६	४०	१८	३००

नोट : वी. नि. पू. = वीर निर्वाण से पूर्व, म. नि. प. = महावीर निर्वाण के पश्चात्।

## काल—गणना

काल के इस स्थूल विभाजन के साथ ही जैन ग्रन्थों में काल का अति सूक्ष्म, विस्तृत और वैज्ञानिक विभाजन भी उपलब्ध है। इस विभाजन के दो अंग हैं—प्रथम संख्यात काल तथा दूसरा औपमिक काल।

**संख्यात काल :**

सूक्ष्मतम निर्विभाज्य काल	=	१ समय
असंख्यात समय	=	१ आवलिका
संख्यात आवलिका	=	१ उच्छ्वास अथवा १ निःश्वास
१ उच्छ्वास + १ निःश्वास	=	१ प्राण
७ प्राण	=	१ स्तोक
७ स्तोक	=	१ लव
७७ लव	=	१ मुहूर्त
३० मुहूर्त	=	१ अहोरात्र
१५ अहोरात्र	=	१ पक्ष
२ पक्ष	=	१ मास
२ मास	=	१ ऋतु
३ ऋतु	=	१ अयन
२ अयन	=	१ संवत्सर
५ संवत्सर	=	१ युग
२० युग	=	१ शताब्दी
१० शताब्दी	=	१ सहस्राब्दी
१०० सहस्राब्दी	=	१ लक्षाब्दी
८४ लक्षाब्दी	=	१ पूर्वांग
८४ लक्ष पूर्वांग	=	१ पूर्व

'पूर्व' के बाद पच्चीस इकाइयाँ और हैं जो प्रत्येक पूर्ववर्ती इकाई से ८४ लाख गुणा अधिक हैं। अन्तिम इकाई का नाम शीर्ष प्रहेलिका है जिसमें ५४ अंकों के बाद १४० शून्य होते हैं। यह लगभग ७.५८२ × १०<sup>१३</sup> के बराबर होती है।

### औपमिक काल :

यह वह काल है जिसे संख्याओं या गणित से नहीं मापा जा सकता। अतः इसे समझने के लिए उपमा की आवश्यकता होती है। इसकी सबसे छोटी इकाई का नाम है पल्योपम। पल्योपम का परिमाण समझने के लिए शास्त्रोक्त परिभाषा है : एक योजन लम्बा-चौड़ा-गहरा थाले के आकार का गड्ढा खोदा जाए जिसकी परिधि तीन योजन हो। उसे उत्तर कुरु के मनुष्य के एक दिन से सात दिनों तक के बालाग्र (अत्यन्त सूक्ष्म बाल का अग्र भाग) से ऐसे ठसाठस भर दिया जाए कि जल और वायु भी प्रवेश न कर सकें। फिर उसमें से एक-एक बालाग्र प्रत्येक १०० वर्ष के बाद निकाला जाए। इस प्रकार जितने समय में वह पल्य (गड्ढा) खाली हो जाए उस काल को पल्योपम कहते हैं।

१० कोटा-कोटि पल्योपम = १ सागरोपम

१० कोटा-कोटि सागरोपम = १ उत्सर्पिणी अथवा १ अवसर्पिणी

२० कोटा-कोटि सागरोपम = १ काल-चक्र



# हार्दिक अभिनन्दन !

भगवान महावीर जीवन चरित्र ग्रन्थ के प्रकाशन में आप सभी महानुभावों ने जो सहयोग प्रदान किया है उसी के परिणाम स्वरूप इस सुन्दर ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका है। इस सुकृत हेतु आप सभी दानीजन विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।



स्व. श्री जगदीश लाल जी जैन  
(भाई श्री स्वर्णकाला जी म.), दिल्ली



स्व. श्री वैनी प्रसाद जी जैन  
राजपुरा



स्व. श्री पवन कुमार जी जैन  
सोनीपत



स्व. श्री हरवंस लाल जी जैन  
राजपुरा



स्व. श्री राजकुमार जैन  
(दरी वाले)  
अम्बाला शहर



स्व. श्री रोशन लाल जी जैन  
भटिण्डा



श्री जय भगवान जैन  
कुरुक्षेत्र



श्री दर्शन लाल जी जैन  
जैतों



श्री बनारसी दास जी जैन  
सुपुत्र श्री चिमन लाल जी जैन  
जैतों



श्री कमल कुमार जैन  
सुपुत्र मास्टर रामलाल जी जैन  
अम्बाला शहर



डॉ. राजीव बांसल  
सुपुत्र श्री तेजपाल बांसल  
मानसा



श्री वीरेन्द्र कुमार जी  
जालन्धर शहर

## हार्दिक अभिनन्दन !

भगवान महावीर जीवन चरित्र ग्रन्थ के प्रकाशन में आप सभी महानुभावों ने जो सहयोग प्रदान किया है उसी के परिणाम स्वरूप इस सुन्दर ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका है। इस सुकृत हेतु आप सभी दानीजन विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।



स्व. श्रीमती सत्या जैन  
धर्मपत्नी श्री फकीर चन्द जैन  
अम्बाला शहर



श्रीमती चन्द्रकान्ता जैन  
धर्मपत्नी स्व. श्री बाल कृष्ण जैन  
(रायकोट वाले) लुधियाना



श्रीमती मदन माला  
धर्मपत्नी श्री पवन कुमार जैन  
लुधियाना



श्रीमती शशि अरोड़ा  
प्रधानाचार्या, रमणीक मुनि जैन  
पब्लिक स्कूल, अम्बाला शहर



स्व. श्री अमर चन्द जी एवं श्रीमती राजकुमारी जी जैन  
(माता-पिता श्री विजय जी म.) रोपड़



स्व. श्री सुरिन्द्र कुमार जी एवं श्रीमती सुदेश जैन  
(भाई-भाभी श्री स्वर्णकान्ता जी म.) दिल्ली

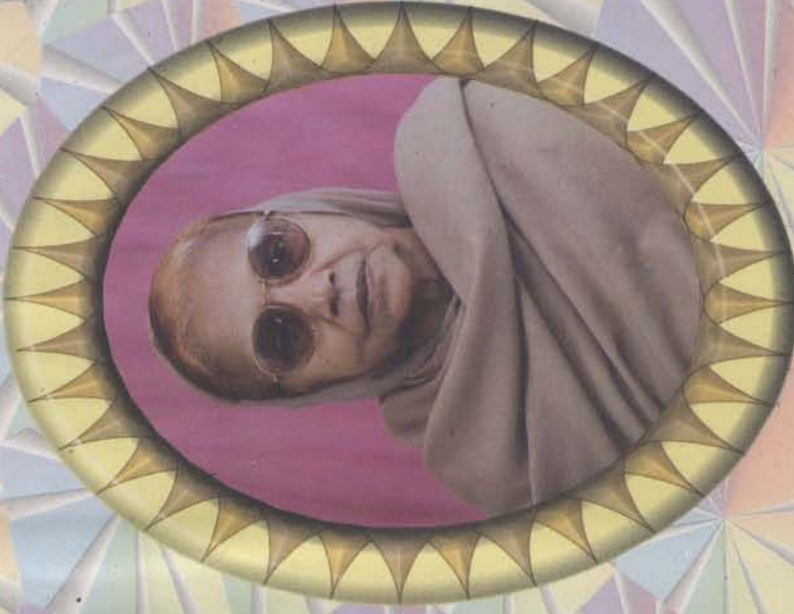


श्रीमती प्रेम जैन व श्री पारस कुमार जैन  
सुनाम



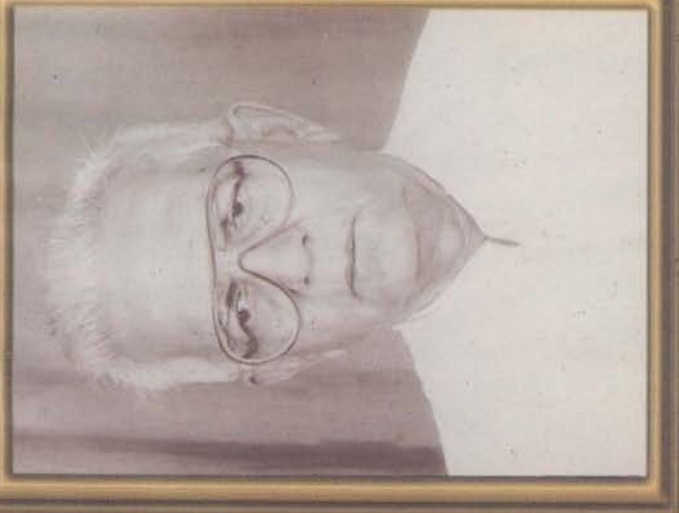
श्री सुभाष जैन एवं श्रीमती उर्मिला जैन  
लुधियाना

उदार सहयोगी



श्रीमती त्रिशला जैन धर्मपत्नी श्री मदनलाल जी जैन  
(गुजरांबाल वाले)  
लुधियाना

उदार सहयोगी



श्रीमान् चौधरी विद्याल्लजी जैन  
हनुमानगढ़

सुकृत के सहयोगी



## “सहयोगी गुरुभक्त”

१. श्रीमती विन्दिया जैन धर्मपत्नी श्री राजीव कुमार जैन	अम्बाला शहर
२. सन्तोष जैन सुपुत्री श्री टेकचन्द जी जैन	अम्बाला शहर
३. श्री प्रवीण कुमार जी जैन	अरिहंत नगर, दिल्ली
४. श्रीमती कृष्णा जैन धर्मपत्नी श्री रवीन्द्र कुमार जैन	भटिण्डा
५. श्रीमती ऋतु जैन धर्मपत्नी श्री रमेश कुमार जैन	गीदड़वाह
६. श्रीमती अनीता जैन धर्मपत्नी श्री राजेन्द्र कुमार जैन	पानीपत
७. श्री बनवारी लाल हिसारिया मालिक फर्म हिसारिया इन्डस्ट्रीज	हनुमानगढ़ जंक्शन
८. श्रीमती देवेन्द्र जैन धर्मपत्नी श्री दर्शनलाल जी जैन	चण्डीगढ़
९. श्रीमती निशि जैन धर्मपत्नी श्री अभय कुमार जैन	रोपड़
१०. श्रीमती बिन्दु जैन धर्मपत्नी श्री अशोक कुमार जैन एडवोकेट	रोपड़
११. श्रीमती प्रेम जैन धर्मपत्नी श्री वेदप्रकाश जी	अम्बाला कैट
१२. शशी भूषण एवं रवि भूषण जैन	भूषण दी हट्टी, अम्बाला शहर
१३. श्रीमती कान्ता जैन धर्मपत्नी श्री कश्मीरी लाल जैन	मलोट
१४. श्रीमती शिक्षा जैन धर्मपत्नी श्री राजकुमार जैन	कुरुक्षेत्र
१५. श्रीमती लज्जा जैन धर्मपत्नी श्री बहादुर चन्द जी जैन	हनुमानगढ़
१६. श्रीमती ऊषा जैन धर्मपत्नी श्री वीरेन्द्र कुमार जैन	तलवाड़ा
१७. श्रीमती सत्या जैन माताश्री विपन कुमार व राकेश कुमार	अहमदगढ़ मण्डी
१८. श्रीमती शोभा जैन धर्मपत्नी श्री सतीश कुमार अग्रवाल	कुरुक्षेत्र
१९. श्रीमती शीला जैन धर्मपत्नी श्री दीपचन्द जी जैन	कुराली
२०. श्रीमती नीतु जैन धर्मपत्नी श्री संजीव कुमार जैन	ऊना
२१. श्रीमती सुधा जैन धर्मपत्नी श्री सुरिन्द्र कुमार जैन	चण्डीगढ़
२२. श्रीमती त्रिशला जैन धर्मपत्नी श्री चैनलाल जैन	नोएडा
२३. श्रीमती अनीता जैन धर्मपत्नी श्री पंकज कुमार जैन	गाँधी मण्डी, दिल्ली
२४. श्रीमती स्नेह मित्तल धर्मपत्नी श्री अशोक कुमार मित्तल	भटिण्डा
२५. श्रीमती निशा जैन धर्मपत्नी श्री जिनेन्द्र कुमार जैन	राजपुरा
२६. श्रीमती अल्पा जैन धर्मपत्नी श्री अरुण कुमार जैन	होशियारपुर
२७. श्रीमती प्रेमिला जैन धर्मपत्नी श्री बालकृष्ण जैन	मालेर कोटला
२८. श्रीमती किरणा जैन धर्मपत्नी श्री महेश कुमार जैन	जैतों
२९. श्रीमती कान्ता जैन धर्मपत्नी श्री डालचन्द जी जैन	गीदड़वाह
३०. रमण जैन सुपुत्र श्री अजित कुमार जैन	बलाचौर
३१. श्रीमती शिमला जैन सीमेंट वाले	मालेर कोटला
३२. श्रीमती सविता जैन धर्मपत्नी श्री नरेन्द्र कुमार जैन	मुकेरिया
३३. श्रीमती सुमन जैन धर्मपत्नी प्रोफेसर अशोक कुमार जैन	अम्बाला शहर

३४.	श्रीमती शान्ता जैन धर्मपत्नी श्री अमृतलाल जैन	लुधियाना
३५.	श्रीमती रजनी जैन धर्मपत्नी श्री रवीन्द्र कुमार जैन	रोहिणी, दिल्ली
३६.	श्रीमती किरणा जैन धर्मपत्नी श्री विजेन्द्र कुमार जैन	अम्बाला शहर
३७.	श्री राजेश कुमार जैन सुपुत्र श्री निर्मल कुमार जैन	लुधियाना
३८.	श्रीमती रजनी जैन धर्मपत्नी श्री कमलेश कुमार जैन किके वाले	मालेर कोटला
३९.	श्री राजकुमार, बलवीर चन्द एवं अरुण कुमार सिंगला	रोपड़
४०.	श्रीमती मंजु जैन धर्मपत्नी श्री सतप्रकाश अग्रवाल	मुम्बई
४१.	श्री सूरज प्रकाश जैन सुपुत्र श्री दीपचन्द जैन	रानियां
४२.	श्रीमती चन्दन जैन धर्मपत्नी श्री तरसेव कुमार जैन	संगरिया
४३.	श्रीमती स्नेह जैन धर्मपत्नी श्री धर्मपाल जी जैन	मानसा
४४.	श्रीमती अंजु जैन धर्मपत्नी श्री संजय कुमार जैन	अम्बाला शहर
४५.	श्रीमती कला जैन धर्मपत्नी श्री महावीर प्रसाद जैन	मानसा
४६.	श्रीमती प्रवीण जैन धर्मपत्नी श्री नरेश कुमार जैन	बलाचौर
४७.	श्रीमती अनीता जैन धर्मपत्नी श्री प्रवीण कुमार जैन धर्मकण्डे वाले	अम्बाला शहर
४८.	श्रीमती चंचल जैन धर्मपत्नी श्री कुलदीप कुमार जैन	नवांशहर
४९.	श्रीमती अलका जैन धर्मपत्नी श्री सुशील कुमार जैन	होशियारपुर
५०.	श्रीमती कमला जैन धर्मपत्नी स्व. श्री पुष्पपाल जैन	होशियारपुर
५१.	श्रीमती सरोज जैन धर्मपत्नी श्री रवीन्द्र कुमार जैन	करनाल
५२.	श्रीमती पद्मा जैन धर्मपत्नी श्री रमेश कुमार जैन	रोहिणी, दिल्ली
५३.	श्रीमती किरणा जैन धर्मपत्नी श्री हीरालाल जी जैन	सैनिक विहार, दिल्ली
५४.	श्रीमती निर्मला जैन धर्मपत्नी श्री जसवन्तराय जैन	पटियाला
५५.	श्रीमती सन्ताप जैन धर्मपत्नी श्री सुखवीर चन्द जैन	रोहिणी, दिल्ली
५६.	श्रीमती बीना जैन धर्मपत्नी श्री राजेन्द्र कुमार जैन	गीदड़वाह
५७.	श्रीमती निर्मला जैन धर्मपत्नी श्री प्रमोद कुमार जैन	संगरिया
५८.	श्री धनराज जी जैन सुपुत्र श्री गोवर्धनदास जैन	हनुमानगढ़
५९.	श्रीमती कुसुम जैन धर्मपत्नी स्व. श्री जोगेन्द्रपाल जैन	लुधियाना
६०.	श्रीमती तरसेम जैन धर्मपत्नी श्री श्रीदेव जी जैन	लुधियाना
६१.	श्रीमती पूनम जैन धर्मपत्नी श्री विकास कुमार जैन	जम्मू
६२.	श्रीमती भोली जैन धर्मपत्नी श्री मरहेहरलाल जैन	लुधियाना
६३.	श्रीमती रानी जैन धर्मपत्नी श्री सुदर्शनलाल जैन	लुधियाना
६४.	श्रीमती मोना जैन धर्मपत्नी श्री सुशील कुमार जैन	अम्बाला शहर
६५.	श्रीमती सुनीता जैन धर्मपत्नी श्री महेश कुमार जैन	अम्बाला शहर
६६.	श्री नरेन्द्र कुमार, सुरिन्द्र कुमार एवं सुरेश कुमार जैन सुपुत्र स्व. श्री शान्तिस्वरूप जैन	अम्बाला शहर
६७.	श्रीमती कौशल्या जैन धर्मपत्नी श्री हरिकृष्ण जी जैन	गीदड़वाह मण्डी
६८.	श्रीमती शीला जैन धर्मपत्नी डॉ. जी. वी. जैन	अम्बाला शहर

## आशीर्वाद

मेरे शिष्य पुरुषोत्तम जैन व रवीन्द्र जैन का यह कार्य स्तूतय व साधुवाद का पात्र है। प्रस्तुत ग्रन्थ तुलनात्मक ढंग से लिखा गया है। ग्रन्थ पठनीय व संग्रहणीय है।

— आचार्य श्री विमल मुनि जी म



श्रमणोपासक रवीन्द्र जैन व पुरुषोत्तम जैन अपने कार्यों के लिए गुरुदेव आचार्य सुशील मुनि जी म. के आशीर्वाद के पात्र रहे हैं। यह गुरुदेव के अन्तर्राष्ट्रीय धर्म प्रचार कार्यों में प्रमुख सहयोगी रहे हैं। अब भी यह गुरु महाराज के कार्य को आगे बढ़ाने में लगे हुए हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी धर्म प्रचार की कड़ी है।

— आचार्य डॉ. साधना जी म.



सचित्र भगवान महावीर जीवन चरित्र परमात्मा महावीर के परम पावन प्रेरणादायी जीवन की दिव्य झाँकी प्रस्तुत करने में समर्थ है और इसे पढ़ने वाले पद-पद पर आनन्द का अनुभव करेंगे।

— आचार्य विजय नित्यानन्दसूरि



समाज रत्न श्री पुरुषोत्तम जैन व रवीन्द्र जैन ने सचित्र भगवान महावीर की रुचितर जीवन हिन्दी में प्रकाशित किया है जो कि जन सामान्य के लिए पठनीय है।

— साध्वी महिमा श्री



तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह लेखकद्वय को श्रमणोपासक पद से विभूषित करते हुए। (शाल प्राप्त करते हुए श्री पुरुषोत्तम जैन एवं राष्ट्रपति के पीछे खड़े हैं श्री रवीन्द्र जैन)

## कृति एवं कृतिकार

प्रस्तुत कृति में भगवान महावीर के जीवन के संपूर्ण वृत्तान्त की श्वेताम्बर एवं दिगम्बर मतानुसार व्याख्या करते हुए, लेखकद्वय ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से क्रमबद्ध कर पाठकों हेतु विस्तृत जानकारी देने का सुन्दर प्रयास किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ भगवान महावीर के २६०० साला जन्म महोत्सव पर होने वाले कार्यक्रमों की श्रृंखला का भाग है।

श्री पुरुषोत्तम जैन, धुरी (१०. ११. १९४६) व श्री रवीन्द्र जैन, मालेर कोटला (२३. १०. १९४९) प्रसिद्ध जैन लेखक हैं, जिन्होंने उपप्रवर्तिनी साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी म. की प्रेरणा व दिशा निर्देशन में ५० ग्रन्थ लिखे हैं। यह कार्य लगातार जारी है। पंजाबी भाषा के दोनों प्रथम जैन लेखक हैं। पिछले २६०० सालों में किसी भी लेखक ने जैन धर्म विषय में पंजाबी में कोई कार्य नहीं किया। दोनों अनेकों जैन संस्थाओं के संस्थापक हैं। जिनमें जैन चेयर पंजाबी विश्व विद्यालय पटियाला, आचार्य आत्माराम जैन भाषण माला पुस्तकालय व अनेकों एवाडों की स्थापना प्रमुख है। कई संस्थाओं ने इनके कार्यों से प्रसन्न होकर इन्हें अपनी संस्थाओं का सदस्य बनाया है।

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह जी इन्हें राष्ट्रपति भवन में श्रमणोपासक पद से विभूषित कर चुके हैं। भाषा विभाग पंजाब इन दोनों का सम्मान कर चुका है। अनेकों जैन संस्थाओं ने इनकी सेवा के कारण इन्हें अनेकों पदवियों से सुशोभित किया है। हाल ही में दिल्ली में यूनेस्को ने राष्ट्रीय हिन्दी सेवी सहस्राब्दी सम्मान से विभूषित किया है।

दोनों को साहित्य अकेडमी के प्रकाशन को Who's and who में योग्य स्थान मिला है। इनकी प्रमुख देन जैन आगमों का प्रथम पंजाबी अनुवाद एवं टीका है। पंजाबी के अतिरिक्त यह हिन्दी भाषा के भी प्रमुख लेखक हैं जिसका प्रमाण प्रस्तुत ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में श्वेताम्बर व दिगम्बर मान्यताओं को ध्यान में रखकर पूरा किया है। दोनों जैन धर्म व साहित्य के प्रति समर्पित आत्मा है।